श्रीराम चरित

खण्ड-४

— श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'

श्रीराम - चरित

[चतुर्थ खण्ड]

लेखक :

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।

प्रकाशक—
श्रीकृष्ण - जन्मस्थान सेवा - संस्थान
मथुरा – २८१००१ (उ० प्र०)

प्रथमावृत्ति—रामनवमी, वि. सं. २०३७

संस्करण : २२००

मूल्य—
साधारण संस्करण— १२) रुपये

मुद्रक—
राधा प्रेस
९९३/३, गोस्वामी गणेशदत्त मार्ग
गांधीनगर, दिल्ली-११००३१
दूरभाष : २१३१०७

श्रीरामचरित—(चतुर्थ खण्ड)

अनुक्रमणिका

अपनी बात

आरम्भमें कल्पना भी नहीं थी कि यह श्रीरामचरित इतना विशाल बन जायगा। लेकिन लिखवाना दूसरेको है, मेरी कल्पनाका अर्थ भी क्या है। कन्हाईका स्वभाव ही है स्वयं करके सुयश दूसरेको दे देना।

तृतीय खण्ड बहुत बड़ा हो गया है। श्रीवैदेहीके हरणसे प्रारम्भ हुआ खण्ड उनके पुनर्मिलनसे पूर्व पूर्ण हो जाता तो अधूरा रहता। उसे पूर्ण करना था और इस प्रयत्नमें वह दूसरे खण्डोंसे अधिक बढ़ गया। सन्तोष यही है कि उसमें राक्षसोंके युद्धका वर्णन समाप्त हो गया। इस खण्डका वर्णन अविकल तो नहीं; किंतु अधिकांश वाल्मीकीय रामायणके आधारपर है।

श्रीरामचरित अनन्त है। अनेक कल्पोंकी कथाओंका वर्णन विभिन्न ग्रन्थोंमें है। मूल मन्त्र संहिता (वेदों) में भी श्रीरामचरित्रका सूत्र प्राप्त होता है। उपनिषदोंमें, पुराणोंमें, महाभारतमें, उपपुराणोंमें, तन्त्र-ग्रन्थोंमें, काव्य-साहित्यमें राम कथाका विपुल विस्तार है। रामायणोंमें तो रामचरित है ही और इन रामायणोंकी संख्या भी थोड़ी नहीं है।

केवल संस्कृति वाङ्मयकी बात क्यों की जाय। हिन्दी, बंगला, उत्कल, असमिया, मराठी, गुजराती, तमिल, तैलगू, मलयालम्, कन्नड़, नैपाली तथा उर्दूमें भी श्रीराम कथा है। राम कथा तो भारतसे बाहर यवद्वीप (जावा) में, कम्बोडिया आदिमें भी है और इन भाषाओंमें जो रामचरित है, एक-एक भाषामें अनेक-अनेक रामचरित हैं, उनमें केवल अनुवाद हैं, मौलिकता नहीं है, यह बात कोई अत्यन्त अज्ञ ही कहेगा।

हिन्दीमें गोस्वामी तुलसीदासजीका श्रीरामचरित-मानस अब विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ हो गया है; किंतु गोस्वामी तुलसीदासजीके ही रामकथा काव्य ग्रन्थ दूसरे भी तो हैं। गीतावली, कवितावली, छप्पय रामायणादि-में अनेक कथाएँ श्रीरामचरित मानससे भिन्न ढङ्गकी हैं। यही बात श्रीरामकथा सम्बन्धी संस्कृत तथा दूसरी भाषाओंके ग्रन्थोंके सम्बन्धमें है।

उनमें अनेक कथाएँ सर्वथा दूसरे ग्रन्थोंसे भिन्न हैं। मौलिक हैं। ऐसी हैं कि दूसरे ग्रन्थोंसे उनका कोई मेल बैठाया नहीं जा सकता।

सृष्टि अनन्त है। कल्प अनन्त हैं। प्रत्येक कल्पमें श्रीरामका अवतार होता है। अतः अमुक घटना कल्पना है, कविकी उद्‌भावना है, किसी कल्पका सत्य नहीं है, ऐसा कहनेका साहस नहीं किया जा सकता। दूसरी बात यह कि जैसे अग्निमें पड़ी प्रत्येक लकड़ी अग्नि बन जाती है, वैसे ही चिन्मय भगवानसे सम्बद्ध होकर प्रत्येक कल्पना सत्य हो जाती है। उनमें लगी कल्पनाका नाम ही भावना है। वे उस भावनाको स्वीकार करके सत्य बनाते चलते हैं।

श्रीराम कथाके इस अपार-विस्तारको जानलेना भी मेरे लिए सम्भव नहीं था। मैंने बहुत दूरसे इस महासमुद्रका दर्शन—सम्भवतः स्वप्न दर्शन किया है और अपने साहसके अभावमें स्नानके स्थानपर हाथ जोड़ लिया है।

किसीके लिए भी सम्भव नहीं है कि सम्पूर्ण वाङ्मय वर्णित श्रीराम-चरितकी विविध कथाओंका पूरा सङ्कलन कर सके। उनमें इतनी विविधता, परस्पर विरुद्धता भी है कि उनमें एक रूपता लाना तो शक्य ही नहीं है। वे एक ही कल्पकी घटनाएँ तो नहीं हैं कि उनमें एक रूपता आ सके। आप कभी पूर्व चलते हैं, कभी पश्चिम, उत्तर या दक्षिण। आपके चलनेका वर्णन करना हो तो मैं आपको किधर चलनेवाला कहूँ? इसी प्रकार सर्वतन्त्र स्वतन्त्र लीलामय किसी नियममें बँधे नहीं हैं। वे किसी कल्पमें कोई बात एक प्रकारसे करते हैं और किसी कल्पमें दूसरे प्रकारसे। कोई भी वर्णन तो एक ही ढङ्गसे करेगा।

मेरे वर्णनमें भी भूलें होंगी—केवल इतना कह सकता हूँ कि वे जान बूझकर किसी पूर्वाग्रहसे नहीं की गयी हैं, क्योंकि मैंने किसी अपने मतकी स्थापनाके लिए यह चरित नहीं लिखा है। मैंने इसे अपने लिए लिखा है—अपने अन्तरमें श्रीरामचरितका चिन्तन चले, इसलिए लिखा है। अतः इसमें मेरी भावनाएँ तो हैं; किंतु भूलें मेरे अज्ञानके कारण हुई हैं। उन्हें मैं सुधारनेको सदा प्रस्तुत रहा हूँ और अब भी हूँ सुधीजन जो सुझाव देंगे, उन्हें यथा सम्भव ग्रहण करनेका प्रयास अगले संस्करणमें करनेकी सच्ची इच्छा है।

भूलें तो मेरे प्रमादवश बहुत होतीं ; किंतु सहज सुहृद श्रीराम कथाके देशके माने हुए सम्मानित विद्वान् वेदान्त भूषण पण्डित श्रीराम-कुमारदासजी रामायणी, साहित्यरत्न (मणि पर्वत अयोध्या) ने समयपर सुझाव देकर बहुत-सी त्रुटियाँ सुधार दीं। मैं अपनी अयोग्यताके कारण उनके सभी सुझाव ग्रहण नहीं कर सका, यह मेरी त्रुटि है और वे अपने सौजन्य, स्नेहके कारण सदासे मेरी त्रुटियोंको क्षमा करते आये हैं। विश्वास है। इस बार भी क्षमा कर देंगे।

उनका स्नेहाग्रह—वे अपने श्रीराम ग्रन्थागारमें मेरी पुस्तकोंकी सभी पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित कर देना चाहते हैं ; किंतु अपने इस अस्त-व्यस्त जीवन क्रमको देखते कितनी पाण्डुलिपियाँ दे सकूँगा, कह नहीं सकता हूँ।

भाई श्रीजयदयाल डालमियाने प्रत्येक अध्यायको छपनेसे पूव पढ़ा—इतने ध्यानपूर्वक पढ़ा कि अक्षर मात्रओंकी त्रुटियाँ भी सुधारीं। पूछ-पूछकर सुधारीं। जहाँ कोई बड़ी त्रुटि दीखी—उसे ग्रन्थोंमें ढूँढ़ा और मुझे सुझाया। उनका यह श्रम भगवत्कथाके प्रति स्वभाविक आकर्षणके कारण है। मैं उन्हें भाई कहता हूँ, अतः आभार या धन्यवादकी बात ही नहीं उठती। यह चरित पाठकोंको भी उनके इस प्रस्तावके कारण ही शीघ्र सुलभ हुआ— 'इसे क्रमशः 'श्रीकृष्ण सन्देश' में दिया जाय।'

लिखा मैंने नहीं—केवल मैंने प्रमाद वश भूलें कीं सम्यक् अवधान न होनेसे, अपनी स्मृति योग्यताका अड़ङ्गा मध्य-मध्यमें लगा देनेसे कन्हाईकी प्रेरणासे पृथक पड़कर मैंने भूलें की हैं। सुहृदोंने सुधारनेका प्रयत्न किया है। अब भी बहुत-सी रह गयी हो सकती हैं, उन्हें आप क्षमा कर दें। सूचना देंगे तो सुधारनेका भी सम्भव प्रयास किया जायगा।

मुझे इसके लिखनेमें लाभ हुआ—अकल्पनीय लाभ हुआ। इतने दिनों तक श्रीरामचरितका चिन्तन चलता रहा। आपको भी कुछ लाभ हो, कुछ भगवत्स्मृति हो, भावना जागे और उसका पुण्य प्रसाद मुझे भी देना स्वीकार हो तो आशीर्वाद दें कि अन्तिम-श्वास तक श्रीराम या श्यामका चिन्तन करता रह सकूँ। इनके चारु चरितोंमें चित्त लगा रहे।

ज्येष्ठ पूर्णिमा सं० २०३३ वि०
[१२ जून १९७६ ई०]
योग-निकेतन उत्तरकाशी

विनम्र—
सुदर्शनसिंह

श्रीराम - चरित

(चतुर्थ - खण्ड)

मङ्गलाचरण

वन्दौं सुपुण्यमयी स्वच्छ सलिला सरयू नित्य,
वन्दौं अनादि परम अविचल अयोध्या धाम।
वन्दौं अवधवासी सकल सचराचर सदा,
वन्दौं राघवेन्द्र पदपङ्कज - प्राप्त पुण्य काम॥
वन्दौं भानुवंश भव्य भुवन यशोज्वल शुभ्र,
वन्दौं कैकेयी - सुमित्रा - कौशल्या - पद ललाम।
वन्दौं मण्डवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति चरण,
वन्दौं जगज्जननी श्रीसीता पद पुण्य - धाम॥
वन्दौं भरत - भरताग्रज, लक्ष्मण - लक्ष्मणानुज शुचि,
वन्दौं श्रीराम नाम, राघवराम सीताराम।
राजाराम, रघुपतिराम सीताराम सीताराम॥

श्रीराम - दरबार

पुष्पकारूढ़ राम

अतिशय सुन्दर हंसाकार विमान पुष्पक पृथ्वीसे ऐसे ऊपर उठा, जैसे कोई बैठा हुआ बड़ा पक्षी अपने पङ्ख फैलाकर उड़ जाता है। उससे मधुर कल हंस ध्वनि गूँज रही थी। श्रीरामकी इच्छानुसार विमान बहुत मन्द गतिसे, पृथ्वीके बहुत समीपसे—इतने समीपसे कि लङ्काके भवनोंसे, वृक्षोंसे, पर्वतके शिखरसे टकरा न जाय, समरभूमिका एक चक्कर लगाने लगा।

'यहाँ मैंने रावणको मारा। सुरासुरजयी दशग्रीव सचमुच दुर्जय था।' श्रीरामने जनक-नन्दिनीको युद्धभूमि दिखलाना प्रारम्भ किया—'उसने अकल्पनीय पराक्रम प्रकट किया। अब भी उसका वह भग्नरथ नीचे पड़ा है।'

'तुमने तो महाकाय कुम्भकर्णको देखा नहीं होगा।' श्रीरामने युद्धभूमिकी ओर संकेत किया—'वह मरकर गिरा तो वह उतना बड़ा भूभाग उसके शरीरके नीचे आकर गड्ढा बन गया है। यद्यपि तब मैंने उसका मस्तक, उसके दोनों पैर और उसकी भुजाएँ काट दी थीं। अपने राक्षसेन्द्र ये विभीषणजी उसके छोटे भाई हैं—सचमुच छोटे। ये कठिनाईसे अपने हाथ उठाकर उसके सिरका स्पर्श कर सकते होंगे। वह जब लङ्काके राजपथपर निकला, तब हमारे अनेक बुद्धिमान यूथपोंने वानरोंको यह कहकर बहलाया—'यह सजीव राक्षस नहीं है। यह रावणकी मायासे निर्मित राक्षसाकार महायन्त्र है।'

सुनकर श्रीवैदेही हँस पड़ीं। श्रीरघुनाथने भी तनिक मन्दस्मितके साथ नीलकी ओर देखा तो उन्होंने मस्तक झुका लिया; क्योंकि यह युक्ति उनके ही मस्तिष्कका आविष्कार थी।

'देवि! कुम्भकर्ण महाकाय था; किंतु उसको जीतना उतना कठिन नहीं था, जितना रावणके ज्येष्ठ पुत्र मेघनादको। वह ब्रह्मास्त्र-वेत्ता, मायावियोंका मुकुटमणि अदृश्य रहकर युद्ध करता था। एक बार

तो उसने हम सबोंको नागपाशसे बाँधकर मूर्छित-मृत तुल्य ही कर दिया था।' सङ्कट समाप्त हो जानेपर उसकी स्मृति व्यक्तिको गौरव देती है। श्रीराम युद्ध-संस्मरण सुना रहे थे।

'मुझे उसी समय दशग्रीवने राक्षसियोंके साथ पुष्पकमें युद्ध भूमि देखने भेजा था।' श्रीमैथिलीके श्रीअङ्गमें सिहरन उठी— 'मैं उसी दिन प्राण त्याग देती, यदि त्रिजटाने मुझे समझाया न होता कि आर्यपुत्र देवर-के साथ केवल मूर्छित हैं। बहुत कठिनाईसे मैं उसकी बातका विश्वास कर सकी।'

'लंकेश उस वृद्धाका ध्यान रखेंगे।' वैदेहीने विभीषणकी ओर देखा— 'वह विपत्तिके दिनोंमें माताके समान मेरी रक्षा करती रही है। वही थी कि आज सीता जीवित है।'

'मैंने पवनपुत्रसे उसका वह स्वप्न सुन लिया है, जो उन्होंने राक्षसियोंको सुनाया था।' विभीषणने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया— 'सरमाने उन्हें राजमाता मान लिया है। वे अब राज सदनमें आ चुकी हैं।'

प्रशंसा पूर्ण दृष्टि उठी श्रीराघवेन्द्रकी विभीषणकी ओर। उन्होंने उचित व्यक्तिको लङ्काका राज्य दिया है।

'जो द्वादश वर्ष अनाहार, अनिद्र, ब्रह्मचारी रह चुका हो और दिव्यास्त्र ज्ञानमें भी लगभग संसारमें अद्वितीय ही हो, वही उस इन्द्रजित-को मार सकता था।' अब श्रीरामकी वात्सल्यसे पूर्ण दृष्टि पीछे खड़े अनुजकी ओर गयी तो लज्जासे लक्ष्मण अत्यन्त संकुचित हो गये— 'यह दुष्कर कार्य वत्स लक्ष्मणने सम्पन्न किया। यहाँ गुहामें निकुम्भिला मन्दिर है देवीका। यहीं मेघनाद कालीको सन्तुष्ट करनेके लिए यज्ञ करने लगा था। यज्ञ पूरा होनेपर वह अमर हो जाता। लक्ष्मणने यहाँ उसका वध किया युद्ध करके।'

'ओह! कितने कष्ट उठाने पड़े मेरे लिए आर्यपुत्रको और मेरे सुकुमार देवरको!' भगवती मैथिलीके लोचन सजल हो गये। उनको पञ्चवटीमें कहे अपने कठोर वचन स्मरण आये। वे लक्ष्मणसे क्षमा-याचना करने वाली थी; किंतु दृष्टि जब लक्ष्मणकी ओर गयी, वे हाथ जोड़े, सिर झुकाये ऐसे संकुचित हो रहे थे कि समझ गयीं—इनपर बहुत

अत्याचार होगा—बड़ी निष्ठुरता होगी इनके प्रति इनसे क्षमा की कोई बात कहना।

'यहाँ हनुमानने, यहाँ अङ्गदने, यहाँ सुग्रीवने रावणके प्रमुख सेनापतियोंको मारा।' श्रीरामने प्रसङ्गान्तर किया।

युद्ध-भूमिमें अब तक असंख्य रथ भग्न पड़े थे। कटे कवच, शिरस्त्राण, आभूषण, अस्त्र-शस्त्र चमक रहे थे। सम्पूर्ण समर-भूमि जमे रक्तके दलदलसे लोहितकृष्ण हो रही थी। अब नीचे शृगाल, गृद्ध, काक, श्वानादि अपनी उदर पूर्तिमें लगे थे और स्वभावानुसार लड़-झगड़ रहे थे। सहस्रशः राक्षस सेवक समर-स्थली स्वच्छ करनेमें लग चुके थे। वह दृश्य अत्यन्त वीभत्स था। वह देखने योग्य नहीं था। विमानने लङ्काका चक्कर लिया।

'यहाँ नीचे वह इस दासका आवास है।' विभीषण दिखलाने लगे— 'वह अत्युच्च राजसदन है।'

नीचे राक्षस, राक्षसनियाँ सब हाथ जोड़े, ऊपर मुख उठाये खड़े थे। राजसदनके ऊपर श्रीजानकीने सरमा और त्रिजटाको साथ खड़े देखकर पहिचाना।

'हम पहिले इस सुबेल शिखरपर उतरे थे। यह हमारा प्रथम सैनिक शिविर है।' श्रीरामने पवनपुत्रकी ओर देखा— 'हनुमानने पहिले ही हमारे लिए इसे प्रशस्त कर दिया था।'

श्रीरघुनाथ कुछ थोड़ा परिचय दे रहे थे, सम्बन्धित कथाएँ सुना रहे थे। बीच-बीचमें किसीकी प्रशंसा भी करते थे। विभीषण, सुग्रीव अथवा वानरोंमें-से भी कोई बोलता था। श्रीजनकनन्दिनी मध्यमें कुछ पूछती थीं। किसीकी ओर कृतज्ञता, वात्सल्य, स्नेहसे देख लेती थीं। उनके लिए सब अपरिचित था। लङ्कामें तो उन्होंने अशोक-वाटिकाकी ओर भी दृष्टि दशग्रीव वधके पश्चात् डाली। वे बलात् लायी गयीं तब इतनी व्याकुल थीं कि कुछ देखनेकी उनकी अवस्था ही नहीं थी। आज अपने स्वामीके अप्रमेय पौरुषके प्रत्येक प्रतीकको देख लेने, समझ लेनेकी उत्सुकता जाग उठी थी उनमें। उनकी दृष्टि नीचे ही लगी थी। विमान बहुत मन्द गतिसे चल रहा था। जब श्रीराम किसी स्थलको दिखलाते हुए उसका वर्णन करने लगते थे, तब विमान वहाँ लगभग स्थिर हो जाता था।

अच्छा यही था कि विनाशके बहुतसे केवल चिह्न बचे थे। पवन-पुत्रने लंका जलाकर उसे जो रूप दे दिया था, उसको बहुत कुछ दशग्रीव सुधार चुका था। अब तो युद्धके मध्य वानरोंने—विशेषतः हनुमान और अङ्गदने नगरमें जो ध्वंस किया था, वही देखा जा सकता था। वह भी अल्प नहीं था; किंतु विभीषणके आदेशसे उसका भी पुनर्निर्माण प्रारम्भ हो गया था।

'अहा! लगता है कि उदधिको आपने माला पहिना दी है।' श्रीवैदेहीने दूरसे सेतुको देखकर पुलकित होकर कहा। उन्होने सुन लिया था कि उनके स्वामीने समुद्रपर सेतु-निर्माण करके अकल्पनीय काय सम्पन्न किया है; किंतु सेतुको सम्मुख देखकर उनका हृदय भी अपने आराध्यके इस अतुलनीय पौरुषसे विभोर हो गया। इस उत्ताल तरङ्गायमान उदधिके वक्षपर पुष्पमाल्यके समान ऊपर-नीचे, उठता-बैठता, लहराता; किंतु अभग्न सुदृढ़ सेतु! इतना विशाल, इतना चौड़ा—बिना मध्यमें कोई आधार स्तम्भ दिये!

सेतु अब अधिक स्वाभाविक हो गया था। सागरकी तरङ्गोंने उसके दोनों ओरके किनारोंको बहुत कुछ सपाट कर दिया था। तरङ्गोंपर बराबर ऊपर-नीचे होते रहनेके कारण सेतु अधिक समतल बन चुका था। मध्यमें लगे वृक्षोंके पत्ते, पुष्प, फल सूखकर झड़ चुके थे और बह गये थे। अब तो रङ्ग-बिरङ्गी शिलाएँ भी बराबर समुद्र जलसे सिञ्चित होनेके कारण लगभग एकाकार होने लगी थीं। दस योजन चौड़ा, सौ योजन लम्बा अब काईके रङ्गसे उपलिप्त जैसा वह सेतु अद्भुत आश्चर्य था सृष्टिका। उसे देखकर विश्वकर्मा और मय दोनों चकित ही हो सकते थे।

'यह नल-नीलके करोंका कौशल है।' श्रीरामने मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की। इन्होंने इसे केवल पाँच दिनमें पूरा कर दिया था। वृक्ष, शिलाएँ, पर्वत ढोनेका अथक उद्योग वानरेन्द्र सुग्रीवके सैनिकोंने किया।'

'हम दोनोंको निमित्त बनाकर जिन्होने गौरव दिया, हमारे स्वामी तो सदासे सेवकको सुयश देने वाले हैं।' नल-नील हाथ जोड़कर खड़े हो गये— 'हम दोनों तो असफल हो चुके थे, जब समुद्र हमारे द्वारा स्थापित शिलाएँ बहा ले गया था। यदि आपके नामने उन्हें संयोजित न किया होता, हम क्या कर लेते?'

श्रीजनक-नन्दिनीसे अपने आराध्यके नामका असीम प्रभाव अज्ञात नहीं है। उस नामका स्मरण करके प्राणी भवसिन्धु पार कर लेता है; किंतु पवनपुत्रने शिला-संयोजनका यह प्रभाव सूचित किया तो उन्हें आनन्दमिश्रित आश्चर्य ही हुआ।

'आर्य तो समुद्रसे मार्ग पानेके लिए वहाँ अनशन करके प्रार्थना करते लेट गये थे। तीन दिन उपोषित पड़े रहे।' लक्ष्मणने श्रीरामका वह प्रचण्ड पौरुष सुनाया, जिससे भीत समुद्रके देवताको 'शरण ! शरण !!' पुकारते प्रकट होना पड़ा था।

'वहाँ विभीषण मिले थे !' श्रीरामने दूरसे संकेत किया— 'तुम्हें स्मरण होगा कि वहाँ हमने भगवान शङ्करकी स्थापना की है।'

'मैं उन आशुतोषके दर्शन करूँगी।' श्रीजानकीके कहते ही विमान सागरके दूसरे तटपर सेतुबन्धके समीप कुछ मंडलाकार घूमकर उतरा और पक्षीके समान अपने पङ्ख समेटकर उस स्थापित श्रीविग्रहके समीप तक चला गया।

श्रीरामने वैदेही तथा लक्ष्मणके साथ समुद्र-स्नान करके श्रीरामेश्वर लिङ्ग विग्रहका पूजन किया। विभीषण तथा अन्य सबने भी सागर-स्नान तथा शिवार्चन सम्पन्न किया। श्रीरामने हनुमदीश्वरकी स्थापनाकी कथा सुनायी। सबने उस हनुमदीश्वर लिङ्गकी भी अर्चाकी। हनुमानजी इस अवसरपर तनिक लज्जित हो गये थे।

अचानक विभीषण अञ्जलि बाँधकर सम्मुख खड़ हो गये। श्रीरामने उनकी ओर देखा। इस दृष्टिमें ही प्रश्न था— 'कुछ कहना है तुमको ? मुझसे कुछ कहनेमें मेरे अपनोंको संकोच क्यों होना चाहिये ?'

लक्ष्मण, सुग्रीवादि भी विभीषणकी ओर देखने लगे। सबको कुतूहल हुआ कि ये लंकेश उस स्थापनापर आकर जहाँ प्रभुके प्रथम-दर्शन इन्होंने किये थे, अब क्या कहना चाहते हैं ?

'आपने दुर्दान्त दशग्रीवको मारकर सुर-साधु सबको सुखीकर दिया। समुद्रपर बना यह सेतु न भी रहे तो भी आपके सुयशसे त्रिभुवन सदा उज्वल रहेगा।' अत्यन्त विनम्र स्वरमें विभीषण प्रार्थना कर रहे थे-- 'आपने लङ्काके पालनका दायित्व अपने इस अयोग्य दासपर डाल दिया। सेतु बना रहा तो मानव, मुनिगण, विप्रगण कोई भी सरलतापूर्वक चाहे जब लङ्का पहुँचते रहेंगे। राक्षसोंका स्वभाव आप जानते हो।

वह उनका जन्मजात स्वभाव सम्पूर्ण परिवर्तित हो जाय, यदि ऐसा आप आशीर्वाद दे दो तो मुझे कुछ कहना नहीं है। अन्यथा अपने यहाँ आ गये साधुओं, मुनियों, गायोंका वे अपमान नहीं करेंगे, उन्हें कष्ट नहीं देंगे, यह विश्वास मुझे नहीं है।'

'मैं अपनी असमर्थता निवेदन कर दूं। उग्र दण्ड देना मेरे स्वभावमें नहीं है। मैं कठोर दण्ड-विधानकी क्रूरता नहीं कर पाता।' विभीषणने कहा—'दशग्रीवके उग्र दण्डसे राक्षस डरते थे। इस समय जिनके स्वजन मारे गये हैं, उनसे अपराध भी हो तो भी उन्हें कठोर दण्ड देना नृशंसता लगेगा मुझे। अतः यदि इस सेतुको सुरक्षित रखना है·········।'

'अब इसकी आवश्यकता भी क्या है।' श्रीराम उठ खड़े हुए—'हमारा प्रयोजन पूरा हो गया। तुमको और तुम्हारे राक्षसोंको सेतुकी कभी आवश्यकता नहीं हुई। तुम ठीक कहते हो कि अब यदि यह बना रहता है तो इसके दुरुपयोगकी ही सम्भावना अधिक है।'

श्रीराम वहाँसे धनुष लिए पैदल ही उस स्थान तक पहुँचे जिसे आज धनुष्कोटि कहा जाता है।* जहाँसे सेतुकी चौड़ाईका प्रारम्भ होता था। सेतुकी चौड़ाईका दूसरा भाग तो दक्षिण-पश्चिम वर्तमान कन्याकुमारी तक चला गया था। विभीषण, लक्ष्मणादि सभी श्रीरामके पीछे वहाँ तक आ गये।

अपने यशके इस अद्भुत प्रतीककी ओर एक बार दृष्टि उठाकर भी उन महत्तमने नहीं देखा। अपने धनुषकी नोकसे प्रारम्भकी एक शिला मात्र हटी; किंतु जिन सत्य सङ्कल्पके संकल्प-बलसे सेतु टिका था, उन्होंने ही उसे भग्न करनेका संकल्प किया तो उसे टूटनेमें कितने क्षण लगने थे? समुद्रको स्वयं कहाँ यह बन्धन स्वीकार था। उत्ताल तरंगोंके थपेड़ोंमें क्षण भरमें सेतु अदृश्य हो गया। वे तरते पाषाण कहाँ गये, कौन कह सकता है।

सब स्तब्ध रह गये। नीरव ही सब लौटे और श्रीसीतारामके साथ पुष्पकपर जा बैठे। पुष्पकके पङ्ख फैल गये और वह पक्षीके समान आकाश-में उड़ गया।

---

*धनुष्कोटिका मन्दिर तथा उस अन्तरीपका अन्तिम भाग समुद्री वात्याचक्र (साइक्लोन) ने ध्वस्त कर दिया था। मन्दिर तो नहीं है; किन्तु अन्तरीप निकल आया है।

किष्किन्धामें

'अपने वानरेन्द्रकी पुरी किष्किन्धा आ रही है।' श्रीजानकीका ध्यान नीचेकी ओर राघवेन्द्रने दिलाया। समुद्रतट छोड़नेके पश्चात् अबतक कोई उल्लेखनीय दृश्य आया नहीं था।

'विमानको यहाँ उतरना चाहिये।' वैदेहीने उत्सुक होकर कहा—'यहाँ वानरेन्द्रकी पत्नियाँ हैं। दूसरे भी वानर यूथपोंकी जो पत्नियाँ यहाँ हैं, उनसे मैं मिलूंगी। यदि आर्यपुत्र अनुमति दे तो उन्हें भी अयोध्या साथ ले चलें।'

'अवश्य उन्हें साथ ले लेना चाहिये।' श्रीरामने प्रसन्न होकर कहा। विमान नीचे उतरने लगा था। किष्किन्धाके समीप भूमिका स्पर्श करते ही उसने पङ्ख समेट लिये।

'मित्र! आप शीघ्रता करेंगे।' श्रीरामने सुग्रीवसे अनुरोध किया। स्पष्ट हो गया कि वे स्वयं तो उस वानर पुरीमें नहीं ही जायेंगे, श्रीजनकनन्दिनी तथा लक्ष्मणको भी जानेका अवकाश नहीं है।

'आपकी आज्ञा हो तो मैं अपनी माताके चरण-दर्शन कर आऊँ।' पवनकुमारने प्रार्थनाकी। उनके पिता केशरीजी तो साथ ही थे। विमानको मैं मार्गमें मिल जाऊँगा।'

'उन पूजनीयाके हम सब दर्शन करेंगे।' श्रीराघवेन्द्र सुप्रसन्न बोले—'तुम पहिले जा सकते हो; क्योंकि माताके पुत्र-मिलनको कुछ एकान्त क्षण प्राप्त होने चाहिये।'

सुग्रीव, अङ्गदादि विमानसे नगरमें चले गये और बहुत शीघ्र लौटे। उनके साथ किष्किन्धाके उनके सेवक, पत्नियाँ तथा स्वागत सामग्री थी।

ताराने श्रीरामकी, लक्ष्मणकी भी चरण-वन्दना की। पद-वन्दनाके समय उसे श्रीजानकीने हृदयसे लगा लिया। उसने साश्रुलोचन कहा—'हम वानरोंकी पुरी आप जगद्धात्रीके पादारविन्दसे पवित्र होने योग्य नहीं है?'

'आर्यपुत्र अत्यन्त आतुर हैं अयोध्या पहुँचनेके लिए।' श्रीवैदेहीने संकोचके साथ मानो क्षमा याचना की—'वानरेन्द्र आर्यपुत्रके अपने हैं, अतः यह पुरी तो हमारी ही है। तुम इस समयकी हमारी स्थिति देखकर बुरा मत मानना।'

'समझती हूँ देवि! आप चौदह वर्षोंसे वन-वन भटकती रही हैं। राक्षसके द्वारा उत्पीड़ित हुई हैं। अयोध्या समाचार पहुँचा होगा। वहाँके स्वजन अपनी साम्राज्ञीके दर्शनोंके लिए कितने उत्सुक, कितने व्याकुल होंगें, समझ सकती हूँ।' ताराने कहा—'मैं अधिक आग्रह नहीं करूँगी।'

तारा अयोध्या नहीं जा सकती थी। सुग्रीव और अङ्गद दोनों ही अयोध्या जा रहे थे, अतः वानर-पुरीकी व्यवस्था बनाये रखनेके लिये ताराका यहीं बने रहना आवश्यक था। वस्तुतः किष्किन्धाकी समस्त व्यवस्था वानरेन्द्रके यहाँ होनेपर न ताराके ही हाथोंमें रहती थी।

सुग्रीवके साथ उनकी पत्नी रुमाको साथ जाना था। रुमाने पद-वन्दनाकी तो श्रीजानकीने उसे अङ्कमें ही समेट लिया। वह अत्यन्त सङ्कोची, छुई-मुई-सी अपनी पुत्री जैसी ही प्रतीत हुई श्रीजनक-नन्दिनी-को। उसे उन्होंने स्नेहपूर्वक विमानमें अपने समीप बैठाना चाहा; किंतु वह उनके पाद-पीठके समीप भी बहुत सिकुड़ी सिमटी बैठी।

श्रीजनकनन्दिनी नित्य अतुलनीय हैं। वे निखिलेश्वरि—सर्वलोक वन्दनीया सुरेन्द्र भी उनके श्रीचरणोंमें मस्तक रखकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं। अनन्त वात्सल्यकी धनीभूत मूर्ति वे कृपा-पारावार प्रतिमा।

लङ्कामें मन्दोदरी और विभीषण पत्नी सरमा थीं तथा किष्किन्धामें यहाँ तारा और रुमा मिलीं। चारों अपूर्व सुन्दरियाँ; किंतु तुलना ही करनी हो तो मन्दोदरी एवं तारा तथा सरमा और रुमासे की जानी चाहिये। मन्दोदरी एवं तारा दोनोंको देखकर लगता है कि वे जन्मजात प्रशासिका हैं। वे स्वरूपसे ही शासन करनेके लिए उत्पन्न हुई हैं। दोनों तत्त्वज्ञा, दीर्घदर्शिनी, गम्भीर। दोनोंको दैवने एक-सी परिस्थिति प्रदान की। लेकिन तारा किञ्चित् प्रगल्भा और मन्दोदरी अधिक विनयावनता। सम्भव है बालि-की स्नेहशीलता तथा दशग्रीवकी दुर्धर्षताका दोनोंमें प्रभाव आया हो।

सरमा सहज सेवा परायणा। श्रीवैदेही उसे 'सखि!' कहती थीं किंतु रुमा इतनी लज्जामयी, सिकुड़ी रहनेवाली जैसे कोई बहुत सुकुमार

सुमन हो, स्पर्श करते ही म्लान पड़ जायगा। श्रीमैथिलीका वात्सल्य वह मिलते ही प्राप्त कर चुकी थी।

तारा बहुत-सा उपहार ले आयी थी। श्रीरघुनाथने उसे स्वीकार करनेकी स्वीकृति दे दी। श्रीजनकनन्दिनीने उसे स्वीकार कर लिया। अद्‌भुत थे वे उपहार। अनेक रङ्गोंके, अनेक गुणवाले मधुछत्रक, विचित्र प्रभाव वाली औषधियाँ थीं उनमें। इनको प्राप्त करना किसी सम्राट्‌के लिए भी कठिन ही था।

किष्किन्धासे विदा होते समय श्रीवदेहीने ऋष्यमूक शिखर देखनेकी इच्छा की— 'आर्यपुत्र जहाँ पाँच मास रहे हैं, वह गुहा मुझे देखनी है।'

'तुम्हारे बिना कैसे व्यतीत हुए वे दिन, मैं ही जानता हूँ।' सस्मित श्रीरघुनाथने कहा।

वह गुहा, वह शिलातल जिसपर श्रीरघुनाथ बैठा करते थे— बालिकाके समान दौड़ती श्रीवैदेही उन स्थानोंपर घूमीं। उन्होंने पता नहीं कितने स्थानोंपर मस्तक रखा, कितने स्थानोंको स्पर्श किया। यहाँ केवल लक्ष्मण साथ बतला रहे थे स्थानोंको। शेष सब दर्शक बने रहे।

श्रीरघुनाथको शीघ्रता थी। सबको विमानमें बैठकर उस पावन स्थलीको प्रणाम करके विदा होना पड़ा। अब विमान अञ्जना-शिखरपर जाकर उतरा। अब तक पवनकुमारने माताको कोई समाचार नहीं दिया था। आते ही मातृपदोंमें उन्होंने प्रणाम किया तो माताने उन्हें हृदयसे लगा लिया। वे अब तक माताके वात्सल्य-विभोर अङ्कमें शिशु बने बैठे थे। बहुत कालके पश्चात् पुत्रको पाकर माता भी शरीरकी सुधि भूल गयी थीं।

अब पुष्पकको उतरते देखकर हनुमान सावधान हुए। माताको सूचना दी— 'आपके दर्शनार्थ सानुज श्रीरघुनाथ पधारे हैं। अम्बा सीता साथ हैं और अपने प्रमुख परिकरोंके साथ वानरेन्द्र सुग्रीव भी।'

केशरीने इस अवसरपर उपयुक्त माना कि वे पृथक रहें। देवी अञ्जनाने शीघ्रतापूर्वक स्वागत-सम्भार एकत्र करना प्रारम्भ किया। वे बार-बार दुहरा रही थीं— 'हनुमान ! तू सच्चा पुत्र सिद्ध हुआ। तूने मेरा मातृत्व सफल किया। मुझे कृतकृत्य किया।'

सानुज श्रीरामने गोत्र तथा पिताका नाम लेकर प्रणाम किया। पुलकित शरीर, अङ्ग-अङ्ग काँपता, अविरल अश्रुधारा, बोलनेमें असमर्थ वाणी। माता अञ्जना तो जैसे प्रतिमाके समान स्थिर रह गयीं। वे मूर्छित होकर गिर पड़तीं; किंतु तभी श्रीजानकीने करोंमें अञ्चल लेकर उनके चरणोंपर सिर रखना चाहा। उन्हें अङ्कमें समेटकर वे सावधान ही हुईं। अश्रु सिक्त हो गयीं श्रीमैथिलीकी अलकें।

अर्घ्य, पाद्यादिसे जब वे श्रीरामकी अर्चा कर चुकीं, दूसरे लोगोंने प्रणाम करना प्रारम्भ किया। हनुमान उनका परिचय देने लगे—'ये वानरेन्द्र सुग्रीव! ये युवराज अङ्गद! ये ऋक्षपति जाम्बवान। ये वानर विश्वकर्मा नल-नील बन्धु।'

'ये लङ्काधिप राक्षसेश्वर विभीषण!' जानबूझकर विभीषणने सबसे अन्तमें प्रणाम किया था। देवी अञ्जनाके जाति स्वजनोंको प्रथम अवसर प्राप्त होना चाहिये था यहाँ।

'हनुमान! लङ्काधिप तो दशग्रीव है।' पुत्रकी ओर देखकर प्रश्न किया माता अञ्जनाने।

'श्रीरघुनाथने उसे समर-शैय्या दे दी।' हनुमानजीने संक्षिप्त कथा सुनाना प्रारम्भ किया—'वह सुर-मुनियोंका सन्त्रासक समाप्त हो गया। अब तो श्रीरघुनाथकी कृपाके परम भाजन विभीषणजी राक्षसाधिप हैं।'

'तूने अञ्जनाका दूध पिया है, धिक्कार है तुझे!' माता अञ्जनाके नेत्र अङ्गार हो उठे—'तू क्या करता रहा? मेरे दूधको पीकर भी तुझमें शक्ति नहीं आयी, साहस नहीं हुआ कि सीताके अपहरणकर्त्ताको समुचित दण्ड दे देता। मैंने व्यर्थ तुझे अपना दूध पिलाया। तू दशग्रीवको मसल नहीं दे सकता था मेरा दूध पीकर भी कि रामको वानरेन्द्रसे सहायता लेनी पड़ी और इतना श्रम करना पड़ा। मुझे मुख दिखलानेका साहस तूने कैसे किया?'

फड़कते अधर, कठोर भृकुटि माताके सम्मुख महावीर हनुमान भय कातर बालकके समान खड़े थे। बड़ी कठिनाईसे काँपते स्वरमें किसी प्रकार बोल सके—'आप मुझपर अकारण क्रोध करती हैं। मुझे ऋक्षपति जाम्बवन्तने वर्जित किया था। ये आपके सम्मुख हैं, इनसे पूछ लें। ये हममें वृद्ध थे, सम्मान्य थे। मेरा अपराध इतना ही है कि मैंने इनका

अनुशासन स्वीकार कर लिया। इनका तर्क था— 'दशग्रीव-दलनका सुयश इस सेवकको न लेकर अपने स्वामीके लिए सुरक्षित रहने देना चाहिये।'

'ऋक्षपति हम सबके सम्मान्य हैं।' माताका रोष शान्त हो गया— 'उनका सोचना ही उचित था। तुमने उनका आदेश स्वीकार करके समझदारी दिखलायी।'

'कुमार! तुम समझते हो कि अञ्जना सबके सम्मुख अपने पुत्र और अपने दूधकी प्रशंसामें डींग मार रही है?' माता अञ्जनाकी दृष्टि लक्ष्मणलालकी ओर चली गयी। उनके मुखपर स्मित देखकर वे बड़ी गम्भीरतासे बोलीं— 'अञ्जनाके दूधकी शक्ति देखोगे? देखोगे कि हनुमानने कैसा दूध पिया है?'

किसीको कुछ कहनेका अवकाश नहीं मिला। माता अञ्जना घूमीं और वानरोंके समूहसे बाहर एक ओर आकर अपना वक्षावरण हटाया उन्होंने। इतने दीर्घकालके पश्चात् पुत्रके मिलनेसे वात्सल्याधिक्यके कारण पयोधरोंमें दूध भर आया था। उनमें-से एकको उन्होंने अपने हाथसे दबाया।

दूधकी उज्ज्वल धारा सम्मुखके पर्वत-शिखरपर पड़ी, मानो वज्र-पात हुआ हो। भयङ्कर शब्दके साथ वह शिखर मध्यसे विदीर्ण हो गया। वानर स्तब्ध रह गये। माता घूमीं तो लक्ष्मण उनके चरणोंपर गिर पड़े।

'अब आप हम सबको अनुमति दें।' श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर सादर मस्तक झुकाया।

'तुम परम पुरुष मेरे यहाँ पधारे, यह वानरी तुम्हारा कोई सत्कार करने योग्य नहीं है।' माताका स्वर फिर विह्वल हो गया— 'मैं अपने हनुमानको तुम्हारे चरणोंमें अर्पित करती हूँ। इसे स्वीकार कर लो। यह सदा तुम्हारा विनम्र सेवक बना रहेगा।'

'राम आप पूजनीयाके आदेशको स्मरण रखेगा।' श्रीरामने पुनः वन्दन किया। श्रीवैदेहीको अङ्कमाल मिली। वानरेन्द्रने, वानरोंने, विभीषणने तथा वानर-पत्नियोंने भी चरण-वन्दना की। सब पुष्पकपर बैठे, तब तक हनुमान माताके समीप खड़े रहे। सबके अन्तमें माताके पदोंपर मस्तक रखकर, उनसे अनुमति लेकर वे विमानपर आये। जब

तक पुष्पक गगनमें दीखता रहा, देवी अञ्जना स्थिर खड़ी उसे अपलक देखती रहीं।

'किष्किन्धामें वानरेन्द्रकी सेविकाओं, सहचरियोंने मुझमें एक विलक्षण त्रुटि ढूंढ़ ली थी।' विमानपर बैठनेके पश्चात् विभीषणने वातावरणको सुप्रसन्न बनानेके उद्देश्यसे श्रीरघुनाथसे निवेदन किया—'सबका कहना था कि आप दोनों भाई तो दिव्य पुरुष हैं, अत: आपका स्वरूप देवतुल्य होना उचित है; किंतु मैं बिना पूंछके अशोभन लगता हूँ।'

सुनकर श्रीरघुनाथ, जनकनन्दिनी भी हँस पड़ीं। लक्ष्मणलालके भी मुखपर स्मित आया। अवश्य वानरियोंने मुख छिपा लिया। वानरेन्द्र सुग्रीव संकुचित हो गये। रुमा तो लज्जासे लाल हो उठी।

'वे सब कहती थीं कि मैं आकारमें वानरेन्द्रसे विशाल हूँ तो मेरी पूंछ भी वानरेन्द्रसे बड़ी होनी चाहिये थी। एक छोटी पूँछ भी मेरे नहीं।' विभीषणजी हँसते कह रहे थे—वानर साम्राज्ञी तारादेवीने मेरा पक्ष लिया था। उन्होंने सबको समझाया—'जैसे हम वानरोंमें पुरुषोंके ही पूंछ होती है, वानरियोंके नहीं होती, वैसे ही राक्षसों और मनुष्योंमें भी केवल पुरुषोंके मूंछे होती हैं।'

विभीषणने अपनी बड़ी मूछोंपर हाथ फिरा लिया। कुमार लक्ष्मण हँसे—'हम इन मूछोंसे वञ्चित हैं।'

'आप दोनों तो देवपुरुष हैं—पुरुषोत्तम।' इस बार वानरेन्द्र सुग्रीवने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया।'

'यह महर्षि मतङ्गका आश्रम है।' श्रीरामने नीचेकी ओर संकेत किया—'तपस्विनी शबरी यहीं मिली थी। उसने इतने स्वादिष्ट बेर खिलाये कि उनका स्वाद मुझे अब तक स्मरण है। वैसा स्वादिष्ट पदार्थ कभी नहीं मिला था।'

परिहास समाप्त हो गया। सबकी दृष्टि नीचे लग गयी।
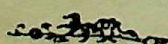
प्रयाग पहुँचे

'आर्यपुत्रको जटायु यहीं कहीं मिले होंगे !' मैथिलीके नेत्र भर आये— 'वह महावट दीख रहा है, जिसपर वे रहा करते थे। उन वृद्धने मेरे लिए दशग्रीवसे युद्ध किया। उससे एक बार मुझे छीन लिया था। उसका रथ नष्ट कर दिया और उसे इतना आहत किया कि वह मूर्छित हो गया था।'

'यहाँ मिले थे वे पितृव्य !' श्रीरामने भी अपने नेत्र पोंछे— 'उनके प्राण केवल तुम्हारा समाचार मुझे सुनानेके लिए ही शरीरमें अटके थे। धन्य थे वे।'

विमान वहाँ प्राय: रुक गया था गगनमें। श्रीसीतारामने लक्ष्मणने भी जटायुको उद्देश्य करके मस्तक झुकाया। सभी वानरोंने उझककर नीचे देखा, जैसे वे महाप्राण अब भी वहाँ होंगे।

'उन आदरणीयकी अन्त्येष्टि करके हम आगे बढ़े तो वहाँ कबन्ध मिल गया था। उसने लक्ष्मणको शिशुके समान पकड़ लिया।' श्रीरामने पीछेकी ओर संकेत किया, जहाँ अब केवल विशाल गर्त अवशेष था। श्रीमैथिलीने सस्नेह लक्ष्मणकी ओर देखा।

'वह अपनी भाग्यहीना पर्णकुटी है पञ्चवटीमें।' अनेक-अनेक स्मृतियाँ एक साथ मानसमें जाग उठीं। लक्ष्मणने भी नीचे देखा और एक दीर्घ-श्वास ली।

'यहीं तो आपका वरण करने सूर्पणखा आयी थी।' जानकीके अधरोंपर स्मित आया— 'वह तो देवरको भी बर-बनानेको प्रस्तुत थी; किंतु इनको उसके नासिका-कर्ण इतने बुरे लगे कि उन्हें काट ही दिया।'

'वही दशग्रीवके विनाशका आरम्भ बनी। उसीसे तुम्हारी विपत्ति प्रारम्भ हुई।' श्रीरघुनाथने विभीषणकी ओर देखा— 'किंतु राक्षसेन्द्रको उस अपनी भगिनीके प्रति सदय रहना चाहिये। वह अपनी दुर्बलतासे विवश बनी।'

'मैंने सुन लिया है कि उसने स्वतः लङ्काका त्यागकर दिया और मधुवनमें शरण ली है।' विभीषणने निवेदन किया — 'शैशवसे वह मुझसे चिढ़ती रही थी। मैं सदय भी रहता, तब भी वह मेरा विश्वास नहीं कर सकती थी।'

'वह महर्षि सुतीक्ष्णका आश्रम है।' विमानने वेग पकड़ लिया था। श्रीराम नीचे दिखलाने लगे—'वहाँ महामुनि शरभङ्गने हमारे सामने ही शरीर त्यागा था।'

'आर्यपुत्रने महर्षि अगस्त्यका आश्रम छोड़ ही दिया।' श्रीजानकी-ने स्मरण दिलाया—'वहीं आपको विजयदायी आयुध प्राप्त हुए थे। भगवती लोपामुद्राका स्नेह मिला था मुझे।'

'महर्षिने मुझे समरभूमिमें भी दर्शन देनेका आग्रह किया था।' श्रीरामने आदित्य-हृदय प्राप्तिका वर्णन करके कहा—'उन्होंने अयोध्या आनेका आश्वासन दिया है। अतः इतनी दूर गगनसे उनके उटजके ऊपरसे उड़ना अशिष्टता ही होती। अब समय भी थोड़ा ही हैं। हम दिनके चतुर्थ प्रहर प्रयाग पहुँच सकेंगे।'

'वह नीचे महर्षि अत्रिका आश्रम है। भगवती अनसूयाने यहीं देवीको दिव्य वस्त्रालङ्कार दिये थे।' श्रीरघुनाथने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया। श्रीजानकीने, लक्ष्मणने भी ऐसा ही किया। वानरोंने भी अनुकरण किया।

'वह पयस्विनी-मन्दाकिनी सङ्गमके समीप अपनी दोनों पर्णकुटी हैं। ये अब तक सुरक्षित हैं !' श्रीमैथिलीने ममता और आश्चर्यके साथ नीचे देखा।

'आपके कर-कमलों द्वारा लगायी गयी लतिका पुष्पभारसे लदी है।' इस बार लक्ष्मण बोले—'आपने जो आम्रतरु आरोपित किया था, उसमें भी फलोंके घौर लगे हैं। वह आपकी पर्णशालाके सम्मुख बैठा मृग सम्भवतः अब भी आपके करोंका नीवार पाना चाहता है।'

'वह मृग शावक इतना बड़ा हो गया ? इतने बड़े सींग हो गये उसके ? उसने तो बहुत-सी सङ्गिनियाँ जुटा ली हैं।' जैसे अपने पुत्रका परिवार देखकर माता प्रसन्न हो गयी हों।

'अरण्यानी मानवोंको भले नागरिक जन असभ्य कहें, उनके शरीरपर वस्त्र भले अत्यल्प हों, उनके हृदयमें अपार श्रद्धा होती है।'

श्रीरघुनाथ सस्नेह कह रहे थे-- ' देवि ! चित्रकूटमें अपने आसपास आकर बस गये कोल-किरातोंका स्नेह मुझे भूलता नहीं। उनकी श्रद्धाने ही हमारी पर्णकुटियोंको अबतक यथावत रक्षित रखा है। उनका समूह जहाँ-तहाँ सिर उठाये विमान देखनेमें लगा है ; किंतु इनको तो अयोध्या बुलाकर ही सत्कृत करना है।'

' ये अयोध्या आवेंगे ?' लक्ष्मणके स्वरमें सन्देह स्पष्ट था। सचमुच अरण्यमें सेवा करना सुगम था इनके लिए ; किंतु अयोध्याका महानगर इनके अनुकूल पड़ेगा ?

' अपने निषादराज इनके अधिपति हैं।' श्रीरामने समाधान कर दिया— ' वे इनको आमन्त्रित कर लेंगे और इनका आतिथ्य भी उचित रीतिसे करेंगे।'

' यह महर्षि वाल्मीकिका आश्रम।' श्रीरघुनाथने नीचे संकेत किया— ' ये आदि कवि अद्वितीय तपस्वी हैं।'

' मुझे अपने पितृचरणों जैसे ही प्रतीत हुए। उनका वात्सल्य आर्य-पुत्रपर भी बहुत था।' श्रीवैदेहीके साथ सभीने प्रणाम किया।

' अब नीचे गङ्गा-यमुनाकी धारा स्पष्ट दीख रही है। वह संगमके आगे महर्षि भरद्वाजका आश्रम है।' श्रीरामकी इच्छानुसार विमान कुछ और आगे बढ़ गया। दूरसे देखकर श्रीरघुनाथने संकेत किया— ' वह पुण्य सलिला सरयू और उसके तटपर इक्ष्वाकु कुलकी अमित गौरव-शालिनी पुरी अयोध्या।'

श्रीरामने , लक्ष्मणने , श्रीवैदेहीने आसनसे उठकर अञ्जलि बाँधकर जन्मभूमिको प्रणाम किया। वानर प्रसन्नतासे उछलने लगे। श्रीरामने कहा-- ' मुझे यह पावनपुरी वैकुण्ठसे भी प्रिय है।

अयोध्यासे श्रीराम चैत्र शुक्ल पञ्चमीको वनके लिए चले थे। आज चैत्र शुक्क पञ्चमी थी। वनके चौदह वर्ष पूर्ण हो गये आज। कल प्रातः अयोध्या पहुँचना था। विमान लौटा। वह भरद्वाज आश्रमके समीप उतरा। ब्रह्मचारियोंने दौड़कर महर्षिको सूचना दी। वे उत्सुकतावश विमानके उतरते ही समीप आ गये थे।

' इक्ष्वाकु गोत्रीय दाशरथि राम श्रीचरणोंमें प्रणत है।' श्रीरामने सानुज पृथ्वीमें पड़कर प्रणिपात किया। महर्षिने लगभग दौड़कर उठाकर

हृदयसे लगाया। गद्‌गद स्वर बोले— 'वत्स ! तुम्हारे सुयशसे त्रिभुवन सदा पवित्र होता रहेगा। तुमने दशग्रीव-दलन करके सुर-मुनियोंका संकट समाप्त कर दिया।'

'भाई भरत सकुशल हैं ?' सबके आसन ग्रहण करते ही महर्षिसे श्रीरामने पूछा— 'श्रीचरणोंको उनका वृत्त अविदित नहीं होगा।'

'वत्स ! वे तुम्हारे अनुज हैं ; किंतु उनके नियम, व्रत, तपके सम्मुख सभी मुनियोंका तप तुच्छ हो गया है।' महर्षिने पुलकित तन वर्णन किया— 'वे जटा वल्कल धारी तुम्हारे ध्यानमें तल्लीन भुवन वन्दनीय हैं। वे तुम्हारी आतुर प्रतीक्षा कर रहे हैं ; किंतु आज तुम अपने आतिथ्य-का अवसर मुझे दो। कल प्रातः यहाँसे प्रस्थान करना।'

महर्षिका अनुरोध भी आदेश ही था। सबको त्रिवेणी स्नान करना था। श्रीरामने हनुमानको समीप बुलाया— 'पवनपुत्र ! तुम अयोध्या चले जाओ। मार्गमें श्रृङ्गबेरपुरमें मेरे सखा निषादराज गुहको मेरे सकुशल लौटनेका समाचार देते जाना।'

नन्दिग्राममें भरतके समीप मानववेशमें जाओ। तुम्हारे अपने वेशसे तो वे परिचित हो चुके हैं। उनको मेरे सकुशल लौटने, सीताकी प्राप्ति तथा दशग्रीव वधका पूरा समाचार देना और ध्यानसे उनके मुखको देखना कि उनकी भङ्गी कैसी है ? वे क्या चाहते हैं ?'

'वे क्या चाहेंगे देव ?' हनुमानको आश्चर्य हुआ ?'

'वे बहुत संकोची हैं, दृढ़ निश्चयी हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि मैं चौदह वर्ष व्यतीत होते ही अयोध्या न पहुँचा तो वे देहत्याग देंगे।' श्रीरामने समझाया— 'मैं मध्याह्नके लगभग अयोध्यासे चला था। उसी समय वहाँ उतरना चाहता हूँ ; किंतु यदि ऐसा लगे कि भरत इतनी प्रतीक्षा नहीं करेंगे तो मुझे अवश्य बतलाना पुष्पक सूर्यकी प्रथम किरणके साथ वहाँ उतरेगा !'

पवनपुत्र प्रणाम करके चले गये। पुष्पक उतरनेसे पहिले ही श्रीरघुनाथने वानरोंको समझा दिया था कि अबसे अयोध्या रहने तक सब सामान्य मनुष्य वेशमें ही रहेंगे। विभीषण भी सामान्याकार हो गये थे। सबने त्रिवेणी स्नान, पूजन किया। महर्षि भरद्वाजने अपनी सिद्धियोंका स्मरण करके श्रीरामका तथा वानरोंका भी भव्य सत्कार किया। वह रात्रि वहाँ आनन्दपूर्वक व्यतीत हुई।

आतुर अयोध्या

'आज इतने दिनोंपर बोले हो तुम काक !' माता कौशल्या आज बहुत दिनोंके पश्चात् प्रसन्न हैं। कबसे, कितने दिनोंसे वे इन कौओंके लिए अपने आँगनमें मधुर आहार रखती हैं। ये कौए बहुत चतुर हैं। आते हैं—अनेक-अनेक आते हैं; किंतु जब माता पूछती हैं— 'मेरे रामभद्र आ रहे हैं ? आ रहे हैं मेरे लक्ष्मण ?' तो ये मौन बने रहते हैं। ये आहार लेते हैं और उड़ जाते हैं। माता देखती रहती हैं एकटक इनकी ओर।

'हाय ! मुझ अभागिनीके अङ्कधन पता नहीं कैसे होंगे ? कहाँ क्या करते होंगे ?' माताके अश्रु कहाँ सूख पाते हैं। ये तपस्विनी—उपासना गृह ही इनका आवास बन गया है। आंगनमें आती हैं तो काकोंसे शकुन जानना चाहती हैं, परन्तु काक कुछ भी तो संकेत नहीं करते।

आज इतने दिनोंपर—लगता है युगों—कल्पोंके पश्चात् एक उत्तम काक आया है। पता नहीं क्यों माताको यह बहुत पहिचाना—बहुत परिचित लगता है। बहुत प्रिय लगता है। माता पूछते नहीं थक रही हैं इससे—मेरे राम-लक्ष्मण आ रहे हैं ? आ रही है सकुशल मेरी वधू सीता ?'

'काँव ! काँव ! काँव !' माताको आज कौएका 'काँव, काँव' बहुत श्रुति मधुर लगता है। लगता है, यह 'हाँ, हाँ, हाँ' करता बोल रहा है। बोलता है और उड़ता है। उड़ता है और बोलता है। अहारको मुख ही कम लगाता है। बोलता है और उड़कर मन्दिरके शिखरपर जा बैठता है। जैसे माताको आश्वासन ही देने आया हो।

'जीजी ! मेरे आँगनमें आज नीलकण्ठ उतर आया।' माता सुमित्रा प्रसन्न आ गयीं हैं— 'देखती हूँ कि आपके यहाँ तो ऊपर क्षेमकरी (श्वेत चील) बराबर मण्डल बना रही है।'

'कहाँ ?' माता कौसल्याने ऊपर गगनकी ओर देखा। अभी वे काक-शकुनमें ही मग्न थीं। 'नीलकण्ठ उतरा ? तब अवश्य मेरे राम-

लक्ष्मण आ रहे हैं। अवश्य आ रही है वधू सीता ! आज यह काक भी कबसे मुझे 'हाँ, हाँ' कहकर यही सन्देश दे रहा है। कहाँ तक आये होंगे वे ?'

'अम्ब मैं बताऊँगा ?' अचानक उर्मिलाने आकर दोनों सासोंकी चरण-वन्दना करके तनिक स्मितके साथ कहा।

'सौभाग्यवती हो ! सत्पुत्रवती हो !' माता कौसल्याने आशीर्वाद दिया तो लज्जासे लाल हो गया मुख उर्मिलाका। बतला, तू क्या बतला रही थी ?' माता कौसल्याने खींच कर छोटी बालिकाके समान उर्मिलाको हृदयसे लगाया।

'अम्ब ! सतीत्व तो नारी आपके इन श्रीचरणोंका स्मरण करके प्राप्त कर लेती हैं।' झुककर चरणोंको हाथ लगाकर उर्मिलाने सिरसे लगाया— 'मुझे तो इनकी पावनरजका प्रसाद प्राप्त है। मैंने आज प्रातः स्वप्न देखा है कि आपके दोनों पुत्र जीजीके साथ बड़े भारी हंसपर बैठे गगनसे उतर रहे हैं। बहुत लोग उनके साथ उतर रहे हैं उस हंससे। मुझे लगता है, वे कहीं आकाश मार्गसे ही आ रहे हैं।

'आकाश मार्गसे ?' सुमित्राजी गम्भीर हो गयीं— 'वत्से ! तेरी बात सत्य होनी चाहिये। अभी वह वानर लगभग सात दिन पूर्व बतला गया कि वत्स रामभद्र लंकासे संघर्षरत हैं। अपने कुलगुरुने उनके विजयी होनेकी भविष्यवाणी की। लंका निकट ता नहीं है। कल रामको लौटना चाहिये। आज उनके वनवासकी अवधि पूण हो जायगी। वह वानर पूरा पर्वत उठाकर आकाश मार्गसे लंका गया था। अवश्य वह मेरे पुत्रों तथा पुत्रवधूको भीं अपने कन्धोंपर बैठाकर आकाश मार्गसे आ सकता है।'

'वत्से ! तू अपनी छोटी सासको सम्भाल ले।' माता कौसल्याने आग्रहपूर्वक कहा— 'तू ही कैकेयीको सम्हाल सकती है। वह बहुत पीड़ा सह चुकी। सबसे अधिक जो मानिनी थी, सबसे सम्मानित थी, उसीको अत्यन्त अपमान-भाजना दैवने बना दिया। वह अब पता नहीं क्या सोच बैठे !'

'अम्ब ! मैं प्रथम उन पूज्याकी चरण-वन्दनाकर आयी।' उर्मिला-ने प्रसन्न मुख कहा— 'आज उनके उत्साहका पार नहीं है। वे मन्थराको भी आज डाँट बैठती हैं। स्नेहपूर्वक झिड़क रही थीं। स्वयं अपने सदनको सज्जित करनेमें लगी हैं।'

'कल मेरा राम आवेगा !' माता कैकेयीका उल्लास जागा है आज चौदह वर्ष पश्चात्— 'कैकेयी भले कुमाता सिद्ध हुई, राम जैसा सत्पुत्र सृष्टिमें दुर्लभ है। मैं भटक गयी थी। भूलसे मैंने भरतको अपना मान लिया; किंतु भरतने मुझे बुद्धि दे दी। राम मेरा रहा है और रहेगा। कल मेरा राम वनवाससे लौट रहा है। लौट रही है मेरी पुत्रवधू सीता। अब कोई आधा शब्द भी कैकेयीको कहनेका साहस नहीं कर सकता। मैं अपने पुत्र और पुत्रवधूका स्वागत करूँगी।'

'मन्थरे ! मैंने अपने इन्हीं जले हाथों रामको वल्कल दिया था।' माता कैकेयी उन्मादिनी हो उठती हैं बीच-बीचमें। यह उन्माद चित्रकूटसे लौटनेसे बना ही रहा है; किंतु आज उसमें आनन्दोद्रेक आ गया है— 'कल मैं अपने सारे आभरणोंसे अपनी पुत्रवधूको इन्हीं हाथों सजाऊँगी। इसी भवनसे राम वन गये हैं। कल यहीं स्वागत करना है उनका मुझे।'

'कैकेयीको राजमाता बनना है !' उन्मादमें अट्टहास कर उठती थीं प्रायः वे चित्रकूटसे लौटकर; किंतु आज हँसती हैं— 'मन्थरे ! तू तो मूर्खा थी ही, कैकेयी भी तेरी बातोंमें आ गयी। यह राजमाता तो थी और है। कल सब देख लेंगे जब इसका राम आवेगा और 'माँ' कहकर इसके पदोंमें प्रणाम करेगा।'

'आज मैं किसीका प्रमाद नहीं सह सकती। पूरे श्रमसे सदन सज्जित करो।' उर्मिलाने बतलाया— 'आज वे अम्बा पुनः शासिका बन गयी हैं। क्षण-क्षणपर कहती हैं कि उनके पुत्र और पुत्रवधू कल आवेंगे।'

'वह ठीक कहती है। राम सदासे उसके रहे हैं।' माता कौशल्याने प्रसन्न होकर कहा— 'सौभाग्यकी बात है कि वह इस सत्यको समझ गयी। अब उसे आनन्द मिलेगा। राम तो उसका सम्मान सदा करते रहे हैं।'

'माण्डवीने मुझे अपने सदनमें आनेसे रोक दिया था। ठीक किया था उसने।' उर्मिलाने बतलाया— 'वे कह रही थीं, मेरी पुत्रवधू कल आ रही है। मुझे क्या आवश्यकता है कि मैं किसीके सदनमें जाऊँ। अब सब स्वतः भागी आवेंगी यहाँ। मेरी पुत्रवधूको आ जाने दो।'

'मैं अभीसे भागी आयी हूँ अम्ब !' उर्मिलाने कहा था।

'वत्से ! तू ही तो मेरा अवलम्ब रही है।' माता कैकेयीने हृदयसे लगाया— 'तू सदा ऐसे ही आती रही है। यह सदन तेरा ही है।'

'अम्ब ! समस्या माण्डवी जीजी की है।' उर्मिलाने सुमित्रा और कौसल्या दोनोंको चौंका दिया—'वे कलसे निर्जल हैं।'

'उसे क्या हुआ है ?' आतुरतापूर्वक कौशल्याजीने पूछा—'वह वैसे ही अत्यन्त कृशाङ्गी हो गयी है आये दिन व्रत करके। अब असमय उसे निर्जल रहनेकी क्यों सूझी है ? मैं अभी उसके समीप चलना चाहती हूँ।'

'आपके दूसरे पुत्र नन्दिग्राममें निश्चय किये बैठे हैं कि यदि कल उनके अग्रज नहीं पधारते तो अवश्य वे देहत्याग कर देंगे।' उर्मिलाने सामान्य स्वरमें बिना किसी चिन्ताके कह दिया—'उन्होंने भी कलसे निर्जल व्रत रखा है। मण्डवी जीजीका निर्णय तो उनके अनुरूप है। वे कहती हैं—'आर्यपुत्रकी चरणानुगामिनी रहना है इस किंकरीको। अतः समझना ही हो तो आपको नन्दिग्राम जाना पड़ेगा।'

'मुझे इसमें चिन्ता करनेकी बात नहीं दीखती।' उर्मिलाने कह दिया—'मुझे किञ्चित् भी सन्देह नहीं है कि कल जीजीके साथ आपके दोनों पुत्र आ जायँगे। मेरा वाम नेत्र, वाम भुजा प्रातःसे स्फुरित हो रही हैं।'

'ये अङ्ग तो मेरे भी स्फुरित हो रहे हैं।' कौशल्याजीने कहा तो सुमित्राजीने सूचित किया कि उनकी भी यही स्थिति है। तब उर्मिलाने कहा—'सबके शकुन मिथ्या नहीं हो सकते। छोटी अम्बाने भी यही कहा और माण्डवी जीजी भी यह स्वीकार करती हैं। आज मेरा उद्यान पुष्पोंसे लदा है। उसकी सदाकी आविल सरसी सुनिर्मल नीरसे भर उठी है। वह अपने पुष्पित सरोजोंसे हँसती लगती है।'

'इन चतुर्दश वर्षोंमें मैं आज उत्तम पुष्प अर्चाके लिए पा सकी।' कौशल्याजीने कहा—'उद्यानसे कुसुम लाने वाली सेविका कह दिया करती थी कि पूरा उद्यान शुष्क हो रहा है। कठिनाईसे कुछ श्रीहीन सुमन मिलते थे। आज उसने भी कहा कि उद्यान हरित-पुष्पित हो उठा है। आज प्रातः-से पिक, पपीहेका स्वर सुनायी पड़ रहा है। यह उत्फुल्लता अयोध्यामें अकारण नहीं आयी है।'

× × ×

'तुमने नगर-सज्जा प्रारम्भ कर दी सुमन्त्र ?' महर्षि वसिष्ठने महामन्त्रीसे पूछा—'कल अतिलौकिक यश अर्जित करके आ रहे वत्स

रामभद्रका स्वागत करना है। बनके अभिषेकाका मुहूर्त भी शीघ्र आ रहा है।

'मैं श्रीचरणोंमें यही निवेदन करने आया था कि अभी तक कहींसे भी हमारे सम्राट्के आगमनका कोई सम्वाद नहीं मिला है।' सुमन्त्रने शिथिल स्वरमें कहा— 'प्रजाका जन-जन आतुर है अपने सम्राट्का स्वागत करनेके लिए ; किंतु हमने जो सम्वाद पानेके साधन नियुक्त किये, उनमें किसीको अब तक सफलता नहीं मिली। दक्षिण कोसलसे आगे तक हमारे चर नियुक्त हैं।'

'सुमन्त्र ! केवल भौतिक सूत्र सदा सत्य नहीं हुआ करते।' महर्षि अत्यन्त गम्भीर हो गये— 'भरत जैसे महातापसका निश्चय टूटेगा ? और भरतको शरीर त्याग करना पड़े तो सृष्टि सुरक्षित रहेगी ? राम सत्य-संकल्प हैं। उन्हें कल आना है। कोई शक्ति कहीं नहीं जो उन्हें कल अयोध्या पहुँचनेसे रोक ले। अतः तुम स्वागतकी सज्जा करो।'

महर्षि वशिष्ठके इस आदेशका अयोध्यापर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ा। सुमन्त्रने प्रजा-प्रधानोंको बुलाकर महर्षिका आदेश सुना दिया। मन्त्रियों तथा सेवकोंको कार्यमें लगा दिया। ब्राह्मणोंने एक स्वरसे महर्षिके मतका समर्थन किया— 'अवश्य रामभद्र कल आ रहे हैं। हमारी आवहनीय अग्नियाँ बिना आहुति प्रज्वलित हो उठी हैं। अब धूमका लेश नहीं है उनमें।'

अयोध्यामें कोई शिशु नहीं था। श्रीरामके वन जानेके पश्चात् सभी वर्णके लोगोंने भोग-विरत संयमका जीवन व्यतीत किया था। अतः चौदह वर्षसे कम आयुके बालक थे ही नहीं। इन चौदह वर्षोंमें महाराज दशरथके अतिरिक्त किसीने शरीर-त्याग भी नहीं किया था। सबके प्राण श्रीरामके दर्शनार्थ अटके थे।

सेवकोंको कार्य मिल गया था। उन्हें नगर, पथ, चतुष्क सज्जित करने थे। नारियाँ और पुरुष—अयोध्यामें तो सभीका श्रीजानकी तथा श्रीरामसे कोई-न-कोई सम्बन्ध था। सब उत्साहमें आ गये थे। सबके हृदयसे निराशान्धकार अदृश्य हो गया था। सब गृह, द्वार, सम्मुखका पथ सजानेमें, स्वागत समारम्भमें लग गये थे। सबके मुखपर एक ही चर्चा— 'हमारे सम्राट् कल आ रहे हैं। त्रिलोक-कण्टक रावणको समाप्त करके आ रहे हैं।

'वे कहाँ तक आ गये हैं ?' इस प्रश्नका उत्तर किसीके समीप नहीं था। लेकिन एक सुदृढ़ उत्तर था सबके समीप— 'महामन्त्री सुमन्त्र बिना विश्वसनीय सूत्रके तो स्वागत-सज्जामें नहीं लगे हैं।'

सुमन्त्रने कुछ कहना अस्वीकार कर दिया था। अतः लोगोंने इसमें महामन्त्रीकी राजनैतिक निपुणताका अनुमान कर लिया— 'हमारे सम्राट् सुरजयी रावणको समाप्त करके आ रहे हैं। मायावी राक्षस मार्गमें कहीं कोई उत्पात कर सकते हैं। अतः अयोध्या पहुँचनेसे पूर्व उनकी यात्रा गुप्त रखना उचित है। सुरक्षाकी दृष्टिसे बहुत आवश्यक है।'

'सम्राट् कल आ रहे हैं!' प्रजामें-से किसीके मनमें सन्देह नहीं था। सब अपने ढङ्गसे स्वागतकी सज्जामें लगे थे।

'वे सदासे ही तो हमारे रहे हैं! सबसे अधिक स्नेह रहा है उनका हमपर।' सबको अयोध्यामें तो सदा यही लगा है— 'वे आते ही सीधे हमारे सदन आ सकते हैं!'

'वे स्नेहमयी अब सम्राज्ञी होंगी।' श्रीजनकनन्दिनीके सम्बन्धमें भी सबके ऐसे ही भाव हैं— 'उन्होंने तो अयोध्या आनेके पश्चात् सबसे पहिले हमें अपना बना लिया था। अब भी आते ही उनकी दृष्टि हमें ढूंढ़ेगी।'

श्रीरामके सखा हैं, सम्बन्धमें बड़े अथवा छोटे हैं, नारियोंमें भी सब अपना सम्बन्ध मानती हैं। सबको श्रीसीताराम अपने अत्यन्त प्रिय लगते हैं। सबको लगता है, दोनों सबसे अधिक हमारा ध्यान रखते हैं। अतः सबको अपने सम्बन्धके अनुकूल उनका स्वागत करना है। सब गृह आशा लिये हैं— 'वे यहाँ पधारेंगे!'

अयोध्यामें घर-घर, जन-जन आकुल प्रतीक्षा लिये पूरे उत्साहसे स्वागत-सज्जामें व्यस्त है।

आतुर भरत

'अचिन्त्य पराक्रम श्रीरामको अयोध्या पहुँचनेसे कोई अटका सकता है, यह असम्भव है।' भरतकी आस्था अविचल थी—'वे यदि कल यहाँ नहीं आते हैं तो इसका केवल एक ही अर्थ है कि उन्होंने भरतको अपने श्रीचरणोंकी सन्निधिमें रखनेका अधिकारी नहीं समझा है। मेरे मनमें ही कहीं कपट है, अग्रजके प्रति कुटिलता है, राज्यकी छिपी कामना है।'

श्रीराम भारत-भूमिसे भी दूर लङ्कामें युद्ध व्यस्त हैं, यह बात भरतको विचलित नहीं करती। उनका हृदय एक ही रट लगाये है—'उन सर्वसमर्थको संग्राम रोकेगा? वे परमोदार बहाना बना सकते हैं न आनेका; क्योंकि किसीको अयोग्य, अनधिकारी घोषित कर देना उनके स्वभावमें नहीं है। वे अपनी विवशता ही बतलावेंगे; किंतु है वह तेरी अयोग्यता। तुझे अपनाने योग्य उन्होने नहीं समझा।'

'वे हनुमान आये थे। उन्होने कहा था।' लेकिन कुछ भी कहा हो हनुमानने, भरतका हृदय यह माननेको प्रस्तुत नहीं है कि श्रीराम आना चाहेंगे तो उनको कोई भी परिस्थिति अटका सकेगी। एक आशा अवश्य उठती है—'हनुमान आकाश मार्गसे पर्वत लेकर आये थे। वे पर्वत लेकर उसी प्रकार लंका चले गये थे। वे इसी प्रकार आकाश मार्गसे श्रीराम-लक्ष्मणको ले भी तो आ सकते हैं।'

'मान लो, लंकाका युद्ध नहीं ही समाप्त हुआ है। क्या बाधा है?' हृदयके तर्क बड़े अटपटे हैं—'वे श्रीरघुनाथ अयोध्या आकर अपना राज्य सम्हाल लें तो भाइयोंको, अयोध्याकी विजयवाहिनीको भेज दे सकते हैं; किंतु कुलगुरुने कहा है, किसीके जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तब लंकाका युद्ध अवश्य समाप्त हो गया होगा। आज तो अवधिका अन्तिम दिन है। कल आना ही चाहिये उन अवधेशको।'

'चित्रकूट तक प्रभुके आनेका कोई समाचार नहीं है।' निषादराजका सन्देश आया है—'वन्य लोग और आगे तक पता लगानेके प्रयत्नमें

हैं। सायंकाल तकका समाचार अवश्य रात्रिके प्रथम प्रहरमें अयोध्या पहुँच जायगा।'

'श्रीराम कहाँ हैं, हमारे चर कुछ पता नहीं लगा सके हैं। हम प्रयत्नमें हैं।' दक्षिण कौशलसे मातामहका सन्देश आया है— 'यह बहुत पहिले पता लग गया था कि विराध जैसे विकट दानवको मारकर श्रीराम-ने दण्डकारण्यमें प्रवेश किया था। जो वानर रात्रिमें अयोध्या पहुँचा था, उसके द्वारा प्राप्त सन्देश सत्य होना चाहिये।'

'भरतको कोई अनर्थकारी पद नहीं उठाना चाहिये। सम्भव है, वत्स रामभद्रको कुछ थोड़े दिन अधिक लग जायँ; किंतु जिन्होंने किष्किन्धाके अजेय-प्राय बालिको मार दिया, खर-दूषणका ससैन्य संहार किया, दशग्रीव अवश्य उनके करोंसे समरशैया प्राप्त करेगा।' मातामहका आश्वासन देना उचित है— 'हमारे चर सुदूर दक्षिणकी ओर गये हैं; किंतु अत्यन्त दुर्गम अरण्य होनेके कारण उनके लौटनेमें विलम्ब होगा। भरतको कमसे कम उनके लौटनेकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। चरोंके लौटते ही हम अयोध्या आ रहे हैं।'

'श्रीरामभद्रके लौटते ही हमें सन्देश दिया जाय। हम उनके अभिषेकमें सम्मिलित होनेको उत्सुक हैं।' महाराज सुमित्रका सन्देश उचित है। बहुत दूर है विदर्भ। वे मातामह उतनी दूरसे कैसे अनुमान लगा सकते हैं कि अयोध्याकी स्थिति क्या है और अयोध्याके वनवासी सम्राट् कहाँ हैं। प्रत्येक महीने उनके दूत आते रहे हैं। हनुमानके अयोध्या आनेके पहिले उनका दूत लौट गया था। अब अवधि समाप्त होनेको आयी तो उनका दूत आना ही था। वह लौटनेकी त्वरामें है; किंतु क्या कहा जाय उसे? अयोध्यामें तो स्वयं किसीको पता नहीं है।

प्रतिमास आते हैं जनकपुरके दूत। महाराज विदेह राज्यकी भी अवस्थाका पता रखते रहे हैं। वे अत्यन्त सन्तुष्ट हैं अयोध्याके सुप्रबन्धसे। उन्होंने बार-बार कहलाया है— 'कुमार भरत मिथिलाको कोई सेवा-सूचित करते संकोच नहीं करें। यहाँकी पूरी सेना और कोष अयोध्याका ही है।'

अब वे श्रीरामके लौटनेका समाचार जानना चाहते हैं, यह स्वाभाविक है। उनका चर हनुमान द्वारा प्राप्त समाचार लेकर चला

जाय, यह तो उचित नहीं हो सकता। उसे कल तकके लिए आग्रहपूर्वक रोका ही जा सकता था। कल सायंकाल तक उसे समाचार मिलेगा। भरतने सोचकर दीर्घ श्वास ली— 'पता नहीं दैव उसे क्या समाचार देने वाला है।'

'कैकयसे भी चर आये?' शत्रुघ्नसे यह समाचार पाकर भरत प्रसन्न नहीं हुए थे। शत्रुघ्नने कहा था— 'वे सामान्य यात्रियोंके वेशमें आये हैं। राज्यकी पान्थशालामें रुके हैं। अपने गुप्तचरोंकी उनपर बराबर दृष्टि है।'

'उनको अपरिचित ही रहने दो और उनके लौटनेमें अवरोध मत उत्पन्न करो।' भरतने आदेश दे दिया; क्योंकि अयोध्याके गुप्तचरोंकी सूचना थी— 'कैकयके चर कोई अभिसन्धि लेकर आये नहीं लगते हैं। उनकी परस्परकी चर्चासे पता लगा है कि उनके युवराज युधाजित अयोध्या हमारे सम्राट्के आगमनके पूर्व आनेमें अपमानकी आशङ्का करते हैं। वहाँके महाराज अश्वपतिका कहना है— 'कन्याने हमें सम्राट्के स्वागतसे भी वञ्चित कर दिया।' वे सम्राट्के अभिषेकोत्सवमें आना चाहते हैं। उसकी तिथि गुप्त रूपसे जाननेको आये हैं; क्योंकि उन्हें आशा नहीं है कि कैकेय नरेशको इस अवसरपर भी आमन्त्रण प्राप्त होगा।'

'आर्य! नाना प्रदेशोंसे विख्यात कलाजीवी आ रहे हैं। उनमें-से अधिकांश अयोध्यामें बस जानेको उत्सुक हैं।' शत्रुघ्नके समीप बहुत अधिक सूचनाएँ आज थीं— 'सुर-वन्दित सुप्रसिद्ध तपस्वी, मुनिगण आ रहे हैं। अनेक आ गये हैं और बहुत अधिकके अन्तेवासी कुलगुरुसे अनुमति लेने आये हैं। कुलगुरुने सबको आ जानेकी अनुमति दे दी है।'

'कलाजीवियोंका, विद्वानोंका समुचित सत्कार होना चाहिये। उनके आवास एवं निर्वाहकी उपयुक्त व्यवस्था राज्यका कर्त्तव्य है।' भरतने कहा— 'तापस, मुनिगण जहाँ उटज बनाना चाहें, उनको असुविधा एवं सङ्कोच न हो, इस प्रकार उनकी व्यवस्था करो। उन वीतराग वन्दनीयों-को प्रतीत नहीं होना चाहिये कि प्रशासन उन्हें परिग्रहके लिए प्रलुब्ध कर रहा है।'

'आर्य! सरिताओं तथा सरोवरोंका जल सहसा सुनिर्मल हो गया है।' शत्रुघ्नने अब दूसरे प्रकारकी सूचनाएँ देनी प्रारम्भ कीं— 'शुष्क

प्राय उद्यान ही नहीं, वनके वृक्ष-लता भी फलों-पुष्पोंसे लद उठे हैं। गायें प्रसन्न हैं और अब उनके लिए वृषभोंमें संघर्ष होने लगा है।'

'वर्षोके पश्चात् पक्षियोंने घोंसले बनाने प्रारम्भ किये हैं। इसका अर्थ ही है कि अब वे अण्डे देने वाले हैं।' शत्रुघ्नने उत्साहपूर्ण स्वरमें सुनाया—'अपने अश्वोंने, गजोंने कलसे पूर्ण आहार लेना प्रारम्भ किया है। अब उनका प्रसन्न स्वर अश्वशाला तथा गजशालाको गुञ्जित कर रहा है। उनके सेवकोंमें उत्साह आया है। अश्वशाला तथा गजशालाके निरीक्षकोंने कहा है—'श्यामकर्णोंका हींसना, सुलक्षण गजोंका हर्षित होकर झूमना अत्यन्त शुभ सूचक है। अवश्य अपने सम्राट् विजयी होकर पधार रहे हैं।'

'पालित पक्षी तक पूछते हैं—'राम आ गये?' शत्रुघ्नने अपनी समस्या सूचित की—'कृषक प्रजाके प्रतिनिधि उपालम्भ देने आने लगे हैं। उनके क्षेत्रोंमें उत्पादन बहुत अधिक हुआ है। वे कहते हैं कि जलाशयों-के समीप रखा उत्पादनका षष्ठमांश उठाने राजकर्मचारी नहीं पहुँच रहे हैं। अब उन्हें अधिक समय तक इस राजकीय देयकी सुरक्षाका दायित्व वहन करना पड़ता है। साथ ही उत्पादन अधिक होनेके कारण उन्हें अधिकार मिलना चाहिये कि अपनी आवश्यकतासे अधिकको वे अपने आनेवाले सम्राट्की सेवामें अर्पित कर सकें।'

'अधिक स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये।' भरतने आदेश दिया—'ऐसा करना होगा तो स्वयं सम्राट् ही करेंगे। अवश्य ही राजकीय भाग जलाशयोंके किनारोंसे उठाया जाना चाहिये। इसमें इतना अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिये कि जिनके भागसे अनुमान हो कि उनके पास वर्षभरको पर्याप्त नहीं रहा है, उन्हें कर्मचारी वहीं राजकीय भागसे पर्याप्त उपहार अर्पित कर दिया करें।'

'सबसे कठिन समस्या आकरों (खदानों) की है।' शत्रुघ्न! उनके अधिपतियोंने आवेदन किया है—'भूगर्भसे श्रमपूर्वक प्राप्त धातुओं तथा मणिरत्नोंपर ही हमारा अधिकार है। अकस्मात् भूमिमें ऊपर जो धातुएँ प्रकट हो गयी हैं, गिरिपर जो मणियाँ, रत्न चमकने लगे हैं, वे तो भूदेवीने अपने प्रिय सम्राट्को उपहार दिये हैं। प्रशासनको उन्हें शीघ्र उठा लेना चाहिये, जिससे हम अपना कार्य सुगमतापूर्वक कर सकें।'

'उदधिके तटीय भागके लोगोंने मुक्ता, दुर्लभतम शङ्ख, प्रवालादि भेजने प्रारम्भ कर दिये हैं।' शत्रुघ्नकुमार कह रहे थे--'वे सुननेको ही प्रस्तुत नहीं हैं कि सागरकी तरंगें जो वेलापर निक्षिप्त कर दें, वह भी उनका स्वत्व है। वे इस धनको वरुणके राज्यको—सम्राट्को भेंट मानते हैं। सागरमें-से श्रम करके जो प्राप्त हो, वही उनका स्वत्व है, उनके इस तर्कको कैसे अस्वीकार किया जा सकता है? प्रशासन इस प्रकार प्रजाका उपहार स्वीकार भी कैसे कर सकता है।'

'औषधियाँ असीम बढ़ गयी हैं। मधु-छत्रकोंको सामान्य गृहोद्यानों-में भी देखा जा सकता है। उन्हें मधुपूर्ण करके मक्षिकाएँ त्याग देती हैं और दूसरा छत्रक बनाने लगती हैं।' शत्रुघ्नने अब अपनी बात कही—'बाँसोंमें-से प्रत्येकमें वंशलोचनकी प्राप्ति, दुर्लभतम दिव्यौषधियोंकी प्रचुरता सूचित करती है कि अयोध्याके सम्राट् कहीं समीप आ गये हैं। यह सब उनका ही अलौकिक प्रभाव है।'

'वे आवेंगे--अवश्य आवेंगे कुमार! जिनके प्राण उनके दर्शनोंके लिए आतुर हैं, उन सबको वे भूल कैसे सकते हैं! अवधकी प्रजा, यहाँका जन-जन उन्हींकी प्रतीक्षा कर रहा है। आतुर अभीप्साकी उपेक्षा वे करुणासिन्धु कर नहीं सकते।' भरतके दृगोंसे धाराएँ चलने लगीं। उन्होंने भरित कण्ठ किसी प्रकार कहा--'अयोध्या उनकी है। उन्हें यहाँ आना ही है; किंतु उनके दर्शनोंका अधिकारी यह भाग्यहीन भरत ही नहीं जान पड़ता। कुमार! तुम मेरी कुछ सहायता करोगे?'

'आर्य! आप इस प्रकार क्यों पूछते है?' शत्रुघ्नने व्याकुल होकर अग्रजके चरण पकड़ लिये।

'तुमको अत्यन्त सुकुमार जानते हुए भी बहुत निष्ठुर दायित्व दे रहा हूँ कुमार!' भरतने भाईको उठाकर बैठाया। उसी प्रकार विह्वल कण्ठ बोले—'मैंने प्रतिज्ञा की है कि यदि अवधि समाप्त होनेपर भी वे मेरे स्वामी अयोध्या नहीं पधारते तो भरत शरीरका भार नहीं ढो सकेगा। आजकी रात्रि व्यतीत होते ही अवधि समाप्त हो जायगी। अबतक रघुवंश-में उत्पन्न किसीकी प्रतिज्ञा मिथ्या होते तुमने सुनी है?'

शत्रुघ्नने दोनों करोंमें मुख छिपा लिया और बालकके समान फूटकर रो पड़े। वे क्या कहें? कैसे कहें? भरतने उनके कन्धेपर कर रखा--

'तुमने चौदह वर्ष अत्यन्त कठिन दायित्व वहन किया है। मैं भी असमर्थ था अपनेको प्रसन्न दिखलाते हुए प्रबन्धरत रहनेमें। तुमने अश्रुतपूर्व कर्म-योगीका आदर्श उपस्थित किया है। अब यह बहुत दारुण दायित्व भी तुम्हीं वहन कर सकते हो !'

'मैं किसीको कष्ट नहीं दूँगा ! अपने लिए श्रम नहीं उठाने दूँगा। केवल तुम्हें भरतके लिए हृदयको वज्र बनाकर कुछ करना है।' भरतने कुछ क्षण मौन रहकर अत्यन्त गम्भीर स्वरमें कहा—'यदि कल मेरे स्वामी अयोध्या नहीं आते, भरत इस अधम शरीरको नहीं रखेगा। कल-का सूर्य इसे स्वतःरचित चितामें भस्म होता देखकर ही अस्त होगा। केवल तुम इतना करना कि वह भस्म सरयूमें विसर्जित की जाय।'

शत्रुघ्न जैसे निष्प्राण हो गये। उनके नेत्र फटे-फटे हो रहे। वे सुन भी रहे हैं कि नहीं, यह देखे बिना भरत कहते गये--'श्रीरघुनाथसे मेरी ओरसे प्रार्थना करना। मेरे प्राण परितुष्ट हो जायँगे। मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। मेरी जन्म-जन्मकी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी। जीवित मैं उनके श्रीचरणोंका स्पर्श न पा सकूँ तो वे भक्तवत्सल अपने चारु चरणोंसे मेरी शरीर-भस्मको स्पर्श कर दें !'

'नहीं ! नहीं ! नहीं !' शत्रुघ्नने चीत्कार की—फटे कण्ठकी चीत्कार—'ऐसा कुछ नहीं होगा। कल सूर्यास्तसे पूर्व ही हमारे वे सौभाग्य सूर्य आवेंगे ! अवश्य आवेंगे !'

हनुमान आये

'आ रहे हैं आपके प्राणाराध्य श्रीराम !' सहसा ब्राह्मणके वेशमें उपस्थित होकर हनुमानने कहा— 'दशग्रीवका दलन करके, सुर-मुनि-गणोंसे संस्तुत श्रीराम भाई तथा अम्बा सीताके साथ पुष्पक विमानसे आ रहे हैं। वे आज सायं प्रयाग आ पहुँचे हैं।'

'आ रहे हैं आपके प्राणाराध्य श्रीराम।' यह समाचार इन्हीं शब्दों-में पवनकुमारने शृङ्गबेरपुर पहुँचकर निषादराज गुहको भी सुनाया था। अच्छा था कि हनुमानने पहिले गुहको देखा नहीं था। अन्यथा वे उसे अवश्य पहिचान न पाते। इन चौदह वर्षोंके श्रीरामके वियोगने उस वज्रकायको जर्जर वृद्ध बना दिया था। हनुमान तो उस निषादोंके ग्राममें निषाद प्रमुखका बड़ा भवन देखकर पहुँचे थे। ब्राह्मण वेशमें ही गये थे। सुनते ही वह पुकार उठा था— 'कौन है ? शीघ्र नौका प्रस्तुत करो।'

'वे सानुज, भार्यासहित पुष्पक विमानसे आज सायं प्रयाग पहुँचे हैं।' हनुमानने सम्वाद पूरा किया। गुहने उन्हें दण्डवत प्रणिपात किया। पूछा भी नहीं कि वे कौन हैं, कहाँसे आये हैं। एक ब्राह्मणका निषादकी झोपड़ीमें आतिथ्यका प्रश्न ही नहीं था। गुहमें लगता था कि उत्साहका अनन्त स्रोत फूट पड़ा है। उसने पूरा समाचार सुनकर भी अपने निषादों-को डाँटा— 'मुख क्या देखते हो ? नौका प्रस्तुत करो।

अनेक निषाद दौड़ गये थे। गुह स्वयं जैसे था, वैसे ही उठ खड़ा हुआ। पवन कुमारसे उसने पूछा— 'आप प्रयाग चल रहे हैं ? हम अर्ध रात्रिसे पूर्व पहुँच जायँगे। प्रातः जब श्रीराम उठेंगे, उनकी पद-वन्दनाका सौभाग्य प्राप्त होगा।'

'मुझे अयोध्या जाना है।' हनुमानने कहा।

'मैं भूल ही गया था।' गुहने पुनः दण्डवत प्रणाम किया— 'आप अवश्य पधारें। नन्दिग्राममें महातापस भरतको सम्वाद देना आवश्यक है।'

स्वयं गुह गङ्गा किनारे चल पड़ा था। हनुमान जब अयोध्या जाने-के लिए आकाशमें उछले, उन्होंने देख लिया कि गुहकी नौका पार जानेके लिए चल पड़ी है। वह महाभाग रात्रिमें ही प्रयाग पहुँच जायगा, यह समझ लेना सरल था। उसने अन्त तक हनुमानसे नाम परिचय नहीं पूछा। हनुमानने मनमें कहा—'कितना सरल श्रद्धालु है! कैसा सरल विश्वासी! मेरे स्वामीका सख्य इसे इसीसे तो सुलभ हुआ।

'आ रहे हैं आपके प्राणाराध्य श्रीराम।' यही शब्द पवनकुमारने नन्दिग्राम पहुँचकर श्रीभरतसे भी कहे। वे यहाँ भी उसी ब्राह्मण वेशमें ही आये थे। भरत ऐसे अपलक देखते रह गये, जैसे बात समझमें ही नहीं आयी हो। तब पवनकुमारने पूरा समाचार दिया—'दशग्रीवका दलन करके, सुर-मुनिगणोंसे संस्तुत श्रीराम भाई तथा अम्बा सीताके साथ पुष्पक विमानसे आ रहे हैं। वे आज सायं प्रयाग पहुँच गये हैं।'

सुनते ही भरत आनन्दातिरेकके कारण मूर्छित हो गये। कुछ क्षणोंके उपरान्त सावधान हुए तो हनुमानसे भुजा फैलाकर लिपट गये। अपने आनन्दाश्रुओंसे उन्हें स्नान करा दिया। हर्ष विह्वल पूछा—'आप कौन हैं, देवता या मानव? आपने मेरे कर्णोंमें सुधा वृष्टिकी। इतना प्रिय सम्वाद दिया आपने।

'आपको क्या दूँ, समझ नहीं पाता हूँ। जितने ग्राम आप चाहें, उतने सब आपके। लक्ष-लक्ष स्वर्ण मुद्राएँ, सोलह परम सुन्दरी विप्र कन्याएँ, जहाँका राज्य स्वीकार करें वह राज्य।' फिर भरत रुके—'नहीं, यह सब इस सम्वादकी समता नहीं कर सकता भरत सदाके लिए आपका ऋणी रहेगा।'

'बहुत वर्षोंके पश्चात् आज मेरे प्राणप्रिय स्वामीका समाचार मिला है।' भरतने फिर पूछा—'वे कहाँ हैं? कैसे हैं? अयोध्या कब पधार रहे हैं?'

'सागरपर सेतु बनाकर वानरेन्द्र सुग्रीव तथा उनकी वानर सेनाके साथ श्रीराघवेन्द्र लङ्का पहुँचे थे। भगवती वैदेहीके अपहरणके अपराधमें सुरासुरजयी दशग्रीव सकुल मारा गया संग्राममें। उसके शरणागत भाई विभीषणको लङ्काका राज्य प्राप्त हुआ।' हनुमानजीने संक्षिप्त समाचार सुनाया—'वहाँसे पुष्पक विमानमें बैठकर अम्बा सीता, कुमार लक्ष्मण,

सुग्रीव, विभीषण तथा वानर यूथपोंके साथ श्रीरघुनाथ आज सायं प्रयाग पहुँच गये हैं। महर्षि भरद्वाजके आग्रहके कारण आज रात्रि वे प्रयाग रुके हैं। कल लगभग मध्याह्नके समय यहाँ नन्दिग्राम पहुँचेंगे आपके समीप' मैं श्रीरामका सेवक हनुमान हूँ। मुझे प्रभुने आपके समीप समाचार दे भेजा है।'

'शत्रुघ्न! नगर और ग्रामोंके मन्दिरोंमें वाद्यध्वनिके साथ अखण्ड अर्चा प्रारम्भ कर दो। सूत, मागध, बन्दीजन सबको सावधान कर दो। अयोध्याके सिंहासनपर उसके स्वामीका शीघ्र अभिषेक होगा। महामन्त्री सुमन्त्रको सूचित करो कि वे उसके लिए आवश्यक सामग्री संग्रह करनेको आज ही चर भेज दें।' भरतने आदेश दिया— 'विमान उतर सके, इस प्रकार भूमिको रात्रिमें ही सम कर दिया जाना चाहिये।'

'इसकी आवश्यकता नहीं है।' पवनकुमारने निवेदन किया— 'पुष्पक यक्षराज कुबेरका दिव्य विमान है। वह असम गिरि शिखरपर अथवा अरण्यमें भी सरलताके साथ उतर सकता है।'

कुमार शत्रुघ्न उसी समय अश्वपर बैठे अयोध्याके राजसदनमें समाचार देनेके लिए। नगर पहिलेसे ही सज्जित हो रहा था। सब नर-नारी सुमन्त्रकी प्रेरणा पाकर स्वागत-सम्भार सजानेमें लगे थे। द्वार-द्वार-पर तोरण बाँधे जा रहे थे। कदली स्तम्भ धारके साथ रोपित करके सदीप, मण्डन-मण्डित मङ्गल कलश रखे जा रहे थे। पथोंको कौशेयके चित्र-विचित्र, मुक्ताकी झालरोंसे अलंकृत वस्त्रोंसे ढक दिया गया था। भवनोंपर पताकाएँ लहराने लगी थीं।

उपवास कृश, जटा मुकुटी, वल्कल वसन भरतने श्वेत छत्र स्वयं स्वच्छ करके सज्जित किया। फिर हनुमानके साथ राजसदन चलनेको प्रस्तुत होकर बोले-- 'पवनकुमार! आपने अपनी जातिके स्वाभाविक चापल्यवश मुझे भ्रमित करके अपने निश्चयको सक्रिय करनेसे विलम्बित करनेके उद्देश्यसे तो यह समाचार नहीं दिया है?'

'देव! मैं ऐसा दुस्साहस नहीं कर सकता।' हनुमानने हाथ जोड़-कर कहा-- 'आप स्वयं सरयूका निर्मल प्रवाह, अयोध्याके सरों, वापियों-का स्वच्छ जल देख सकते हैं। लताओं तथा वृक्षोंको पुष्प-फल भारसे झुका देख रहे हैं आप। वन-उपवन, जल-स्थलमें यह शोभा, सम्पन्नता,

स्वच्छता पिछले चौदह वर्षोंमें कभी आयी है ? यह सर्वत्र जो आनन्द एवं वैभव उमड़ पड़ा है, वह क्या मेरे सन्देशके सत्य होनेका पर्याप्त साक्षी नहीं है ? आपको कल तृतीय प्रहर तक भी प्रतीक्षा नहीं करनी है।'

तीनों माताएँ, तीनों राजवधुएँ भी शत्रुघ्नके द्वारा समाचार पाकर राजसभाके अन्तःकक्षमें आ गयी थीं। महर्षि वसिष्ठ पधारे थे अनेक मुनि-गणोंके साथ। मन्त्रियों तथा नगरके प्रायः सब सम्मानित जन आ गये थे।

हनुमानके साथ भरत रथमें बैठकर आज पुनः रात्रिमें नगरमें आये। भरतके अनुरोधके कारण हनुमानने अपना विप्ररूप त्याग कर दिया था। वे अपने वानर रूपमें ही सबके सामने आये। उनसे अभी पिछले दिनों ही जब वे द्रोणाचल लेकर जा रहे थे, सब परिचित हो गये थे। अतः सब उनको देखकर प्रसन्न हो गये।

पवनपुत्रने महर्षि-वृन्दकी, माताओंकी, राजवधुओंकी भी पद-वन्दनाकी। वे अपनी पहिली ही यात्रामें सीता-हरण, कबन्ध वध, खर-दूषणादि वध, सुग्रीव मैत्री, सीतान्वेषण, विभीषण मिलन, समुद्रपर सेतु बन्ध तथा सग्रामका उतना समचार दे चुके थे। जहाँ तक कुमार लक्ष्मणको शक्ति लगी थी। अब उन्हें केवल उसके पश्चात्का ही वृत्त बतलाना था।

'रावणका महाकाय भाई कुम्भकर्ण पहिले ही श्रीरामके शरोंसे वीर-शय्या प्राप्त कर चुका था। मेरे पहुँचते ही चिकित्सकने प्रयत्न किया। कुमार लक्ष्मण स्वस्थ हो गये। प्रभातमें ही अमर होनेकी इच्छासे अभिचार यज्ञमें लगे उस दारुण इन्द्रजितको लक्ष्मणने पहुँचकर युद्ध करनेको विवश किया और वीर-शय्या दे दी।' हनुमानने युद्ध-समाचार दिया—उसके शवके साथ उसकी पत्नी सती हो गयी। रावणका एक पुत्र अहिरावण नागलोकसे रात्रिमें आया। माया करके श्रीराम-लक्ष्मणको अपहरण करनेमें सफल हो गया ; किंतु वह तो अपने पूरे कुलका मरण ले गया था। उसी रात्रि सकुल मारा गया।'

'दशग्रीवके समस्त सैनिक, मन्त्री सेनापति मारे जा चुके थे। उसने प्रचण्ड प्राक्रम प्रकट किया ; किंतु अन्तमें उसे भी श्रीरघुनाथके शरोंने सदाको समर-शय्या दे दी।' पवनपुत्रका वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त था—

'शरणागत रावणानुज विभीषणको लङ्काका राज्य प्राप्त हुआ। वे राक्षसाधिप पुष्पकमें साथ आये हैं।'

'भगवती जनक-नन्दिनीको विभीषण सादर लिवा लाये ; किंतु लोकरुचि अद्भुत है। आवश्यक था कि लोकापवादका मार्जन तत्काल किया जाय। श्रीराघवेन्द्रने निष्ठुर वचन कहे। एक बार तो अम्बा वैदेही-को अस्वीकार ही कर दिया।' यह सुनकर माताएँ रो उठीं। वधुओंकी रुदन सिसकी सुनायी पड़ी। पवनकुमारने अविराम वर्णन किया— 'उन परम सतीने कुमार लक्ष्मणसे अग्नि प्रकट करनेका अनुरोध किया। अग्रजका संकेत समझकर कुमारको यह निष्ठुर कर्म भी करना पड़ा। उस प्रज्वलित अग्निमें अम्बाने प्रवेश किया।'

'धन्य जीजी !' उर्मिलाका स्वर सुनायी पड़ा— 'तुम्हारे ही योग्य निर्णय किया तुमने। अग्नि तुम्हारे स्पर्श करनेकी शक्ति कभी पा नहीं सकता।'

'वह प्रज्वलित चिता भगवतीके प्रवेश करते ही शान्त हो गयी। स्वयं अग्निदेव देवीको लेकर प्रकट हुए। उन्होंने श्रीरघुनाथको आज्ञा दी कि वे देवीको स्वीकार करें।' यह अप्रिय समाचार हनुमानने शीघ्र पूरा किया।

'जीजी पहिलेसे भूमि सुता है।' माण्डवीने श्रद्धा विगलित स्वरमें कहा— 'अब वे अनलात्मजा भी हो गयीं।'

'विभीषणका बहुत आग्रह था कि प्रभु उनके नगरमें पधारें ; किंतु वे भक्तवत्सल अत्यन्त आतुर थे अपने इन भाव-प्राण भाई भरतजीसे मिलनेको।' हनुमानने कहा— 'अतः विभीषणने यात्राके लिए पुष्पक विमान प्रस्तुत किया। पुष्पक मार्गमें केवल सागर तटपर और किष्किन्धा उतरा था। आज सायंसे पूर्व ही वह दिव्य विमान प्रयाग पहुँच गया। महर्षि भरद्वाजका आग्रह श्रीरघुनाथको स्वीकार करना पड़ा है। महर्षि चाहते थे कि रात्रि उनके आश्रममें रहकर सब उनका आतिथ्य स्वीकार करें।'

'वे स्नेहमय ! उन्होंने तब अयोध्याके पूरे समाजका आतिथ्य किया था, जब मैं चित्रकूट जा रहा था।' श्रद्धाके साथ सिर झुकाया— 'उन पूजनीयका अनुरोध अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वे कितना वात्सल्य

रखते हैं अयोध्याके राजकुलपर, हम सबने अनुभव किया है। अतः उनके लिए यह अनुरोध स्वाभाविक है। उसे माना जाना ही चाहिये।'

'प्रभुके आदेशसे मैं निषादराज गुहको समाचार देता आया हूँ। वे महाभाग उसी समय प्रयाग पैदल चल पड़े थे।' अब पवनपुत्रने उपसंहार किया— 'प्रभु यहाँ शुभ मुहूर्तमें आना चाहते हैं। अतः पुष्पक नन्दिग्राम अभिजित मुहूर्तमें कल उतरेगा, यह सूचना मुझे देनेका उन्होंने आदेश दिया है।'

'उचित निर्णय है।' किसीको कुछ कहनेका अवसर मिले, इससे पूर्व महर्षि वशिष्ठने कहा— 'वत्स रामभद्रको उत्तम मुहूर्त्तमें ही आना चाहिये। हम सब नन्दिग्राममें कल उनका प्रथम स्वागत करेंगे।'

'आप सब अब मुझे अनुमति दें!' पवनकुमारने महर्षिके, माताओं-के, भरत-शत्रुघ्नके, राजवधुओंके भी चरणोंमें प्रणाम किया।

अनेकोंकी इच्छा थी, स्वयं भरत भी चाहते थे कि हनुमान उनके समीप ही रहें; किंतु हनुमानने जब बतलाया कि प्रभुने उन्हें लौटनेका आदेश दिया है, तब सबने उनको विदा दे दी।

अनेकोंके मनमें उठा— 'ये उतना भारी पर्वत ले गये थे, अनुरोध करनेपर हमें प्रयाग नहीं ले जावेंगे?'

लेकिन किसीने अनुरोध नहीं किया। दूसरे सबको अयोध्या छोड़कर स्वयं पहुँचनेकी त्वरा प्रदर्शित करना अत्यन्त स्वार्थपरता प्रतीत हुआ सबको। अतः सङ्कोचने किसीको बोलने नहीं दिया।

हनुमानके जाते ही महर्षि वशिष्ठ भरत तथा सुमन्त्रको लेकर मन्त्रणा करने लगे कि नन्दिग्राममें कौन-कौन जायँगे। वहाँ श्रीरघुनाथका स्वागत कैसे सम्पन्न होगा।

'हम राजसदनमें ही जीजीका स्वागत करेंगी।' उर्मिलाने स्वय प्रस्ताव करके प्रबन्धकोंका सङ्कोच दूर कर दिया। राजकुलकी वधुओंको वहाँ ले जाना उचित नहीं था। माताओंको ही जाना था वहाँ महिलाओंमें-से। मुनिमण्डल, मन्त्रीगण, प्रजाके प्रधान पुरुष जाते ही। उनका क्रम निश्चित कर दिया गया कि वे सम्राट्के स्वागतमें किस प्रकार सम्मिलित होंगे।
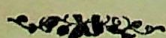
भरत - मिलाप

आकाशमें सूर्यके मध्याह्न तेजके समान ज्योति: पुञ्ज चन्द्रोज्वल विमान पुष्पक दिखायी पड़ा। नन्दिग्रामके आस-पास सम्पूर्ण भूमि लोगोंसे भरी थी। वाद्योंके तुमुल ध्वनि गूँजने लगी और जयघोष उठने लगा। विमानके उतरनेका स्थान राजसेवकोंने रिक्त कराया। पुष्पकने एक मण्डल लिया और पक्षीके समान पङ्ख समेटकर पृथ्वीपर उतर गया।

अञ्जलि बाँधे, कृशकाय, जटाधारी भाई भरतको श्रीरामने विमानके द्वारपर देखा तो हाथ पकड़कर ऊपर चढ़ा लिया। दोनों भुजा फैलाकर मिले। दोनों इन्दीवर सुन्दर, दोनोंके शरीर पुलकपूरित, दोनों-की जटाएँ और स्कन्ध भीगते रहे दोनोंके अश्रुओंसे।

लक्ष्मणने आकर भरतके चरणोंमें प्रणाम किया। भरतने उन्हें उठा-कर हृदयसे लगाया। भरतने श्रीवैदेहीके चरणोंमें मस्तक रखा। सब भाव-विह्वल। एक शब्द भी कोई बोल नहीं पाता था। सबसे पहिले भरत बोले, जब वे सुग्रीवसे मिलने लगे। उन्होंने वानरेन्द्रसे कहा— 'तुम हमारे पाँचवें भाई हो गये।'

'हमारा सौभाग्य कि आप जैसे सहायक प्राप्त हुए।' भरतने विभीषणको हृदयसे लगाते हुए कहा।

'सौभाग्य मेरा कि आपके अग्रजने मुझे अपने श्रीचरणोंमें आश्रय दिया।' विभीषणने अत्यन्त विनम्र स्वरमें कहा— 'अन्यथा इन सर्व समर्थ-को किसीकी भी सहायता कहाँ अपेक्षित थी।'

अब शत्रुघ्न कुमार विमानपर आ गये। श्रीरामने प्रणाम करते उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया। लक्ष्मणसे अङ्कमाल मिली। श्रीजानकीने उनकी अलकोंपर हाथ रखा, जब वे पदोंमें प्रणत हुए। सुग्रीव तथा विभीषणादि-से मिलनेके अनन्तर शत्रुघ्नने निवेदन किया— 'देव! कुलगुरु, माताएँ तथा पुरजन आये हैं आपके दर्शन करने। सहस्र-सहस्र लोग हैं।'

श्रीराम उठे। सब उनके पीछे चले। विमानसे उतरते श्रीसीताराम-को देखकर तुमल जयघोष गूँजने लगा। वाद्योंकी ध्वनि द्विगुणित हो गयी। लगभग दौड़कर श्रीरघुनाथ महर्षि वशिष्ठके पदोंके सम्मुख गिरे। महर्षिने उन्हें उठाया।

जब लक्ष्मण प्रणाम कर चुके और श्रीवैदेहीने चरण-वन्दन कर लिया, श्रीरघुनाथने सुग्रीव, विभीषण तथा वानरोंकी ओर मुख किया— 'ये रघुकुल गुरु। इनके आशीर्वादका ही प्रभाव है कि राम लङ्काके समर-में विजयी हुआ।'

'देव! इन वानरेन्द्र सुग्रीवकी सहायतासे लङ्काका समर-सागर मैं पार कर सका।' श्रीरामने कुलगुरुको परिचय देना प्रारम्भ किया।

'ये वर्तमान राक्षसेश्वर विभीषण। इन दशग्रीवानुजकी सहायताके बिना हम वहाँ कदाचित ही कुछ कर पाते।' श्रीरामका परिचय देना सबको इतना संकुचित कर रहा था कि प्रायः सभी वानर-यूथपोंने एक साथ महर्षिको प्रणाम किया।

'ये सब शूर संग्राममें मेरे लिए सर्वस्व त्यागकर आये।' सच्ची भावना थी स्वरमें— 'युद्ध उदधिमें जलपोत बनकर इन्होंने रामको उबार लिया।'

महर्षिको प्रणाम करनेके अनन्तर सब मुनिगणोंको दोनों भाइयोंने प्रणाम किया और तब श्रीरामने कैकेयीके चरणोंमें मस्तक रखा— 'अम्ब! आपके आशीर्वादसे, आपके अनुग्रहसे सुरोंका, साधुओंका शल्य दशग्रीव समाप्त हुआ। रामको आपने यह सुयश प्रदान किया है।'

'राम! मेरे राम।' कैकेयीने श्रीरामको हृदयसे लगाया तो उनके नेत्रोंकी धाराने श्रीरामकी जटाओंको आर्द्रकर दिया। वे सम्बोधन भी कठिनाईसे कर सकीं। लक्ष्मणको भी चरणोंमें प्रणाम करते उन्होंने उठाया।

'मेरी वधू! मेरी पुत्री!' जनक-नन्दिनीको हृदयसे लगाते वे फूट पड़ीं— 'मैंने कितने क्लेश दिये तुम्हें।'

'वत्स! सुमित्रा तुमसे पुत्रवती हुई। माता सुमित्राने लक्ष्मणको हृदयसे लगाया तो केवल इतना बोल सकीं। लेकिन माता कौसल्या एक शब्द भी बोलनेमें समर्थ नहीं हुईं। वे राम-लक्ष्मणको भुजाओंसे भरे उनकी जटाएँ अश्रु जलसे भिगोती रहीं। जब सीताने उनके पदोंमें मस्तक रखा, उन्हें उठाकर हृदयसे लगाकर वे अपने आपको भी भूल ही गयीं।

लक्ष-लक्ष लोग आये थे। सबको लगा कि श्रीराम-लक्ष्मण सबसे पहिले उनसे मिले हैं। श्रीरामने सबसे पहिले उनसे कुशल पूछी है। देवी अरुन्धती तथा मुनि-पत्नियोंको लगा कि श्रीमैथिलीने उन्हें ही सर्वप्रथम प्रणाम किया है।

लोगोंने सुग्रीव, विभीषण तथा वानर यूथपोंसे स्वतः परिचय प्रारम्भ कर दिया था। विभीषणने सुग्रीवसे कहा— 'मेरे अग्रजके यहाँ सब सुर सभय आते थे। मैंने इन्द्र, यम सबको देखा है। इतने सुन्दर, इतने सम्पन्न उनमें एक भी नहीं, जैसे ये अयोध्याके सामान्यजन हैं और इतने सुशील, इतने विनम्र तो यहाँके राजपुरुष हैं। श्रीरघुनाथके ये स्वजन—इनकी कहीं समता है सृष्टिमें।'

श्रीभरतने इस अवसरमें अपनी पर्णकुटीमें जाकर सिंहासनस्था पादुकाओंको उठाकर अपने मस्तकपर रख लिया था। दोनों करोंसे उन्हें अपनी जटापर पकड़े वे श्रीरामके सम्मुख आये और घुटनोंके बल बैठकर पादुकाएं सम्मुख रखीं उन्होंने— 'ये आपकी चरण पादुकाएँ और यह इन पादुकाओंका प्रतिनिधि! पादुकाओंने ही इन वर्षोंमें शासनका संचालन किया है। अब इनको चरण-स्पर्श देकर सनाथ करें।'

भरतने अपने करोंसे पादुकाएँ धारण करायीं। श्रीरामने जब सङ्कोचपूर्वक उन्हें पहिन लिया, भरतने अञ्जलि बाँधकर कहा— 'आज मेरा जन्म सफल हुआ। शासन तो आपके तेजसे सुरक्षित रहा है। अब आप अयोध्या देख लें। कोष एवं सेना दस गुणित हो गयी है।'

सूत, मागध, बन्दीजन स्तवन कर रहे थे। जनसमूह जयघोष कर रहा था। गगनसे कुसुम वर्षा हो रही थी। श्रीरामने पुलकित होकर भरत-को उठाकर हृदयसे लगाया।

'पुष्पक! अब तुम धनाध्यक्षके समीप चले जाओ।' श्रीराम विमान-के समीप आ गये— 'उनकी सेवामें रहो।'

'श्रीचरणोंने मुझे सनाथ किया है।' उस दिव्य विमानसे मधुर ध्वनि आयी— 'शस्त्र एवं वाहन समर विजयीके होते हैं। लोकपाल कुबेर मुझे हार चुके हैं। उनको पराजित करके दशग्रीवने मुझे प्राप्त किया था। मैं अपवित्र ही रहता यदि आपके पादपद्म मुझे पवित्र न कर देते; किंतु दशमुख-दलन करके आपने अपने शौर्यसे मुझे प्राप्त किया है। इन

चरणोंमें अपनाकर परित्यागकी परम्परा तो उचित नहीं है। मेरा अपराध देव ?'

'तुम सामान्य वाहन नहीं हो पुष्पक ! सृष्टिकर्त्ताने विश्वकर्माके द्वारा तुम्हारा विशेषरूपसे निर्माण धनाध्यक्षके लिए कराया है।' श्रीरामने कहा—'दशग्रीवका दौरात्म्य था तुम्हारा अपहरण। अतः तुम अलका जाओ। मुझे जब आवश्यकता होगी, तुम्हें स्मरण कर लूँगा। तुम तो स्मरण करते ही आ सकते हो।'

'जब तक आप धरापर हैं, मैं वाहन आपका ही हूँ।' पुष्पकसे पुनः ध्वनि उठी—'आपके आदेशसे मैं धनाध्यक्षके समीप जा रहा हूँ। आपके स्मरण करनेपर मुझे कुबेरसे अनुमति लेनेकी आवश्यकता नहीं।'

पुष्पकने अपने पङ्ख खोले। बिना किसी चालकके वह दिव्य विमान उठा और उत्तरकी ओर चला गया उस चन्द्रोज्वल हंस-यानके चले जानेपर श्रीराम नन्दिग्रामकी भरतकी पर्णकुटीमें पधारे। महर्षि वशिष्ठने जब आसन स्वीकार कर लिया, श्रीरघुनाथ उनके चरणोंके समीप बैठकर अपने करोंसे चरण-संवाहन करने लगे। महर्षिने स्नेह पूर्वक उनका कर पकड़ा, अपने समीप बैठा लिया।

'वत्स अब तुमको अयोध्या राजसदन पधारना चाहिये।' महर्षिने वात्सल्य भरे स्वरमें कहा।

'भाई भरतकी आज्ञाके बिना मेरा अयोध्यामें प्रवेश उचित नहीं है।' श्रीरामने मस्तक नीचे झुकाकर अत्यन्त सङ्कोचपूर्वक कहा—'आपका आदेश भी अनुलङ्घनीय है।'

'आर्य आपने कैकेयीका यथेष्ट सत्कार सम्पन्न कर दिया। चौदह वर्ष वनमें रह आये आप।' भरतने रोते हुए दोनों चरण पकड़ लिये—'राज्य आपने अपने इस सेवकको सम्हालनेके लिए दिया था। मैं राज्य न तब स्वीकार कर सकता था, न अब स्वीकार कर सकता हूँ। आपका राज्य मैं आपको लौटाता हूँ। भरत अयोध्याके अधीश्वरको आज्ञा देनेवाला कौन होता है। यदि आप मुझे अपना भृत्य, भक्त मानते हैं, यदि आपका मुझपर स्नेह है तो आप मुझे आज्ञा दें।'

'मेरी इच्छा है कि आपका राज्याभिषेक संसार देखे।' भरतने अञ्जलि बाँधकर दीनता पूर्वक याचना की—'आप समस्त भूमण्डके

स्वामी हैं, आपका प्रभात जागरण वाद्यों तथा वन्दियोंके मङ्गल शब्दसे हो। भरतको आप यह वरदान दें।'

'वत्स ! कैकेयी कुमाता सिद्ध हुई ; किंतु तुम-सा पुत्र प्राप्त करके भी इसके दोषका परिमार्जन नहीं होगा ?' माता कैकेयी उठ खड़ी हुईं। वे साश्रुलोचन श्रीरामकी ओर देखतीं बोलीं— 'मैं क्षमा माँगती, यदि तुम मुझे अपनी माता न मानते होते। अब इस अपनी माताकी भूलको सुधार लो। अयोध्याका सिंहासन स्वीकार करो !'

'अम्ब ! राम सदा आपका है। आपका आदेश मैंने कभी अस्वीकार किया है ?' श्रीरामने भावभरे स्वरमें कहा— 'आज भी आपका आदेश स्वीकार करूँगा ; किंतु आपने कोई भूल की थी, यह राम नहीं मानेगा। आपने अपने रामको अनन्त यशस्वी बनाया है।

'आर्य ! अब आपका यह वेश अयोध्याके सम्राट्के अनुकूल नहीं है।' शत्रुघ्नने हाथ जोड़कर प्रार्थना की। उनके संकेतके अनुसार केश सज्जा करनेवाले निपुण, सुखहस्त, शीघ्रकारी सेवक नापित उपस्थित हो गये थे।

श्रीरामने उन सेवकोंकी सहायतासे स्वयं आगे बैठाकर अपने हाथों भरतकी जटाएँ सुलझायीं। उन्हें स्नान कराया। जैसे माता छोटे बालकके केश सजाती है, भरतकी केश-सज्जा की। लक्ष्मणकी जटाएँ भी स्वयं सुलझाकर उन्हें स्नान कराया, उनका केश-शृङ्गार किया। तब सेवकोंको उनकी जटाएँ सुलझाने, उन्हें स्नान करानेका समय मिला।

तीनों राजमाताओंने श्रीसीताको स्वयं अपने करोंसे उपलेपन लगाकर स्नान कराया और उनका शृङ्गार किया। श्रीरघुनाथके आदेशानुसार विभीषण, सुग्रीवादि सभी साथ आये वानर यूथपोंको जो मानव वेशमें ही थे, स्नान कराके बहुमूल्य वस्त्राभरण धारण कराया गया। दासियोंके साथ माता कौसल्याने स्वयं वानर पत्नियोंको वात्सल्यवश स्नान कराके अलंकृत किया।

निषादराज गुहकी अस्वीकृति आज कौन सुनता ? कुमार शत्रुघ्नने स्वयं उन्हें स्नान करनेको विवश किया। उन्हें वस्त्रालङ्कार धारण करने पड़े।

सुमन्त्र राजकीय कोविदार ध्वज रथ जोड़कर सम्मुख हाथ जोड़े उपस्थित हुए। सर्वाभरण भूषित, रत्नमुकुट धारण किये श्रीराम उस रथ-

पर सीताके साथ विराजमान हुए। भरतने सुमन्त्रके स्थानपर रथ-रश्मि अपने हाथमें ले ली। शत्रुघ्न श्वेत छत्र लेकर श्रीसीतारामके पीछे खड़े हुए। लक्ष्मणने व्यजन लिया। विभीषण और सुग्रीव दोनों पार्श्वोंमें चामरधारी बन गये।

चक्रवर्ती महाराज दशरथके सब मन्त्री, प्रजापरिषदके प्रधान आगे चले। विप्रवर्ग मन्त्र-पाठ करता आगे चला। गगनसे देवता अनवरत पुष्प वर्षा कर रहे थे। अप्सराओंका नृत्य, गन्धर्वोंकी वाद्यध्वनि, किन्नरोंका कल-कण्ठ गगनको गुञ्जित कर रहा था और धरापर मङ्गल-गान, मन्त्र-पाठ, मागध-सूत-बन्दियोंका स्तवन, जन-समाजका जयघोष दिशाओंको ध्वनित कर रहा था। सहस्रशः गजोंपर वानर-यूपथ बैठे चल रहे थे।

नगर द्वारपर रथ रुका। अब नीराजनका क्रम चल पड़ा। भवनोंके ऊपरसे दधि-केशर, दूर्वाङ्कुर, लाजा तथा राशि-राशि पुष्पोंकी वर्षाने पथपर पड़े बहुमूल्य पाँवड़ोंपर द्वितीय आस्तरण आस्तृत करना आरम्भ कर दिया। नगर-द्वारपर ही नहीं, प्रायः सब चतुरष्कोंपर नीराजन हुआ।

रथ राजभवन पहुँचा। श्रीरामने भरतकी ओर देखा—'मेरा निज भवन वानरेन्द्र सुग्रीवको आवासके लिए दिया जाना चाहिये।'

सुग्रीवका हाथ पकड़कर श्रीराम अपने सदन ले गये। उन परमोदारने विभीषण, जाम्बवन्त, अङ्गद, प्रभृति सबको स्वयं उनके आवास पहुँचाया और उनकी व्यवस्था सम्हाली।

पूरा नगर पताका, तोरण, ध्वजाओंसे सजा था। सम्पूर्ण पथ सुगन्धि सिञ्चित थे। द्वारोंपर मङ्गल-कलश प्रदीपयुक्त सजाये गये थे। प्रत्येक गृहोंके गवाक्षोंसे सुरभित धूम्र उठ रहा था। प्रत्येक गृहमें मन्त्र-पाठ चल रहा था, मङ्गल-गान हो रहा था। अयोध्यामें आज चौदह वर्षोंके पश्चात् महोत्सव मनाया जा रहा था।

श्रीराम-लक्ष्मणने अन्तःपुरमें जाकर वन्दनीय महिलाओंको प्रणाम किया। श्रीजानकीने सबकी पद-वन्दना की। सभी सेवकों-सेविकाओंसे मिले, उनका कुशल पूछा। उन्हें पुरस्कृत किया।

अयोध्याका यह समारोह तो अब चलता ही रहना है। नगरकी विप्र-पत्नियोंको, वृद्धाओंको श्रीराम-लक्ष्मणसे भी मिलना है और श्रीजनक-नन्दिनीसे तो वधुओंको, कन्याओंको भी मिलना है।

श्रीरघुनाथको सभी नागरिकोंका सत्कार करना है। सखाओंको अङ्कमाल देकर उन्हें सुग्रीवादिसे परिचित कराना है। आजका आनन्द विभोर समय—आनन्दघन आज आये हैं दीर्घकालके पश्चात् अयोध्या। असीम आनन्द पारावार उमड़ा पड़ रहा है।

श्रुतिकीर्त्तिका संग्रहालय

'आप मेरी सहायता करो जीजी !' श्रुतिकीर्तिने आकर अचानक उर्मिलाके चरण पकड़ लिये— 'मैं और किसीसे कह नहीं सकती। तुमसे मैं आज भिक्षा माँगने आयी हूँ।'

'तुझे हुआ क्या है ? उर्मिलाने उठाकर हृदयसे लगाया और अञ्चलसे मुख पोंछा— 'ऐसा क्या मेरे पास है जो तुझे इस प्रकार माँगना पड़े।'

'आप तीनोंने तपस्याकी है। केवल हम दोनों राजभवनका सुख भोगते हैं।' श्रुतिकीर्तिका स्वर अत्यन्त अनुरोध पूर्ण था— 'आप मुझे अपने उस तपकी पावन स्मृति सुरक्षित कर लेने दो।'

तपकी बात करके मुझे बहला मत !' उर्मिलाने इस छोटी बहिनको तनिक स्नेहसे झिड़का— 'अन्तरमें असीम वियोग वाडवाग्नि लिये हँसते रहनेकी शक्ति तुझमें और देवरमें ही है। तुम दोनोंने जो त्याग किया, दूसरा उसका स्वप्न भी नहीं देख सकता। जब वल्कल हिम शीतल लगता था, तुम दोनों दूसरोंको सुखी करनेके लिए दाहक दुकूल धारण किये रहे।'

'जीजी ! आप इन बातोंमें मुझे टाल दोगी ? ' वहुत दयनीय करुण स्वर हो गया श्रुतिकीर्तिका।

'तुझे चाहिये क्या ? यह सीधे क्यों नहीं कहती है।' उर्मिलाने उपालम्भ दिया।

'मुझे आपके, माण्डवी जीजीके और बड़ी जीजीके भी वे सब उपकरण चाहिये जो इन चौदह वर्षोंमें आप काममें लेती रही हैं। वस्त्र, चटाइयाँ, आसन और कमण्डलु आदि पात्र भी।' श्रुतिकीर्तिने अब हँसकर कहा— 'मेरा लोभ बहुत बड़ा है। इस अवधिमें आपने जो चित्राङ्कन किये हैं, पद्य लिखे हैं, वे सब। साथ ही तीनों वन्दनीय जेठोंके वल्कल, मृगचम, आसन, खन्ती, कुल्हाड़ी, फलादि रखनेकी पेटिका। केवल

उनके धनुष , त्रोण , शर, मैं नहीं माँगूंगी । सम्भव हो तो उनकी विसर्जित जटाओंसे निकले केश भी ।'

' उन केशोंको लेकर अब तू जटा बनानेवाली है या देवरको जटा-धारी बनना है ।' उर्मिलाकी उज्वल हँसीने कक्षको आलोकित कर दिया— ' कीर्त्ति ! अब तू इस सब सामग्रीका क्या करनेवाली है ? '

' जब जटा-वल्कल धारणका अवसर आया था , तब बड़ोंका वह पदानुसरण करनेके योग्य हम सिद्ध नहीं हुए ।' श्रुतिकीर्तिने सहज स्वरमें कहा— ' अब तो अपने सदनमें यह सब एक कक्षमें सज्जित करके मैं उसे अपना अर्चा कक्ष बना लूंगी । इतना तो स्मरण रहेगा कि इस कुलकी परम्परा वार्धक्यमें ही वनगमनकी नहीं है । गार्हस्थ्यके आरम्भमें भी यह सामग्री आदरणीय हुआ करती है ।'

' मेरी बहिन !' उर्मिलाने भुजाओंमें भर लिया छोटी भगिनीको— ' तू एक अत्यन्त सम्मान्य संग्रहालय बनाने जा रही है । इस कुलको उससे सदा एक पुण्य-सन्देश प्राप्त होता रहेगा । मैं तेरी सहायता करूँगी । माता-जीसे कहना पड़ेगा । वही यह व्यवस्था कर सकती हैं । माण्डवी जीजीसे तू कह ले ।'

' जीजी ! तुमने मुझे बचपनसे धृष्ट बना दिया है स्नेह देकर ।' श्रुतिकीर्तिने बड़े सङ्कोचपूर्वक कहा— ' मैं और किसीसे कुछ नहीं कह सकूँगी , जानती हो । तुम्हारे देवरजीसे कहा था ; किंतु उन्हें तो तुमसे कहनेका भी साहस नहीं हुआ ।'

' तुम दोनों मौनी हो ।' उर्मिलाने फिर सस्मित कहा— ' देवरको मुझसे क्यों संकोच होता है । अच्छा चल , माताजीसे और माण्डवी जीजी-से अभी कहती हूँ । मेरा सदन तो तेरा है ही । यहाँसे तुझे जो अच्छा लगे , उठा ले जा ।'

श्रीरघुनाथके स्वागतार्थ नन्दिग्राम जानेसे पूर्व ही माता सुमित्राके समीप उनकी दोनों पुत्रवधुएँ उपस्थित हुईं । पद-वन्दनाके पश्चात् उर्मिला-ने ही कहा— ' आजके मङ्गल अवसरपर कीर्ति आपसे कुछ पुरस्कार पाने-की कामना लेकर आयी है ।'

' वत्से ! उत्तम अवसरपर आयी हो तुम दोनों । रामभद्र रहेंगे , तब भरत अस्वीकार नहीं कर सकेंगे । अन्यथा तुम जानती हो कि वे कितने

सङ्कोची हैं।' सुमित्राजी सुनकर सन्तुष्ट हो गयी थीं। उन्हें पुत्रवधुओंकी योजना अच्छी लगी। यह उनके पुत्रोंके तप-त्यागका प्रतीक सम्मान सहित सुरक्षित रहना चाहिये।

'अम्ब ! नन्दिग्राममें अब तक जो पादुकाएँ थीं वे और उनका सिंहासन, छत्र, चामर आये बिना अपूर्ण रहेगा यह कीर्तिका संग्रहालय।' उर्मिलाने प्रस्ताव किया— 'वे पादुकाएँ इस अर्चाकक्षमें अपने सिंहासनपर आसीन होकर मुख्य आराध्या होंगी।'

श्रुतिकीर्तिने सम्मानपूर्वक सिर झुकाया बड़ी बहिनको। उसकी योजनाका आवश्यक उपकरण तो वह भूल ही गयी थी। माता सुमित्रासे आश्वासन पाकर दोनों भरतके अन्तःपुरमें पहुँचीं तो उर्मिलाने वहाँ बिना पूछे बहुत-सी सामग्री समेटनी प्रारम्भ कर दी। माण्डवी मौन देखती रहीं। उर्मिलाने ही कहा— 'आज ही सायं ज्येष्ठ इस सदनमें आनेवाले हैं। जीजी, अब तुम तपस्विनी बनी नहीं रह सकतीं।'

'उर्मि ! तेरा अनुरोध भी सदा आज्ञा रही है; किंतु तू क्या देवरके सम्मुख इसी वेशमें उपस्थित होगी ?' माण्डवीने स्नेहपूर्वक हाथ पकड़ा— 'आज मेरी बात मान ले। मैं अपने हाथों तुझे सज्जित कर देना चाहती हूँ।'

'जीजी ! इस सेवामें सम्मिलित होनेका अधिकार मुझे भी दे दो।' श्रुतिकीर्ति प्रसन्न हो गयी। पहिले उर्मिलाको ही वस्त्राभरण धारण करने पड़े। उनकी वेणीभूता रूक्ष सघन, घुँघराली, सुकोमल, अतिदीर्घ केश-राशि वहीं सुलझायी गयी। वहीं उन अलकोंका अच्छी प्रकार मार्जन हुआ। वे सुरभित तैलसे सिञ्चित हुईं। स्नानके अनन्तर जब उनमें मुक्ता सज्जा हुई, लगा कि सौंदर्यकी साक्षात् अधिदेवता प्रकट हो गयी हैं।

'उर्मि ! तू जानती है कि तेरे द्वितीय ज्येष्ठ स्वभावसे तापस हैं।' माण्डवीने बहुत आग्रह किया कि उन्हें बहुमूल्य वस्त्राभरण अच्छे नहीं लगेंगे; किंतु आज उनकी ये दोनों अनुजाएँ माननेवाली नहीं थीं। उर्मिलाने सेविकाओंको संकेत किया। उस सदनकी इन चौदह वर्षोंकी सज्जा उसी समय श्रुतिकीर्तिके सदनमें पहुँच गयी। वह अन्तःपुर उस प्रकार सजाया गया, जैसे उस दिन सजा था, जब माण्डवी नववधू बनकर उस कक्षमें आयी थीं। वे यह सब देखकर लज्जासे लाल हो रही थीं।

'जीजी ! अब तुम्हारे अन्तःपुरको मैं सज्जित करूँगी।' श्रुतिकीर्ति-ने उमङ्गके साथ कहा।

'तू यह कष्ट न करे तो भी वह असज्जित नहीं रहेगा।' उर्मिलाने हँसकर कहा— 'कुमार शत्रुघ्नके सहोदर अग्रज आज चौदह वर्षोंपर आ रहे हैं वहाँ। यह उनकी सेविका उनके सदनको भला असज्जित कैसे रहने दे सकती है।'

'जीजी ! तुम्हारी कला प्रवणता दूसरा कैसे पा सकता है; किंतु आज तुम मेरी निर्देशिका बनी रहो !' उर्मिलाने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उनके अन्तःपुरके भी अब तकके उपकरण श्रुतिकीर्तिके संग्रहालयमें पहुच गये।

'देवर तो आज तेरा अन्तःपुर नहीं, तेरा संग्रहालय देखकर प्रसन्न होंगे।' सायङ्काल माता सुमित्राके लौटते ही उनके साथ आयी सब सामग्री लेकर उर्मिला शत्रुघ्नके अन्तःपुरमें पहुँच गयीं— 'चल, तेरा संग्रहालय सज्जित कर दूँ। केवल बड़ी जीजीके वल्कल इसमें नहीं हैं।'

'उनके वे उपकरण ?' श्रुतिकीर्तिने पूछा।

'वे वनसे तो लौटी नहीं हैं। लङ्कामें उनके दिव्य देहपर देवी अनुसूयाके द्वारा प्राप्त दिव्य वस्त्र था, जो कभी मलिन नहीं होता था। नये राक्षसाधिपकी पत्नीने उन्हें प्रसाद रूपमें प्राप्त कर लिया।' उर्मिलाने बतलाया— 'केवल उनका चूड़ामणि मिला है, वह भी ज्येष्ठके समीप। वे साम्राज्ञी हैं। उनके ये वस्त्राभरण भी तेरे संग्रहालयमें उनके सम्मानको सूचित करेंगे। ये त्रिभुवनजयी दशग्रीवके कोषके सबसे मूल्यवान रत्न— विभीषणने इनके द्वारा उनको सत्कृत किया। ये अपने सम्राट्के विजय-चिह्न बनकर रहें।'

जब तक श्रीराम अपने अनुजोंके साथ नागरिकोंके सत्कारमें व्यस्त रहे, शत्रुघ्नके अन्तःपुरका प्रशस्त कक्ष उसी अवसरमें संग्रहालय बन गया। वह अयोध्याके लोगोंका अत्यन्त आदरणीय—पुरीके किसी भी देवसदनसे अधिक सम्मान्य हो गया। उसका दर्शन करके नारियाँ—नगरजन अपनेको पवित्र करते रहे दीर्घकाल तक।

'मेरी बुद्धिमती बालिका वधू !' माता कौसल्याने प्रशंसा की सुन-कर और कैकेयीजीने सुना तो वे सीधे वहाँ आ गयीं। उन्होंने तो अनेक दिनों तक उसकी सज्जामें सहयोग दिया। अनेक परिवर्त्तन कराये। स्व० श्रीचक्रवर्ती महाराजके भी वस्त्रादि उसमें आ गये।

राज्याभिषेक

'अभिषेकका समय श्रीचरण निश्चित कर दें तो उसके अनुरूप व्यवस्था की जाय।' भरतने महर्षि वशिष्ठके समीप जाकर निवेदन किया। अब राज्यकी सुचारु व्यवस्थाके लिए आवश्यक है कि अयोध्याके सम्राट्का शीघ्र अभिषेक सम्पन्न हो।'

महर्षिने मूहूर्त निश्चित कर दिया। भरतने सुग्रीवसे कहा— 'चारों समुद्रों तथा पुण्य सरित सरोवरोंका जल लानेके लिए आप अपने दूत भेजें तो वे हमारे अश्वारोहियोंकी अपेक्षा शीघ्र आवेंगे। औषधियाँ भी वे सुगमतापूर्वक ला सकेंगे।'

सुग्रीवका आदेश पाकर वानरोंको इस सेवामें यात्रा करनेमें प्रसन्नता हुई। अयोध्यामें उनका सत्कार भरपूर हो रहा था; किंतु वे सेवा करना चाहते थे। उनको बैठे-बैठे सत्कारका उपभोग उबाने लगा था। यहाँ उद्यान प्रचुर थे। उनमें फलोंसे लदे वृक्ष थे और वानरोंपर कोई प्रतिबन्ध नहीं था; किंतु यहाँ उन्हें स्वयं अपनी स्वाभाविक उछल कूदमें सङ्कोच होता था।

सुग्रीवका आदेश पाकर स्वर्ण कलश लेकर बहुतसे वानरोंके साथ सुषेण पूर्व गये। ऋषम दक्षिण, गवय पश्चिम तथा नल उत्तर सागरसे जल लेने गये। इनके साथके वानर सम्पूर्ण भारतकी पुण्य सरिताओं एवं सरोवरों, कूपों, निर्झरोंका तीर्थोदक ले आये। वानर अनेक प्रकारकी औषधियाँ ले आये।

सब आवश्यक सामग्री प्रस्तुत हो जानेपर शत्रुघ्नने मन्त्रियोंके साथ जाकर महर्षि वसिष्ठको सूचना दी। सुदूर उत्तरके कैकय देशसे कुमार युधाजित आ गये थे। दक्षिण कोशल तथा मगधके युवराज भी आये। जनकपुरसे महाराज विदेहने भी अपने पुत्रको भेजा था। कन्याके पतिगृहका ही नहीं, उस नगरका जल भी पहिले नियम-निष्ठ लोग नहीं लेते थे अतः जनकपुर नरेश अथवा ननिहालोंके नरपति स्वयं नहीं आये थे

इन स्वजन सम्बन्धियोंको तो उपहार लाने ही थे, दूसरे नरेश भी नाना प्रकारके उपहार सम्राट्को अर्पित करनेके लिए ले आये थे। अद्भुत रत्न, कम्बल, कौशेय वस्त्र, नाना प्रकारके पात्र, कलाकृतियाँ काष्ठ-गजदन्त अथवा धातु निर्मित लोग ले आये थे।

सरयू किनारे आगत नरेशोंके वस्त्र शिविरोंसे दूसरा महानगर निर्मित हो गया था। दूरस्थ प्रदेशोंसे कला जीवी पधारे थे अपनी सर्वोत्तम कृतियाँ लेकर। लगभग सभी सुप्रसिद्ध ऋषि-मुनि अपने शिष्य एवं सहायकोंके साथ आये थे।

लोग चतुर्दन्त श्वेत गज, श्याम कर्ण अश्व तथा दूसरे भी दुर्लभ लक्षणवाले शिक्षित पशु ले आये थे। अनेक प्रकारके गुण-शिक्षायुक्त पक्षी लाये थे लोग। सुकोमल मृग-चर्म, व्याघ्रम्बर तथा दूसरे पशु-चर्म, औषधियाँ, मधु, कस्तूरिकादि लोग ले आये थे।

शत्रुघ्नने सबको समुचित आवास दिया था। सबकी व्यवस्था भरत स्वयं घूमकर देख लेते थे। श्रीराम सबसे नम्रतापूर्वक मिलते थे। उनके राज्य, प्रदेश, आश्रमकी कुशल पूछते थे। सबको प्रतिदिन कुछ-न-कुछ उपहार भेजते रहते थे।

श्रीसीताराम रत्नजटित स्वर्णासनपर विराजमान हुए। औषधियुक्त पवित्र तीर्थोदकोंसे महर्षि वशिष्ठ तथा दूसरे ऋषि-मुनि-तापसोंने दोनोंको मन्त्र-पाठ करते हुए अभिषिक्त किया।

गगनसे सुमन-वर्षा हो रही थी। देवता जय-ध्वनि कर रहे थे। अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। गन्धर्व बजाने, गानेमें लगे थे। सब ओर जयघोष उठ रहा था।

पुण्य स्नानके पश्चात् विप्रपत्नियों, देवाङ्गनाओं तथा नगरकी प्रतिष्ठित वृद्धाओंने श्रीवैदेहीको वस्त्राभरण, पुष्पमाल्य एवं दिव्यवस्त्र धारण कराया। उनकी केश सज्जा की। अङ्गराग लगाया। पुष्पमाल्य एवं पुष्पाभरण भूषित कराके सिंहासनपर श्रीरामके वाम भागमें बैठाया।

श्रीरामने भी वस्त्राभण धारण किया। अङ्गराग लगा। पुष्पमाल्यसे सज्जत वे आदि पुरुष सिंहासनासीन हुए। उनको पुष्पसार लगाया गया। अब महर्षि वसिष्ठने इक्ष्वाकु वंशकी परम्परसे आता रत्न मुकुट विप्रोंके मन्त्र-पाठके मध्य श्रीरामके मस्तकपर रखकर उसपर वह किरीट धारण

कराया जो सृष्टिकर्ताने स्वयं मनुको दिया था। श्रीजनक-नन्दिनीके मस्तक-पर रत्नोज्वल चन्द्रिका भूषित हुई।

शत्रुघ्नने श्वेत छत्र धारण किया। यह चन्द्रोज्वल अमृतवर्षी छत्र विश्वकर्माने महाराज इक्ष्वाकुके लिए प्रस्तुत किया था। विभीषण तथा सुग्रीवने चामर धारण किया। भरतने व्यजन उठाया करोंमें; किंतु श्रीरामने उन्हें रोक दिया। अग्रजके आदेशसे भरतको युवराजके आसनपर बैठना पड़ा। यौवराज्य पदपर उनका अभिषेक उसी समय श्रीरामके आग्रहसे हुआ।

देवराज इन्द्रकी प्ररणासे वायुदेव स्वर्ण कमलोंकी माला लेकर उपस्थित हुए। श्रीरामके कण्ठमें उन्होंने पहिनाया। वे पुष्प अत्यन्त सुरभित थे और कभी म्लान होने वाले नहीं थी।

तुमल वाद्य ध्वनि, ऋषि-मुनि गण तथा विप्रवर्गके सस्वर वेद पाठके मध्य महर्षि वशिष्ठने श्रीरामको तिलक लगाकर सूर्यवंशकी परम्परासे आता मणि-रत्न-मण्डित राजदण्ड श्रीरामके दक्षिण हस्तमें दिया। ऋषियों तथा विप्रवर्गने स्वतिवाचनपूर्वक राजतिलक तथा दण्ड धारणका समर्थन किया। श्रीसीतारामको आशीर्वाद दिया।

सम्राट्को सबसे पहिले उपहार अर्पण करनेका अधिकार वानरेन्द्र सुग्रीवको प्राप्त हुआ। सुग्रीवके प्रश्चात् विभीषणने जब उपहारार्पण कर लिया, तब देवराजको, लोकपालोंको, देवताओंको अवसर मिला। सामान्य नरेशोंको तो बहुत पीछे यह अवसर प्राप्त हुआ। तब जब कि सब स्वजन सम्बन्धी उपहार दे चुके।

सबसे अन्तमें अत्यन्त सङ्कोचपूर्वक उठे निषाद राज गुह; किंतु श्रीरामने उन्हें अपने सिंहासनके दक्षिण पार्श्वमें रत्नासनपर बलात् बैठा दिया— 'आप हमारे अपने हैं। इस सिंहासनको उपहारकी अपेक्षा आपसे नहीं है। आप इसके प्रमुख रक्षक रहेंगे और राजसभामें यह दक्षिणका आसन आपका रहेगा। रामको आप जैसा मित्र पानेपर गर्व है।'

देवराज इन्द्रने स्वयं आकर उपहार अर्पित किया। यक्षराज कुबेर, जलाधीश वरुण प्रभृति सभी लोकपालोंने भेंट दी। गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, किम्पुरुष, नाग आदिने भेंट अर्पित की। अभिषेकके समय भेंट देनेका अर्थ ही अपना सम्राट् स्वीकार करना था।

भगवान ब्रह्मा मूर्त्तिमान वेदोंके साथ पधारे। उन्होंने स्तवन किया। भगवान गङ्गाधर वृषभारूढ़ पधारे देवी पार्वतीके साथ। उन्होने भी स्तवन किया।

श्रीराघवेन्द्रके अभिषिक्त होते ही भूमि रसवती हो गयी। कृषकोंके क्षेत्र बिना जोते-बोये फल देने लगे। कृषि तथा उद्यानके विनाशक तत्त्व मूषक, टिड्डियाँ, कीड़े एवं शुक जैसे हानिकर पक्षियोंका स्वयं अभाव हो गया।

लताएँ तथा पुष्पतरु पुष्पभारसे झुके रहने लगे। उनपर भ्रमरोंने, पिक, पपीहे, मयूरोंने अपना आवास बनाया। सुस्वर पक्षियोंकी बहुलता हो गयी। फलोद्यानों तथा उपवनों, वनोंमें सभी ऋतुओंमें वृक्ष फलित-पुष्पित होने लगे। उनपर स्थान-स्थानपर मधुछत्रक लटकने लगे।

मेघ समय-समयपर आवश्यक वर्षा करने लगे। अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि शब्द ही लोगोंको विस्मृत हो गये। धरापर परिपुष्ट, गुणवान औषधियाँ प्रकट होने लगीं। तृणोंसे भूमि श्यामला हो उठी।

सूर्यने मानो सुखद ताप बनाये रखनेका व्रत ले लिया। ओला, तुषारपात पुस्तकोंके शब्द रह गये। हिमपातसे केवल गिरि-शिखर शुभ्र होते थे। सरिताएँ, निर्झर सदा निर्मल नीर प्रवाहित करने लगे।

अश्व, गज, गायें तथा अन्य पशुओंमें उत्तम लक्षणयुक्त शिशु ही उत्पन्न होने लगे। गायोंमें दूध बढ़ गया। भेड़ोंने सुकोमल ऊन देना प्रारम्भ किया। कौशेय क्षेत्रोंमें कोशक निर्माता कृमिगणोंने अनेक रङ्गोंको उत्तम कोशक निर्मित करने आरम्भ किये।

भगवान गणपतिने अपने गणोंको आदेश दे दिया— 'भूमिपर आधि-व्याधिके अधिदेवताओंका भूलसे भी भटककर निकलना दण्डनीय अपराध माना जायगा।'

वीरभद्रने, महाभैरवने, कालिका तथा चामुण्डाने अपने सब अनुगतोंको सावधान कर दिया— 'अब त्रेताके अन्त तक पृथ्वीको वर्जित क्षेत्र न मानने वाले क्षमा नहीं किये जायँगे।'

सरोवरोंमें, वापियोंमें ही नहीं, छोटे उत्खातों (गड्ढों) तकमें रङ्ग-बिरंगे कमल, कुमुदिनियाँ खिल उठीं और वहाँ सारस, चक्रवाक तथा राजहंसोंका समूह स्वर्गीय उद्यानोंसे भी उतर आया। जैसे भगवती श्री

स्वयं अपने करोंसे भूमिके एक-एक तृणको, एक-एक पादपको, प्राणीको, शिलातलको भी सज्जित करनेमें लग गयीं।

पर्वतोंपर स्वर्ण, रजत, ताम्रादि धातुएँ ऊपर ही प्रकट हो गयीं। हीरक, पुष्पराग, पन्ना, गोमेद, नीलम, पद्मराग जैसे रत्न-मणियोंकी राशि सामान्य पर्वतोंमें भी सुलभ हो गयी। समुद्रकी तरंगें राशि-राशि मुक्ता, विद्रुम, शङ्ख पुलिनपर प्रक्षिप्त करने लगीं। दुर्लभ पदार्थ, दुर्लभ वस्तु जैसा कुछ रह नहीं गया कहीं।

मनुष्योंके ही नहीं, पशु-पक्षी एवं कीटों तकके मानस निर्मल हो गये। सृष्टिमें तमोगुण केवल धातु-पदार्थोंको सघनता, दृढ़ता देनेवाला तथा प्राणियोंको सुखद निद्रा प्रदान करनेवाला शुभ गुण बन गया। रजोगुण शक्ति, स्फूर्ति, सेवाका प्रदाता हो गया। सबके अन्तःकरण निर्मल हो गये। प्राणियोंमें परस्परका संघर्ष, हिंसा, अमर्ष विस्मृत बात बन गयी। सम्पूर्ण पृथ्वी तपोवनके समान शुद्ध सत्व, शान्त हो गयी।

वायुने बन्द हो जाना तथा झंझा, अन्धड़, वात्याचक्र बनना त्याग-कर सुखद, शीतल, मन्दगति सुस्थिर रूपमें अपना लिया। अग्निदेव यज्ञशालामें हों अथवा पाकशालामें, निर्धम प्रज्वलित होने लगे। उनके उपद्रव शमित हो गये।

मनुष्योंका शरीर सुपुष्ट, सुन्दर, स्वस्थ रहने लगा। स्त्री-पुरुष सबकी इन्द्रियाँ निर्विकार, चित्त शान्त। सब शम-दम सम्पन्न। परिग्रह केवल यज्ञके लिए आवश्यक रह गया। लोभ विदा हो गया। काम परिवर्तित हो गया श्रीराम प्रेममें। दाम्पत्य आवश्यक सन्तानोत्पादन तथा सेवाका साधन हो गया।

सब अपने अनुकूल, विधि विहित आचारमें सुखी-सन्तुष्टा, ईर्ष्या, द्वेष, कपट, संघर्षसे सब असंस्पृष्ट। प्रचुर सामग्री सबके लिए सदा सुलभ हो गयी, तब लोभ और परिग्रह कोई क्यों करे? सन्तोष, तितीक्षा, तप प्रिय हो गया सबको। इन्द्रिय-भोगोंमें रुचि रही नहीं; क्योंकि सत्वस्थ अन्तःकरण अन्तरके अनन्त आनन्दका निधिपति हो गया।

भगवती वीणापाणि मानो प्रतीक्षा करने लगीं कि कोई अध्ययन करनेकी इच्छा करे, काव्यके लिए लेखनी उठाये, तूलिका अथवा तक्षणकी चेष्टा करे तो उसकी वाणीको, कण्ठको, करको अपना सम्पूर्ण आशीर्वाद

देकर वे स्वयं कृतार्थ हों ; क्योंकि मानवमें विलास-वर्जित उच्चतम अभिरुचि जाग उठी थी। अध्ययन करना था योग्यता प्राप्तिके लिए। काव्य, सङ्गीत, चित्र अथवा मूर्त्तिकला साधना बन गयी—अपने सर्वेश्वरेश्वर सम्राट्के रूप, गुण, पराक्रमको प्रकट करके उनके चारु चिन्तनमें मानसको निमग्न रखनेकी साधना।

साधक, संयमी, तपस्वी ये शब्द रह गये। ऋषि, मुनि, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी वनोंमें रहते थे, उनके त्यागपूर्ण वेश थे, वे समाजके वन्दनीय थे ; किंतु तितीक्षा, सन्तोष, अपरिग्रह, संयम एवं भगवत्प्रेम तो सामान्य जनोंमें भी उनके ही समान परिपूर्ण था।

लोगोंकी कुछ कठिनाइयाँ भी बढ़ गयीं श्रीरामके राज्यारूढ़ होते ही। सत्कार करनेवाले श्रद्धापूत मानस मनुष्य थे ; किंतु उनकी वह श्रद्धा समन्वित सेवा स्वीकार करनेवाले अतिथि अभ्यागत प्राप्त होने दुर्लभ हो गये थे। दाता तो सब होनेको उत्सुक थे ; किंतु यह अवसर अधिकांशके लिए अलभ्य बन गया था ; क्योंकि प्रतिगृहीता भी कोई कभी बनता था तो आवश्यकतासे विवश होकर नहीं, केवल अनुग्रहके कारण।

श्रीरामके राज्याभिषेकके साथ असन्तोष केवल अपनी आराधना तथा धर्ममें सीमित हो गया। दैन्य स्वभावका सद्गुण रह गया। सम्पूर्ण पृथ्वी, सब प्राणी सत्वनिष्ठ, सुखी, सम्पन्न सहज सद्गुण निरत हो गये।

पुरस्कार-वितरण

अयोध्याकी राजसभामें आञ्जनेयने अपना स्थान उसी समय निश्चित कर लिया, जब श्रीरघुनाथ वैदेहीके साथ सिंहासनासीन हुए। अभिषेक तथा उपहारार्पण पूरा होते ही पवनकुमार श्रीराघवेन्द्रके पाद पीठके पास तनिक दक्षिण वीरासनसे बैठ गये। उनका यह स्थान और यह मुद्रा सुनिश्चित हो गयी श्रीरामके सिंहासनासीन रहते। वे सम्राट्के सिंहासनपर बैठते ही बैठ जाते थे और उनके उठनेका उपक्रम करते ही उठ खड़े होते थे।

उपहारार्पणके अनन्तर सम्राट्की ओरसे पुरस्कार वितरण प्रारम्भ हुआ। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न सब आगतोंको समुचित् पुरस्कार देनेमें लगे। सूत, मागध, बन्दीजन तथा दूसरे सब कलाजीवी सन्तुष्ट किये गये। सबको यथेष्ट पुरस्कार प्राप्त हुआ। सबको लगा कि स्वयं सम्राट्ने उनको सम्मानित किया है। उनकी कलाकी प्रशंसा की है और उन्हें विशेष रूपसे पुरस्कृत किया है।

ब्राह्मणोंको, मुनिगणोंको श्रीरघुनाथने विदा करते समय उनसे अनुरोध किया— 'आप सब इस सेवकपर अनुग्रह रखें। इससे कोई प्रमाद कभी होता दीखे तो इसे अनुशासित करें और यहाँ यज्ञका आयोजन हो तो आनेकी अनुकम्पा करें।'

सबने हर्षोत्फुल्ल कहा— 'तुम्हारे यज्ञमें आमन्त्रित होकर आना हमारे लिए गौरवकी बात होगी।'

आगत मण्डलीक नरेशों तथा प्रजा प्रतिनिधियोंको पुरस्कृत करके विदा करनेके अनन्तर स्वजनों, सेवकोंको श्रीरघुनाथने यथेष्ट पुरस्कार दिया। वस्त्र, अन्न-धन, गौ, गज, अश्व, भूमि, ग्रामादि यथोचित रूप-में देकर सबको सम्राट्ने सन्तुष्ट किया। कोई सेवक, कोई सम्बन्धी इस अवसरपर सत्कृत होनेसे छूटता नहीं था। सुमन्त्रादि सचिव ही नहीं, भरतादि भाई तथा भ्रातृ पत्नियाँ भी स्नेहोपहारसे सन्तुष्टकी गयीं।

'तुम हमारे ऐसे ही आत्मीय बन्धु हो जैसे लक्ष्मण या भरत।' श्रीरामने स्वयं निषादराज गुहको अपने करोंसे वस्त्रालङ्कार पहिनाये और उन्हें विदा करने द्वार तक आकर अङ्कमाल देते भरे कण्ठ बोले— 'राम अब इस दायित्वसे दब गया है। अतः इसे अवसर न मिले तो तुम इसको विस्मृत मत करना। मेरी इच्छा है कि एक बार प्रतिदिन यहाँ दर्शन दे जाया करो। अयोध्याकी राजसभा अथवा रामके अन्तःपुरमें आनेके लिए तुम्हें अनुमति की कभी आवश्यकता नहीं होगी।'

निषादराजसे बोला नहीं जा रहा था। उनकी राजसभामें पदवृद्धि, उनके शासन क्षेत्रकी सीमा वृद्धि, उन्हें सम्राट्के पार्श्वमें प्रत्येक यात्रामें रहनेका अधिकार—इन सबके अतिरिक्त अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राटकी एक निषादके प्रति यह आत्मीयता—गुह विभोर गये अयोध्यासे। श्रीरामके समीपसे शरीर ही गया, राम तो उनके अन्तरमें अविचल आसीन हो चुके थे।

सब स्वजनोंका सत्कार हो जानेके पश्चात् श्रीराघवेन्द्रने लङ्कासे आये वानरोंको सम्मानित करना प्रारम्भ किया। अपने कण्ठकी रत्नमाला सुग्रीवके गलेमें डाल दी। अङ्गदकी भुजाओंमें अपने करोंसे अपने रत्नाङ्गद पहिनाये।

'हनुमान! तुमको जो अभीष्ट हो माँग लो।' सबके अन्तमें पवन-कुमारकी ओर श्रीराघवेन्द्रने देखा। सब वानर यूथप, विभीषणादि पुरस्कृत हो चुके थे।

'मेरे मुखसे आपका नाम बराबर निकलता रहे।' आञ्जनेयको कहाँ किसी पदार्थकी कामना थी— 'जब तक सृष्टिमें आपकी भुवनपावनी कथा रहे, तबतक मैं सशरीर इस पृथ्वीपर रहूँ।'

'एवमस्तु! तुम स्वेच्छानुसार जीवन्मुक्त होकर मेरे भक्तोंके संरक्षक बनकर पृथ्वीपर रहो।' श्रीरामने प्रसन्न स्वरमें स्वीकार किया।

'तुम जनपदमें, निर्जनमें, वन-पर्वतमें जहाँ कहीं भी रहो, वहीं सब भोग तुम्हारी सेवामें उपस्थित रहा करें।' साम्राज्ञी श्रीजनकनन्दिनीने वरदान दिया।

यह सब हुआ; किंतु श्रीमैथिलीका हृदय सन्तुष्ट नहीं हुआ। आज-के महान अवसरपर सम्राट्ने उन्हें भी उपहारार्पण किया है; किंतु जो

उनको अम्बा कहता है, जिसे उन्होंने अपना प्रथमपुत्र स्वीकार कर लिया है, जिसके उपकारोंको कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता, आजका परमानन्द अवसर जिसके पौरुषसे प्राप्त हुआ, उसीको कोई पुरस्कार नहीं? वाणीसे दिया गया वरदान क्या पर्याप्त है उसके लिए। अन्तरके वात्सल्यका, कृतज्ञताका वाहक कोई प्रतीक-पदार्थ भी तो होना चाहिये।

इक्ष्वाकु कुलकी परम्परासे आती सुरदुर्लभ मणि-मुक्ता-माल्य इस अवसरपर श्रीरघुनाथने अपने करोंसे सम्राज्ञीके कण्ठमें डाली थी। अयोध्याके राज्य कोषका सर्व श्रेष्ठ श‍ृङ्गार। सुर साम्राज्ञी शचीके लिए भी सुदुलभ। धनाध्यक्ष कुबेरका सपूर्ण कोष उसके सम्मुख तुच्छ। उस मालाकी मणियोंकी ज्योतिसे पूरी राजसभा जगमगा रही थी। उन मणियोंका प्रभाव अकल्पनीय था। उनके धारण करनेवालेकी कान्ति, ओज, बल बढ़ता रहता था। वे आयु, आरोग्य, यश, ऐश्वर्य प्रदायिनी मणियाँ—उनमें एक-एक सम्पूर्ण राज्य कोषसे अधिक मूल्यवान एवं महत्त्व-पूर्ण थीं। जनक-नन्दिनीने वह माला कण्ठसे उतारकर करोंमें ले ली और श्रीराघवेन्द्रकी ओर बार-बार देखने लगीं। आजका यह स्नेहोपहार—इसे किसीको देते भी बड़ा संकोच। यह भी क्या किसीको देनेकी वस्तु है? लेकिन वात्सल्य मानता नहीं है। अतः अनुमतिकी अपेक्षा है।

'तुम जिसपर प्रसन्न हो, जिसे देना चाहती हो, उसे दे दो।' श्रीरामने अपनी अर्घाङ्गिनीकी दृष्टिका तात्पर्य समझकर उन्हें सहर्ष अनुमति दे दी। वे उदार चक्र चूड़ामणि, उन्हें प्रसन्नता हुई श्रीजानकीके इस औदार्यसे।

श्रीजनक-नन्दिनीने तनिक झुककर वह मणि माला केशरीकुमारके कण्ठमें डाल दी। चौंककर हनुमानजीने श्रीवैदेहीकी ओर देखा और फिर श्रीराघवेन्द्रके मुखकी ओर दृष्टिकी। श्रीरामके अधरोंपर उन्हें स्मित रेखा स्पष्ट दृष्टि पड़ी। हनुमानने कण्ठमें-से वह मणि माला निकाल ली। उसे दोनों हाथोंमें लेकर मस्तकसे लगाया। फिर उसे लेकर उठ खड़े हुए। राजसभामें एक किनारे जा बैठे।

हनुमानजीके कण्ठमें सम्राज्ञीने अपना सर्वोत्तम कण्ठाभरण डाल दिया, यह देखकर सबकी दृष्टि पवनकुमारकी ओर लग गयी। सभीके हृदयमें श्रीहनुमानके सौभाग्यके प्रति प्रशंसाके भाव जागे। सबने समझ लिया कि साम्राज्ञीके पवनपुत्र अतिशय स्नेह भाजन हैं।

पवनकुमारका ध्यान किसीकी भी ओर नहीं था। वे राजसभाके एकान्त कोनेमें जा बैठे थे और उस मालाको उलट-पलटकर बड़े ध्यानसे देख रहे थे। पूरी मालाको कई बार उलट-पलटकर देखनेके अनन्तर उन्होंने उसकी एक-एक मणियोंको घुमा-फिराकर देखना प्रारम्भ किया। मन्त्रीने समझा कि वे मालाकी ज्योतिर्मयी अकल्पनीय सुन्दर मणियोंको देखकर आश्चर्य मुग्ध हो रहे हैं।

'अरे!' सबके सब चौंके जब मालाकी एक मणि हनुमानने तोड़नेके लिए मुखमें डाल ली। अधिकांशके अधरोंपर हास्य आया। किसीका मन्द स्वरभी सुन पड़ा—'वानर इन रत्नोंका मूल्य क्या जाने। वह इन्हें भी जीभपर रखकर परीक्षा करना चाहता है।'

पवनकुमारका ध्यान अन्यत्र कहीं नहीं था। उन्होंने अपने वज्रदन्त-से उस मणिको तोड़ डाला और मुखसे उसके टुकड़े हाथपर लेकर उनको उलट-पलटकर देखने लगे। कुछ निराश भावसे मस्तकको झटका देकर उन्होंने उन टुकड़ोंको फेंक दिया। सिंहासनस्थ श्रीसीता-रामकी ओर देखा। श्रीजनकनन्दिनी अत्यन्त कुतूहलपूर्वक उनकी ओर देख रही थीं। जैसे माता अबोध शिशुकी अटपटी क्रीड़ा देखकर सन्तुष्ट हो रही हों। श्रीरघुनाथके अधरोंकी स्मित रेखा और स्पष्ट हो गयी थी।

हनुमानने दूसरी मणि तोड़नेके लिए मुखमें डाली तो लोगोंके हृदयमें हूक उठी—'यह वानर इन अमूल्य रत्नोंको नष्ट कर रहा है। यह इतना बहुमूल्य पुरस्कार पानेका अधिकारी नहीं था। इसे कोई राजसेवक रोकते क्यों नहीं।'

आञ्जनेयने उस मणिको भी दाँतोंसे तोड़ा और उसके टुकड़े भी हाथपर लेकर पहिलेके समान देखकर फेंक दिये। जब तीसरी मणि तोड़नेके लिए उन्होंने मुखमें डाली, विभीषणसे रहा नहीं गया। वे बोल पड़े—'हनु-मानजी! आप इन सुरासुर दुर्लभ रत्नोंको इस प्रकार क्यों नष्ट कर रहे हैं? इनमें-से एक-एक स्वर्गकी समस्त सम्पत्तिसे अधिक मूल्यवान हैं। आप इनको तोड़कर इनमें क्या पाना चाहते हैं?'

'ये सचमुच मूल्यवान हैं?' पवनकुमारने अब विभीषणकी ओर देखा—'अम्बाने मुझे पहिनाया इसे तो मैंने भी इन्हें मूल्यवान ही समझा; किंतु वह मूल्य इनमें मुझे अबतक दीखा नहीं। मैंने जिन्हें तोड़ दिया, वे तो मूल्यहीन पाषाण मात्र हैं।'

'आप इस प्रकार तोड़कर उनमें उनका मूल्य देखना चाहते हैं ?
विभीषणने पूछा— 'अन्ततः आप उनमें क्या देखनेकी आशा करते हैं ?"

'अपने सिंहासनासीन इन स्वामीके नाम तथा इस दिव्य रूपके अतिरिक्त भी सृष्टिमें कुछ मूल्यवान है ?' हनुमानजीके स्वरमें आश्चर्य था। मानों वे यह समझ ही नहीं पाते हों कि इतनी सीधी बात विभीषण क्यों पूछ रहे हैं। 'अपने आराध्यका नाम या रूप ही अपनी उपस्थितिसे अन्यको मूल्यवान बनाता है। इनमें कोई जिसमें न हो, वह तो हेय है, त्याज्य है। निर्मूल्य ही नहीं है, व्यर्थ भार भी है वह।'

'आपके इस विशाल शरीरमें इन दोनोंमें-से क्या है ?' विभीषण-का स्वर कुछ चिढ़ा हुआ था। वे हनुमानके इस तर्कको समझ नहीं सकते थे कि जिसमें रामनाम अथवा श्रीसीतारामकी छवि न हो, वह महामूल्य-वान मणि भी हो तो तोड़कर फेंक देने योग्य है। 'आपने देख लिया है कि आपके देहमें राम-नाम अथवा श्रीसीतारामका यह भुवन पावन रूप है ?'

'आप ठीक कहते हैं। मैंने कभी देखा नहीं है। मैं केवल विश्वास करता हूँ कि मेरे देहमें मेरे स्वामीका नाम और रूप दोनों हैं।' पवनकुमार-ने हाथकी मणि-माला पृथ्वीपर डाल दी। विभीषणकी ओर देखते उठ खड़े हुए— 'आपने मुझे उचित सचेत किया है। मुझे देख लेना चाहिये। यदि इस देहमें स्वामीका नाम या रूप नहीं है तो यह भी व्यर्थभार है। यह त्याज्य है।'

विभीषणने तथा दूसरोंने कल्पना भी नहीं की थी कि उन शब्दोंकी ऐसी गम्भीर प्रतिक्रिया पवनपुत्रपर होगी। कोई समझ नहीं सका कि हनुमान क्या करने जा रहे हैं। उन श्रीअञ्जनीनन्दनने अपने दोनों हाथोंके वज्रनख अपने वक्षपर लगाया, वक्षका वाह्य चर्म चीरते चले गये। मस्तक झुकाकर देखा और उनके मुखपर सन्तोषका स्वस्थ भाव आ गया।

'श्रीपवनकुमारकी जय !'

'श्रीराम-प्रेम-परिपूर्ण आञ्जनेयकी जय !'

'श्रीराममय रामदूत हनुमानकी जय !'

गगन-जयघोषसे गूंजने लगा। राजसभामें उपस्थित सबके कण्ठसे निकला। सबने चकित होकर स्पष्ट देखा कि हनुमानके हृदयमें

सिंहासनासीन श्रीसीताराम विराजमान हैं और उनके रोम-रोममें, शरीरके कण-कणमें राम-नाम अङ्कित है। ऐसा लग रहा है कि उनके शरीरके कण रामनामसे ही निर्मित हैं।

विभीषण दौड़कर पवनकुमारके चरणोंपर गिर पड़े। श्रीरघुनाथने उठकर हनुमानका हाथ पकड़ा। अन्यथा वे तो शरीरका चर्म चीरते चले जा रहे थे। श्रीरामके अमृत्य स्पन्दी कर स्पर्शसे हनुमानके वक्षपर बना व्रण मिट गया। वह विदीर्ण चर्म पूर्ववत स्वस्थ हो गया।

श्रीजनक-नन्दिनीने अत्यन्त वात्सल्यपूर्वक हनुमानके मस्तकपर अपना पद्मपाणि रखा; किंतु विभीषणकी ओर सरोष देखा— 'इसे बन्दी रहकर ताड़ित होना पड़ेगा।'

'देवि! ये राक्षसेन्द्र भी अपने ही हैं।' स्वयं श्रीरघुनाथने विभीषण-की ओरसे क्षमा-याचनाके स्वरमें कहा।

'आपका अनुग्रह इसकी रक्षा कर लेगा।' वे आद्या अपने आराध्यके अनुरोधपर भी केवल इतनी अनुकम्पा कर सकीं।

'आपको ये पाषाण मूल्यवान प्रतीत होते हैं?' श्रीपवनकुमारने झुककर अपने पैरोंके पास पड़ी वह मणि-माला उठाकर विभीषणकी अञ्जलिमें डाल दी— 'आप इन्हें स्वीकार करें।'

विभीषणका मस्तक श्रद्धासे, कुछ लज्जासे भी झुक गया था। इस समय श्रीराघवेन्द्रने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। हाथ पकड़कर वे हनुमानको ले गये और अपने पादपीठके समीप उन्हें सस्नेह बैठाकर तब श्रीजानकीके साथ स्वयं सिंहासनपर बैठे।

वानरोंकी विदाई

अतिथि, अभ्यागतोंका समाज सत्कृत होकर विदा हो गया। आगत ऋषि-मुनियों तथा कलाजीवियोंमें-से अधिकांश अयोध्यामें तथा आस-पासके अरण्योंमें आश्रम बनाकर बस गये। केवल वे गये जिनके कहीं स्थायी आश्रम अथवा कला-शिक्षण-केन्द्र थे। जिनको किसी स्थान विशेषमें ही नहीं रहना था, वे परिव्राजक-पर्यटनशील अब अयोध्या छोड़-कर अन्यत्र क्यों जायँ? इस प्रकार जिन्होंने भी रहना चाहा, सबको उसकी इच्छा तथा सुविधाके अनुसार आवासकी व्यवस्था शासनने कर दी। उनके निर्वाहकी व्यवस्था भी शासनने कर दी, जिन्होंने इस व्यवस्था-को स्वीकार किया। अयोध्या उसी समय अपने नगर तथा उपनगरों, आश्रमों सहित भूमण्डलका वृहत्तम, सम्पन्नतम, श्रेष्ठतम नगर बन गया।

'तुम मेरे साथ पृथ्वीका पालन करो!' श्रीरामने बहुत आग्रह किया लक्ष्मणसे कि वे युवराज-पद स्वीकार कर लें; किंतु लक्ष्मणने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सविनय निषेध कर दिया—'मैं आपका सेवक हूँ। मेरा कोई अपराध नहीं है कि मैं सेवा-वञ्चित किया जाऊँ। मैं आज्ञा पानेका अधिकारी हूँ। स्वयं निर्णय करना मुझे नहीं आता। हमारे वनमें रहते भाई भरतजीने राज्यका सञ्चालन किया है। ये उत्तम व्यवस्था-सञ्चालक सिद्ध हो चुके हैं। अतः नवीन परीक्षण अनावश्यक है।'

भरतको युवराज पद स्वीकार करना पड़ा। वस्तुतः तो भरत ही राज्यके सञ्चालक बने रहे। श्रीराघवेन्द्र प्रायः यज्ञ-दीक्षामें ही दीक्षित रहे। इसका एक परिणाम हुआ कि राज्याभिषेकके पश्चात् जिन ऋषियों तथा स्वजनोंने विदा ली, उनकी यह विदाई भी औपचारिक ही बन गयी। उन्हें भी सम्राट्के यज्ञोंमें सम्मिलित होना हा था। फलतः उनमें-से भी अधिकांश दूसरे या तीसरे यज्ञमें आकर अयोध्यामें ही बस गये।

स्वजन-सम्बन्धियोंने, सुग्रीवने भा यह व्यवस्था की कि उनको बार-बार आनेका अवसर प्राप्त होता रहे। राज्याभिषेकके अन्तमें वानरों-

की विदाई हुई ; किंतु वह औपचारिक रह गयी। उन्हें तो यज्ञोंमें आना ही था। इतनेपर भी अपने अत्यन्त प्रिय श्रीरामसे भले अल्पकालिक हो, यह विदाई अत्यन्त विषम थी। बहुत व्यथित करनेवाली थी हृदयको। वानर यूथपोंमें कोई अयोध्यासे जाना नहीं चाहता था।

'आप सबने मेरे लिए बहुत सङ्कट सहा है। बहुत दिन हो गये आप सबको स्वजनोंसे वियुक्त हुए।' शील-सिन्धु श्रीरामने सङ्कोचपूर्वक वानरोंको विदा करते समय कहा— 'आपने मेरे लिए अपने जीवन तक-को उत्सर्ग करनेका उत्साह दिखलाया। मैं आपसे कभी उऋण नहीं हो सकता। मैं सदा आपका हूँ। अयोध्या आपकी है। आप अपने यहाँ निर्भय रहें। कोई आपको असुविधा करनेका साहस नहीं करेगा। रामका कोई यज्ञ-महोत्सव आपके आगमनके बिना अपूर्ण रहेगा और आप जब चाहें, यहाँ आ सकते हैं।'

सब भाव विह्वल थे। सुरेन्द्र भी जिनके पादपीठका अपनी किरीट-कोटिसे स्पर्श करके उलटे पदों पीछे हटते थे राजसभामें, वे सर्वेश्वरेश्वर, भुवनैक सम्राट् स्वयं वानरोंको पहुँचाने चले। सभी वानर यूथपोंको अयोध्यासे तो वानरेन्द्र सुग्रीवके साथ किष्किन्धा जाना ही था। अपने स्थानोंको वे वानरेन्द्रका सत्कार स्वीकार करके ही जानेवाले थे। अतः सबको एक साथ विदा होना था।

'मुझे कोई पद, कोई सुख-सुविधा नहीं चाहिये। मेरे पिता मुझे आपके पावन पदोंके प्रश्रयमें छोड़ गये हैं।' अङ्गद अत्यन्त विह्वल हो रहे थे— 'किष्किन्धामें मेरा कोई भी प्रयोजन नहीं है। मुझे अपने श्रीचरणोंमें पड़े रहने दें।'

'वत्स ! तुम वानरेन्द्र बालिके वंशधर हो। तुम्हारी माताने केवल तुम्हारी सुरक्षाको महत्त्व देकर पतिके साथ शरीर त्यागका विचार छोड़ा था। वे पल-पल तुम्हारे प्रत्यावर्तनकी प्रतीक्षा करती होंगी।' श्रीरामने अपने चरणोंमें लिपटे अङ्गदको बलपूर्वक उठाकर हृदयसे लगाया। छोटे बालकके समान उनके मस्तकपर हाथ फेरा। वात्सल्यपूर्ण स्वरमें समझाया— 'महामनस्वी पिताके तुम योग्य पुत्र हो। अपने दायित्वसे तुम्हें भागना नहीं चाहिये। तुम नहीं लौटोगे तो तुम्हारी माता भी उदासीना हो जायेंगी। एकाकी सुग्रीवको वानरोंके शासनमें बहुत कठिनाई होगी। तुमको उन्हें सहयोग देना चाहिये।'

'अयोध्या तुम्हारी अपनी है। तुमको तो यहाँ शीघ्र आना है,' श्रीरामने आश्वासन दिया—'वानरेन्द्र यहाँके किसी यज्ञके समय तुम्हें किष्किन्धामें रोकनेका आग्रह नहीं करेंगे। मैं तुम्हें विशेषरूपसे बुलाता रहूँगा।'

अङ्गदको आज्ञाके कारण विवश होकर जाना पड़ा। वे बार-बार मुड़कर देखते गये श्रीरामकी ओर—'अब भी मुझे रह जानेका आदेश हो जाय।'

नगरके बहिर्द्वार तक श्रीराम सुग्रीवको पहुँचाने गये। अङ्गदको अपने अङ्कमें ही लगाये रहे तबतक। सुग्रीवने कोई वाहन नहीं स्वीकार किया। उन्होंने निवेदन किया—'आपने देखा ही है कि हम लोगोंको वाहनोंकी आवश्यकता नहीं है। जनपदोंसे दूर होते ही हम अपने वानर-वेशमें आ जायँगे। वृक्षोंपर कूदते जाना हमारे लिए अधिक सुखकर होता है। हमारी पत्नियोंको हमारे साथ उसी वेगसे चलनेमें असुबिधा नहीं होती।'

'अब आप हमें अनुमति दें।' नगर द्वारपर पहुँचकर सुग्रीवने चरण-वन्दना करके अनुरोध किया।

भाइयोंके साथ श्रीराम रुक गये—'तुम ठीक कहते हो जिनसे शीघ्र मिलनकी आशा हो, उन स्वजनोंको दूर तक नहीं पहुँचाया जाता।'

सुग्रीवने, जाम्बवन्तादिने पुनः चरण-वन्दना की। रुदन करते अङ्गदको अत्यन्त स्नेह देकर श्रीरामने भेजा। सभीको अङ्कमाल प्राप्त हुई। श्रीरामका शील, सद्गुण, शौर्य, सौजन्य, सौहार्द्र—इन सद्गुणोंने तो हृदयपर अधिकार कर लिया था। इनका स्तवन केवल मार्गमें ही नहीं होना था, इन गुणोंका वर्णन तो जीवनका आनन्ददायक व्यसन बन चुका था सबका।

इस सब आयोजनमें आञ्जनेय तटस्थ बने रहे। किसीने उनसे कुछ नहीं कहा। सुग्रीवको, उनके साथके सभीको तथा अयोध्यामें भी सबको इसमें कोई सन्देह नहीं था कि हनुमान अब अयोध्यामें ही रहेंगे। अतः उनसे किसीने कुछ पूछा या कहा नहीं। श्रीरामके साथ वे नगर द्वार तक आये थे। वानर विदा होकर जाने लगे तो वे सुग्रीवके साथ हो गये। श्रीरामको प्रणाम तो तब करते, जब अयोध्यासे विदा होना होता। स्पष्ट

था कि वे कुछ दूर तक सुग्रीवको पहुँचाने जा रहे हैं।

पवनकुमार सुग्रीवके स्वेच्छा सहायक थे। सुग्रीवने उन्हें अपना मन्त्री बना रखा था ; किंतु वे माताकी आज्ञासे किष्किन्धामें राजनीति तथा शासन-व्यवस्थाका व्यावहारिक प्रशिक्षण लेने आये थे। अब माता-ने श्रीरघुनाथकी सेवाका आदेश दे दिया था। किष्किन्धामें उन्हें क्या बन्धन था। उन्हें कोई रोक भी कैसे सकता था।

'आप मुझे अनुमति दें।' कुछ आगे जाकर हनुमानने वानरेन्द्र सुग्रीवसे विनम्र प्रार्थनाकी—'आवश्यकता होनेपर जब आप स्मरण करेंगे, सेवामें उपस्थित हो जाऊँगा।'

'तुम सौभाग्यशाली हो हनुमान ! अयोध्याके सम्राट्के श्रीचरणोंके सन्निकट रहनेका सुयोग सुरेन्द्रको भी सुलभ नहीं है। सुग्रीवने हृदयसे लगाकर विदा करते भरे कण्ठ कहा--'किष्किन्धा तो तुम्हारी अपनी पुरी है ; किंतु तुम अयोध्या रहोगे तो सम्पूर्ण वानर जाति गौरव प्राप्त कर लेगी कि उनका एक प्रतिनिधि सम्राट्की निजी सेवामें स्वीकृत है। तुम करुणावरुणालय श्रीरामकी सेवा करो। इतना ही तुमसे अनुरोध है कि सेवाका कोई भी सुयोग हो तो हम लोगोंको विस्मृत मत करना !'

'पिताके न रहनेपर आप ही मेरे संरक्षक, सुहृद, शुभ-चिन्तक रहे हैं। लौटते हनुमानसे पीछे आकर अङ्गद लिपटकर रुदन करने लगे—'अपने पालित इस बालकको विस्मृत मत कीजिये। आप शरणागत वत्सल श्रीराघवेन्द्रको परम प्रिय हैं। उनकी सेवामें स्वीकृत हैं। उनके सदा समीप रहनेका सुयोग प्राप्त है। स्वामीको मेरा स्मरण दिलाते रहें। मेरी एक-मात्र कामना है कि मैं उनके श्रीचरणोंके समीप ही रहूँ। अयोध्याके राजसदनकी तुच्छतम सेवा मिल सके तो मैं अपना सौभाग्य मानूंगा।'

आञ्जनेयने अंगदको आश्वासन दिया। स्नेह पूर्वक समझाकर विदा किया। लौटकर रघुनाथसे उन्होंने अंगदके अतिशय आग्रह एवं प्रीतिका वर्णन किया। सुनकर श्रीराम गम्भीर हो गये। अनेक बार कर्त्तव्य बहुत निष्ठुर होनेको बाध्य करता है। ताराको पति-वियुक्त बना दिया था उन्होंने। अब उस मनस्विनीको पुत्र-वञ्चिता किसी प्रकार भी बनाया नहीं जा सकता था।

विभीषणकी विदाई

अत्यन्त कठिन—असम्भव प्राय है अपना आराध्य विग्रह किसीको दे देना। आस्थाहीन अथवा दुर्बल आस्था पुरुष भले यह कर ले, जिसमें दृढ़ आस्था है, वह यह त्याग किसीके निमित्त भी कैसे कर सकता है; किंतु श्रीरामके लिए यह भी अदेय नहीं रहा। अपना ही नहीं, इक्ष्वाकु कुलकी परम्परासे प्राप्त आराध्य मूर्त्ति भी इन उदार शिरोमणिने दे दी। आश्रित-जनको जो स्वयं अपनेको ही दे डालते हैं, उन भक्त-वत्सलके लिए अदेय कुछ भी नहीं है।

सङ्गका रङ्ग कुछ-न-कुछ चढ़ता ही है। लङ्कामें रावणके रहते विभीषणको उस स्वर्णपुरीको पूरा प्रबन्ध सम्हालना पड़ता था। उनका रात-दिन राक्षसोंका सङ्ग था। राक्षस सब इन्द्रिय भोगोंमें लिप्त। अर्थ और कामकी ही अहर्निशि चर्चा। फलतः अनजाने ही विभीषणके अन्तः-करणमें दशग्रीवसे अपमानित होनेपर लङ्काका राज्य-प्रभुत्व पानेकी कामना एक बार जाग उठी थीं। श्रीरामके समीप पहुँचते ही वह कामना समाप्त हो गयी; किंतु श्रीरघुनाथने उसके उदयको ही पूरणीय मानकर संतृप्त कर दिया।

लङ्कामें मन्दिर थे—भैरवके, भवानीके, भूतनाथके। परमभक्त विभीषणकी आन्तरिक इच्छा थी कि एक भगवान् नारायणका भी भव्य मन्दिर वहाँ होता। रावणके रहते यह असम्भव था। वह तो हरिका शत्रु ही था; किंतु अब तो वे दुर्दिन समाप्त हो गये। विभीषण ही लङ्काके अधिपति हो गये। अब वह आकांक्षा पूर्ण करनेमें कोई बाधा नहीं रही। अब आवश्यक है उपयुक्त भव्य मूर्ति।

अयोध्या आकर श्रीराम-राज्याभिषेकके अवसरपर विभीषणने भी अयोध्याके मन्दिरके दर्शन किये दूसरोंके साथ। राजसदनके मन्दिरमें दर्शन करने गये। इक्ष्वाकु कुलके आराध्य भगवान श्रीरङ्गकी शेषशायी भव्य श्रीमूर्तिके दर्शन करके हृदय पुकार उठा—'यही! यही! यही।' जसे जन्म-जन्मसे इसी आराध्य श्रीविग्रहकी शोधमें वे रहे हों।

कसे माँगा जाय श्रीराघवेन्द्रसे कि वे अपने कुलाराध्यका ही श्रीविग्रह प्रदान कर दें ; किंतु हृदय मानता नहीं। बुद्धि बहाने बनाती है— 'जहाँ स्वयं श्रीरघुनाथ उपस्थित हैं, वहाँ किसी मूर्तिके रहने, न रहनेका क्या प्रभाव पड़ता है। वे सर्वसमर्थ हैं। वैसा दूसरा श्रीविग्रह वैकुण्ठसे भी उनकी इच्छा करनेपर आ सकता है। उन दानि-शिरोमणिके लिए कुछ अदेय नहीं है। लङ्काके राजस-तामस स्वभाव राक्षसोंके मनको प्रभावित करने—शुद्ध करनेकी सामर्थ्य इसी श्रीविग्रहमें है।'

विभीषणने अनेक बार प्रयत्न किया ; किंतु कहनेका साहस नहीं हुआ। जब आगत विदा होने लगे, वे श्रीरामके सम्मुख पड़नेसे बचते रहे। सुग्रीवादिको विदा करके श्रीरामने उन्हें समीप बुलाया। स्नेहपूर्वक बोले— 'सखे ! मुझे लगता है कि तुम कई दिनोंसे कुछ कहना चाहते हो। मुझसे भी कुछ कहनेमें सङ्कोच ? बिना हिचक बतलाओ, तुम्हें क्या चाहिये ?'

'मैं अधम राक्षस हूँ। आपने मुझे अपनाकर धन्य-धन्य कर दिया है।' विभीषण श्रीरघुनाथके दोनों चरण पकड़कर फूट पड़े— 'लेकिन राक्षसका लोभी स्वभाव गया नहीं। यहाँ इस दिव्यपुरीमें आकर इसका लोभ अधिक उद्दीप्त हो गया है।'

'अयोध्यामें ऐसा क्या है जो आप चाहते हैं और उसे सूचित करनेमें इतना सङ्कोच करते हैं ?' श्रीरामके मुखपर सहज स्मित आया— 'सुनूं भी तो मैं अपने परम सहायक मित्रको क्या अर्पित करके सन्तुष्ट कर सकता हूँ।'

'लङ्कामें श्रीहरिका कोई मन्दिर नहीं है !' विभीषणने बहुत सङ्कोचपूर्वक प्रार्थना की— 'वहाँके राजस-तामस लोगोंको सात्विक, शुद्ध भक्तिकी प्रेरणा मिलती यदि श्रीरङ्गका श्रीविग्रह वहाँ विराजमान होता।'

'तुम यही कहनेमें इतना संकोचकर रहे थे ?' श्रीरामने हँसकर कहा। तत्काल गम्भीर हो गये— 'विभीषण ! श्रद्धा सेवित श्रीविग्रह धातु-पाषाणकी मूर्ति नहीं होता। वह साक्षात् सच्चिदानन्द-घन हो जाता है। अर्चा विग्रह ईश्वरका प्रत्यक्ष अवतार है। इक्ष्वाकु-कुलको यह श्रीविग्रह स्वयं नारायणके अनुग्रहसे प्राप्त हुआ। उनको देने या लेनेका प्रश्न नहीं

उठता। वे चिद्घन स्वयं अयोध्यासे अन्यत्र पधारना चाहते हैं, तभी उन अन्तर्यामीने तुम्हारे हृदयमें ऐसी आकांक्षा जागृतकी है। उनकी इच्छामें व्यवधान बननेका दुराग्रह यहाँ कोई भी कैसे करेगा। वे आराध्य जाना चाहते हैं तो तुम उन्हें स्वेच्छापूर्वक सादर ले जाओ।'

विभीषणको तो वह अलभ्य लाभ हुआ, जिसकी उन्हें किसी प्रकार आश नहीं थी। महर्षि वसिष्ठको बुलाया गया। विप्रवृन्दके साथ वे आये। सविधि महाराजोपचारसे श्रीरङ्गकी अर्चा हुई। राजकुलके सभी सदस्योंने, अयोध्याके प्रमुखोंने उनका पूजन किया। यह आराध्यको विदा देनेका पूजन—सबके हृदय भाव-विह्वल हो रहे थे।

'हम राक्षस आकाशचारी तो हैं ही। विभीषणने कोई वाहन स्वीकार नहीं किया— 'इस अधम असुरको एक बार तो श्रीनारायणका वाहन बननेका सौभाग्य प्राप्त हो।'

श्रीरामने रथपर ले जानेका आग्रह नहीं किया। ऋषि-मुनियोंके सस्वर वेद-मन्त्रोंके स्तवनके मध्य विभीषणने वह श्रीविग्रह सादर अपने दक्षिण स्कन्धपर उठाया और वहीं आकाशमें उठ गये।

श्रीरङ्गके अयोध्यासे प्रस्थान करनेके कारण। वहाँ सबको खेद हुआ; किंतु दूसरा लगभग वैसा ही श्रीविग्रह उसी समय गरुड़ ले आये। उन्होंने बतलाया— 'स्वयं भगवान नारायन उसे भेजा है। अत्यन्त आर्त पुकार तथा दीर्घकालीन तपोनुरोधके कारण ही अयोध्यामें स्थित अर्चा-विग्रहको अन्यत्र जाना पड़ा।'

अयोध्यामें इस आगत श्रीमूर्तिकी स्थापना हो गयी। यहाँसे श्रीरङ्गका अर्चा विग्रह लेकर विभीषण दिनके तृतीय प्रहरमें चले थे। मध्याह्नमें राजभोग अर्पित करके, विश्राम करानेके अनन्तर मध्याह्नोत्तर उत्थापन, पूजनादिके पश्चात् ही आराध्य-विग्रहको अयोध्यासे विदा प्राप्त हुई थी। विभीषणको सूर्यास्त होता दीखा जब वे दक्षिण भारतमें काबेरीके अन्त्यद्वीपके ऊपर पहुँचे।*

---

*काबेरीमें तीन द्वीप हैं। तीनोंमें शेषशायी श्रीरङ्ग विग्रह स्थापित है। काबेरी उद्गमके थोड़ी ही दूरपर शिव समुद्रम्—आदि-रङ्गम। मध्यमें मैंसूरसे लगभग ६ मील दूर श्रीरङ्ग-पट्टन—मध्य रङ्गम् और काबेरी—सागर सङ्गमके समीपश्री रङ्गम्-अन्त्यरङ्गम्।

सूर्यास्त हो रहा था। विभीषण नियम निष्ठ थे। सायं स्नान-
सन्ध्याका समय हो गया था और सायङ्कालीन अर्चन भी श्रीरङ्ग विग्रहका
आवश्यक था। अतः वे उस द्वीपमें उतर गये। अपोलिङ्गम् श्रीजम्बुकेश्वरसे
कुछ दूरीपर उन्होंने श्रीरङ्ग-विग्रहको सादर रखा और स्वयं काबेरीमें
स्नान करके सन्ध्यादिमें लग गये।

अपना आह्निक सम्पन्न करके विभीषणने यथालब्धोपचारसे भगवान
श्रीरङ्गकी सायङ्कालीन अर्चाकी। अर्चाके अनन्तर जब वे उस दिव्यविग्रहको
उठाने लगे, सम्पूर्ण शक्ति लगा देनेपर भी उसे हिलानेमें भी असमर्थ हो गये।

हृदयकी गति मानो अवरुद्ध हो जायगी। जैसे हृदय फट जायगा।
विभीषणकी व्याकुलताका वर्णन शब्दोंमें सम्भव नहीं है। उन्होंने वहीं
श्रीरङ्ग विग्रहके समीप निर्जल, निराहार पड़े रहनेका निश्चय किया,
जब तक अनुग्रह करके श्रीरङ्ग स्वयं चलना स्वीकार न कर लें।

'वत्स विभीषण ! आग्रह मत करो।' विभीषण स्वयं नहीं समझ
सके कि वे उस समय स्वप्न देख रहे थे या जागृत थे, अथवा तन्द्रामें थे।
रात्रिमें तनिक पलकें झपकीं और जैसे गगन शत सहस्र पूर्ण चन्द्रोंकी
ज्योत्स्नासे धवल हो उठा। साक्षात् पीताम्बर परिधान, इन्दीवर सुन्दर,
रत्नाभरण भूषित, चतुर्भुज सायुध श्रीरङ्ग गगनमें सम्मुख सुप्रसन्न मेघ
गम्भीर स्वरमें कह रहे थे— 'वहाँका नरेश महाराज दशरथके राजसूय-
यज्ञमें अयोध्या गया था। वहाँ मेरे इस श्रीविग्रहका दर्शन करके मुग्ध हो
गया। अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राटसे उनका आराध्य विग्रह माँगनेका साहस
उसे नहीं हुआ। यहाँ लौटकर तभीसे केवल जल पीकर मेरे इस अर्चा-
विग्रहको पानेके लिए तप कर रहा है।'

'विभीषण ! तुम भक्त हो। जानते हो कि मैं भक्तोंकी भावनाके
वशमें हूँ। इसीसे अयोध्या त्यागकर मुझे यहाँ आना पड़ा है।' वह अमृत-
को भी उज्जीवित करनेवाला स्वर अत्यन्त वात्सल्य मधुर हो गया— 'मैं
तुम्हारी लङ्काकी ओर चरण करके, उधर ही देखता यहाँ शयन करूँगा।
तुम यहाँ आकर मेरी अर्चा कर लिया करो। एक अत्यन्त आतुर, तपो-
निरत, भक्तिपूत हृदयकी अभीप्सा पूर्ण हो जाने दो !'

वह मूर्ति अदृश्य हो गयी। विभीषणने नेत्र खोले तो गगन अरुणोदयके
कारण लाल हो रहा था। उन्होंने भूमिपर मस्तक रखकर वह आदेश
स्वीकार किया। उठकर काबेरी स्नान करके सन्ध्याकी और प्रातःपूजन
करके लङ्का चले गये। तपोनिरत राजाको भी स्वप्नादेश हो गया था।
विभीषणके जाते ही वहाँ आ गया। मन्दिर निर्माण उसने करवाया।

विभीषण - विमोचन

अचानक अयोध्यामें लङ्कासे यह समाचार आया—'राक्षसेश्वर विभीषण लङ्कासे श्रीरङ्गका दर्शन करने गये थे। अनेक दिन गये, वे लौटे नहीं हैं। हम तो अपने सर्व-समर्थ सम्राट्के आश्रित हैं। अतः आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सन्देश मन्दोदरीने भेजा था। उस राक्षसेश्वरीने बुद्धिमत्ताकी थी। विभीषणका पता लगानेको राक्षस नियुक्त किये जा सकते थे; किंतु भय था कि वे अपने उग्र स्वभावके कारण भारत भूमिमें किसीको भी उत्पीडित करेंगे। सम्राट्की प्रजाको उत्पीडित करना अपराध होगा। अतः अपने आश्रित जनका पता सम्राट्को ही लगाना चाहिये।

विभीषण श्रीरङ्गका दर्शन करने गये थे, अतः उनका पता वहींसे लगाया जाना उचित था। श्रीराघवेन्द्रके स्मरण करते ही पुष्पक विमान उपस्थित हुआ। किसीको भी साथ लेनेका स्मरण नहीं आया। यह सदाका स्वभाव है इन भक्तवत्सलका। किसी आर्तकी पुकार सुनकर, किसी आश्रितपर सङ्कटकी आशंका होनेपर जैसे हैं, वैसे ही दौड़ पड़ेंगे। तब रथ, सहायकादि तो दूर, चरणोंमें पादत्राण डालना भी स्मरण नहीं रहेगा। पवनकुमार सदा साथ न रहते होते तो वे भी साथ नहीं हो पाते। पुष्पक आया और श्रीराम उसमें जैसे थे, वैसे ही आरूढ़ हो गये।

पुष्पक तो मनोगामी विमान था। अपने आरोहीकी इच्छाके अनुरूप उसकी गति तीव्र या मन्द रहती थी। श्रीरामको त्वरा थी, अतः पुष्पकका वेग तीव्रतम था। वह दो घटीसे भी पूर्व श्रीरङ्ग द्वीपमें जा उतरा।

'पुष्पक विमान आया। सम्राट् श्रीराघवेन्द्र पधारे!' पूरे श्रीरङ्ग-द्वीपमें कोलाहल होने लगा। वहाँके निवासीजनोंने शीघ्रतापूर्वक अर्चन

सामग्री उठायी। जयघोष गूँजने लगा—

'मर्यादा पुरुषोत्तम ब्रह्मण्यदेव श्रीरामकी जय !'
'दशग्रीव दर्पदलनकारी पुरुषोत्तम श्रीरामकी जय !'
'श्रुति सेतु पालक परम पुरुष श्रीरामकी जय !'

श्रीरङ्ग-द्वीप सम्पूर्ण ही आराधक ब्राह्मणोंका निवास था। राजा तथा उसके प्रजाजन तो कावेरीके पार तिरुचिनापल्लीमें निवास करते थे। उनको पहुँचनेमें बिलम्ब स्वाभाविक था। श्रीरङ्ग-द्वीपके ब्राह्मणोंने ही श्रीरामका प्रथम सत्कार किया। उन्होंने कलश, पुष्प, नारिकेल पाणि पहुँचकर श्रुति-मन्त्रोंके साथ सबिधि स्वागत किया। आसन देकर अर्घ्य, विमानके समीप पाद्यादि उपचारोंसे पूजन किया। स्तवन किया।

श्रीरामने ब्राह्मणोंका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। स्तवनके पश्चात् ब्राह्मणोंने ही प्रार्थना की— 'आप सर्वज्ञ हैं, सर्व-समर्थ हैं, अतः यहाँ इस अवसरपर आपका उपस्थित होना आश्चर्यकी बात नहीं है। जहाँ प्रजा असमर्थ हो जाती है, समर्थ सम्राट् स्वयं सहायतार्थ पहुँच ही जाते हैं।'

'मैं आप सबकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?' श्रीरामने नम्रतापूर्वक पूछा।

'हमने एक राक्षस पकड़ा है। उसने एक वृद्ध ब्राह्मणको अपने रथ-चक्रसे कुचलकर मार दिया।' ब्राह्मणोंने कहा— 'यहाँका राजा कहता है कि श्रीरङ्ग-द्वीप श्रीरङ्गजीका है। इसपर उसका शासन नहीं है। अतः यहाँके अपराधका विचार श्रीरङ्गके सेवक करके दण्ड दें या सम्राट् दें। वह यहाँ हुए अपराधके विचारका अधिकारी नहीं है।'

'वह राक्षस बनता तो बहुत विनम्र है ; किंतु बड़ा मायवी है।' ब्राह्मणोंने बतलाया—'उसके अपराधका विचार करके हमने उसे प्राण दंड देनेका निर्णय किया।'

'आप लोगोंने मार दिया उसे ?' श्रीरामने आतुर होकर पूछा।

'यही तो हम नहीं कर पाते हैं। हमारे द्वारा वह किसी प्रकार मरता नही। हमने उचित उपाय कर देखे। अतः उसे एक गुहामें निराहार, निर्जल बन्दी बना दिया है।' ब्राह्मणोंने कहा— 'अब आप अपने हाथों उसका वध करके हमारे दण्ड-निर्णयको सार्थक करें।

'उसका अपराध क्या है?' श्रीरामने पवनकुमारकी ओर देखा—'तुम उससे भी पूछ आओ।'

न ब्राह्मणोंको उस बन्दीसे द्वेष था और न विभीषणको ही झूठ बोलना था। ब्राह्मणोंका कहना था, वह बल एवं पदके मदमें प्रमत्त हो गया है। उसे तीर्थ क्षेत्रमें इतने वेगसे रथ क्यो दौड़ाना चाहिये कि कोई असमर्थ वृद्ध रथ-चक्रके नीचे कुचलकर प्राण त्याग करे?'

विभीषण स्वयं अत्यन्त दुःखी थे इस असावधानीके कारण। उनका कहना था—'श्रीरङ्गजीके दर्शनोंकी उत्कण्ठाके कारण उनसे प्रमाद हुआ। रथ तीव्र वेगसे आ रहा था इसी आतुरताके कारण पथ मुड़ता था। रथ मुड़ा तो अचानक एक अत्यन्त वृद्ध मध्य पथपर मिले। बहुत प्रयत्न करनेपर भी रथ रोका नहीं जा सका। वे रथके चक्रके नीचे आ गये। यह अपराध है। प्रमाद हुआ है उनसे। अतः उसका जो भी दण्ड निश्चित किया जाय, उसे वे स्वीकार करेंगे।'

विभीषणका यह अपराध तो नहीं था कि श्रीरामने उन्हें कल्पान्त तकके लिए अमर रहनेका वरदान दिया था। अतः किसीके किसी प्रयत्नसे वे मारे नहीं जा सकते थे। ब्राह्मण स्वयं स्वीकार करते थे कि 'उस राक्षसने जानबूझकर उस वृद्धको मारा नहीं है। उसने हम सबके किसी दण्डका प्रतिकार करनेका कोई प्रयत्न नहीं किया है। उसकी यह शालीनता तथा दण्डके द्वारा शुद्ध होनेकी तत्परता स्वीकारकी जानी चाहिये। अन्यथा वह सबल है। उसका रथ आकाशगामी भी है। वह स्वयं प्रतिकार कर सकता है, अथवा आकाशमें उड़कर भाग जा सकता है।'

ब्राह्मणोंके आक्रोशका मुख्य आधार था—'वह मायावी है। मारनेके पश्चात् भी मरता नहीं है। सम्भवतः वह अपनी इस शक्तिके बलपर विनीत बननेका दम्भ करके ब्राह्मणोंकी शक्तिका उपहास कर रहा है।'

'आप सब मेरे शासन-विधानके नियमोंसे तो परिचित हैं?' श्रीरामने हनुमानके द्वारा बन्दीका परिचय प्राप्त हो जानेपर बहुत गम्भीर होकर पूछा।

'हम तो केवल स्मृतियोंमें निर्दिष्ट विधान जानते हैं। ब्राह्मणोंने सरल भावसे कहा—'सम्राट् मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। श्रुति-स्मृतिकी मर्यादाके रक्षक हैं। शासकको देश-कालके अनुसार स्मृतिके आदेशोंके अनुकूल

विशेष नियम बनानेका सदा स्वत्व है। अतः सम्राट्के यदि इस अपराधसे सम्बन्धित कोई विशेष नियम हों तो हम श्रीमुखसे ही उनको सुनना चाहते हैं।'

'मैंने एक नियम निर्धारित किया है।' श्रीरामने शासकके सुदृढ़ स्वरमें सुनाया— 'किसीके भी सेवकसे अपराध होनेपर उस अपराधका दण्ड उसके स्वामीको प्राप्त होना चाहिये।'

'न्याय है। धर्म सङ्गत है। शास्त्रानुमोदित है।' ब्राह्मणोंने एक स्वरसे स्वीकार किया— 'सेवकको सुशिक्षित करनेका, संयत एवं अप्रमत्त रखनेका दायित्व स्वामीका है। अतः सेवकसे यदि अपराध होता है तो उसका दण्ड भागी स्वामीको होना चाहिये।'

'यह अपराधी राक्षस किसीका सेवक है?' दो क्षण रुककर ब्राह्मणोंने चौंककर पूछा। 'हमने सुना है कि वह लङ्काका स्वामी है।'

'लेकिन रामने जब दशग्रीवको मार दिया, जिसे लंकाका शासन दायित्व दिया, वह रामका सेवक ही तो हुआ?' श्रीरामका स्वर और अधिक गम्भीर हो गया — 'उसे मैंने कल्पान्त, अमर बनाया है अतः आपके प्रयत्नोंसे वह मारा नहीं जा सका। मेरे सेवकसे अपराध हुआ, प्रमाद हुआ तो वह मेरा अपराध है। ब्राह्मणोंका दण्ड विधान मैं स्वीकार करता हूँ। मेरी मृत्यु उचित है; किंतु मेरे सेवकको क्यों मारा जाना चाहिये। आप मुझे प्राण दण्ड दें। मैं स्वीकार करूँगा उसे।'

'सम्राट् क्षमा करें! हम सबसे प्रमाद हुआ है।' श्रीरामने दोनों हाथ ऊपर उठाये मुकुट उतार देनेके लिए। यह देखकर सबके सब ब्राह्मण एक साथ पुकार उठे। उनका स्वर सर्वथा परिवर्तित हो गया था— 'वे महानुभाव निर्दोष हैं। उनसे अनजानेमें जो अपराध हुआ था, उसका बहुत अधिक दण्ड वे भोग चुके हैं। उन्हें आपने जो अमरत्व प्रदान किया है, अज्ञानवश हमने उसे उनका दर्प मान लिया। अपराध हम लोगोंसे हुआ है। हमने भक्तापराध किया है; किंतु वे अवश्य हमें क्षमा कर देंगे।

ब्राह्मण एक साथ वहाँसे दौड़े गये। उन्होंने बिभीषणको उस गुहासे निकाला और उनसे हाथ जोड़कर बाले— 'आप भगवद्भक्त हैं। हम सबने अज्ञानके कारण आपको बहुत कष्ट दिया है। आप अपने सहज

औदार्यसे हमें क्षमा कर दें। यदि आपका हम सबपर अनुग्रह है तो हमारी अर्चा स्वीकार करें। आपको इसी अप्रीति कर वेशमें हम सम्राट्के सम्मुख उपस्थित करनेका साहस नहीं कर सकते।'

'प्रभुने आदेश किया है' इसी समय पवनपुत्रने आकर विभीषणको सुनाया—'आपको विनम्र होकर ब्राह्मणोंसे प्रायश्चित पूछना चाहिये और उसे सम्पन्न करके ही उनके सम्मुख जाना चाहिये।'

भक्त-रक्षणका कार्य पूर्ण हो चुका था। अब उसके द्वारा अनजानमें हुए अपराधका परिमार्जन आवश्यक था। जिनका नाम-स्मरण निखिल पाप राशिको तत्काल भस्म कर देता है, वे परम पावन प्रभु चाहते थे कि उनके अपने जनसे जिनको असन्तोष हुआ हैं, वे सर्वथा सन्तुष्ट हो जायँ। श्रुति-शास्त्रकी मर्यादा अक्षुण्ण रहे। क्योंकि स्मृति कहती है—'ब्रह्मघ्न-का मुख देखना भी पाप है।' मर्यादा पुरुषोत्तमने प्रायश्चित करके विभीषणको अपने समीप आनेका आदेश दिया। प्रायश्चित तो वह जो शास्त्रज्ञ विद्वानोंकी समिति निर्णय करे।

'मैं आप सबके चरणोंमें विनम्र प्रणिपात करता हूँ।' विभीषण हाथ जोड़कर बोले—'श्रीरङ्ग-दर्शनकी आतुर उत्कण्ठाके कारण ही मेरे रथका वेग तीव्र था। प्रयत्न करके भी मैं रथको इतनी शीघ्र नहीं रोक सका, जिससे उन वृद्ध विप्रको बचा सकता। आप सबने मेरे स्वामीका सन्देश सुन लिया है। कृपा करके मुझे प्रायश्चित निर्देश करें, जिसके द्वारा परिपूत होकर मैं उन अपने सर्वस्वके श्रीचरणोंका दर्शन कर सकूँ।'

'आप वैसे तो परिपूत ही हैं। श्रीरामका स्मरण ही समस्त पापोंको नष्ट करने वाला है; किंतु वे मर्यादा पुरुषोत्तम मर्यादा-रक्षण चाहते हैं।' ब्राह्मणने वहीं बैठकर बिचार करके निर्णय दिया—'सब शास्त्र भगत्प्राप्तिकी, भगवद्दर्शनकी अत्यन्त उत्कण्ठाको आवश्यक मानते हैं, आपकी श्रीरङ्ग-दर्शनकी आतुरताको किसी प्रकार अपराध या प्रमाद नहीं कहा जा सकता। आप स्वयं ब्राह्मण हैं, भगवद्भक्त हैं। आपसे अन-जानमें, अनिच्छापूर्वक जो अपराध बना है, उसका प्रायश्चित केवल कावेरीके पुण्यतीर्थमें स्नान मात्र है। आपको हम सबने जो विविध यातनाएँ दी हैं, वह प्रायश्चितसे बहुत अधिक हैं, वह प्रायश्चित मानकर ही आपने

सहनकी हैं। उन्हें आपको देकर अपराध हमने किया है, उसका प्रायश्चित हम करेंगे। आप स्नान करके शुद्ध हों।'

ब्राह्मणोंने विभीषणको ले जाकर क्षौर कराया, सविधि मृत्तिका, गोमय आदि उपलेपनपूर्वक प्रायश्चित स्नान कराया। सम्पूर्ण विधिसे अघमर्षण सम्पन्न हो जानेपर उन्हें दिव्य वस्त्र दिये। उनके आभरण लौटाये उन्हें। प्रायश्चित-पूजनमें उनको तिलक किया, माल्य धारण कराया। स्वास्ति पाठ किया। यह सब करके सादर श्रीरामके समीप ले गये।

'पाहिमाम् ! पाहिमाम्।' पुकारते विभीषण दौड़कर पाद-पद्मोंमें गिरे तो श्रीरघुनाथनें उन्हें विशाल भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया। इन भक्तवत्सलका स्वभाव तो आश्रितका दोष देखना नहीं है। कोई उपालम्भ नहीं। पूछा तक नहीं कि विभीषण क्यों आये यहाँ। अपने यहाँ आनेकी भी चर्चा नहीं।

ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा प्राप्त हुई। श्रीरामने भी श्रीरङ्गका दर्शन-अर्चन किया। गायें, भूमि, स्वर्ण अन्नादि देकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया ब्राह्मणोंने सविधि अर्चन कराया।

'मित्र तुम तो मानव दृष्टिसे अदृश्य रहनेमें सक्षम हो विभीषणकी ओर श्रीरामने देखा 'अतः अबसे यहाँ अर्चाके लिए प्रत्यक्ष आनेका परित्याग कर दो। अलक्ष्य रहकर ही श्रीरंगकी अर्चा सम्पन्न कर लिया करो। इससे पुनः तुम्हें कोई व्याघात प्राप्त नहीं होगा।'

विभीषणने यह आदेश स्वीकार कर लिया। इसके कारण उनकी अर्चा निर्वाध हो गयी। हानि ब्राह्मणोंकी ही हुई। राक्षसाधिपसे प्राप्त होने वाली उनकी दैनिक दक्षिणा बन्द हो गयी। श्रीरामके अपने जनोंसे असन्तुष्ट होने वाला सदा अपनी ही हानि करता है। विप्रोंको भक्तापराध-के प्रतिकारमें यह अत्यल्प दण्ड प्राप्त हुआ।

विभीषणको साथ लेकर, ब्राह्मणों द्वारा पुनः स्वस्ति पाठसे सत्कृत होकर, श्रीरंगनाथकी पुष्प माला, प्रसादादि स्वीकृत करके श्रीराम पवनकुमारके साथ पुष्पकपर पधारे।

पुनः पदार्पण

'आपके चरणार्चनसे यह किंकर वञ्चित ही रह गया।' विभीषण-ने विमानमें बैठते ही बद्धाञ्जलि प्रार्थनाकी— 'राक्षसोंकी अपावन पुरी और उसका अपवित्र राजसदन पवित्र हो जाता यदि ये भुवन पावन पाद-पद्म वहाँ कुछ पलको भी पड़ जाते।'

'विमान तुम्हारी इच्छाका अनुगमन करे।' श्रीरघुनाथने स्वीकृति दे दी। युद्ध विजयके उपरान्त अयोध्या जानेकी त्वरा थी। उस समय विलम्ब होनेसे अनर्थ अवश्यम्भावी था। अतः उस समय विभीषणके अनुरोधको अस्वीकृत करना पड़ा था; किन्तु इस समय ऐसी कोई विवशता नहीं थी।

विमान लङ्काके आकाशपर पहुँचा तो वहाँ कुतूहल, आनन्द, उत्सुकताके कारण लोग दौड़ने लगे। पुष्पक लङ्काके लोगोंके लिए पूर्व परिचित था। अब यह विमान आया है तो अवश्य सम्राट पधारे हैं अयोध्यासे। अल्पकालमें स्वागतकी जो सज्जा सम्भव थी उसे प्रस्तुत करके मन्त्रियोंके साथ महाराज्ञी मन्दोदरी विमानके उतरते ही उसके समीप स्वयं पहुँची।

'राक्षसेश्वरीका सन्देश प्राप्त होते ही मैं अयोध्यासे चल पड़ा था।' श्रीरामने स्वागत स्वीकार करके सस्मित कहा— 'लङ्काको उसका अधि-पति लौटाने आ गया हूँ।'

'अपने चरणाश्रितोंकी चिन्ता आप भक्तवत्सलको रहती ही है।' मन्दोदरीने हाथ जोड़कर कहा— 'मैंने तो अपने अधैर्यके कारण सूचना देनेकी धृष्टताकी। अन्यथा जानती थी कि आप स्वयं अपने दासोंकी सुरक्षाके प्रति सचिन्त रहते हैं। प्राणी आपके पादपल्लवोंकी शरण लेकर अकुतोभय हो जाता है। उसे कहीं भी, किसीसे भी कोई भय नहीं रहता। भय तो मुझे था कि राक्षसाधिप अयोध्या चले गये होंगे और आपके चारु-चरणोंका सान्निध्य प्राप्त हो तो किसे संसारका स्मरण आ सकता है।'

'ऐसा सौभाग्यशाली यह जन नहीं है देवि।' विभीषणने मन्दोदरी-की ओर देखा। उनका हृदय रो उठा— 'कदाचित् ऐसा हो पाता…।'

श्रीरघुनाथको दिव्यरथमें बैठाकर राजसदन ले जाया गया। राज-माता कैकसी (केशिनी, निकषा)ने राजभवनमें प्रणाम किया— 'मेरे लोक विश्रुत तीन पुत्र हुए और तीनोंपर ही मुझे गर्व है। दशग्रीव और कुम्भकर्णने समरमें अपने पौरुषसे आप परमपुरुषको सन्तुष्ट किया। आपके शरोंसे वे शुद्ध होकर आपके धाम पहुँचे। विभीषणको आपने अपने श्री-चरणोंमें स्वीकार कर लिया। मेरे पितृकुलमें प्रह्लाद तथा बलिको अपनाकर आपने उस कुलको पावन किया था। अब यह मेरा अपना कुल कृतार्थ हो गया। विभीषणके कारण राक्षस वंश पुनीत हुआ।'

'प्रह्लादके समान ही विभषिण मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।' श्रीरामने सहज स्वरमें कहा— 'ऐसे सत्पुत्रकी जननी होनेके कारण आप त्रिभुवन बन्दनीय हैं।'

'भुवन बन्दनीय वह है जिसे आप बनादें।' माता निकषाने कहा— 'अन्यथा एक दैत्यकन्या, राक्षस जननीको कौन पूछने लगा है। नैकषयों-की माताका स्मरण भी अशुभ है; किन्तु आप परमोदारने इसके पुत्रको अपनाकर इसे भी पवित्रकर दिया।'

'आज हम सबका सौभाग्य है कि त्रिभुवन सम्राट अपने शासित प्रदेशकी इस पुरीमें पधारे हैं।' राजभवनमें सत्कार हो चुका तब मन्दोदरी-ने श्रीरामसे प्रार्थनाकी— 'हम राक्षसोंकी राजसभामें पधारकर यहाँके जनोंको पादाभिवन्दनका सौभाग्य प्रदान करें और एक बार इस अपनी पुरीकी व्यवस्था भी देखलें।'

'देवि त्रिजटाके भी दर्शन करने हैं मुझे।' श्रीरामने स्वयं कहा। श्रीजनक-नन्दिनीने बार-बार त्रिजटाके स्नेह सहानुभूतिकी प्रशंसाकी थी। इसी क्रममें स्मरण किया— 'विभीषण! तुम्हारी कन्या भी तो है।'

'इसी भयङ्करी राक्षसीका नाम त्रिजटा है।' समीप ही उपस्थित एक वृद्धाने पदोंमें मस्तक रखा— 'उन महासती सीताका अनुग्रह। वर्तमान लङ्काधिपने तो मुझ दासीको पूजाकी प्रतिमा मान लिया है। ये महाराज्ञी और वधू सरमा राजमाता निकषाकी अपेक्षा भी अधिक आदर करती हैं इसका।'

'आपके असीम उपकार हैं मुझपर।' श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया— 'आपके उपकारोंसे मैथली उऋण नहीं हो सकती। उन्होंने आपको बार-बार स्मरण किया है। उन्होंने बहुत स्मरण किया है विभीषणकी पत्नी तथा पुत्री का।'

विभीषणकी पत्नी सरमाने संकोच पूर्वक भूमिमें मस्तक रखा तो श्रीरामने अपने कण्ठकी मणिमाला उसे प्रदान की। विभीषणकी पुत्रीको समीप बुलाकर अपने करोंके कङ्कण उसे दिये। सम्राट्का यह प्रसाद दोनों ने मस्तकसे लगाकर आदर पूर्वक स्वीकार किया।

श्रीरघुनाथ राजसदनके अन्तःपुरसे राजसभामें पधारे। वहाँ सभी मंत्रियोंने तथा पुरीके प्रधान लोगोंने प्रणाम किया। अपने उपहार अर्पित किये। लङ्कामें अब केवल वृद्ध ही नहीं रहे थे। राक्षसियाँ गर्भ धारण करते ही संतानको जन्म देनेमें समर्थ होती हैं। उनके शिशु तत्काल युवावस्थाके समान आकर एवं बलवाले हो जाते हैं। इस प्रकारके स्वस्थ, सबल बालक बहुत हो गये थे लङ्कामें। अब उनका अध्ययन चल रहा था। विभीषणके संग एवं प्रभावके कारण उनके स्वभावमें उग्रता तथा तामसिकता नहीं आयी थी। वे सब विनयी थे, बुद्धिमान थे, संयमी थे और सात्त्विक वृत्ति वाले थे। वृद्धोंके भी रहन-सहन तथा स्वभावमें बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका था।

श्रीराघवेन्द्रने सभीको पुरस्कृत किया। मन्दोदरीने यह व्यवस्था पहिले ही कर दी थी। सम्राट्ने मंत्रियोंसे लेकर सेवकों तक सबको पुरस्कृत किया। सम्राट् द्वारा घोषित पुरस्कार राजकोषसे तत्काल दे दिया गया।

विभीषण तथा मन्दोदरीके आग्रहके कारण रथमें बैठकर श्रीराघवेन्द्रने सम्पूर्ण लङ्का पुरी देखी। अन्तःपुरसे राजसभामें आनेसे पूर्व वे अशोकोपवन देख आये थे। जिस शिशुपामूलमें श्रीजनक नन्दनी रही थीं, वह स्थान तो अब मन्दोदरी, सरमा, विभीषणकी पुत्रीका ही नहीं, विभीषणकी भी आराध्य स्थली बन गयी थी। श्रीजनक-नन्दिनी जहाँ बैठी रहती थीं, वह स्थली सुरक्षित कर दी गयी थी। वहाँ विधिवत अर्चा होती है, उसे देखकर स्पष्ट हो जाता था। अशोकोद्यान पुनः वृक्ष लताओंसे सुन्दर हो गया था। उसके मध्यका देवी-मन्दिर पुनरोद्धार

प्राप्त कर चुका था। केवल उसमें प्रतिमा-परिवर्तन हो गया था। उसमें अब श्रीसीताकी वही तपस्विनी वेशकी स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित थी।

'पवनपुत्र! आज तुम्हें इस वाटिकाके फलित वृक्षोंको देखकर क्षुधा नहीं सताती ?' मन्दोदरीने तनिक हँसकर पूछा।

'देवि! अब तो यह मेरी अम्बाका उपवन है।' हनुमानने हाथ जोड़ा — 'वे स्नेहमयी अपने इस वानर पुत्रको अयोध्यामें एक दिन भी भूखा नहीं देख पातीं। उस समय तो मैं उनके अन्वेषणमें कई दिनोंका उपोषित था।'

लङ्का पुन: वैभव-शालिनी पुरी बन गयी थी। उसमें युद्धके ध्वन्सका कोई चिह्न शेष नहीं रहा था; किन्तु नगरकी साज सज्जामें परिवर्तन बहुत हुआ था। उग्रतारा छिन्नमस्ता, चामुण्डा, भैरवादिके मन्दिर थे; किंतु उपेक्षित प्राय पड़े थे। अनेक भव्य मन्दिर भगवान नारायणके निर्मित हो गये थे। वे ही नगरके सम्पन्नतम मन्दिर थे।

आपान-गृह वन्द नहीं किये गये थे और न रंगशालाएँ उच्छिन्न हुई थी; किंतु रंगशालाओंमें अब श्रीहरिके अवतार चित्रोंकी सज्जा थी। भगवल्लीलाओंका अभिनय होता था। आपान गृहमें वृद्ध ही आते थे और वे भी यदा-कदा, अपनेको दूसरोंसे छिपाकर आते थे।

पशु-वध शालाएँ स्वच्छ हो चुकी थी। आहारके लिए पशु-पालन अनावश्यक प्राय हो जानेसे उन पशुओंके स्थानपर गौ एवं महिषी-पालनको प्रमुखता प्राप्त हो गयी थी। केवल राक्षसोंकी प्रकृतिका यही वैशिष्य वचा था कि उन्होंने गौकी अपेक्षा महिषी-पालन अधिक अच्छा माना था।

सम्पूर्ण नगर श्रीरामने देखा। विभीषण तथा मन्दोदरीने बिनम्र सेवकके समान अपने कार्य दिखलाये। श्रीरघुनाथने उनके कार्योंकी प्रशंसा की। यह नगर निरीक्षण समाप्त करके जब पवनकुमारके साथ पुष्पकपर पहुँचे, विभीषणने अमूल्य रत्नोंसे बिमान भर दिया था। श्रीरामने यह उपहार सहर्ष स्वीकार कर लिया। विभीषणादिसे विदा होकर विमान ऊपर उठा। उसी दिन श्रीराम अयोध्या पहुँच गये
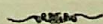
हनुमदोपदेश

'आञ्जनेयको मेरे तत्त्वका उपदेश करो तुम !' अपने चरणोंके समीप बैठे हनुमानकी ओर देखकर श्रीरघुनाथने श्रीजनक-नन्दिनीसे कहा।

पवनकुमारने कोई जिज्ञासा नहीं की थी। वे अपने इन आराध्यकी सेवासे सन्तुष्ट—उन्हें सेवाके अतिरिक्त और कुछ अभीष्ट नहीं ; किन्तु उनके जैसा निष्काम अधिकारी प्राप्त हो तो स्वयं श्रीराम कहाँ अपना स्वरूप अप्रकट रख पाते हैं।

भक्ति देवीका स्वभाव ही है कि वे जहाँ स्वयं विराजमान होती हैं, उनके दोनों पुत्र ज्ञान-वैराग्य वहाँ स्वतः आ जाते हैं। ज्ञान-वैराग्य रहित भक्ति वन्ध्या होगी। लेकिन सम्भव कैसे है कि श्रीराममें सच्चा अनुराग भी हो और संसारमें शरीरमें आसक्ति भी अवशिष्ट रहे। परमात्मामें प्रेम स्वतः पर-वैराग्यको अपना प्रसाद बना देता है। जिसमें प्रीति होगी, उसका स्वरूप आवृत रह सकेगा ? अतः भक्ति, विरक्ति और भगवत्तत्व-बोध एक साथ अन्तरमें आते हैं। इनमें क्रम या कार्य-कारणत्व नहीं हुआ करता।

'प्रबल-वैराग्य-दारुण-प्रभञ्जन-तनय।' पवन-पुत्र साक्षात् पर-वैराग्यके स्वरूप हैं और श्रीराम प्रेमकी तो प्राप्ति उनके अनुग्रहसे होती है। इसलिए वे ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हैं। यह तो श्रीरामका सहज स्नेह था कि उन्होंने अपनी आद्याशक्तिको उपदेशका आदेश किया। हनुमानने अञ्जलि बाँधकर तनिक मुख ऊपर उठा लिया और अपनी अनन्त वात्सल्यमयी अम्बाकी ओर अपलक देखने लगे।

'अनादि, अनन्त, अचिन्त्य, अद्वितीय हैं ये अवधेश।' उन परा-शक्तिने प्रारम्भ किया—'ये निर्गुण, निर्विकार, निष्क्रिय निर्धर्मक हैं। इनका वर्णन न वाणीसे सम्भव है, न मनसे वे चिन्त्य हैं। ये अवाङ् मनस गोचर हैं।'

'जब एक ही अटूट तत्त्व परिपूर्ण है, उसमें विकार अथवा क्रिया सम्भव नहीं है, यह तुम समझ सकते हो। श्रीं वैदेहीकी वाक सुधा

स्रोतस्विनी अखण्ड प्रवाहित हो रही थी— 'अनुभव स्वरूप , ज्ञान मात्र ही इन मेरे आराध्यको किसी प्रकार कहा जा सकता है। इनमें असत् , अज्ञान क्लेशका सर्वथा लेश नहीं है , केवल यह सूचित करनेके लिए इनको सच्चिदानन्द कहा जाता है।'

' तुम्हारे ये स्वामी न चलते हैं , न कुछ करत हैं , न खाते हैं और न सोते हैं। ये कर्ता या भोक्ता नहीं हैं। इनका यह अवतार और इस अवसरकी सब लीलाएँ मेरा कर्म हैं। मैंने की हैं सब। इनमें केवल इतनी प्रतीति होती है। ये मुझ योगमायाके द्वारा ही इस चिद्घन श्रीविग्रहके रूपमें विद्यमान हैं।'

' मैं इनकी शक्ति , इनकी प्रकृति , इनकी योगमाया। इनसे पृथक मेरा कोई अस्तित्व नहीं ; किंतु मेरे बिना इनकी प्रतीति—इनकी उपलब्धि भी नहीं है। निर्गुणको मेरे सहयोगसे सगुण होना पड़ता है। मैं इनसे नित्य अभिन्न और ये मेरे शाश्वत अधिष्ठान —आश्रय।'

' यह समस्त प्रकृति-प्राकृत प्रपञ्च मेरा विलास है। अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंका उद्भव मुझसे होता है। मैं ही उनकी पालिका-स्थितिकारिणी और संहारिका भी हूँ। यह सब शक्तिका स्फुरण है और शक्ति मैं हूँ। शक्ति इन परात्पर पुरुषकी। इनसे सदा अभिन्न।'

' इन आनन्दघनमें मेरे द्वारा आरोपित सत्-चित् आनन्द ही मुझमें प्रतिफलित होकर मेरे स्थूल रूप प्रकृतिमें आता है और तब उसीको क्रमशः तम , रज और सत्त्व कहा जाता है। इनकी परमाधिष्ठात्री मुझे शास्त्र संधिनी , संवित् एवं ह्लादिनीके नामसे उपास्या बतलाते हैं। समस्त सृष्टि मेरा विलास है और मैं अपने इन अधीश्वर परात्पुरुषके आनन्दके लिए— विनोदके लिए विलसिनी बनी हूँ। इनकी प्रीतिके अतिरिक्त मेरा कोई और प्रयोजन नहीं है। मेरी अपने लिए भी कोई सार्थकता नहीं है। मैं हूँ केवल तब तक जब तक ये मेरे आराध्य मेरी ओर देखते हैं। इन्हें मेरा प्रयोजन है। इनकी अस्वीकृति होनेपर मैं इनसे एकात्म हो जाती हूँ।'

हनुमानके नेत्रोंमें अश्रु आ गये। उन्हें स्मरण आया कि श्रीरघुनाथने लंकामें इन जगदम्बाको जब अस्वीकार किया था , इन्होंने अग्नि प्रवेश करके अपना अस्तित्व समाप्त करना श्रेयस्कर माना था। अग्निदेवके आदेशसे श्रीराघवेन्द्रने इन्हें स्वीकार किया, इसीसे ये आज इस रूपमें सम्मुख हैं।

'पवनकुमार ! ये जगद्धात्री ही भक्ति हैं।' श्रीरघुनाथने अब अनुकम्पाकी। श्रीजानकीने साध्य तत्त्वका स्वरूप स्पष्ट किया था। अब श्रीरामने साधन तत्त्वका उपदेश आरम्भ किया। 'इनके आश्रयके बिना जीव आवागमनसे उद्धारका मार्ग नहीं पाता है। वैराग्य और ज्ञान दोनों इनके पुत्र हैं, इनके ही प्रसाद हैं। ये परम प्रेम रूपिणी अन्तःकरणमें न आवें तो प्राणीका अन्तःकरण कल्मषहीन हो नहीं सकता।'

'यह दृश्यमान जगत त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका विलास है। इसमें गुणमें गुण व्यवहार करते हैं। रूप तन्मात्रक नेत्र रूप ही देखते हैं और गन्ध तन्मात्रक नासिका गन्ध ही उपलब्ध करती है। इसी प्रकार प्रत्येक गुण अपनेमें ही व्यवहृत होता है।' श्रीराघवेन्द्रने स्पष्ट किया—'अन्तःकरण जब तक इन गुणोंमें आसक्त है, जन्म-मरणका चक्र चलता रहेगा। क्योंकि गुणोंके प्रति वासना ही शरीरकी सृष्टि करती है। जैसे वासना-संस्कार स्वप्नमें शरीरोंकी सृष्टि कर लेते हैं, वैसे ही एक शरीर-की समाप्तिके अनन्तर दूसरे शरीरकी भी सृष्टि कर लेते हैं।'

'प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। अतः समस्त प्राकृत-प्रपञ्च और उसकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक स्थितिमें तीनों गुण सम्मिलित हैं। प्रकृतिका यह विलास प्रवाह रूपसे नित्य—अनादि, अनन्त है और पुरुषको प्रलुब्ध रखनेके लिए है। इसमें गुण-दोष कुछ नहीं है। गुण-दोषकी भावना बुद्धि भेदसे भिन्न भिन्न है। प्रकृतिकी यह कर्म-धारा तो चल रही है। पुरुष इसमें अपने कर्तृत्वका अहंकार करके आबद्ध होता है। जब वह अपनेको कर्त्ता मान लेता है, उसे उसका भोक्ता बनना पड़ता है। अन्यथा वह स्वरूपतः असंसक्त है।'

'इन अनन्त वात्सल्यमयीके अंकमें ही इनके सब पुत्र सो रहे हैं। वे सो रहे हैं, अतः स्वप्न देख रहे हैं। उनका समस्त सुख-दुःख स्वाप्निक है। वे तो आनन्द रूप हैं। अनन्तके अंश और स्नेहमयीके शिशु; किंतु मोह निद्रामें मग्न दुःस्वप्न देख रहे हैं। ये दयामयी उन्हें जगानेका यत्न करती हैं तो वह उन्हें दुःखद लगता है। लेकिन जागरणका बीज इन्होंने सब शिशुओंको सौंप रखा है। ये स्वयं ही जागरणात्मिका-प्रकाश स्वरूपा हैं। प्रत्येक अन्तःकरणमें प्रीतिके रूपमें ये विराजमान हैं। लेकिन इनके निर्मल स्वरूपको न पहिचाननेके कारण प्राणी पदार्थोंमें उस प्रीतिको भी अटकाकर अत्यन्त दीन, दुःखी हो गया है।'

' प्रपञ्चका यह समस्त वाह्य विस्तार तो इनका महाकाली स्वरूप है। यहाँ तो ये कालातिमका बनी क्रीड़ा कर रही हैं। इस स्वरूपका उपभोग—साहचर्य तो अकाल पुरुष ही महाकाल बनकर कर सकता है। यहाँ कहीं भी आसक्तको कालका कवल बनना पड़ता है। मृत्युसे मृत्युमें, एक जन्मसे दूसरे जन्ममें भटकना ही उसकी नियति बन जाती है।'

' अमृत स्वरूपा हैं ये वस्तुतः ; किंतु इनका यह स्वरूप अनन्तरमें अन्तर्यामीसे एक होकर है। हृषीकेशकी ओर उन्मुख प्राणी इनके द्वारा अमृतत्त्व उपलब्ध करता है। यह अन्तर्मुखका सब प्रकार पालन, रक्षण, -पोषण, संवर्धन करनेमें सावधान, सचेष्ट रहती हैं। इन प्रेम स्वरूपाका आश्रित सर्वत्रसे अभय प्राप्त कर लेता है।'

' परिच्छिन्नताका—व्यष्टि व्यक्तित्वका मोह ही बन्धन है। उसका समूलोन्मूलन ही पूर्णत्वकी प्राप्ति है और अपूर्ण सदा आपद्ग्रस्त ही रहेगा। अपनत्वका सम्पूर्ण समर्पण इन भक्ति देवीकी भव्य अनुकम्पाके बिना सम्भव नहीं है। ये श्रद्धा स्वरूपिणी अन्तःको उज्वल एवं विनम्र बनाती हैं, तभी मानस-भूमि साधनोंके लिए उर्वरा होती है।'

' हनुमान ! साधनका अर्थ ही है सतत संयम, सतत सावधानी, सतत प्रयत्न ; क्योंकि प्रपञ्च प्रकृति तो पतनोन्मुखी है। इसमें परिमार्जनका प्रयत्न एवं उत्थानकी चेष्टा सतत आवश्यक है। इसमें विकृतिमल स्वयं आता है। संस्कार करते रहना पड़ता है। यह संस्कार श्रमहीन, अप्रयास चल सकता है, आरम्भसे ही आनन्ददायी हो सकता है यदि प्राणी अपनी इन वात्सल्यमयीका आश्रय ले। भक्ति तो आनन्द स्वरूप है। इनका आश्रय आरम्भसे ही अभय, आनन्द एवं अविचल पदका सुनिश्चित आश्वासन है।'

' पवनकुमार ! तुमको इस उपदेशकी आवश्यकता नहीं थी ; किन्तु तुम हमारे आश्रितोंके परम रक्षक, पथप्रदाता हो, अतः तुम्हारे आचार्यत्व की परम्परा हमसे ही आरम्भ हो, इसलिए यह उपदेश हमने किया है।' श्रीरामने उपसंहार करके पूछा—' हमें प्रसन्नता होगी यदि तुम अपनी सर्वथा निर्मलमतिके मननका निष्कर्ष हमें सुनाओगे।'

' देव ! जहाँ तक शरीरका सम्बन्ध है, इसकी सार्थकता आपकी सेवामें ही है।' हनुमानने अपना निश्चय निवेदन किया— ' अविद्यासे प्रपञ्चकी प्रतीति होती है, यह बहुत पीछेकी बात है ; किन्तु यह तो

स्पष्ट तथ्य है कि व्यक्तित्व केवल संस्कार मूलक भ्रम है। व्यष्टि-देह नाम-की वस्तु सहस्रों छिद्र वाले चर्मसे आवृत्त वैसी ही पृथकता है, जैसे मशक वारिणीके भीतरके आकाश एवं वायुके पार्थक्यकी कल्पनाकी जाय। शरीर में आकाश, वायु, अग्निका तो समष्टिसे कोई पार्थक्य है नहीं। जल एवं मृत्तिका भी निरन्तर परिवर्तित हो रही है। असंख्यों परमाणुओंके प्रवाहमें एक प्रतीयमान आकृतिका नाम ही देह है।'

'यह देह भी समष्टिपर आश्रित है। समष्टि वायु ही शरीरमें प्राण बना है। समष्टि अग्नि ही इसकी उष्णता है। आकाशमें खण्ड सम्भव नहीं। समष्टि जल ही इसे आर्द्र रखता है और स्थूलाकारका आधार अन्न भी समष्टि पार्थिवांशसे ही आना है। अतः यह समष्टिसे जीवित है। समष्टिपर अवलम्बित है।'

'शरीर किसीका हो– मुझ वानरका, देवताका, दानवका, मानवका— ज्ञानीका या अज्ञानीका। स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर भी, वह समष्टिका अंश, समष्टि-सञ्चालित है। अतः समष्टिके सञ्चालकका— सर्वेश्वरेश्वर आपका दास है। आपके दासत्वमें ही शरीरकी सार्थकता है। भले निर्मल अन्तःकरणमें ज्ञानोदय होकर अविद्यानाश हो जाय, फिर जन्म-मरण न हो; किंतु आपके इस आनन्दघन श्रीविग्रहका साक्षात्कार न हुआ, इसकी सेवा नहीं प्राप्त हुई तो इन्द्रियोंकी उपलब्धि व्यर्थ हो गयी। इन नेत्र-कर्णादिकी कोई सार्थकता ही नहीं रही। इनकी सार्थकता तो आपके दर्शन एवं दास्यमें ही है।'

'जहाँ तक जीवदृष्टि है— अनेक घटोंके जलमें प्रतिबिम्बत सूर्यके समान अन्तःकरण रूप-घटमें प्रकाशित चेतना आपका-ही प्रतिबिम्ब है। आपका ही अंश है। नरके हृदयमें अन्तर्यामी नारायण रूपसे तो आप अवस्थित हो ही, वह आपका सखा नर भी तो आपका प्रतिबिम्ब ही है। आभास चेतन—प्रतिबिम्ब अपने विम्बसे भिन्न भले प्रतीत हो, भले उसमें उस जल या दर्पणकी विकृति, रंग अथवा गतिकी प्रतीति हो, जिसमें वह प्रतिबिम्बित है; किंतु वह अपने विम्बसे अभिन्न ही तो है।'

'अभिनिवेश—शरीरसे तादात्म्य ममताका मूल कारण है और अन्तःकरणसे तादात्म्य अपनेमें अन्तःकरणके धर्मोंको आरोपित करके

कर्तृत्व-भोक्तृत्वसे युक्त, परिच्छिन्न बनाता है। आपके श्रीचरणोंमें अनुराग हो तो यह तादात्मभ्रम भागे।'

'कर्म प्रवाह अनादि है। प्रकृतिके गुणोंके द्वारा उसकी धार चल रही है। कोई व्यष्टि कर्ता नहीं है, न हो सकता है। समष्टिका सञ्चालन आप सर्वेश्वरकी अचिन्त्य शक्तिसे हो रहा है। इसका कण-कण, पत्ता-पत्ता आपके इंगितसे ही गतिशील है। इसमें व्यष्टिका अपना कर्तृत्व कुछ नहीं है। लेकिन माया मोहित प्राणी अपनेको कर्ता मानकर भोक्ता बनने-को बाध्य हो गया है। वह अपनेको आपके श्रीचरणोंमें अर्पित करदे, अनादि कर्तृत्वका अर्पण ही उसके इस प्रवाहसे परित्राणका पावन पथ है।'

'मेरे स्वामी! आप नित्य, शाश्वत, विभु हो। आप अद्वितीयके अतिरिक्त दूसरी सत्ता ही नहीं है। वस्तु तथ्य तो यही है कि आप ही हो। सर्वरूप, सर्वनामा, सवमय आप ही परम सत्य हो।' हनुमानने श्री-रघुनाथके पादपद्मोंमें मस्तक रखा तो उनके सिरपर एक साथ श्रीसीताराम दोनोंने करपल्लव रख दिये।

चुटकी-सेवा

'आञ्जनेयने अयोध्या आकर हम सबको अपने आराध्य अग्रजकी सेवासे सर्वथा वञ्चित कर दिया है।' भरतादि' तीनों भाई अन्तःपुरमें श्रीजनकनन्दिनीके समीप उपस्थित हुए--'हम उन पवनपुत्रकी तत्परतासे पराजित हैं। कोई भी सेवाका अवसर वे दूसरेको देते ही नहीं। पहिलेसे प्रस्तुत मिलते हैं। पुत्र जब पीड़ित हों तो अम्बाके अतिरिक्त किसकी शरण जावें ? अतः आप अनुग्रह करके कोई उपाय निकालें।'

'हनुमानने तो मुझे भी सेवा-वञ्चित कर दिया है।' श्रीजानकीने कहा— 'उसको चल पाती तो वह रात्रिके एकान्तकी पाद-संवाहन-सेवा भी मुझे देना नहीं चाहता था। अन्तःपुरमें भी वह सम्राट्के साथ लगा ही रहता है। रात्रिमें शयनकक्षमें भी उपस्थित रहनेका आग्रह कर रहा था। बड़ी कठिनाईसे स्वयं तुम लोगोंके अग्रज ही वारित कर सके उसे। वह वानर है, अतः मानवकी मर्यादा समझता ही नहीं।'

'आप कुछ करें।' भरतने अनुरोध किया। श्रीमैथली अनुकूल हैं, यह देखकर उनको साहस हो गया था।

'क्या किया जा सकता है ?' वैदेहीने सहज पूछ लिया।

'सम्राट्की सेवा-सूची बननी चाहिए और उसपर यह अङ्कित होना चाहिए कि कौन-सी सेवा किसे अर्पितकी गयी है।' लक्ष्मणने सुझाव दिया— 'उस सूची पर यदि आप सम्राट्से हस्ताक्षर करा दें ता वह राजसदन एवं राजसभामें प्रामाणिक हो जायेगी। उसका उलंघन कोई नहीं कर सकेगा।'

'तुम लोग ऐसी सूची बनाकर मुझे दे दो।' श्रीजानकीने कहा— 'हस्ताक्षर मैं करा दूंगी ; किन्तु अन्तःपुरकी सेवा मेरा भाग रहना चाहिए।'

'यह आवश्यक तो नहीं है कि अयोध्याके सम्राट्की कोई सेवा किसी वानरको दी ही जाय ?' शत्रुघ्नकुमारने पूछ लिया— 'सम्राट्के

स्वजन जब सेवाको समुत्सुक हैं, किसी भी अन्यको यह अवसर देना कैसे उचित हो सकता है।'

'तुम लोगोंको उचित लगे, वसी सूची बनालो।' श्रीजनक-नन्दिनी-को यह अच्छा तो नहीं लगा कि उनके हनुमानको ही प्रभुकी सेवासे सर्वथा वञ्चित किया जाय; किन्तु वे भी सेवाका अवसर न मिलनेसे झुँझला गयी थीं। अतः उन्होंने स्वीकृति दे दी। तीनों भाइयोंने प्रातः उत्थानसे लेकर रात्रि-शयन तक की सम्राट्की समस्त सेवाओंकी सूची बनायी। बहुत सोचकर देख लिया कि कोई छोटी सेवा भी छूट न जाय। कौन-सी सेवा किसका दायित्व है, यह भी लिख लिया। सम्राट् किसीको बुलाना चाहें तो वह बुलानेकी सेवा तक अङ्कित करली गयी।

'आपके तीनों अनुज बहुत खिन्न हैं कि उन्हें आपकी सेवाका अवसर ही नहीं मिलता है।' श्रीसीताजीने एकान्तमें श्रीरघुनाथके करोंमें सूची देकर निवेदन किया— 'उन्होंने यह सूची बनायी है। वे चाहते हैं कि आप हस्ताक्षर करके इसे विधान बना दें।'

'इसमें तुम्हारी भी स्वीकृति है?' श्रीराघवेन्द्रने पूरी सूची ध्यान-पूर्वक देख ली। उसमें कहीं हनुमानका नाम न देखकर उनके अधरोंपर हास्य आया। इन लीलामयका हास्य ही तो जनोन्मादकरी माया है। उसका मर्म कौन समझ पाया है। बिना कोई प्रतिवाद, बिना कोई संशोधन किये हस्ताक्षर करके अपनी मुद्रासे उसे अङ्कित कर दिया।

एकान्त कक्षसे सम्राटके बाहर निकलते ही पवनकुमार सम्मुख आये तो शत्रुघ्नने रोक दिया— 'सम्राट्की सेवाका एक सुनिश्चित विधान बन गया है। सम्राट्ने उसे स्वीकृति दे दी है। अन्तःपुरसे सम्राट्के आगे लोगों-को सावधान करते चलनेकी सेवा मेरी है। आपको उस सेवा-विधानका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।'

'मैं ऐसी धृष्टता नहीं करूँगा।' हनुमानने पीछे हटते हुए विनम्र शब्दोंमें अनुरोध किया— 'सेवा-विधानको मैं जाननेका अधिकारी होऊँ तो आप मुझे उससे सूचित कर दें।'

वह सूची हनुमानजीके हाथमें दे दी गयी। उसे उन्होंने आदिसे अन्त तक देख ली। तीनों भाइयोंके अधरोंपर स्मित रेखा तो थी ही, श्रीरघुनाथ

भी मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। पवनकुमारने सूची सम्राट्के करोंमें तब दी जब वे राज-सभामें साम्राज्ञीके साथ सिंहासनासीन हुए। सूची करोंमें देकर हाथ जोड़कर बोले— 'प्रभुकी जो सेवा इस सूचीमें न हो, उसे प्राप्त करनेकी यह दास प्रार्थना करता है।'

'सूचीमें जो सेवा न हो' भरतने लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी ओर देखा— 'ऐसी तो कोई सेवा ही नहीं है।' दोनोंकी मुखभङ्गी आश्वस्त थी। अतः भरतने कह दिया— 'अवश्य वह सेवा जो इस सूचीमें न हो, आपका स्वत्व रहेगी।'

'क्योंकि प्रभुने सेवा-विधान अपने हस्ताक्षरसे स्वीकार किया है, यह भी अङ्कित करके हस्ताक्षर कर देनेका अनुग्रह करें।' हनुमानने प्रार्थना की।

'इस सूचीसे जो सेवा अवशिष्ट हो, वह हनुमानजीका दायित्व रहेगी।' सूची सम्राटके करोंसे लेकर भरतने उसपर नीचे इतना बढ़ा दिया। श्रीराघवेन्द्रने हस्ताक्षर करके उसे भी मुद्राङ्कित कर दिया।

'जब कभी सम्राटको जम्हाई आवेगी, चुटकी बजानेकी सेवा यह दास करेगा।' सूचीपर हस्ताक्षर हो जानेके पश्चात् हनुमानने यह कहकर सबको चौंका दिया। सचमुच सूचीमें इस सेवाका कहीं उल्लेख नहीं था। इस सेवाका एक सुपरिणाम उसी क्षण पवनपुत्रको प्राप्त हुआ। उनको श्रीरघुनाथके पादपीठके समीप बैठे रहनेका वैधानिक स्वत्व प्राप्त हो गया। अभी तक वे वहाँ बैठते थे। किसीने अब तक आपत्ति नहीं की थी; किंतु अब तो कोई आपत्ति कर ही नहीं सकता था। राजसभामें, राजभवनमें, कहीं भी नगरमें या अन्यत्र भ्रमणमें श्रीरघुनाथके सम्मुख रहनेका अधिकार मिल गया आञ्जनेयको। क्योंकि श्रीराघवेन्द्रको जम्हाई कब आवेगी, इसका कोई निश्चित समय कसे बताया जा सकता है। अतः पवनकुमारको तो उनके श्रीमुखपर सदा दृष्टि लगाये रहना है। उनकी दृष्टिमें व्याघात बननेका अधिकार किसीको नहीं रह गया।

दिन किसी प्रकार व्यतीत हो गया। भोजन, मध्याह्न विश्राम पहिले बीत चुका था। राजसभामें, कथा श्रवणके समय, सायं सन्ध्यापूजन कालमें, रात्रिके प्रथम-प्रहरकी पुराण चर्चामें हनुमान श्रीरामके मुखपर दृष्टि लगाये सदा उनके सम्मुख उपस्थित रहे। कइयोंको कुछ असुविधा

हुई ; किंतु कोई कुछ कह सकता नहीं था। भरतादि भाइयोंको भी अटपटा लगा, लेकिन संतोष यही था कि अब उन्हें भी सेवाका सुअवसर प्राप्त हो गया था।

रात्रि-विश्रामका समय आया। श्रीराम अपने एकान्त कक्षमें प्रविष्ट होने लगे तो पवनकुमार भी साथ चले। श्रीजानकीने रोका— 'हनुमान ! तुम्हें पहिले भी समझाया गया है कि रात्रिमें मेरे इस शयन-कक्षमें तुम्हें नहीं आना चाहिए।'

'अम्ब ! मेरे इन आराध्यको रात्रिमें जृम्भणका वेग नहीं आता ?' हनुमानने अत्यन्त भोलेपनसे पूछा।

'इसका आश्वासन मैं नहीं दे सकती।' श्रीसीताने कुछ हँसकर, कुछ झुँझलाकर कहा— 'किंतु मैं तुम्हें अपने इस कक्षमें रात्रिमें आनेकी अनुमति नहीं दूँगी।

'अच्छा अम्ब !' आञ्जनेयने कोई आग्रह नहीं किया। वे अविलम्ब पीछे हट गये। वहाँसे चले गये।

हनुमान तो चले गये ; किंतु अपने एकान्त कक्षमें पहुँचते ही श्रीजनक-नन्दिनी दूसरी भारी उलझनमें पड़ गयीं। उनके आराध्य पूरा मुख खोले शय्यापर पड़े थे। श्रीजानकीने पूछा— 'आपको क्या हुआ है ?'

कोई उत्तर नहीं। कोई संकेत भी तो ऐसा जो समझमें नहीं आया। श्रीरामने वाम कर उठाकर ऊपर संकेत कर दिया ; किंतु ऊपर—कक्षके भीतर ऊपर तो कुछ नहीं था। वहाँ तो सदाकी भाँति मुक्तादाम शोभित उज्वल कौशेयवितान मात्र था। श्रीमैथिलीने हिलाया, जल पिलानेका प्रयत्न किया ; किंतु कोई परिणाम नहीं। श्रीरामने मुख बन्द नहीं किया। वे बोले नहीं। मुखमें जल लेना अस्वीकार कर दिया।

'अरी कोई है ! शीघ्र अम्बाको सूचना दे। वे अभी यहाँ पधारें।' व्याकुल जनक-नन्दिनीने द्वार-रक्षिकाको पुकारा— 'तीनों अम्बाओंको बुला। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नको भी पुकार ले।'

कुछ क्षणोंमें तो वहाँ राजसदनके सभी सदस्य, सब सेवक-सेविकाएँ एकत्र हो गयीं। माताओंके आते ही श्रीरामने शय्यासे उठकर हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया ; किंतु मुख नहीं बन्द किया। पूछनेपर केवल हाथसे ऊपर संकेत करते थे। यह संकेत किसीकी समझमें नहीं आता था।

'गुरुदेवको लेने जाओ !' माता कौसल्याने लक्ष्मणकी ओर देखा। भरतको आज्ञा दी— 'राजकीय भिषक्को शीघ्र ले जाओ।'

भिषक्का आना व्यर्थ था। उन्होंने नाड़ी-परीक्षण किया। हृदय गति देखी; किंतु श्रीरघुनाथने कर-संकेतसे उनको सूचित कर दिया कि उनको कोई शरीरिक व्याधि नहीं है। वे कोई औषधि ग्रहण नहीं करेंगे।

महर्षि वशिष्ठ लक्ष्मणसे समाचार पाकर उसी समय रथमें बैठकर राजसदन आ गये। श्रीरामने उनके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया; किंतु मुख बन्द हुआ नहीं। वैद्यराजने निवेदन किया— 'हनुस्तम्भ-का कोई लक्षण नहीं है।'

'हनुस्तम्भ तो नहीं है; किंतु हनुमान कहाँ हैं ?' महर्षिने इधर-उधर देखकर पूछा।

'हनुमान ?' अब सबका ध्यान गया। राजसदनके सब एकत्र हो गये और पवनकुमारका पता नहीं ?

'उनको ढूंढ़ो। उन्हें यहाँ ले आओ।' महर्षिका आदेश हुआ— श्रीराम बार-बार ऊपर संकेत कर रहे हैं। देखो कि इस कक्षके ऊपर शिखरपर क्या है ?'

'कक्षके ऊपर शिखरपर।' अब सबका ध्यान संकेतकी ओर गया। शिखरपर कुछ है, यह अबतक तो किसीने सोचा नहीं था।

'आपको कुलगुरु बुला रहे हैं।' सेवक शिखरपर पहुँचे तो देखकर चकित रह गये। वहाँ हनुमान बैठे हैं। उनके नेत्र निमीलित हो रहे हैं। अश्रुधारा अखण्ड चल रही है। शरीरका रोम-रोम उत्थित है। बार-बार गात्र कम्पित हो रहा है। वे तो दोनों करोंसे चुटकी बजाते कीर्त्तनमें तन्मय हैं—

'राम राम राम, सीता राम राम राम।
जय जय राम राम राम, सीता राम राम राम॥'

सेवकने पुकारा, हिलाया और सन्देश दिया तो तन्मयता दूर हुई। चुटकी बजाते ही शिखरसे नीचे उतरे। गुरुदेवके पदोंमें प्रणाम करते समय श्रीराघवेन्द्रके मुखपर दृष्टि गयी तो चुटकी बन्द कैसे कर दें ?

'बन्द करो इसे।' महर्षि वशिष्ठने आज्ञा दी। हनुमानजीके चुटकी बजाना बन्द करते ही श्रीरामने मुख बन्द कर लिया। अब महर्षिने पवन-कुमारसे पूछा— 'तुम वहाँ शिखरपर बैठे क्या कर रहे थे?'

'स्वामीको जम्हाई आवे तो चुटकी बजानेकी सेवाका दायित्व मुझे दिया गया है।' पवनकुमारने अत्यन्त भोलेपनसे कहा— 'अम्बाने अपने कक्षमें मुझे आनेकी अनुमति नहीं दी और यह आश्वासन भी नहीं दिया कि रात्रिमें मेरे स्वामीको जम्हाई नहीं आवेगी। जम्हाई पता नहीं कब आवे, अतः मैं चुटकी बजा रहा था कि जब भी आवे, मैं अपनी सेवामें प्रमत्त न सिद्ध होऊँ।'

'वत्से! तुम श्रीरामके मुख खोले रहनेका मर्म समझ गयी हो।' महर्षिने स्नेहपूर्वक श्रीजनक-नन्दिनीकी ओर देखा— 'ये भक्तवत्सल अपने-में तन्मय आश्रितके भावका सत्कार किये बिना रह नहीं सकते। हनुमान चुटकी बजावेंगे तो इन्हें अखण्ड जम्हाई आवेगी ही। अतः तुम अपनी उस सेवा-सूचीमें संशोधन कर लो।'

महर्षि आदेश देकर विदा हुए तो श्रीजानकीने भरतकी ओर देखा— 'वह सूची मुझे दे दो।'

सभी भाई अत्यन्त लज्जित थे। सूची लेकर श्रीजनक-नन्दिनीने उसी समय फाड़ दी और स्नेहपूर्वक हनुमानकी ओर देखकर कहा— 'वत्स! यह अपराध मुझसे हुआ था। मैं हार गयी तुमसे—तुम्हारी निष्ठासे। अब मुझपर दया करो। यह चुटकी बजाना बन्द रखो और जैसे पहिले सेवा कर रहे थे, वैसे ही सेवा करते रहो।

'सम्राट्की सब सेवा आपकी।' भाइयोंने एक स्वरसे स्वीकार किया— 'अब आप हम सबपर अनुग्रह करो।'

'पवनकुमार! आजसे यह मर्यादा स्थापित हुई कि मेरी सेवा तुम्हारे अनुग्रहसे ही किसीको प्राप्त होगी।' श्रीरामने हनुमानके मस्तकपर हाथ रखा — 'अपनी सेवा मैं भी स्वयं दूसरेको तुम्हारी अनुमति लेकर ही दे सकूँगा।'

श्रीरामकी सेवाके साकार स्वरूप पवनकुमारने आराध्यके चरणोंमें प्रणिपात किया। माताएँ अपने सदन आश्वस्त होकर पधारीं। भरतादि भी अपने भवन गये, किंतु अब यह रात्रि तो श्रीहनुमानकी श्रद्धा, सेवानिष्ठा-का स्तवन करते ही व्यतीत होनी थी।

पवनपुत्रको प्यारदान

‘ अपने वानर बेटेके लिए मैं आज स्वयं रन्धन करूँगी ।’ अत्यधिक स्नेह है श्रीजनक-नन्दिनीका आञ्जनेयके प्रति । और प्रेम हो , श्रद्धा हो स्नेह हो , यह सब प्रीतिकी वृत्तियाँ वाहनकी अपेक्षा करती हैं । श्रम और पदार्थका—सेवाका वाहन बनाकर ही ये व्यक्त होती हैं । आज ब्रह्ममुहूर्तमें उठते ही श्रीजानकीने अपने स्वामीसे अनुमति ली । रघुनाथने हँसकर अनुमति दे दी । अतः आज राजसभामें सम्राट्‌के साथ सिंहासनासीन रहने की भी आवश्यकता नहीं रह गयी ।

प्रभातसे पूर्व ही स्नान एवं नित्यार्चन करके अयोध्याकी उन साम्राज्ञीने पाकशालामें प्रवेश किया । आज सबके लिए पृथक रन्धन होगा। अब अवधेश्वरी अपने लाड़ले हनुमानके लिए रन्धन करेंगी । सेविकाओंको केवल सहायता करनी है । सामग्री प्रस्तुत कर देने तथा अन्य ऊपरी कार्यों तक ही उनका सहयोग सीमित है । उत्सुकता-कुतूहलके कारण तीनों बहिनें आ गयीं ; किंतु उनको पाकशालामें प्रवेश मात्र मिला । आज रसोई तो श्रीजानकीको अपने करोंसे ही प्रस्तुत करनी है ।

‘ जीजी अपने बानर बेटेके लिए व्यञ्जन बना रही हैं ।’ उर्मिलामें बहुत उत्साह है । वे सेविकाओंको संकेत या आदेश करनेके स्थानपर स्वयं सामग्री लेने दौड़ती हैं । चर्व्य , चोष्य , लेह्य , पेय चतुर्विध व्यञ्जन और एक-एक प्रकारमें अनगिनत भेद । मधुर , लवण , अम्ल , कटु , तिक्त , कषाय सब रस ; किंतु स्वयं श्रीवैदेही बार-बार कहती हैं— ‘ उसे मधुर ही प्रिय लगेगा । लवण युक्त भी वह खा लेगा ; किंतु कषाय , अम्ल , कटु , तिक्त उसे प्रिय नहीं हो सकते ।’

प्रिय हों या न हों , रखने सब रस हैं । सबको अत्यन्त स्वादिष्ट बनाकर रखना है । अवश्य ही मधुर रसका साम्राज्य है । मिष्ठान्नकी बहुत अधिक वस्तुएँ हैं । लवण पड़े व्यञ्नन भी बहुत हैं । शेष चारों रसोंके

पदार्थोंको भी लवण अथवा शर्कराने या दोनोंके सहयोगने स्वादिष्ट बनाया है।

जो अनन्त अनन्त ब्रह्माण्डोंकी इच्छा मात्रसे सृष्टि करती हैं, वे स्वय व्यञ्जन बनानेमें लगी हैं। एक-एक पदार्थकी राशियाँ और पदार्थों-की संख्या नहीं है। श्रुतिकीर्तिने पूछ लिया— 'जीजी ! आप आज संपूर्ण अयोध्याको आमन्त्रित करनेवाली हो ?'

'चल ! तूने तो मेरे हनुमानका यह साधारण मानव रूप ही देखा है।' स्नेहकी झिड़की मिली छोटी बहिनको— 'उसका वह वास्तविक अम्बरव्यापी कनक भूधराकार रूप देखती तो भयके मारे मूर्छित ही हो जाती। वह यहाँ आकर सङ्कोचवश अपने इस रूपके अनुरूप ही भोजन करता है। भूखा रहता है प्रतिदिन। मैं आज उसे भरपेट भोजन कराऊँगी।'

'वे कनक भूधराकार बनेंगे तो अपने प्राङ्गणमें बैठेंगे ?' माण्डवीने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

'प्राङ्गणमें बैठ लेगा।' श्रीमैथिली रन्धनमें जुटी हैं। इन्हें दूसरी ओर देखनेका अवकाश नहीं है। 'वही तो उसका वास्तविक रूप है। ऐसा रूप कि उसकी गर्जनासे राक्षस सेनापति तक भयसे भाग खड़े होते थे। स्वयं दशग्रीव उसकी वज्र मुष्टिके आघातसे भूमिपर मुखके बल गिर गया था।'

किस माताको अपने प्रिय पुत्रके सद्गुण, बल, वीर्य, शौर्यका वर्णन करनेमें सुख नहीं मिलता ? रन्धन चल रहा था और चल रही थी पवनपुत्रकी पवित्र गाथा— 'उसके बलकी, उसकी बुद्धिकी सीमा नहीं है। इतना होनेपर भी वह कितना विनम्र, कितना सङ्कोची है। मेरे सम्मुख शिशुके समान भोला तथा सभीत बना रंहता है।'

'कनक भूधराकार शरीर' सबको अत्यन्त उत्सुकता उत्पन्न हो गयी श्रीपवनकुमारके वास्तविक रूपको देखने की। माण्डवीजीने प्राङ्गणकी मणि भूमिको पुनः मार्जन कराके जलसे धुलवाया। उस पूरे प्राङ्गणमें स्वयं लग गयीं श्रुतिकीर्तिको लेकर नाना रङ्गोंके चित्राङ्कनमें। उसके दक्षिण भागसे सटाकर उत्तराभिमुख बहुत विस्तृत बहुमूल्य कौशेयास्तरण आस्तृत कराया। प्राङ्गण तोरण, पताकादिसे सज्जित हुआ।

स्वर्णके रत्नजटित थाल तो बहुत छोटे होते हैं। महाथाल (परात) स्वर्णके स्वच्छ कराये गये। बहुत बड़े पात्र, जो समारोहोंमें सामग्री रखनेके काम आते हैं, भोजनके लिए स्वच्छ हुए। यह सब होता रहा और श्रीजनक-नन्दिनी रन्धनमें लगी रहीं। मध्याह्न तक उन्होंने रन्धनसे तनिक भी विराम नहीं लिया।

भाइयोंके साथ श्रीरघुनाथने मध्याह्न स्नान करके सन्ध्या कर ली। राजकीय पाकशालामें प्रस्तुत पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको, अतिथि अभ्यागतोंको, कुल वृद्धोंको उन्होंने भोजन करा लिया, तब श्रीवैदेहीने प्रार्थना की - 'आप नैवेद्य ग्रहण कर लें; क्योंकि मेरा हनुमान तो आपके प्रसादका व्यसनी है।'

श्रीरघुनाथने भाइयोंके साथ भोजन कर लिया। लक्ष्मणजीने प्रस्ताव किया— 'आज हनुमानजीको हम सब मिलकर भोजन करावेंगे।'

सामग्रीको देखते आवश्यक था कि परसनेमें सहायक साथ लिए जायँ। कोई सेविका साथ नहीं लेना था। अतः श्रीजानकीने अपने तीनों देवरों तथा बहिनोंका सहयोग स्वीकार कर लिया। श्रीरघुनाथ पृथक आसनपर इस अनुपम सत्कारको देखने बैठ गये। आज शयन कक्षमें विश्राम करने नहीं गये।

हनुमानको श्रीजानकीने हाथ पकड़कर आसनपर बैठाया। अपनी वात्सल्यमयी अम्बाके स्नेहाग्रहसे जब वे केशरीकुमार अपने वास्तविक रूप-में बैठे—उनका स्वर्णशैल शरीर बैठनेपर भी राजसदनके शिखरको स्पर्श कर रहा था। उनकी प्रचण्ड मार्तण्ड अङ्ग कान्ति अद्भुत, आश्चर्यजनक थी। यह रूप देखकर भरत, शत्रुघ्न तथा तीनों राजवधुएँ विस्मित रह गयीं।

हनुमान आनन्द विभोर भोजन करने लगे। आज स्वयं अम्बा जानकीने रन्धन किया था। आजके स्नेहकी, स्वादकी कोई समता है? हनुमानको पदार्थका स्वाद भी दीखता तो उन महाशक्तिके करोंसे प्रस्तुत पदार्थ; किंतु हनुमानको तो पदार्थोंके कण-कणमें उनका अनन्त वात्सल्य प्राप्त था। अतः भोजनके पदार्थोंपर ध्यान कैसे जाता। वे दोनों हाथों बड़े पात्र उठा-कर मुखमें डालने लगे। पेय, लेह्य पदार्थ अपने पूरे शरीरपर लपेटने-पोतने लगे। उन्होंने खाद्य, चोष्य आदिका भेद दूर कर दिया। अनेक पदार्थ एक साथ मुखमें डाल लेते थे और मुख चलानेका भी कष्ट न करके

कण्ठसे नीचे उतार देते थे। उनके भोजनका क्रम था जैसे किसी महागह्वरमें उठाकर पात्र उडेल दिये जा रहे हों। पवनकुमारके सम्मुख पात्र पहुँचानेके लिए दौड़ना पड़ने लगा परसने वालोंको। कोई पात्र आया और उठाकर मुखमें डाल लिया। फलतः परसने वालोंको भी यह अवसर नहीं रहा कि शष्कुली (पूड़ी) के साथ वे शाकका पात्र पकड़ा सकें। जो भी पात्र हाथमें आवे, शीघ्र दौड़कर दे दो, इतना ही किया जा सकता था।

पदार्थ कितने भी प्रस्तुत किये गये हों, इस क्रमसे कब तक चल सकते थे। बहिनोंने ही नहीं, देवरोंने भी प्रश्न भरी दृष्टिसे श्रीजनक-नन्दिनीकी ओर देखना प्रारम्भ किया। भरतने सविनय पूछा— 'राजकीय रन्धन शालाको सूचित किया जाय ?'

स्पष्ट था कि उस रन्धन शालाके सेवक सम्पूर्ण शक्तिसे लगकर आहार पूर्तिमें समर्थ नहीं थे। अब तो कोई चमत्कार ही कुछ कर सकता था। स्मरण करनेपर सिद्धियाँ व्यञ्जन पात्रोंको अक्षय बना देंगी। स्वयं अन्न-पूर्णा सेवा करनेमें अपना सौभाग्य मानेंगी ; किंतु परम स्नेह भाजन पुत्रको सिद्धियोंके द्वारा परितृप्त करना तो जगदम्बाके वात्सल्यके उपयुक्त नहीं था।

श्रीजानकी उठीं। उन्होंने अपने आराध्यकी ओर कातर दृगोंसे देखा तो श्रीरघुनाथ भी उठ खड़े हुए। एक साथ दो कार्य हुए। श्रीजनक-नन्दिनीने श्रीराघवेन्द्रका उच्छिष्ट पात्र उठाया और उसमें-से एक ग्रास स्वयं अपने करोंसे हनुमानके मुखमें दिया। दूसरी ओर श्रीरघुनाथने हनुमानके पीछे पहुँचकर उनके मस्तकके पिछले भागमें अपने दक्षिण हाथ-की अनामिकासे लिखा— 'ॐ नमः शिवाय।'

हनुमानने परितृप्तकी डकार ली— 'अम्ब ! आज इस वानरकी जन्म-जन्मकी क्षुधा तृप्त हो गयी।'

श्रीलक्ष्मणलालने सहर्ष जलपात्र देकर कहा— 'आपको अब आचमन तो कराया नहीं जा सकता। सरयू-स्नान ही आपका शरीर स्वच्छ करेगा।'

सबके मुखोंपर हास्य आ गया। हनुमान बिना संकोच सरयू-स्नान करने कूद गये।
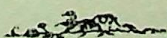
अयोध्याके कथावाचक

अयोध्याकी प्रजा अत्यन्त सुखी थी। राज्यमें कहीं कोई रोगी नहीं होता था। सर्प-भय, वृश्चिकादिका भय, अकाल-महामारीका भय अथवा चोर-डाकुओंका भय नहीं रह गया था। दैहिक, नैसर्गिक तथा देवताओंके प्रकोपका कोई भय नहीं रह गया था।

कोई नारी विधवा नहीं होती थी। बालक या युवाकी मृत्यु नहीं होती थी। वृद्ध मरते भी थे तो किसी दीर्घायु स्वजनके सम्मुख। उससे कम आयुके व्यक्तिकी मृत्यु नहीं होती थी।

राज्यमें कोई व्यभिचारी, सुरापायी, द्यूतलिप्सु नहीं था। लोग कृपण नहीं थे। लोभी नहीं थे। सब प्रसन्न रहते थे। सेवा परायण थे। सबको दूसरोंको सुख देना प्रिय था। सब दूसरोंके प्रसन्न रखनेमें प्रसन्न रहते थे।

वणिक् भी लोभहीन व्यापार करते थे। केवल अपना पारिश्रमिक प्राप्त करके सन्तुष्ट थे और धनका संग्रह दान अथवा यज्ञके लिए ही करते थे। राज्यमें स्थान-स्थानपर प्रशस्त मार्ग, सरिताओंपर सेतु बन गये थे। कूप, वापी, सरोवरोंकी बहुलता थी। सामान्य ग्रामोंके समीप भी फलोद्यान एवं पुष्पोद्यान थे।

गृहस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके गृहोंमें पृथक अग्निशाला थी, जो अतिथिके आगमनका मानों मार्ग ही देखती हो। ग्रामोंमें उपासना गृह थे। राजकीय अतिथिशालाओंके अतिरिक्त लोगोंने धर्मशालाएँ, कूप, सार्वजनिक उद्यान बनवाये थे।

ब्राह्मण वेदाध्यन-अध्यापन, यजन-याजनमें लगे रहते थे। क्षत्रिय शस्त्र शिक्षण, शास्त्राध्यनमें लगे थे; किंतु उन्हें किसीकी रक्षाका अवसर ही नहीं आता था। वैश्य व्यापार करते थे केवल लोगोंको पदार्थ सुलभ करनेके उद्देश्यसे। शूद्र—सेवक पुरस्कार निरपेक्ष सेवा करते थे।

धन्वन्तरिके समान भिषक् थे। राज्यमें चिकित्सालयोंकी पर्याप्त व्यवस्था थी ; किंतु उनका कार्य नवीन औषधियोंके शोध तथा निर्माण तक सीमित हो गया था। कोई रोगी ही नहीं होता था तो वे उपचार कार्य कहाँसे पाते।

न्याय सुलभ था। स्थानीय ऋषि-मुनि न्याय-विधान दे सकते थे और स्थानीय शासन कर्मचारी उसके अनुसार दण्ड व्यवस्था कर दे सकता था। कोई झूठ नहीं बोलता था, अतः साक्षीकी आवश्यकता नहीं थी। कोई भी सीधे सम्राट्के सम्मुख उपस्थित हो सकता था।

न्यायालय निष्क्रिय नहीं थे। उनमें विवाद उपस्थित होते थे ; किंतु विचित्र विवाद। ऐसे मधुर विवाद कि उनमें दण्ड विधानकी नहीं, सौजन्य पूर्ण समझसे सन्धि करा देना ही आवश्यक होता था। प्रायः वादी कहता था कि अमुक क्षेत्र, भवन अथवा धन उसका नहीं है, परन्तु कोई दूसरा उसे लेनेके लिए उसपर अनुचित दबाव डाल रहा है। प्रतिवादीका पक्ष होता था वह धन, भवन, क्षेत्र या उद्यान न्यायतः उस दूसरेका--वादीका ही है। वह उसे स्वीकार कर लें तो प्रतिवादी उसकी सुरक्षा चिन्तासे मुक्त हो।

लोगोंके मुखपर बार-बार श्रीरामकी प्रशंसा, श्रीरामका गुणगान आता था। जिसे देखो वह सगर्व कह रहा है— 'हमारे सम्राट् ऐसा करते हैं।' राम, राम, राम, लोगोंकी वाणीका भूषण बन गया था यह शब्द। दिशाएँ इस पावन नामसे सर्वत्र पवित्र होती रहती थीं।

पृथ्वीके समान क्षमा शील और सबके धारक-पोषक, जलके समान सरस—सबको स्वच्छ पवित्र करने वाले, अग्निके समान तेजस्वी तथा आपत्तिके त्राता, वायुके समान सबके प्राण, आकाशके समान समीप रहकर भी अस्पृश्य, समुद्रके समान अविचल, श्री-ह्री-कीर्ति-धर्मके नित्य निवास श्रीराघवेन्द्र जैसा सम्राट् घराने दूसरा नहीं पाया। अतः राम-राज्य सदाके लिए शासनोंका आदर्श बन गया।

जब देशमें शान्ति रहती है, प्रजा पेट पालनकी चिन्तासे परित्राण पा जाती है, तब समृद्ध जनपदमें भगवती सरस्वतीकी सम्यक् आराधना होती है। कलाके लिए उर्वर क्षेत्र हैं वे जो समृद्ध हैं और संघर्षोंसे सुरक्षित हैं। राम-राज्यमें भरपूर शान्ति थी और सम्यक् समृद्धि थी,

अतः कलाके प्रत्येक क्षेत्रमें आश्चर्य जनक उन्नति हुई। लेकिन वह उन्नति उच्छृखल नहीं हो सकती थी ; क्योंकि सबमें श्रद्धा थी , संयम था।

भोग-प्रवण , अर्थ प्रधान समाजकी कला उच्छृङ्खल होती है। वह वासनाको उत्तेजित करनेवाली , मानवको पशु या दानव बनाकर पतनके गर्तमें गिराने वाली होती है।

प्रतिभा तीक्ष्ण तलवार है । वह संयमी , सद्भावना सम्पन्न सत्पुरुषोंके करोंमें होगी तो समाजके लिए सुरक्षाका आश्वासन बनेगी और उन्मत्त व्यक्तिके करोंमें होगी तो उसका तथा औरोंका भी अङ्गच्छेद करेगी। उत्पातको उत्पन्न करेगी।

श्रीरामके शासनने सुरक्षा दे रखी थी , समृद्धि दे रखी थी तो साथ ही संयम तथा सात्विकतासे भी प्रजाको सम्पन्न बना रखा था। अतः कला, श्रद्धा-संवलित , धर्मभाविता , अध्यात्मोन्मुख थी । उसका उद्भव ही आराधनाके उद्देश्यसे होता था।

मूर्तिकार अपनी कलाको मन्दिर-निर्माणमें कृतार्थ करते थे। पाषाण , काष्ठादिके शिल्पियोंकी साधना थी आराधना-गृहोंको सज्जित करना। चित्रकार अपनी तूलिका, अपने सम्राट्का शौर्य , शील प्रकट करनेमें अथवा भगवदवतार-विग्रहोंकी विविध भंगियोंको व्यक्त करनेमें पवित्र करते थे । सङ्गीत घर-घरमें गूँजता था—भगवद्-गुणगानसे वातावरणको पावन करता सङ्गीत और अधिकांश नर-नारी भावुक थे। उनको लेखनी , तूलिका अथवा तक्षण , तल्लीन करनेके साधन थे श्रीराम-पादारविन्दमें। वंशी , वीणादि वाद्य प्रत्येक गृहोंके शृङ्गार थे ; किंतु वे आराधना-कक्षमें अथवा एकान्तमें बजते थे अन्तरको उन्मुख करनेके लिए।

कोई भी कुलनारी अथवा पुरुष निःसङ्कोच किसी मन्दिरमें कभी कोई वाद्य उठा ले सकता था अथवा नृत्य करने लग सकता था। दर्शकोंके नेत्र अश्रुवर्षण करने लगते थे। लोग भावमग्न हो उठते थे। सहज स्वाभाविक हो उठी थी हरिभक्ति। किसीके कण्ठसे किसी क्षण का व्यधारा फूट पड़ती थी और श्रोताओंको आत्मविस्मृत करके अपने आराध्यके चिन्तनमें समाहित कर देती थी।

शासनकी समूची व्यवस्था प्रायः भरतपर निर्भर थी और उसका सञ्चालन लक्ष्मण और शत्रुघ्न करते थे। प्रजाका सीधा सम्पर्क शत्रुघ्नसे

ही था ; क्योंकि प्रजासे प्राप्त करको कोषमें सुरक्षित करना, परितोषिक-वितरण तथा प्रजाकी सुख-सुविधा-सुरक्षाका ध्यान रखना शत्रुघ्नने अपना दायित्व बना लिया था।

श्रीरामने तो लक्ष्मणको युवराज बनाना चाहा था ; किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया था। अतः राजपरिवार, राजसदनके सेवक एवं राजकुलके स्वजन-सम्बधियोंके सत्कारका भार उनपर था। वे इनकी सुख-सुविधापर दृष्टि रखते थे।

भरतको दोनों भाइयोंके कार्योंका विवरण सुन लेना था और आवश्यक निर्देश दे देने थे। क्योंकि सर्वत्र लोग सन्तुष्ट थे। सम्राटसे लेकर सामान्य कर्मचारियों तक किसीके समीप अधिक कार्य-भार नहीं था। समस्त राज्य-सेवकोंको आदेश था कि प्रजाके किसी वर्ग, किसी सदस्य, किसी स्थानकी कोई सुख-सुविधा-सुरक्षाकी माँग आनेपर तत्काल उसकी पूर्ति करके तब अपने उच्चाधिकारीको सूचना दी जाय। लेकिन इसके अवसर आते ही नहीं थे।

ग्राम-ग्राम, नगर-नगरमें लोग यज्ञका, विशेष आराधनाका, कथा-कीर्तनका, ज्ञानसत्रका आयोजन करते ही रहते थे और उनमें उत्साह-पूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मणोंको, विरक्त मुनिगणोंको आमन्त्रित करते रहते थे। यही गौरवका तथा स्पर्धाका विषय था सबके लिए।

सानुज सम्राट् प्रजाके पुत्रोत्सव, विवाहोत्सव तथा ऐसे पुण्य आयोजनोंमें यथासम्भव सम्मिलित होते थे। सम्पूर्ण राज्यमें ऐसे आयोजन चलते ही रहते थे, अतः अनेक बार सम्राट्की ओरसे उनके प्रतिनिधि-रूपमें उनके किसी अनुज अथवा मन्त्रीका आ जाना आश्चर्यका अथवा आवेदकके अपमान-अवज्ञाका प्रतीक नहीं था ; किंतु सर्वसमर्थ सम्राट् इसका अवसर नहीं आने देते थे। सबको लगता था कि सम्राट्का वह सर्वाधिक स्नेहभाजन है और सम्राट् उसके आयोजनोंमें, उत्सवोंमें सानुज सोत्साह सम्मिलित होते हैं। उन प्रजावत्सलके उपहार ऐसे अवसरोंपर प्रत्येकको पर्याप्त अधिक प्राप्त होने ही हैं।

प्रत्येक सदन नित्य कथा-कीर्त्तनसे पवित्र रहता था। प्रत्येक स्त्री-पुरुष कलाकार था—किसी-न-किसी कलाका विशेष आराधक और उसकी कला अन्तर्मुख करनेवाली, सात्विक तथा अपने परमोदार, सद्गुणैकधाम

सम्राट्को समर्पित थी। फिर भी समस्त राज्यमें मूर्त्तिकार, शिल्पी, सङ्गीतज्ञ, लीलाभिनय-निपुण व्यक्तियों अथवा मण्डलियोंका सम्मान बहुत बढ़ गया था। बहुत बढ़ गया था भगवत्कथा-श्रवण करानेवालोंका समादर। फलस्वरूप इनकी संख्या भी बहुत बढ़ गयी थी। इस वर्गमें भी कोई अर्थ-लुब्ध नहीं था। उलटे यह वर्ग प्रायः इतना वीतराग कि श्रोताओंको इनकी सेवाका अवसर कठिनतासे सुलभ होता था।

सब कथाकार, लीलाभिनयकर्त्ता, कीर्त्तनकार, गायक, मूर्त्तिकार, शिल्पीवर्गने अपना आदर्श बना लिया था शिवशर्माको। सेवाको स्वीकार करनेका आग्रह करते ही वे कह देते थे— 'सम्राट्के कथावाचक, सुरासुर सबके श्रद्धेय महापण्डित शिवशर्माजी हमारे शिक्षागुरु हैं। हम उनके पदानुगामी शिष्य, पदार्थोंका हमें प्रयोजन ही नहीं है। आप सबकी श्रद्धा ही पर्याप्त है। परिग्रह तो पाप है। आप हमें इस पङ्कमें डालनेका प्रयत्न न करें, यही आपकी अनुकम्पा।'

निखिलकलागुरु, समस्त विद्याओंके आद्याचार्य, योगियोंके आदर्श संरक्षक, वैराग्यके मूर्त्त विग्रह श्रीशिव शर्माजीसे आप अपरिचित नहीं हैं। उन गङ्गाधर, धूर्जटि, चन्द्रमौलि, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, भस्माङ्गराग, अहिभूषण, कपालमाली, कृत्तिवास, कामारिसे कोई आर्य आस्तिक अपरिचित कैसे हो सकता है। उन वृषभध्वज, भूतनाथ, आशुतोषने अयोध्यामें शिवशर्मा नाम अङ्गीकृत कर लिया था।

भगवान उमाकान्त पधारे थे अयोध्या राज्याभिषेकके समय श्रीराघवेन्द्रका दर्शन करने। दूसरे सब नृपतियोंने, देवताओंने, दिक्पालोंने सम्राट्को अपने उपहार अर्पित किये; किंतु नित्य अपरिग्रही सृष्टिकी प्रलय करके उसकी विभूतिको अङ्गराग बनानेके व्यसनी स्थाणु शिवके समीप क्या था जो उपहारमें अर्पित करते? नवीन सम्राट्को डमरू, कपाल, त्रिशूल, सर्प अथवा अपना पहिना गजचर्म तो दिया नहीं जा सकता था। भोले बाबाको भूल ही गया कि कुबेर उनके अनुचर हैं और अन्नपूर्णा—जगद्धात्री वामाङ्गमें ही स्थित हैं। वे स्तवनके अनन्तर स्वयं बोले— 'श्रीराम! इस अवसरपर आप मुझसे कुछ माँग लो।'

सर्वेश्वरेश्वर, निखिलभुवनैक सम्राट्से कुछ माँग लेनेको कहनेका साहस त्रिपुरारिके अतिरिक्त दूसरा कोई कर भी तो नहीं सकता था

नवीन सम्राट् भी सुनकर प्रसन्न हुए। दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर बोले— 'आप मुझपर प्रसन्न ही हैं तो मेरी सभाके कथावाचक बन जायँ।'

'एवमस्तु !' औढरदानी भी हँसे— 'इसका अर्थ है कि तुम मुझे अपने समीप ही रखना चाहते हो। अच्छी बात, आजसे शिवशर्मा तुम्हारे धरापर इस युगलस्वरूपसे साक्षात् एकत्र रहने तक अयोध्याका कथावाचक हुआ।'

अर्थ-गर्भ बना यह आशीर्वाद। शिव शर्मा अयोध्यासे उस दिन अन्तर्हित हो गये, जिस दिन भगवती जनक-नन्दिनीको सौमित्र रथमें बैठाकर वनमें ले गये।

जो प्रलयङ्कर हैं, पूरी सृष्टिके साक्षी तो वही हैं। एक ब्रह्माण्डकी अनेकों प्रलयोंके वे प्रत्यक्ष साक्षी, उनसे अच्छा सृष्टिकी उत्पत्ति-प्रलयका वर्णन करने वाला दूसरा कोई कहाँसे आवेगा। सब अवतार उनके सम्मुख हुए। सब सत्पुरुषोंको देखा उन्होंने। अतः पुराण-कथाओंके वे प्रत्यक्ष द्रष्टा। ज्ञान, वैराग्य एवं भक्तिके, योगके विविध साधनोंके वे परमाचार्य। नरक-स्वर्ग, भूलोक, पाताल, महः, जनः, तपः तथा सत्यलोक एवं दिक्-लोकोंमें भी कोई इन हरिप्रियका अनदेखा है? अब ये स्वयं कथावाचक बन गये तो ब्रह्मलोकमें भी ऐसी कथा क्या कभी सुलभ होगी?

श्रीशिव शर्माकी कथा-श्रवणके आकर्षणने पृथ्वीके ही नहीं, ब्रह्म-लोक तकके महर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, काण्डर्षि, राजर्षि वर्गको, मुनि-मण्डलको, सिद्धोंको, साधकोंको अयोध्याका नित्य अतिथि बना दिया था।

धर्मारण्य-यात्रा

अनेक उद्देश्य एक ही कार्यसे सिद्ध हों, यह दृष्टि रहती है महत्-पुरुषों की। श्रीरघुनाथने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठसे पूछा— 'भगवन्! सीताका हरण होनेपर उन्हें नैकषेयोंके यहाँसे पुनः प्राप्त करनेके प्रयत्नमें मुझे बहुत अधिक राक्षसोंका संहार करना पड़ा है। वे अधर्मी थे, सुर-साधु-उत्पीड़क थे, आततायी थे; किंतु महर्षि पुलस्त्यके वंशज थे। उनमें दशग्रीव वेदज्ञ था, उद्भट विद्वान था, शिवभक्त था। इन ब्रह्मबन्धु राक्षसोंके वधके भी पापका परिमार्जन होना चाहिए। आप सर्वज्ञ हैं। पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें न भी गये हों, तो भी उनका प्रभाव आपसे अज्ञात नहीं है। आप मुझे किस तीर्थमें इस पाप-शुद्धिके लिए जाकर स्नान करनेकी आज्ञा देते हैं?'

'वत्स रामभद्र! अधमतम प्राणी तुम्हारा स्मरण करके तुम्हारे नामका उच्चारण करके समस्त पापोंसे पवित्र हो जाता है। ऐसा कोई महापाप नहीं जो राम कहने मात्रसे भस्म न हो जाता हो। कोटि-कोटि जन्मोंके पातकोपपातक समूहोंका अविलम्ब संहारक तुम्हारा स्मरण है।' महर्षिने अत्यन्त आनन्दमग्न होकर कहा— 'किंतु तुम मर्यादा पुरुषोत्तम हो। मनुष्योंके सम्मुख यह आदर्श उपस्थित करना चाहते हो कि रावण जैसे लोकोत्पीडक, अधर्मरतका भी विवश होकर वध करना पड़े, तो भी उसका प्रायश्चित किया जाना चाहिए। स्मृतियोंने कह दिया है कि ब्राह्मणको शरीर-दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए। तुम निशाचरोंमें भी ब्राह्मण रक्त है, यह भावना करके, उनके भी वधमें पाप मानते हो, यह लोकादर्श ही है।'

इस स्तवनसे तो काम नहीं चलता था। कोई भी सत्कर्म करना चाहता हो तो उसे मना करना अधर्म है। श्रीराघवेन्द्र तीर्थयात्रा करना चाहते हैं। वह अनावश्यक भले हो, पुण्यकर्म है। मनुष्यके लिए तीर्थयात्रासे अधिक सुगम दूसरे प्रायश्चित जो हैं, उनमें उसकी आस्था होनी कठिन है। फिर नियम यह है कि व्यक्तिकी निष्ठा, रुचि उस समय जैसी हो,

उसके अनुकूल साधन उसे बतलाया जाना चाहिए। पुण्य एवं प्रायश्चित दोनोंका मूलाधार आस्था है। मनुष्यकी रुचिका निषेधकर अन्य साधनोंका निर्देश तभी उचित है, जब उसकी रुचिके अनुकूल साधन सम्भव न हो। तीर्थयात्रा प्रायश्चित नहीं है, ऐसी बात तो है नहीं। अतः जब श्रीराम तीर्थयात्रा पूछ रहे हैं तो उन्हें उपयुक्त तीर्थकी यात्राका ही निर्देश किया जाना चाहिए।

श्रीराघवेन्द्रने ही रामेश्वरकी स्थापना की। महासागर स्नान ही उन्होने नहीं किया, नित्य सरयू-स्नान भी करते हैं। यह सब तो लङ्का-विजयके पश्चात् ही हुआ। अब इन तीर्थोंका ही स्नान-दान तो पुनः बतलाया नहीं जा सकता। महर्षिने दो क्षण नेत्र बन्द करके ध्यान किया। उनके ये सर्वसमथ यजमान क्यों तीर्थयात्रा करना चाहते हैं? किसी तीर्थ-का उद्धार करना है? किसी तीर्थमें कोई उत्पात है? महर्षिको समाधान प्राप्त हो गया।

'गङ्गा, यमुना, नर्मदा, सरयू, सरस्वती, गोमती, तापी प्रभृति सभी नदियाँ परम पावन हैं। इनमें गङ्गा सर्वश्रेष्ठ हैं। इनके तो दर्शन मात्रसे सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं। कलिमें नर्मदाके दर्शनसे भी अनेक जन्मोंके पापोंका नाश हो जाता है।' महर्षि वसिष्ठने विस्तारपूर्वक तीर्थोंका वर्णन करके उनका माहात्म्य सुनानेके अनन्तर कहा— 'सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ धर्मारण्य* है। पूर्व कालमें ब्रह्मा, विष्णु, शिवने सब देवताओंके साथ इसीको स्थापित किया था। तुम इसी धर्म क्षेत्रकी यात्रा करो।'

इस यात्रामें श्रीजानकी तो साथ थीं ही, सभी भाई सपत्नीक साथ थे। माताएँ थीं और महर्षि वशिष्ठ पत्नी एवं शिष्योंके साथ थे। अनेक दूसरे नरेश, प्रजावर्गके लोग साथ चले। सेना सुरक्षाके लिए साथ चलती ही। श्रीपवनकुमारको भी साथ ही रहना था।

तीर्थयात्राके समस्त नियमोंका पालन करते हुए अयोध्यासे उत्तरकी ओर प्रस्थान हुआ। आगे जाकर यह यात्री दल पश्चिम मुड़ गया। सहस्रों रथ, गज, अश्व तथा शिविकाएँ थीं। शकट, ऊँट, अश्वतरी यूथ थे भार-

*गुजरातमें अब यह 'घमारण' कहा जाता है। बड़ौदासे यहाँके लिए मोटर बसें जाती हैं। अहमदाबादसे भी मार्ग है।

वहनके लिए। मार्गमें पड़नेवाले ग्राम, नगर पवित्र हो गये। मण्डलीक नरपतियोंने आगे आकर अपने सम्मान्य सम्राट्का सत्कार किया। प्रजाका स्वागत ग्रहण करते, सबको यथोचित पुरस्कार देते, अरण्योंमें पथ तथा सरिताओंपर सेतु-निर्माण करते आनन्दपूर्वक यह तीर्थयात्रा चलती रही।

भगवन्नाम जप, कीर्त्तन, तीर्थस्नान, दानके अतिरिक्त सभी संयम-नियमका पालन कर रहे थे। एकाहार और वह भी हविष्यान्न, भूमि-शयन—तीर्थयात्रीकी आवश्यकता स्वतः कम हो जाती है। दसवें दिन धर्मारण्य क्षेत्रके समीप पहुँचकर श्रीरघुनाथने 'माण्डलिकपुर' में रात्रि-विश्रामका आदेश दिया।

'धर्मारण्य?' जिसने सुना, वही चकित रह गया। लोगोंने समाचार दिया— 'अब तो कोई वहाँकी यात्रा नहीं करता। वह तो अब निर्जन अरण्य है। वहाँ व्याघ्र, सिंह भरे पड़े हैं। सुनते हैं कि उस घोर वनमें यक्ष-राक्षस निवास करते हैं।'

'तब तो उस पावन क्षेत्रका उद्धार आवश्यक है।' मर्यादा पुरुषोत्तमने गम्भीर होकर कहा—'एक अत्युत्तम तीर्थका इस प्रकार उच्छेद नहीं होना चाहिए।'

शत्रुघ्न कुमारने कुछ स्थानीय लोगोंके प्रतिनिधियोंको सम्राट्के सम्मुख उपस्थित किया था। क्योंकि बहुत दूरसे ही अनेक प्रकारकी बातें इस तीर्थ स्थलके सम्बन्धमें सुनी जा रही थीं। लोग अनेक प्रकारकी आतङ्कजनक बातें कहते थे। लोक परम्परामें इस प्रकार भयानक समाचार बहुत बड़े होकर फैलते हैं; किंतु उनके मूलमें कुछ होता अवश्य है।

अयोध्याके यात्री दलमें उत्साह था। सब समझ चुके थे कि उनके सर्वसमर्थ स्वामी इस तीर्थका उद्धार करने ही पधारे हैं। त्रिभुवनको आतङ्कित करनेवाले दशग्रीवका जिन्होंने दलन किया, उनके संरक्षणमें भला भय कैसा? मार्गके लोग भी साथ बढ़ते गये थे। समीपके लोग भी समाचार देकर सावधान करने तथा साथ चलनेको समुत्सुक ही आते थे।

'धर्मारण्य पुनः प्रतिष्ठित होगा!' लोगोंमें यह सम्वाद शीघ्रता-पूर्वक फैलने लगा था—'अयोध्याके सर्वसमर्थ सम्राट्का नाम सुनकर यक्ष-राक्षस भाग गये होंगे। व्याघ्र-सिंह तो उनके साथ आये वानरश्रेष्ठ हनुमानकी गर्जनासे वन-त्यागकर चले जायँगे।'

एक अगम्य धर्म-क्षेत्रके पुनरोद्धारका दर्शन करनेकी उत्कण्ठा बहुत अधिक लोगोंको आकर्षित कर लायी। सब आगतोंके आवास, आहार, यात्राकी समुचित व्यवस्था कुमार शत्रुघ्न सावधानी पूर्वक कर रहे थे।

अब आगे वन अगम्य था। श्रीराघवेन्द्रने गजका त्याग कर दिया और शिविकामें विराजमान हुए। सेनाके अग्रचर दलको स्थानीय व्यवसाय कुशल, शूर, मार्गज्ञाता वैश्योंका मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ। इन लोगोंने उत्साहके साथ श्रीरघुनाथकी शिविका स्वयं उठायी। अचानक कुछ आगे जानेपर सभी वाहनोंकी गति इतनी मन्द पड़ गयी जैसे उनसे चला ही न जाता हो। सेनाने कुमार शत्रुघ्नका ध्यान इधर आकृष्ट किया। उन्होंने श्रीरघुनाथसे प्रार्थना की। श्रीरामने गुरुदेवके समीप जाकर वाहनोंकी गतिरोधका कारण पूछा।

'हम लोग परम पावन धर्मारण्य क्षेत्रमें पहुँच चुके हैं। महर्षिने बतलाया— 'सुरोंने वाहनोंकी गति स्तम्भनके द्वारा यह सूचित किया है कि इस क्षेत्रमें वाहनोंपर बैठकर यात्रा करना उचित नहीं है।'

तत्काल सबने बाहनोंका त्याग कर दिया। सभी पैदल चलने लगे। 'मधुवासनक' ग्राम पहुँचकर श्रीरघुनाथने कुलगुरुके द्वारा निर्दिष्ट पद्धतिसे मातृकाओंकी प्रतिष्ठा तथा पूजन किया। यहाँसे आगे सुवर्णा नदीके दक्षिण तटपर हरिक्षेत्रका निरीक्षण किया। यहाँ यज्ञके योग्य अनेक स्थल देखकर मर्यादा पुरुषोत्तम प्रसन्न हुए। सुवर्णाके उत्तर तटपर सेना तथा साथके यात्रियोका शिविर पड़ा। यहाँ श्रीराघवेन्द्रने सभी देव मन्दिरोंमें पूजन करके उनके जीर्णोद्धारकी आज्ञा दी। पत्नी सहित पितृ श्राद्ध सम्पन्न किया। सुवर्णाके दोनों तटोंपर रामेश्वर तथा कामेश्वर नामसे दो शिव मन्दिरोंकी स्थापना की।

यहाँ रात्रि-विश्रामके समय एक घटना हुई। यात्रियोंमें सब दिनकी यात्रा तथा पूजन-श्राद्धादिके श्रमसे श्रान्त हो जानेके कारण सो गये थे; किंतु श्रीरघुनाथ तीर्थमें प्रथम दिन उपवास तथा रात्रि जागरण करना चाहिए, इस नियमका निर्वाह करते हुए जागृत थे। अचानक अर्धरात्रिमें किसी स्त्रीके रुदनका शब्द सुनायी पड़ा।

'यह अपने शिविरसे दूर इस निर्जन अरण्यमें कौन इतने आर्त स्वरमें रुदन कर रही है?' श्रीराघवेन्द्रने तत्काल उसके समीप दूत

भेजे। 'वे कौन हैं, देवी या दानवी ? किसीने उनको कष्ट दिया है ? उनको तिरस्कृत किया है ? उनका धन-हरण किया है ? उनके किसी स्वजनको मारा है ? वे कठोर शब्दोंका उच्चारण करती क्यों रुदन करती हैं ?'

'देव ! वे यहाँ आना स्वीकार नहीं करतीं।' दूत गये और लौट आये। उन्होंने निवेदन किया—'उनका कहना है कि आप ही उनका मानसिक दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं। वे आपको ही परिचय देंगी और अपना दुःख सुनावेंगी। आप उनके समीप पधारें।'

श्रीरघुनाथने कवच धारण किया। त्रोण कसे और धनुष लेकर तत्काल चल पड़े। किसी अबलापर सङ्कट है तो प्रजापाल उपेक्षा कैसे कर सकता है। उसे प्रस्तुत होकर ही जाना चाहिए। वहाँ जाकर देखते ही लगा कि वे तेजोमयी मानवी नहीं हैं। दोनों हाथ जोड़कर बोले 'मैं इक्ष्वाकु गोत्रीय दाशरथि राम आपको प्रणाम करता हूँ। आप कौन हैं ? आपको क्या कष्ट है ? कृपा करके यह सूचित करें।'

'श्रीराम ! आप सबका दुःख दूर करने वाले साक्षात् परम पुरुष हो। आपने धरापर अवतार लेकर सुरोंका संकट दूर कर दिया। दशग्रीव आपके रोषानलमें दग्ध हो गया। धन्य हैं वे जो आपका दर्शन पाते हैं। जो आपकी सन्निधिमें हैं, वे कृत्य-कृत्य हैं।' उस देवीने स्तवनके अनन्तर करुण स्वरमें कहा—रघुकुल शिरोमणि ! आप जैसे स्वामीके होते भी मैं सूनी हूँ, यह आपका दोष नहीं है ! मैं इस धर्मारण्य क्षेत्रकी अधिदेवता हूँ। आज द्वादश वर्षसे मेरे क्षेत्रके देव मन्दिर अनर्चित पड़े हैं। यहां हिंसक वन्य पशु विहार करते हैं। विप्रोंके कण्ठका वेदपाठ सुननेके अभ्यस्त मेरे श्रवण अब व्याघ्रकी गर्जना सुनते हैं। आप पधारे हैं तो यहाँकी तिर्जनता दूर कीजिए।'

'देवि ! मैं आपके आदेशका पालन करूँगा।' श्रीरामने आश्वासन दिया—'आप इस निर्जनताका कारण बतला दें और यह भी आदेश करें कि यहाँ किनको बसाना है।'

लोहासुरके भयसे यहाँके ब्राह्मण भाग गये। उनके साथ ही यहाँके वैश्य भी दुःखी होकर चले गये।' देवीने बतलाया—'यद्यपि उस दुर्जय, महामायावी असुरको देवताओंने आक्रमण करके मार डाला है; किंतु

उसके आतङ्कसे त्रस्त मनुष्य अबतक लौटकर यहाँ नहीं आ रहे हैं। बारह वर्षसे यहाँके गृह अनाथके समान शून्य हैं। जिन वापियोंमें श्रद्धालु तीर्थयात्री स्नान करते थे, उनमें शूकर लोटते हैं। श्रुतिके स्वरोंके स्थानपर शृगाली-का फेत्कार मुझे सुनना पड़ता है। जिन मण्डपोंमें यज्ञानुष्ठान या वेदपाठ होता था, वहाँ गवय बैठते हैं। यज्ञवेदियोंपर बाँवी बन गयी हैं। आप इस अवस्थासे मेरा उद्धार करें।'

'यहाँके ब्राह्मण अनेक दिशाओंमें चले गये हैं।' श्रीरामने कहा— 'आप उनकी संख्या, गोत्रादि निर्देश करें तो मैं उन्हें आदरपूर्वक बुलानेका प्रयत्न करूँगा।'

'यहाँ अष्टादश सहस्र वेदोंके पारंगत विद्वान रहते थे। उनके पूर्वजोंको ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवने यहाँ स्थापित किया था। वे चौंसठ गोत्रोंके हैं।' देवीने विस्तारसे बतलाकर अन्तमें कहा-- 'उनके साथ यहाँ छत्तीस सहस्र संयमी, सदाचारी वैश्य रहते थे। इस क्षेत्रमें संज्ञाके साथ बकुलादित्य राजा माने जाते हैं। यहाँ धनाध्यक्ष कुबेर तथा दोनों अश्विनी-कुमारका निवास है।'

उस देवीने उस क्षेत्रका आचार, धर्मकृत्य, वहाँके लोगोंके प्राचीन कुलाचारका वर्णन किया। श्रीरघुनाथने आश्वासन दिया— 'मैं यहाँ नगर बसाऊँगा। सत्यमन्दिरकी स्थापना करूँगा।'

देवीके अन्तर्हित होनेपर श्रीराघवेन्द्र शिविरमें लौट आये। दूसरे दिन प्रातः उन्होंने सहस्रों दूत विभिन्न दिशाओंमें इस क्षेत्रके ब्राह्मणों तथा वैश्योंको अन्वेषण करके बुलाने भेजा। बहुतसे उस यात्री दलमें ही निकल आये जो उनके साथ आसपाससे आ गया था। सेवकोंको अधिक कठिनाई नहीं हुई। उस क्षेत्रके लोग बहुत दूर नहीं गये थे। उनको लोग जानते थे और वे भी अपने स्थान लौटनेको उत्सुक थे। राजसेवकोंके द्वारा सत्कार पाकर, सम्मान सहित आग्रह किये जानेसे वे सपरिवार चले आये।

आगत ब्राह्मणोंका श्रीरामने सविधि पूजन किया। उनको भोजन कराके अन्न, धन, वस्त्र, गायें आदि दान कीं। उनके आवासकी सुव्यवस्था करायी। अरण्यको स्वच्छ करा दिया। वहाँके क्रूर प्राणी पहिले ही भाग गये थे।

आगत ब्राह्मणोंमें अधिकांश वीतराग थे। कुछ शिलोञ्छ वृत्तिवाले थे। जो दान लेते भी थे, उन्होंने भी ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवकी अनुमतिके

बिना राजासे प्रतिग्रह लेना अस्वीकार कर दिया था; किंतु महर्षि वशिष्ठ-के द्वारा आवाहन किये जानेपर त्रिदेव प्रकट हो गये। उन्होंने श्रीरघुनाथ-को तीर्थके उद्धारकी तथा ब्राह्मणोंको सहयोग देने की, दान लेनेकी आज्ञा दी।

निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गया। महान निर्माण, सविधि स्थापन, अर्चन-पूजनादिकी स्थायी व्यवस्था, सब उत्साहपूर्वक सम्पन्न हुई। केवल तीर्थके देवस्थानोंका ही निर्माण नहीं हुआ, वहाँके सरोवर, वापी, कूप सबका जीर्णोद्धार हुआ। नगर-निर्मित हुआ। उसकी सुरक्षा-व्यवस्था हुई। उपवन, उद्यान लगे। मार्ग प्रशस्त किये गये। ब्राह्मणोंको तो दानसे ही तृप्त कर दिया। वैश्योंको भी आवास, आवश्यक सुविधाएँ सब प्राप्त हुईं। वाहन सेवकादि मिले।

श्रीराघवेन्द्रने, उनके अनुजोंने तथा साथ आये लोगोंने अनेक नवीन मन्दिर, वापी, कूपादि वहाँ बनवाये। श्रीहनुमानजीको वहाँका क्षेत्र-रक्षक नियुक्त किया। इस प्रकार उस परमपावन क्षेत्रका उद्धार करके, उसे समृद्ध, शोभा सम्पन्न, सर्वसुगम बनाकर श्रीराम अपने साथ गये यात्री समूहके साथ अयोध्या लौटे।

अयोध्या आकर तीर्थयात्राके पश्चात् होने वाला यज्ञ तो होना ही था। उसमें आमन्त्रित होकर सभी सम्बन्धी एवं सामन्तगण पधारे। यज्ञान्तमें सबका समुचित सत्कार हुआ।

माताओंका परलोक प्रस्थान

'अब अनुमति दो वत्स !' एक दिन माता कौसल्यानें नेत्रोमें अश्रु भरकर एकान्तमें श्रीरामसे कहा— 'तुम्हारे पिताको हमारी प्रतीक्षा करते पर्याप्त समय हो गया। तुम्हारे दर्शनकी आशा और भरतकी आकुलताने हममें-से एकको भी उनका अनुगमन नहीं करने दिया। तुम मर्यादा पुरुषोत्तम हो। भली प्रकार जानते हो कि स्त्रीकी परमगति पति ही होता है। हम पुत्र-मोहसे बनी रहें, यह उत्तम आदर्श नहीं होगा।'

'माँ !' श्रीरामके नेत्र निर्झर बन गये। वे जननीके अङ्कमें मुख छिपाकर रुदन करने लगे। एक शब्द भी बोला नहीं गया उनसे।

'वत्स ! तुम्हारे पिताको उचित अवसरपर तुम्हारे करोंकी जलाञ्जलि नहीं प्राप्त हुई।' माताके दृग भी वर्षा कर रहे थे— 'जननीको उससे वञ्चित मत करो। सन्तानको लेकर यही सबसे बड़ी कामना माता-पिताकी होती है। तुममें शरीरके प्रति मोह सम्भव नहीं है। अतः अपनी माताको उसके धर्म पालनमें बल दो।'

'आप एकाकिनी जायँगी ?' श्रीरामने किसी प्रकार पूछा। कोई आशा नहीं थी कि इसका उत्तर 'हाँ' में मिलेगा।

'सुमित्रा सदा मेरी अनुगामिनी रही हैं। वे इस अवसर पर मुझे त्याग दें, यह सम्भव नहीं है। सच तो यह है कि तुमसे पूछनेको उन्होंने ही मुझे बाध्य किया है।' माता कौसल्याने कहा— 'बात तुम्हारी माँ कैकेयीने उठायी तुम्हारा अभिषेक सम्पन्न होते ही। उनका स्वर्गीय महाराजके प्रति कितना दृढ़ प्रेम है, तुम जानते हो। एक दिन ही केवल उनमें कुबुद्धि आयी थी। अब उसके कारण उनका आग्रह अत्यधिक बढ़ गया है। उनका कहना है, तुम सत्पुत्र सिद्ध हुए अपने पितासे उन्हें क्षमा दिलाकर; किंतु अब उन्हें पतिकी सेवामें शीघ्र उपस्थित होना चाहिए।'

'आप तीनों एक साथ अयोध्या त्याग देंगी ?' श्रीराम स्नेह शिथिल कुछ कह नहीं पा रहे थे।

'तीनों ही नहीं, तुम्हारी सब माताएँ ही महाराजका सामीप्य प्राप्त करनेको उत्सुक हैं।' कौशल्याजीने स्नेह पूर्ण स्वरमें कहा—'तुम धर्मज्ञ हो। तुमको अवरोध उपस्थित करनेके स्थानमें हमारा अनुमोदन करना चाहिए। भरत उस समय अत्यन्त आर्त न होते तो एक भी यहाँ रहना नहीं चाहती थी। उस समय अच्छा हुआ। तुम्हारे अभिषेक-दर्शनकी सबकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी। उस समय कैकेयीको अवसर हो प्राप्त नहीं होता। अब तुम पधारो और अपने अनुजोंको प्रस्तुत करो। माताओं-की यह परमसेवा बहुत अप्रिय होनेपर भी पूर्ण कर दो वत्स !'

कर्त्तव्य बहुत निष्ठुर होता है। श्रीरघुनाथको यह सम्वाद भरतको सुनाना पड़ा। लक्ष्मण-शत्रुघ्नने सुना। मन्त्रियोंने सुना। महर्षि वशिष्टने शान्तचित्त अनुमोदन कर दिया। राजसदनमें और नगरमें रुदन व्याप्त हो गया।

माताओंने पुत्र-वधुओंको बहुत कठिनाईसे समझाया—'वत्से ! यह नारीका परम धर्म है। हम तुम्हारे लिए पथ-प्रशस्त कर रही हैं। अपना कर्त्तव्य समझो। अब मनको म्लान मत करो। जिस उत्साहसे आर्य नारी भ्राता और पतिको शस्त्रसज्ज करके संग्राममें भेजती है, उसी उत्साहका अवसर है। हम धर्मके लिए परम प्रस्थान कर रही हैं।'

ब्राह्मणोंको बुलाकर माताओंने उन्हें भरपूर दानसे सत्कृत किया। दास-दासियोंको पर्याप्त पुरस्कार दिये और उनको पुत्र-वधुओंको सौंपा। कैकेयीजीने श्रुति-कीर्त्तिसे विशेष रूपसे कहा—'वत्से ! मन्थरा दासी होनेपर भी मेरी माताके समान रही है।'

'अम्ब ! अब भी वे वैसी ही सम्मानिता रहेंगी।' श्रुतिकीर्त्तिने भरे कण्ठ स्वीकार किया—'उनका संरक्षण मेरे लिए सौभाग्यका, गर्वका कारण है।'

'मत कह वत्से ! ऐसा कुछ मत कह।' मन्थरा उन्मादिनीके समान फटे नेत्रोंसे चारों ओर देखकर बोली—'मन्थरा केवल अपनी रूपमालिनी-के लिए जीवित रही है। अब इसे किसीकी सेवाकी अपेक्षा नहीं है। कर सके तो रामभद्रसे इतना कह देना कि मन्थरा यदि तेरी चिता शान्त होनेसे पूर्व मर जाय तो उसका भी शरीर तेरी चिताग्निको ही समर्पित कर दिया जाय।'

मन्थरा यह कहकर मौन हुई तो फिर वह नहीं बोली। उसने अपने सब वस्त्राभरण कैकेयीकी दूसरी दासियोंको बाँट दिया।

वधुओंको अपने अत्यन्त प्रिय आभरण अपने ही करोंसे पहिनाकर, उन्हें अपने आराधना कक्षकी अर्चाका भार अर्पित करके, अङ्कसे लगाकर राजमाताओंने उनसे विदा ली। उनका बहुत आग्रह होनेपर भी उनको राज-सदनसे बाहर साथ ले जाना स्वीकार नहीं किया। वधुओंने चरण-रज ली। उन्हें आशीर्वाद मिला।

माताओंने सरयू तट पहुँचनेके लिए कोई वाहन नहीं स्वीकार किया। वे अत्यन्त शान्त, चन्द्र शुक्ल वस्त्रधरा, नग्न पद राजभवनसे चलीं तो उनके पादक्षेपके साथ पृथ्वी उन परम सतियोंके चरणोंसे च्युत कुंकुमसे अङ्कित होने लगी। सबसे प्रथम उनकी पुत्र-वधुओंको ही वह कुंकुम प्रसाद प्राप्त हुआ।

अयोध्याके राजपथके अतिरिक्त समस्त सदन सूने हो गये। समस्त नर-नारी राजपथके दोनों ओर अथवा राजपथपर पड़ते भवनोंमें एकत्र हो गये। ब्राह्मणोंने श्रुतिके मन्त्रोंसे स्तवन प्रारम्भ किया। भवनोंसे अनवरत पुष्प-वर्षा चलती रही। शेष सब श्रद्धासे अञ्जलि बाँधे मौन बने रहे।

सम्राट् श्रीराघवेन्द्र अपने तीनों अनुजोंके साथ नग्न सिर, नग्नपद, अनाभरण माताओंके पीछे चलते रहे। माताओंके आगे चले जानेपर लोग उनके पदारविन्दोंसे च्युत कुंकुमकण पानेका प्रयत्न करते थे; किंतु कोई कोलाहल अथवा धक्का-धुक्की नहीं थी। सम्पूर्ण जनसमूह शान्त था। श्रद्धावनत था। किसी पुरुषके शरीरपर कोई आभूषण नहीं था। कोई वाहन कहीं दृष्टि नहीं पड़ता था। मुनियोंके पदोंमें भी पादुका नहीं थी।

सरयूके तटपर चन्दन काष्ठकी चिता-पंक्ति सजी थी। मौन अवनत-वदना माताएँ शान्त स्थिर पदोंसे चलती आयीं। भगवान भास्करने भी मानों मेघावरणमें तिरोहित होकर किञ्चित् अश्रुवर्षा की। माताओंने सरयू स्नान किया। वैसे ही आर्द्र वस्त्र उन्होंने अपने दिवङ्गत पतिको तिलाञ्जलि दी। महर्षि वशिष्ठके पदोंमें मस्तक झुकाया। ब्राह्मणोंको अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया। इसके पश्चात् चिताओंकी परिक्रमा करके वे उसके ऊपर आस्तृत कुशासनपर बैठ गयीं। प्रत्येकने पतिका कोई-न-कोई वस्त्र अपने अङ्कमें ले रखा था।

मूर्त्तिमान तपस्या इतनी तेजस्विनी नहीं हो सकती। श्रीरामको, सभी पुत्रोंको, प्रजावर्गको सबने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। अब महामन्त्री सुमन्त्रने श्रीरामकी ओर देखा। संकेत समझकर देवी कौसल्या बोलीं— 'नहीं सुमन्त्र ! सतीके आह्वानपर आनेमें अग्निदेव प्रमाद नहीं किया करते। अग्न्यार्पणका अप्रिय कर्म किसीको करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

'अम्ब !' सुमन्त्र फूटकर रो पड़े; किंतु अब अवसर नहीं था। माताओंने नेत्र बन्द कर लिए थे। उन्होंने अपने भुवन पावन पतिके पादारविन्दका ध्यान किया।

कहना कठिन है कि अग्निदेवको उनके सहज शुद्ध शरीरोंकी आहुति प्राप्त हुई। उन चिताओंसे एक साथ अद्भुत अत्युज्वल प्रकाश पुञ्ज प्रकट हुए और आकाशमें ऊपर दूर तक जाते स्पष्ट देखे गये। उन देवियोंका शरीर ज्योतिःपुञ्जमें परिवर्तित होकर अन्तरिक्षमें अदृश्य हो जानेके पश्चात् अग्निदेव उन चिताओंमें प्रकट हुए। उन्हें केवल वे चन्दन काष्ठकी चिताएँ, उनपर आस्तृत कुश प्राप्त हुए भस्म करनेको और प्राप्त हुई व सुगन्धित औषधियोंसे समन्वित घृत कलशोंकी आहुतियाँ जो इस अन्तिम शरीरमेघ यज्ञके अङ्गरूपमें रघुकुल गुरुने निर्दिष्ट कीं।

बहुत शीघ्र वे चिताएँ शान्त हो गयीं। महर्षिके आदेशानुसार श्रीराम तथा उनके अनुजोंने सचैल स्नान करके तर्पण किया। भस्म-प्रवाह किया अञ्जलि जल उलीचकर। ब्राह्मणोंने, ऋषियोंने, स्वयं महर्षि वशिष्ठने सचैल स्नान करके जलाञ्जलि दी। इस परमतीर्थपर, इस परमपर्वमें स्नान करके अञ्जलि देनेका सौभाग्य सुरोंने भी नहीं छोड़ा। वे मानव रूपमें मनुष्योंमें आ मिले।

उत्तर क्रिया सविधि सम्पन्न होनी ही थी। श्रीचक्रवर्ती महाराजकी उत्तर क्रियामें भरतने कुछ उठा नहीं रखा था; किंतु उस समयकी परिस्थिति भिन्न थी और आजकी स्थिति भिन्न। मूर्धाभिषिक्त नरेशको सूतक स्पर्श नहीं करता। श्रीरामको मरणाशौच प्राप्त नहीं होता था। शेष समस्त कृत्य सम्पूर्ण विधिसे चलते रहे। पूरे राज्यमें—सम्पूर्ण पृथ्वीमें राजकीय शोक मनाया गया। सभी स्वजन-सम्बन्धी पधारे। त्रयोदशाहके पश्चात् सम्बन्धियोंको सादर श्रीरघुनाथने विदा किया।

दिनचर्या

अव्यवस्थित दिनचर्या अशान्त मानस एवं अपूर्ण व्यक्तित्वका प्रतीक है। मर्यादा पुरुषोत्तम पृथ्वीपर मानवकी धर्म मर्यादाके स्थापनार्थ पधारे थे, अतः उन्हें श्रुति-शास्त्र सम्मत दिनचर्याका भी आदर्श स्थापित ही करना था। उनकी दिनचर्या सम्राट्की दिनचर्या ; किंतु सामान्य व्यक्तिके लिए भी उसमें बहुत कुछ अपनाने योग्य आदर्श हैं। आज वह हमारे लिए भले अशक्य हो ; किंतु हमारे पूर्व पुरुष कैसा जीवन व्यतीत करते थे, एक आदर्श आस्तिक व्यक्तिका भारतमें दैनिक जीवन कैसा था, यह इसका परिचायक है।

ब्रह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें अर्थात् सूर्योदयसे तीन घण्टे पूर्व ही निद्रा त्यागकर प्रथम मुख-कर प्रक्षालन करके शय्याके समीप रखे आसनपर आसीन होकर स्थिर चित्त ध्यान करते थे मर्यादा पुरुषोत्तम ! अपने स्वरूपका ध्यान - निर्मल, निष्कल, निर्विकार, अद्वितीय। एक रस परिपूर्ण परम तत्त्वका ध्यान।

नियमतः सम्राट्का उत्थापन मङ्गल वाद्यों तथा बन्दीजनोंके स्तवनसे होता था ; किंतु वस्तुतः तो यह उत्थापन निद्रात्याग नहीं था। श्रीजनकनन्दिनी ही जानती थीं कि सम्राट् स्वतः जागृत होते हैं। मङ्गल वाद्य एवं वन्दियोंका यशोगान तो उनका ध्यानसे जागना बनता है। ध्यानसे उठकर वे पुण्य श्लोक पुरुषोंका—अपने कुलके महान पूर्वजोंका, ब्रह्मा-शिव प्रभृति अपनी विभूतियोंका स्मरण करके नित्य शौचसे निवृत्त होते हैं।

विशुद्ध नवनीत कोमल मृत्तिका एवं ऋतुके अनुकूल उष्ण, कवोष्ण अथवा शीतल जल प्रस्तुत रहता है हस्त-पाद मार्जन-प्रक्षालनके लिए। सुगन्धित औषधि सम्पुटित दन्तधावन सम्राट्के लिए भिषक् श्रेष्ठ स्वयं निर्मित करते हैं। उसका उपयोग करनेके पश्चात् अनुजोंके साथ सरयू स्नान करने पधारते हैं। स्नान, सन्ध्या, सूर्योपस्थान, नित्य-हवनके

अनन्तर देव मन्दिरोंमें दर्शन करके लौटनेमें पर्याप्त विलम्ब होता है। राजसदन आकर भी पहले गो-पूजन, मङ्गलगज, अश्व, मधु, घृत, एवं आदर्श (दर्पण) का दर्शन करके तब वस्त्राभरण, अङ्गराग, पुष्पमाल्य धारण होता है।

कोई कर्त्तव्यमें प्रमाद नहीं करता ; किंतु एक निश्चित नियम है कि सम्राट् अङ्गराग, पुष्पमाल्य, आहार अथवा ताम्बूल ग्रहणसे पूर्व पूछेंगे ही एक-एक स्वजन, सेवक, सेविकाका नाम लेकर कि वह पदार्थ उन सबको प्राप्त हो गया अथवा नहीं। केवल श्रीजानकी और हनुमान इसके अपवाद हैं। इन्हीं दोनोंको सम्राट्के सेवनके अनन्तर ये पदार्थ प्रसाद रूपमें प्राप्त करनेका स्वत्व है। शेष सबको—सभी सेवकोंको ये पदार्थ प्रथम प्राप्त हो चुके हों, तभी सम्राट् इन्हें स्वीकार करेंगे। ऋतुओंके अनुसार, दिनके अनुसार, पर्वके अनुसार वस्त्र, आभरण, अङ्गराग, पुष्पमाल्यके रङ्गमें, जातिमें परिवर्त्तन होता है।

अलंकृत होकर श्रीराघवेन्द्र पितृ-तर्पण करते हैं। ब्राह्मणोंका पूजन करके उनको गौ, अन्न, वस्त्र, स्वर्णादिका दान करते हैं। तब सदनसे बाहर राज-दर्शनको उपस्थित प्रजावर्गके लोगोंसे मिलनेके पूर्व भाइयोंको, स्वजनोंको, नगरके सुहृद-सखाओंको समय मिलता है। उनसे उनका वृत्त पूछते हैं। उचित सम्मति एवं सहायता देते हैं। प्रजाजनोंसे मिलते समय उनके उपहार स्वयं सप्रेम स्वीकार करते हैं। उनके समाचार पूछते हैं। उनको तथा सेवकोंको भी सत्कृत करते हैं, पुरस्कृत करते हैं।

यह सब करते हुए मध्याह्न हो जाता है। भाइयोंके साथ पुनः सरयू-स्नान करने पधारते हैं। मध्याह्न स्नान, सन्ध्या करके राजसदन लौटने-पर पहिले आगत अतिथियोंको, ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं स्वयं। इससे पूर्व गौओंको, अग्निको, पक्षियोंको उनका भाग प्राप्त हो चुका होता है। वृद्धोंको, वृद्ध सेवक-सेविकाओं तकको भोजन कराके तब भाइयोंके साथ स्वयं भोजन करते हैं। आचमनके अनन्तर ताम्बूल ग्रहण करके अत्यल्प समय मिलता है मध्याह्न विश्रामको। यह समय भी निद्राके लिए नहीं है। इस समयमें अन्तःपुरकी नारियोंको, सेविकाओंको अपनी बात सम्राट्-को सुनानेका समय मिलता है।

दिनका तृतीय प्रहर भारतीय दिनचर्यामें उपार्जनका काल है—लौकिक कर्तव्य पूरा करनेका समय। इससे पूर्व ही सम्राट् उठकर

अलङ्कार, अङ्गराग, पुष्पमाल्य धारणकर लेते हैं और हनुमानको आगे करके रथमें विराजमान होकर राजसभामें उपस्थित होते हैं। कुलगुरु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ, सभी मन्त्रीगण, प्रजा प्रधान, सब भाई उपस्थित मिलते हैं राजसभामें। अयोध्याके सम्राट्की राजसभा—किसी भी दिन कोई लोक-पाल, दिक्पाल, कोई सुर, देवता, यक्ष, किन्नर, नाग सम्राट्की सेवामें उपस्थित हो सकते हैं।

राजसभाके और सदनके, नगरके भी सेवक अत्यन्त विनम्र हैं। सब जानते हैं कि सम्राट् आगतसे कुशल-प्रश्नके समय अवश्य पूछेंगे—आपको यहाँ कोई असुविधा तो नहीं हुई ? नगरमें, राजसभामें आपको सुविधापूर्वक पहुँचाया गया ? उचित वाहन प्राप्त हुआ आपको ? पान्थशालामें प्रबन्ध ठीक है ?'

आगत अस्वीकार ही न कर दे तो उसे नगर द्वारसे रथमें लाया जाता है। सेवक आग्रह करते हैं कि वह पान्थशालामें आहार अथवा अल्पाहार स्वीकार करके तब सम्राट्के समीप जाय। अपरिचित ऋषि, मुनि विप्रवर्ग राजसभामें प्रवेश करते ही— 'सावधान !' शब्दोच्चारण करते हैं, सम्राट् स्वयं उठकर उन्हें प्रणाम करते हैं, आसन देकर अर्घ्य, पाद्यादि निवेदित करते हैं।

देवता ही नहीं, अनेक बार दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नागोंके प्रमुख पधारते हैं। मानव नरेश, कला प्रवण लोग अथवा वन्य जातियोंके लोग भी आते हैं। कोई दिन नहीं जाता जब शतशः अभ्यागत राज-दर्शनार्थ न आते हों। आगतोंकी कभी ही कोई समस्या होती है। अधिकांश लोग आते हैं सम्राट्का दर्शन करने और उनके श्रीचरणोंमें अपना कोई अतिशय प्रिय उपहार निवेदित करने।

श्रीराघवेन्द्र किसी भी वन्य पुरुषको, किसी अत्यन्त दरिद्र-कृशकाय तापसको, किसी सेवक वर्गसे आये व्यक्तिको देखकर सिंहासनसे उठकर दौड़ पड़ सकते हैं! अस्त-व्यस्त उसे उठाकर हृदयसे लगाकर पुलक-पूरित हो सकते हैं। निषादराज गुह प्रायः प्रतिदिन आते हैं। प्रतिदिन उनके साथ यही होता है। श्रीराम उनसे ऐसे आतुर मिलते हैं जैसे युगोंके पश्चात् मिले हों।

भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान, सुमन्त्रादि सब सतत सावधान रहते हैं। लेकिन भक्तवत्सल, अनन्त दयार्णव, उदार शिरोमणि सम्राट्

सबके अपने हैं। ये भाववश्य—प्रतिदिन राजसभामें आनेवाले नगरके सखा, प्रजा प्रधान तकको कभी नहीं लगा कि श्रीरामका ध्यान आज उनकी ओर कम गया। प्रत्येक आगतका उसके भावके अनुसार सत्कार करनेमें ये ही समर्थ हैं। अनेकके सम्बन्धमें आदेश हो जाता है— 'आपने अपने रामको इतना पराया समझा कि पान्थशालामें ठहरे।'

इतना पर्याप्त होता है। भाइयोंमें लक्ष्मण या शत्रुघ्न उस आगतका सब उपकरण पान्थशालासे राजसदन उठा ले जायँगे। श्रीरघुनाथ स्वयं उसे लेकर राजसदन न भी जायँ तो भरत अवश्य उसके साथ जायँगे। अब दिनमें अनेक बार सम्राट् उसके सम्बन्धमें पूछेंगे। विदा होते समय आगतोंको सम्राट्के अत्यधिक उपहार तो प्राप्त होंगे ही, वाहन प्राप्त होंगे और अधिकांशको सम्राट् स्वयं पहुँचाने चल पड़ेंगे।

श्रीरामका स्वभाव ही है कि परिचित-अपरिचित कोई मिले, स्वयं स्मितपूर्वक उससे पहिले बोलेंगे। उसका सङ्कोच स्वयं दूर कर देंगे। ऐसे मिलेंगे जैसे वह बहुत-बहुत परिचित हो उनसे। सचमुच इन सर्वसुहृदसे कोई अपरिचित कैसे हो सकता है।

राजसभाका समय नियत तो है प्रजाको न्यायदान करनेके लिए; किंतु कभी कोई न्यायकी माँग करने आवे, ऐसा अवसर ही प्रजाको प्राप्त नहीं होता। एक ही निश्चित अभियोग है, बार-बार उपस्थित होता है। कभी भी कोई वणिक्, प्रजाप्रधान, वन्य जातिका सेवक उपस्थित होकर किसी राजकर्मचारीके विरुद्ध उपस्थित कर देता है। प्रायः कुमार शत्रुघ्नके विरुद्ध यह अभियोग उपस्थित होता है—

'हमें सम्राट्की सेवासे वञ्चित किया गया है। हमारे उपहार अस्वीकृत हुए हैं। हमारा अनधिकार? हमारा अपराध क्या है? हम षष्ठांशसे अधिक दे रहे हैं, यह सत्य है; किंतु सम्राट् क्यों हमें परिग्रहके लिए बाध्य करें। हम इतने उत्तम गज, अश्व, गौ या रत्न, मणि, औषधि क्या करेंगे? यह राजसेवाके उपयुक्त—लेकिन इसे स्वीकृति क्यों नहीं मिलती? कुमार तथा दूसरे राजसेवक हमारी अनुपस्थितिमें अथवा हमारी अस्वीकृतिकी उपेक्षा करके हमारे यहाँ इतने बहुमूल्य उपहार क्यों रखवा देते हैं?'

इन अभियोगोंका एक ही उत्तर सम्राट्के समीप है। ये सस्मित कह देंगे— 'राजसेवक तथा कुमार शत्रुघ्न जानते हैं कि आप अपने इस सेवक-

के, जिसे आपने सम्राट् बना दिया है, स्वजन हैं। अतः आपको अपने आपको असुविधामें, अल्पभोगमें रखनेका अधिकार नहीं है। आप क्यों मानते हैं कि आपका सदन सम्राट्का नहीं है और सम्राट्की वस्तु अयोध्या ही आनी चाहिए। वह आपके यहाँ सुरक्षित रहे, आप उसका उपयोग करके उसे कार्यक्षम बनाये रहें तो आवश्यकता होनेपर मैं मँगा ले सकूंगा।'

दिवसके तृतीय प्रहरके अन्तमें राजसभा विसर्जित होती है। सम्राट्-कभी अपनेको विदार ध्वज स्यन्दनपर और कभी महागजपर जो चतुर्दन्त, श्वेत पर्वतके समान शुभ्र एवं विशाल है, बैठकर नगर-दर्शनके लिए निकलते हैं।

भवनोंसे लाजा, दूर्वाङ्कुर, पुष्प, केशर-चन्दनकी अनवरत वर्षा होती रहती है। वाद्य बजते चलते हैं, ब्राह्मण वेदपाठ करते, सूत-मागध-बन्दी स्तवन करते साथ होते हैं। सब भाई, पवनकुमार, प्रायः सब मन्त्री एवं प्रजा प्रधान भी साथ होते हैं। केवल ऋषिगण राजसभासे अपने आश्रम चले जाते हैं।

सम्राट् पान्थशाला देख सकते हैं। वहाँ रुके किसी अभ्यागत विशेषसे मिल सकते हैं। नगरमें किसी सुहृद या श्रेष्ठिके सदनमें कुछ क्षणोंको पधार सकते हैं। किसी देवमन्दिरमें, ऋषि आश्रममें अथवा किसी शिल्पी, कवि, चित्रकारकी कला-शालाको कृतार्थ कर सकते हैं। नगरके किसी फलोद्यान, पुष्पोद्यान, वापी अथवा सरोवरको देखने जा सकते हैं। किन्हीं भी औद्योगिक संस्थानोंको देख सकते हैं। राजसभासे उठनेपर सम्राट् स्वयं अकस्मात् ही सूचित करते हैं कि वे आज किधर पधारेंगे।

पथोंके दोनों ओर आपण श्रेष्ठी करोंमें उपहार लिए खड़े रहते हैं। स्थान-स्थानपर नीराजन होता है। प्रायः सम्राट्की ओरसे श्रीभरतलाल उपहार स्वीकृत करते हैं और पारितोषिक देते, घोषित करते चलते हैं। सम्राट् जहाँ पधारते हैं, वहाँके सदनपति, सेवकादि सबको विशेष रूपसे पुरस्कृत किया जाता है।

मार्गमें कहीं कोई भी आगे आ सकता है। अपना आवेदन प्रस्तुत कर सकता है; किंतु ऐसा अवसर नहीं आता। होता यह है कि सम्राट् स्वयं किसी तपस्वीको, वृद्धको, नगरश्रेष्ठिको या सेवकको समीप बुला लेते हैं। जो उन्हें क्षीणकाय, अल्पधन, अल्प सज्जित लगे, अवश्य बुला लेंगे— 'आप इतने अपरिग्रही, इतने वीतराग हैं।'

अब वह कितना भी अस्वीकार करे, उसका सामान्य भवन भी विशेष बन जायगा। उसमें अपार सम्पत्ति एवं बहुमूल्य उपकरण आ जायँगे। बालकोंको तो विशेष रूपसे सम्राट् समीप बुलाकर स्नेह करते हैं। उनके उपहार स्वयं स्वीकार करते हैं और साग्रह उन्हें पुरस्कृत करते हैं। प्रायः साम्राज्ञी इस नगर-भ्रमणमें साथ नहीं होतीं; किंतु अवसर विशेष-पर वे साथ होती हैं। उस समय नारियोंका सत्कार बढ़ जाता है।

नगर भ्रमणके अनन्तर सायं स्नान, सन्ध्या-तर्पणका नित्यकर्म सम्पन्न होता है और तब श्रीराघवेन्द्र रात्रिके प्रथम प्रहरमें कथास्थलमें पधारते हैं। राजसदनकी स्त्रियाँ तथा नगरकी सम्मानित महिलाएँ भी पृथक स्थानमें बैठती हैं। श्रीशिवशर्माजी तो प्रधान कथा वाचक हैं ही, आगत ऋषि-महर्षि, विद्वान भी पुराण, इतिहास अथवा शास्त्रका प्रवचन करते हैं।

रात्रिके द्वितीय प्रहरके प्रारम्भमें अल्पाहार करके सम्राट् अपने निजी मन्त्रणा कक्षमें गुप्तचरोंसे विवरण सुनते हैं। मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करते हैं। यह कार्य अल्प समय लेता है। भाइयोंको भी यह समय प्राप्त होता है। इससे अवशिष्ट समय मध्य रात्रि तक राज सदनके सामान्य कक्षमें नागरिक एवं राजसदनके सदस्योंके साथ कलाजीवी—कवि, विदूषक, नृत्य-सङ्गीतकारोंकी कलाको देखने और उन्हें पुरस्कृत करनेका है।

मध्यरात्रिमें सम्राट् अपने अन्तःपुरके शयनागारमें पधारते हैं। यह सामान्य दिनचर्या है। विशेष पर्वोंपर, उत्सवोंके समय, किसी सम्मानित जनके आगमनपर, कोई विशेष नाट्याभिनय अथवा नगरमें कहीं किसीके यहाँ महोत्सव होनेपर इस दिनचर्यामें तदनुकूल परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन होता ही रहता है। सामान्य दिनचर्याको ही इतना कम समय मिलता है कि वह विशेष बन गयी है। सम्राट्को आखेट-यात्रा भी करनी होती है और राज्य-भम्रणकी यात्राएँ भी। उनकी विशेष व्यवस्था बनती है।
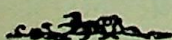
गया श्राद्ध

अर्थपुरुषार्थी संसारमें सदा होते रहे हैं। भोग अर्थात् कामपुरुषार्थी तो सभी प्राणी है। सबको ऐन्द्रिय भोग प्रिय है और इसीकी प्राप्तिको अपना लक्ष्य मानते हैं ; किंतु ऐसे भी लोग समाजमें सब कहीं कुछ-न-कुछ मिलते ही हैं जो धनके लिए धन चाहते हैं। जिनका उपार्जन एवं संग्रह न दानके लिए है, न स्वजनोंके काम आता है, न स्वयं उसका उपभोग करते हैं। लेकिन अर्थ जैसे भी आवे , उसमें निरन्तर लगे रहते हैं। ये अर्थ-पुरुषार्थी लोग हैं।

बहुत कम होते हैं मोक्ष पुरुषार्थी। अर्थ , धर्म , काम तीनोंसे मुख मोड़कर परम पुरुषार्थ मोक्ष—जन्म-मरणके चक्रसे परित्राण पानेके प्रयत्नमें लगे लोग मोक्ष पुरुषार्थी हैं। ये अल्प होते हैं समाजमें ; किंतु सर्वदा—सब कहीं ऐसे पवित्र पुरुष होते आये हैं , होते हैं।

सबसे कम हुए हैं धर्म पुरुषार्थी। धर्म साधन है अर्थका और—काम-का भी। पुण्य प्रारब्धका ही फल अर्थ तथा भोग है। अतः ऐहिक ऐश्वर्य तथा सुख-सम्पत्तिके लिए और स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिए यज्ञ , दान , तप प्रभृति धर्माचरण करने वाले संसारमें बहुत अधिक लोग होते हैं। धर्म अन्तःकरणको शुद्ध करता है यदि निष्काम आचरित हो , अतः मोक्ष-पुरुषार्थी धर्मात्मा तो होंगे ही। अतः अर्थ , काम , मोक्ष तीनों पुरुषार्थोंमें धर्म साधन है , सहायक है। तीनोंके अभीप्सु धर्मका आचरण करते हैं।

धर्मके लिए धर्म—धर्माचरणका फल अर्थ अथवा भोग नहीं , स्वर्गादि लोक नहीं और मोक्ष भी नहीं , केवल इसलिए धर्माचरण कि वह प्रिय लगता है। वैसा करना स्वभाव बन गया है। ऐसे धन्य व्यक्ति धर्म-पुरुषार्थी हैं। अत्यल्प हुए हैं संसारमें ; किंतु हुए हैं , अतः धर्मको भी पुरुषार्थ—पुरुषका परम प्राप्य माना गया है।

सत्पुरुष मानवों और देवताओंमें ही होंगे और असुरोंमें सदा अधर्मी ही होंगे , ऐसा नियम नहीं है। असुरोंमें दानवेन्द्र मय , दैत्येन्द्र प्रह्लाद ,

विरोचन, बलि, बाणासुर जैसे भगवद्भक्त महापुरुष हुए हैं। ऐसे ही महत्तमोमें एक धर्मपुरुषार्थी महाप्राण दानव गय थे।

दानवोत्तम गय आस्तिक थे। भगवान नारायणके भक्त थे ; किंतु सर्वथा निरपेक्ष—संसारके सुख, सम्मान, पद-प्रतिष्ठा-सम्पत्तिसे निरपेक्ष। स्वर्गसे ही नहीं, वैकुण्ठसे भी निरपेक्ष और मोक्षसे भी निरपेक्ष। वे धर्म-पुरुषार्थी थे। तप करना उन्हें प्रिय था, केवल इसलिए तप कर रहे थे। निराहार, निर्जल स्थित थे और कुछ चाहते नहीं थे।

सृष्टिमें कहीं भी एक गुणकी अत्यधिक वृद्धि सृष्टिका सन्तुलन बिगाड़ती है और प्रलय तककी सम्भावना उपस्थित कर देती है। गयमें सत्त्वगुण बहुत बढ़ गया तो अन्यत्र उसे घटना ही था। सत्त्वात्मक देवताओं-को कष्ट होने लगा। सृष्टिमें सवत्र रजस-तमसका प्राबल्य अनवसर होने लगा। सृष्टिकर्त्ताको चिन्ता हुई। वे हसवाहन गयके समीप आये। वरदान माँगनेको कहा ; किंतु गयका तो कुछ चाहिए ही नहीं था।

'वत्स ! तुमको कुछ नहीं चाहिए ; किंतु मैं तुम्हारे समीप याचक बनकर आया हूँ।' ब्रह्माजीने स्वयं याचना की—'तुम्हारे तपः शुद्ध शरीरसे अधिक पवित्र कोई स्थान मेरी सृष्टिमें नहीं है। मैं यज्ञस्थल बनाना चाहता हूँ तुम्हारे शरीरको।'

'प्रसन्नता पूर्वक बनावें।' गय लेट गये। उनके वक्षके ऊपर स्रष्टाने कुण्ड बनाकर यज्ञारम्भ किया। सहस्र वर्ष चला वह यज्ञ ; किंतु गयके दिव्य तपः प्रभावसे उनका एक रोम भी नहीं जला। यज्ञकी पूर्णाहुतिके अनन्तर गयके उठ खड़े होनेकी सम्भावनाने ब्रह्माजीको उलझनमें डाल दिया। उन्होंने भगवान विष्णुका स्मरण किया। श्रीहरि पधारे। गयके वक्षपर चतुर्भुज गदाधर खड़े हुए।

'ब्रह्माजी ! मैं चाहूँ तो अब भी उठकर खड़ा हो सकता हूँ।' गय हँसकर बोला—'किंतु मेरे वक्षपर मेरे आराध्य स्थित हैं। जबतक ये यहाँ स्थित हैं, मैं उठनेकी अशिष्टता नहीं करूँगा।'

'वत्स ! मैं कल्पपर्यन्त श्रीविग्रहरूपमें तुम्हारे वक्षपर स्थित रहूँगा।' भगवान विष्णुने कहा—'मेरी प्रसन्नताके लिए तुम कोई वरदान माँग लो और स्वीकार कर लो कि मैं तुम्हारे शरीरको एक परम तपस्विनीको शिलारूप देकर आच्छादित कर दूँ।'

'आपको जो प्रिय हो, करें।' गयने वरदान माँगा— 'आगे कलिमें लोग अधर्मरत, आस्थाहीन, आचारहीन हो जायँगे। वे अपने पितरोंका भी श्राद्ध-तर्पण नहीं करेंगे। जो करेंगे भी वे विधिके अज्ञानसे, पदार्थ दोषसे, पात्र दोषसे पितरोंको प्राप्त नहीं हो सकेगा। फलतः प्रायः पितृ-लोक स्थित सभी पितर क्षुधा-पिपासासे पीड़ित रहेंगे। अतः आप मुझे वरदान दे दें कि मेरे इस सात कोस विस्तीर्ण शरीरपर कहीं कोई आकर विधिपूर्वक, अविधि पूर्वक, कैसे भी सर्षप मात्र रेणुका पिण्ड भी किसीका स्मरण करके दे दे तो उसके उन पितरोंकी अक्षय तृप्ति हो जाय। उनका श्राद्ध-तर्पण न होनेपर भी उनकी अधोगति न हो। उन्हें कष्ट न हो।'

'एवमस्तु !' श्रीहरिने गयको वरदान दे दिया। उसका शरीर दिव्य शिलासे आच्छादित करके उसके वक्षस्थानपर स्वयं गदाधर रूपसे स्थित हुए। गयके वक्षपर उनका चरणचिह्न स्थापित हुआ।

श्रीरामके होने तक इक्ष्वाकुवंशमें कोई अल्पपुण्य हुआ नहीं था। परमपावन रघुवंशमें प्रायः सब मुक्त पुरुष हुए थे। कोई सम्भावना नहीं थी कि कोई पूर्वज पितृलोक (प्रतीक्षा लोक) में होंगे। सामान्य भगवद्-भक्त जिस कुलमें उत्पन्न होता है, उस कुलके इक्कीस पीढ़ियोंके पूर्वजोंका उद्धार हो जाता है। जिस कुलमें स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम अवतीर्ण हुए, उस कुलके किसीका उद्धार होना शेष रहा ?

उद्धार तो उसका हो जाता है—सदा होता रहेगा जो अपनेको मानसिक रूपसे भी श्रीरामके पावन पदोंका सेवक स्वीकार कर लेगा। उनके कुलोद्भव होनेका भान हृदयमें आकर उद्धारक हो जाता है ; किंतु वे मर्यादा पुरुषोत्तम लोक मर्यादाकी स्थापनार्थ धरापर पधारे थे, अतः उन्हें पितृ-तर्पणकी परम्परा भी प्रदर्शित करनी थी। उन्होंने गया-श्राद्धका निश्चय किया।

सभी स्वजन सम्बन्धियोंको सूचना भेज दी गयी। सबसे आग्रह किया गया कि वे अपने दिवंगत जनोंकी नामावली भेज दें। राज्यमें घोषणा कर दी गयी कि—'सम्राट् गया-श्राद्धके निमित्त यात्रा करेंगे। प्रजाजनोंमें जो भी पितृ-पिण्ड दानार्थ चलना चाहें, सम्राट्के साथ सबके लिए समुचित व्यवस्था रहेगी। तीर्थमें भी सबको अपने तीर्थ कर्मकी पूरी सुविधा प्राप्त रहेगी।'

सामान्य प्रजाजनोंने ही नहीं, अनेक सम्बन्धी नरेशोंने भी सम्राट्के साथ जानेका निर्णय कर लिया। प्रजाजनोंमें सभी वर्णोंके लोग साथ हो गये। तीर्थ-यात्री यदि राजकीय द्रव्य अथवा आहारका उपयोग न करना चाहें तो उनपर कोई दबाव न पड़े, इस सावधानीके साथ सबकी सुरक्षा तथा अन्य आवश्यकताओंकी सम्पूर्ण व्यवस्था हो गयी।

अयोध्याके श्मशानमें अर्घ्य देकर, पितरोंका आवाहन करके, श्रीराम-जनकनन्दिनीके साथ गैरिक वस्त्र पहिनकर नियमपूर्वक चले। यात्रा रथके द्वारा ही होती थी; किंतु गया यात्रीके सम्पूर्ण नियमोंका निर्वाह यथाविधि किया जा रहा था। आभूषण त्याग दिये गये थे। श्रीवैदेहीके शरीरपर भी केवल सौभाग्यके मङ्गल-चिह्न मात्र शेष थे। एकाहार और वह भी फलाहार अथवा हविष्यान्न ही होता था। यात्रामें भूमिपर ही तृणाशन पर शयन होता था। अल्पभाषण, नाम-स्मरण तथा दूसरे भी सब नियमोंका पूरा पालन चल रहा था।

गयाके यात्रीको मार्गमें पड़नेवाले प्रधान तीर्थोंपर पिण्डदान करना चाहिए। श्रीराघवेन्द्र सामान्य सरिताओं तथा तीर्थोंपर भी सविधि पिण्ड-दान करते जा रहे थे। सर्वत्र ब्राह्मणोंको दान देकर सन्तुष्ट करते थे। अनेक स्थानोंपर सरोवर, वापी, पान्थशाला अथवा देव मन्दिरकी स्थापनाका सङ्कल्प करते गये और राज्यकर्मचारियोंने अविलम्ब उनका कार्य प्रारम्भ कर दिया।

मार्गमें मुख्य तीर्थस्थल वाराणसी पड़ता था। काशी नरेशने सम्राट्का स्वागत किया; किंतु तीर्थयात्री आतिथ्य नहीं स्वीकार किया करता, यह मर्यादा काशी नरेशको भी माननी ही थी। वाराणसीमें स्नान, तर्पण, पिण्डदान, भगवान विश्वनाथ, अन्नपूर्णादिका दर्शन अर्चन करके श्रीरघुनाथने इस अविमुक्त क्षेत्रमें स्वयं शिवलिङ्गकी स्थापना की। मन्दिर निर्माण कराया और तीर्थपुरोहितोंको, विद्वानोंको तपस्वियोंको दानसे सन्तुष्ट किया।

गया क्षेत्रका प्रथम स्नान एवं पिण्डदान पुनपुन नदीपर होना ही था। आज जो पिण्डदानकी वेदियाँ गयामें हैं, वे तो कालक्रमसे स्थापित हुई हैं। उनमें बहुत अधिक लुप्त हो चुकी हैं। जब जहाँ किसी दिव्य तेजा देवता, ऋषि या पुण्य श्लोकने श्राद्ध किया, वह स्थान उसके नामकी

वेदी बन गया और दूसरोंके लिए वह पिण्डदानका प्रधान क्षेत्र बन गया। अन्यथा सम्पूर्ण गया क्षेत्र ही पिण्डदानके लिए प्रशस्त है। उसमें प्रधान वेदी विष्णुपद ही है।

श्रीरामने जिस पर्वतपर पितृश्राद्ध किया, वह राम शिलाके नामसे ही प्रसिद्ध हो गया। उस समय तक प्रसिद्ध वेदियोंपर तथा विष्णुपदपर भी श्राद्ध-पिण्डदान करना ही था।

गयाकी सरिता है फल्गु। यह वर्षाके अतिरिक्त अन्तः सलिला ही रहती है। इस पावन नदीके क्षेत्रमें तीर्थ पुरोहित रेणुका हटाकर स्थान-स्थान-पर उथली वापी बना देते हैं। उसीके जलसे यात्री वहाँ स्नान तथा तर्पणादि करते हैं।

श्रीराघवेन्द्रने पितृपक्षके प्रारम्भमें श्राद्ध प्रारम्भ किया था। उस समय फल्गुमें जल रहता है। अतः रेणुका हटाकर बनायी गयी वापियोंमें स्नान तर्पणादिकी आवश्यकता नहीं थी।

पुनपुन स्नान पिण्डदानके पश्चात् प्रथम दिनका स्नान-तर्पण, पिण्ड-दान फल्गुपर होता है। विधान तो ऐसा है कि तीर्थ यात्री प्रत्येक दिन प्रथम फल्गुपर स्नान तर्पण करके ही अन्य वेदियोंपर जावे और जहाँ सरोवर हैं, वहाँ स्नान-तर्पण करे; किंतु आजका अल्पप्राण दुर्बलकाय मानव ऐसा कर नहीं पाता। त्रेतामें तीर्थ निर्मल थे। मानवोंमें अपार श्रद्धा थी और उनका शरीर स्वस्थ, सबल, सक्षम था।

फल्गुमें वर्षामें भी प्रायः कटि पर्यन्त कभी कदाचित् वक्ष पर्यन्त जल रहता है। श्राद्धपक्षमें यात्री पैदल उसे पार करके सीता कुण्डपर जाते हैं। इस नामके पड़नेका भी कारण है। फल्गुपार करके श्रीरघुनाथ उस पादुका क्षेत्रमें पिण्डदान करने पधारे तब उनके स्नान, तर्पणके समय श्रीजनक-नन्दिनी फल्गुको रेणुकापर बैठ गयीं और विनोदवश सहज ढङ्गसे उन्होंने दक्षिण करमें गीली रेणुका लेकर उसे पिण्डाकार प्रदान किया। सहसा फल्गुके जलसे महाराज दशरथका हाथ कुहनी तक ऊपर उठ आया। उसकी हथेली फैल गयी, जैसे स्वर्गीय महाराज अपनी पुत्र-वधूसे प्रस्तुत पिण्ड माँग रहे हों। श्रीजानकीने स्वसुरका कर पहिचान लिया, अतः संकुचित हो गयीं। उन्होंने रेणुका पिण्ड भूमिपर विसर्जित कर दिया।

श्रीरघुनाथने तर्पणके अनन्तर पिण्डदान प्रारम्भ किया। प्रत्येक दिन पितर प्रत्यक्ष होकर पिण्ड स्वीकार करते थे। आज स्वर्गीय श्रीचक्रवर्ती महाराज प्रकट नहीं हुए। श्रीरामको आश्चर्य हुआ, दुःख हुआ। वे प्रार्थना करने लगे। अन्ततः महाराज प्रकट होकर बोले— 'वत्स ! चिन्ता या दुःखकी बात नहीं है। इस क्षेत्रमें श्राद्धकर्ता सपत्नीक हो तो पिण्ड पत्नी ही निर्माण करती है। हम पितरोंको स्थूल पदार्थ तो प्राप्त करना नहीं रहता। हमें तो स्थूल शरीर प्राप्त नही है। पदार्थके माध्यमसे हम कर्ताकी श्रद्धा प्राप्तकर परितृप्त होते हैं। आज मेरी पुत्र-वधूने रेणुका पिण्ड बनाया। मैंने उसकी परीक्षाके लिए हाथ फैलाया ; किंतु हाथपर पिण्ड देकर उस धर्ममयीने विधि भङ्ग नहीं किया। उसके भूमिपर उत्सर्जित पिण्डसे मैं परितृप्त हो गया, अतः पुनः अर्पित पिण्ड स्वीकार करने आनेकी आवश्यकता नहीं थी।'

तबसे उस स्थानका नाम सीता कुण्ड पड़ गया और यात्री वहाँ रेणुका पिण्ड प्रदान करें, यह विधि बन गयी। जिनका सङ्कल्प सृष्टि, स्थिति, संहारका मूल है, उनकी क्रिया ही तो शास्त्रकी शाश्वत विधि है।

विष्णु पद प्रभृति स्थानोंमें श्राद्ध करके, अक्षयवटके नीचे पिण्डदान तीर्थ पुरोहितका पूजन करके, उन्हें भोजन करा तीर्थ कार्य सम्पन्न हुआ और श्रीराघवेन्द्र लौटे। साथ गया तीर्थ यात्रियोंका समूह लौटा। सबने सविधि अपने-अपने पितरोंका श्राद्ध किया था। मार्गमें लौटते सबकी स्वतः वाराणसी पुरीकी तीर्थ यात्रा सम्पन्न हो गयी।

अयोध्या लौटनेपर यज्ञादि करके काषायवस्त्र विदा करके समाट् तथा साम्राज्ञीने वस्त्रालङ्कार धारण किया। स्वभावतः इस अवसरपर सभी स्वजन-सम्बन्धी आये थे। उन्हें सादर सत्कृत करके ही विदा किया जाना था। वे अयोध्याके महोत्सव तथा सम्राट्की प्रशंसा करते गये।

सम्बन्धियोंका सत्कार

आश्रित-कार्य-निर्वाहकत्त्व, आश्रयण सौकर्या पादकत्व, सर्व-शास्त्रज्ञ, उपासित-सर्वलोक श्रीराममें ही ये दिव्य सद्गुण निवास करते हैं। विलक्षण प्रतिभावान प्रत्युत्पन्न मति श्रीराघवेन्द्र ही सबकी भाव रक्षा करनेमें समर्थ हैं।

महाराज जनकने यह नियम नहीं रखा कि कन्याके पति गृह नहीं जाना चाहिए। वे अपनी पूरी व्यवस्थाके साथ विशेष अवसरोंपर अयोध्या आ जाते हैं। राज्याभिषेकके समय पधारे और प्रत्येक तीर्थ-यात्रासे लौटनेपर श्रीरघुनाथ उन्हें आमन्त्रित करते ही हैं। प्रत्येक यज्ञमें भी उन्हें आना है।

अयोध्याके सम्मुख सरयूके दूसरे तटपर महाराजने अपने आवासका सुनिश्चित स्थान बना लिया है। मिथिलाके सेवक आकर स्थान स्वच्छ करते हैं और वहाँ वस्त्र, शिविरोंका एक भव्य नगर बस जाता है। प्रत्येक सामग्री, सब सेवक मिथिलासे आते हैं। इस प्रकार महाराज विदेह अयोध्या आकर भी अपने नगरमें निवास करते हैं। अपनी कन्याओंसे वहीं मिलते हैं। सरयूके पार अयोध्यामें आते हैं केवल राजसभामें अपने सम्राट जामाताको उपहार अर्पित करने।

'आप ही हमारी प्रतिष्ठा हैं, पालक हैं। आपकी कृपासे मैं दशग्रीवपर विजय पा सका। अयोध्या आपकी है।' श्रीराम हाथ जोड़कर प्रत्येक विदाके समय खड़े हो जाते हैं— 'दोनों वंशोंमें प्रीति बनी रहे, ऐसा आशीर्वाद दें। भरत सेवामें साथ जायँगे और हमें कुछ तो अर्चाका अवसर प्राप्त होना चाहिए।'

'मैं तुम्हारे दर्शनसे तृप्त हूँ। तुम साक्षात् परात्पर पुरुष मेरी दृष्टि-के सम्मुख हो, यही मेरा परम सौभाग्य है। केवल भरत नहीं, तुम चारों भाई मिथिला पधारो तो हमारी पुत्रियोंको भी अपनी मातासे मिलनेका अवसर प्राप्त हो।' महाराज जनक अयोध्याके उपहार तो स्वीकार नहीं

कर सकते। वे सौजन्यसे, स्नेहसे कह देते हैं— 'वत्स ! ये वस्तुएँ, यह रत्नराशि मैंने स्वीकार कर ली। अब इन्हें मैं अपनी पुत्रियोंको प्रदान करता हूँ।'

प्रत्येक बारका यह आमन्त्रण स्वीकार कर लिया जा सके ऐसी परिस्थिति नहीं होती ; किंतु इस प्रेमाग्रहको सदा अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। अनेक बार चारों भाई सपत्नीक सपरिकर मिथिला पधारते हैं। वहाँका स्वागत, स्नेह, सत्कार—यह भाव-प्राण हृदयोंके चिंतनका धन है। प्रत्येक वार ऐसा ही उत्साह, ऐसा ही स्वागत जैसे रघुवंशी कुमार विवाहके प्रथमावसरपर ही पधारे हैं। केवल इतना अन्तर कि सङ्कोच कम हो गया हैं अन्तःपुरमें।

प्रत्येक बार विदा होते समय वही व्याकुलता, वही स्नेह, वही अपार सामाग्री जैसे महाराज विदेह पुत्रियोंको अभी विवाह करके ही विदा कर रहे हों।

मिथिला आना होता है तो सचमुच अयोध्यासे बारात ही आती है। श्रीराघवेन्द्र ही तो अकेले जामाता नहीं हैं मिथिलाके। श्रीरामके विवाहके समय जो बाराती आये थे, उनमें जितने बाराती आये थे, उनमें जितने युवक थे, वे सभी तो विदेहपुरीसे विवाहित होकर लौटे थे। जनकपुरके जन-जनके घरोंमें विवाह मण्डप बने थे। अयोध्यासे आये ब्राह्मणसे लेकर सेवकों तकको जनकपुरके लोगोंने दम्पत्ति बनाकर विदा किया था। अब अयोध्याके घर-घरमें जनकपुरकी कन्याएँ हैं। सभी वर्णोंके गृहोंमें जनकपुरके उन वर्णोंकी बधुएँ विद्यमान हैं। साम्राज्ञीके साथ ही पितृगृह-दर्शनका पुनीत नियम बना लिया है सबने। अतः अब अयोध्यासे उन सबको साथ लेकर जाना पड़ता है और वे साथ ही लौटती हैं।

यहाँ भारतीय परम्पराका एक नियम स्मरण रखने योग्य है। कन्या केवल सङ्कट कालमें पतिसे पृथक रहती थी। ऐसे अवसरपर वह जैसे अन्यत्र उचित स्थानमें शरण ले 'सकती' थी पितृगृह भी रह सकती थी ; किंतु सामान्य समयमें पतिके साथ ही पितृगृह रहती थी। पतिसे पृथक पितृगृह जाने और रहनेकी प्रथा प्राचीन नहीं है।

श्रीराघवेन्द्र जब कभी जनकपुर पधारते थे, भाइयोंके साथ और उन सब वयस्कोंके साथ ही पधारते थे, जो जनकपुरमें विवाहित थे।

जनकपुरके घर-घरमें कन्या-जामताओंका सत्कार सम्पन्न होता था। महाराज विदेह बहुत कठिनाईसे विदा करना स्वीकार करते थे। एक-एक यात्रासे लौटनेमें कई-कई महीने लगना स्वाभाविक था। मिथिला महोत्सवमयी हो उठती थी। रघुवंशी कुमारोंके सत्कारके नित्य नवीन आयोजन, विदा माँगनेपर भी अनेक उत्सव, अनेक वृहदायोजन बाधक बनते थे। ऐसा मधुर संयोग भी क्या कोई समाप्त करना चाहता है। विदा तो विवशता ही थी दोनों पक्षोंकी।

'बहिनने हमें कुछ कहने योग्य नहीं रखा है।' बड़ा सङ्कोच था कैकेयके युवराज कुमार युधाजितको—'सम्राट्का अनुग्रह कि हमें उपहार अर्पणका अवसर प्राप्त हुआ।'

'आप ऐसा कहकर हमें क्यों लज्जित करते हैं? छोटी अम्बाके अनुग्रहसे ही तो राम लोकोत्तर सुयश अर्जित कर सका है।' श्रीराम राज्याभिषेकके अनन्तर विदा करते समय युधाजितके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये थे— 'मातुल! यह राज्य आपका है। हम चारों भाई आपके आज्ञानुवर्ती हैं। आप ही हमारे संरक्षक, निर्देशक हैं। आप हमारी अल्प सेवा स्वीकार करें। लक्ष्मण आपको पहुँचाने जा रहे हैं।

'यह सामग्री अयोध्या ही रहनी चाहिए।' कुमार युधाजित अयोध्याका उपहार तो स्वीकार नहीं कर सकते थे। विनम्र स्वर बोले—सम्राट्के सौजन्य एवं सौहार्दने साहस दे दिया है कि मैं पिता श्री की प्रार्थना सेवामें उपस्थित करूँ। वे चाहते हैं कि आप चारों भाई कैकयको कृतार्थ करें।

'मातुल! उन आदरणीयका आदेश स्वीकार करके हम सब प्रसन्न होंगे।' श्रीराम भी समझते थे कि कैकेय नरेशके साथ सुखद सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए उनका आतिथ्य स्वीकार करना आवश्यक है। उनके मनमें जो ग्लानि, जो कुण्ठा आ गयी है, उसे समाप्त किया जाना चाहिए। अत: आमन्त्रण स्वीकार करके कहा—'किंतु मातुल! अभी दीर्घकालके पश्चात् मैं अयोध्या आया हूँ। बहुत दूर है हमारा यह ननिहाल। अत: समय मिलते ही लक्ष्मणके साथ मैं आऊँगा। यहाँ शासनकी सुरक्षाकी दृष्टिसे भी दो भाइयोंका रहना आवश्यक है।'

परम नीतिज्ञ युधाजितसे अविदित नहीं था कि भरत कैकेयीको माता नहीं कहते हैं। वे युधाजितको भी मातुल सम्बोधन नहीं करते। अत:

वे कैकय जाना स्वीकार करेंगे, इसकी कोई सम्भावना नहीं है। इस तथ्यको ध्यानमें रखकर भरतके आनेका आग्रह उचित नहीं था। इससे कटुता उत्पन्न होनेकी आशङ्का थी। भरतके साथ ही शत्रुघ्न रहेंगे, यह सुनिश्चित तथ्य था। अतः कुमार युधाजित राज्याभिषेकके अनन्तर सम्राट्का लक्ष्मणके साथ कैकय आनेकी स्वीकृति लेकर सानन्द लौट गये थे।

श्रीराघवेन्द्र जब तीर्थयात्रा करके लौट आये, यात्रान्तमें अयोध्याके महायज्ञका आमन्त्रण कैकय भी पहुँचा। इस बार कुमार युधाजित अपने पिता कैकय नरेश महाराज अश्वपतिका पत्र लेकर आये थे। यज्ञान्तमें सम्बन्धियोंके विदा हो जाने तक वे रुके रहे। श्रीरामने इस बार उनके आग्रहको स्वीकार कर लिया। लक्ष्मणके साथ वे कैकय पधारे।

महाराज अश्वपतिने इन भागनेयोंका अभूतभूर्व स्वागत किया। राज्यके दूसरे सब कार्य स्थगित कर दिये गये। कुमार युधाजित निरन्तर श्रीराम-लक्ष्मणके साथ रहते ही थे, स्वयं महाराज अश्वपति अधिकांश समय देते थे इनके समीप।

संसारका सुन्दरतम प्रदेश कैकय और वहाँ भूमण्डलके सम्राट् सम्मान्य अतिथि होकर नहीं आये थे, दौहित्र बनकर पधारे थे। समस्त नागरिकोंके स्नेह भाजन—सारा कैकय स्वागतमें उमड़ पड़ा था। पूरे राज्यके नागरिकोंका आग्रह था—'कमसे कम एक दिनका सत्कार सौभाग्य उनके नगरको प्राप्त होना चाहिए।'

राजधानीमें, मातामहके समीप रहनेका तो अवसर ही अत्यल्प प्राप्त हुआ। राज्यके समारोहोंमें सम्मिलित होते, पर्वतीय मनोरम उपत्यकाओंमें भ्रमण करते, विभिन्न स्थानोंके नागरिकोंके आग्रहको सम्मान देते ही कई मास व्यतीत हो गये। अत्यन्त सङ्कोचके साथ माता-महसे विदा लेनी पड़ी।

सबसे अधिक सुविधा प्राप्त थी मगध नरेश महाराज सुमित्रको। उनको पृथक आग्रह करने अथवा आमन्त्रण देनेकी आवश्यकता ही नहीं थी। अयोध्याके राजकुमारोंको उनके राज्यमें होकर ही मिथिला जाना था और जाते समय वे तभी शीघ्र विदा पा सकते थे जब लौटते समय मातामहके

यहाँ कुछ दिन रुकनेका आश्वासन देकर जायँ। महाराज सुमित्रको दौहित्रोंका सपत्नीक आतिथ्य करनेका अवसर सुलभ होता था। वे तो बहुत कठिनाई से अयोध्याके अन्य लोगोंको दो-चार दिन पश्चात् विदा करते थे।

'महाराज मिथिलेशका आमन्त्रण ही मेरा आमन्त्रण मान लिया करो।' महाराज सुमित्रने श्रीरामसे सहास्य कहा था—'सम्राटका स्वागत करने योग्य मगध हो या न हो अपने दौहित्रोंको स्नेह देने योग्य अवश्य है।'

'आप हमारे पूज्य हैं, परमादरणीय हैं।' संकोचमें आकर श्रीराम अञ्जलि बाँध लेते थे—'अयोध्या आपके अनुग्रहसे सुरक्षित है। हम सब तो आपके आशीर्वादसे पोषित हैं।'

दक्षिण कोशलकी स्थिति सर्वथा भिन्न थी। दक्षिण कोशलके नरेश अयोध्यासे सम्बन्धके पूर्व भी अयोध्याकी राजसभाके सामन्त थे। इस पदको वहाँ परम्परामें परम गौरवार्ह माना जाता था। अतः सम्बन्धके पश्चात् भी वहाँके युवराज अयोध्यामें ही अधिक रहते थे। राजसभाके महत्त्वपूर्ण अधिवेशनोंमें उनको उपस्थित रहना था। राजसभामें उनका स्थान महामन्त्रीके समान बन गया था।

यह सब था; किन्तु वहाँके युवराज सम्राटको अपने यहाँ आमन्त्रित करनेका साहस नहीं कर पाते थे। श्रीरामने भी उन्हें कभी इस संकोचमें नहीं डाला। दक्षिण कोसल भाइयोंके साथ पधारनेका श्रीराघवेन्द्रका ढंग ही अन्यत्रसे भिन्न था। चाहे जब वे वहाँके युवराजको सूचित करते थे—'मातुल! हमारे साथ आपको आखेट-यात्रा करनी है। समाचार मिला है कि आपकी ओर वाराह बहुत बढ़ गये हैं। उनमें एकलोंने आतङ्क उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया है। आपको हम अवसर नहीं देते और मातामह वृद्ध हो चुके। हम चारों भाई चलेंगे। आपको आतिथ्य एवं आखेट दोनोंकी व्यवस्था करनी है।'

यह यात्रा आखेट-यात्रा कम होती थी, मातामहका सत्कार स्वीकार करना अधिक होता था। केवल सामान्य अरण्यके आसपास बसे ग्रामजनोंको वनके एकत्र पशुओंके आतङ्कसे मुक्त करना होता था और वह कार्य ऐसा नहीं था कि दक्षिण कोशलके शूर न कर सकते हों। यह तो जानबूझकर सम्राट एवं उनके अनुजोंको आमन्त्रित करनेका उपाय था। उनके

लिए यह आखेट सुरक्षित रखा जाता था। एकल पशुओंकी पूरी गतिविधि स्थितिकी जानकारी रखी जाती थी।

सृष्टिमें कौन है जिसका श्रीरामसे सम्बन्ध न हो? इन सर्वसुहृदसे जिसे अपने सम्बन्धका ज्ञान न हो, वह भाग्यहीन। अयोध्याके सम्बन्ध पूरे संसारमें थे।

'सब भाइयोंके साथ सम्राट्को हमारे यहाँ पधारना है।' किसी भी नरेशका आमन्त्रण कभी आ सकता था। ऐसे आमन्त्रण आते ही रहते थे। एक साथ अनेक आमन्त्रण—आग्रहपूर्ण आमन्त्रण आते थे—'इस बार हमारे आग्रहको स्वीकृत करनेका अनुग्रह करें।'

क्षत्रियोंके ही नहीं, विप्रोंके, ऋषि-मुनियोंके, प्रसिद्ध व्यापारियोंके आमन्त्रण आते थे और अनेक स्थान थे जहाँ अनामन्त्रित स्वयं जाना आवश्यक था। कोई भावका धनी अपने अन्तरमें आकुल अभीप्सा लेकर एकान्तमें पुकारेगा तो अयोध्यानाथ उसके यहाँ पधारनेमें आमन्त्रणकी अपेक्षा करेंगे? उसकी मूक पुकार अस्वीकृत होगी?

श्रीसीताराम अयोध्याको त्यागकर कहीं नहीं जाते। अवधकी प्रजाको प्रतिदिन इनका दर्शन प्राप्त होता है। किसी सम्बन्धीका, किसी भावुकका आग्रह अस्वीकृत नहीं होता। सम्राट भाइयोंके साथ, अनेक बार साम्राज्ञीके साथ भी जाते हैं और कहीं तो कई महीने निवास करते हैं। दोनों बातें सत्य हैं। समस्त विपरीतताओंका जिनमें सन्निवेश होता है, उनके सम्बन्धमें यह बात आश्चर्यजनक तो नहीं है।

———

महायाज्ञी

अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय ये तीनों यज्ञ राजाके ही करनेके हैं। तीनोंमें बहुत कम अन्तर है। राजसूयको जीवनमें सम्राट् एक ही बार कर सकता है। जब कोई यह यज्ञ कर लेता है, उसके जीवनकालमें दूसरेको उससे अधिक शक्तिशाली हो जाने पर भी यह यज्ञ करनेका अधिकार नहीं हुआ करता। राजसूय यज्ञ सम्पन्न हो जानेका अर्थ है सार्वभौम सम्राट् पदकी प्राप्ति।

राजसूय यज्ञमें अश्व नहीं छोड़ा जाता। सम्राटके प्रतिनिधियोंको सेनाके साथ समस्त पृथ्वीके नरेशोंसे कर ले आना चाहिये। यह आवश्यक नहीं है कि दूसरे नरेश पराजित होकर ही कर दें। अनेक बार तो नरेशकी अनुपस्थितिमें राज्य-सेवक कर दे देते हैं। अनेक बार युद्ध करनेके अनिच्छुक सौजन्यवश अथवा उपेक्षापूर्वक कुछ भेंट भेज देते हैं। कर क्या हो, कुछ निर्णय नहीं है। केवल सम्राटकी स्वीकृतिका प्रतीक है कर और वह कैसे भी प्राप्त हो गया, कुछ अल्प भी आ गया तो कार्य सम्पन्न हो गया। इस प्रकार पृथ्वीके समस्त राज्योंसे कर प्राप्त करके राजसूय यज्ञ सम्पन्न होता है।

वाजपेय यज्ञमें अश्वपूजन होता है; किन्तु अश्व छोड़ा नहीं जाता। केवल घोषणा कर दी जाती है कि अमुक नरेश वाजपेय करने जा रहे हैं, जिनको उनको सम्राट् न स्वीकार करना हो, वे आकर बाधा उपस्थित करें। इसमें दूसरे नरेशोंको आकर आक्रमण करनेकी चुनौती दी जाती है। अवश्य ही यह कार्य शक्तिशाली नरेशोंके लिए भी सरल नहीं होता। अपने राज्यसे दूर जा कर किसी पर आक्रमण करनेके लिए उससे कई गुनी शक्ति आवश्यक है। अतः अधिकांश नरेश ऐसी चुनौतियोंकी अपेक्षा कर देते हैं।

अश्वमेध इन दोनों—राजसूय तथा वाजपेयसे भिन्न है। इसमें सब कुछ अश्वपर निर्भर है। मन्त्रपूत दिव्यशक्ति सम्पन्न अश्वको सञ्चालित नहीं किया जाता। उसका अनुगमन किया जाता है। वह स्वयं जहाँ चाहे,

जाय। वह सम्पूर्ण पृथ्वी घूमे या थोड़े स्थानों पर घूमकर लौट आवे, उसकी इच्छा। यज्ञ अश्वके लौटने पर ही सम्पन्न होता है। अश्वके भाल पर स्वर्णपट्ट बँधा रहता है—'अमुक अश्वमेध-दीक्षितका यह अश्व है। जहाँ से जा रहा है, वह हमारा विजित प्रदेश माना जायगा। जिसमें शौर्य हो, साहस हो, शक्ति हो, वह अश्वको पकड़े।'

अश्व प्रायः उन राज्योंमें अवश्य जाता है, जहाँ उसके पकड़े जानेकी सम्भावना हो। यह उसके मन्त्रपूत होनेका प्रभाव है। पकड़े जाने पर युद्ध करके उसे प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। अपने राज्यमें आये अश्वको पकड़कर युद्धकी चुनौती स्वीकार कर लेना सरल है। इस प्रकार अन्य राज्योंको पराजित करके अश्व लौटा लानेके लिए बहुत अधिक शौर्य एवं शक्ति आवश्यक है।

भारतमें आस्तिक व्यक्तिकी महत्त्वाकांक्षी थी यज्ञ। भारतीयकी शक्ति, साधन, उपार्जन, उपभोगके लिए नहीं था। यज्ञके लिए जो जितना बड़ा साधन-सम्पन्न उसका उतना महान यज्ञ। संग्रह ही यज्ञके लिए था, हिन्दूका जीवन यज्ञ और महोत्सव यज्ञ।

यज्ञका अर्थ होता है संग्रहका सुरों तथा समाजके लिए उत्सर्ग और साथ-साथ कठोर संयम एवम् श्रम। केवल धनसे यज्ञ नहीं होता। उसके लिए पर्याप्त सहयोगी तथा शरीरमें तप करनेकी शक्ति आवश्यक है।

श्रीरघुनाथके राजकालमें राज्य-समृद्धिकी सीमाका भी अतिक्रम कर चुका था। जन-जन अपने अधिपतिके प्रति अनुरक्त था। अतः इस सुयोगका परम लाभ तो यज्ञ ही था। भोग तो जीवनका लक्ष्य भारतने कभी माना नहीं और श्रीरामके राज्यमें कहीं कोई उपद्रव था नहीं कि उसे शमित करनेके लिए समय देना आवश्यक हो।

राजसूय एक ही बार होना सम्भव था। वह सानन्द सोत्साह सम्पन्न हो गया। अश्वमेधकी मर्यादा है—सौ अश्वमेध करने वाला शतक्रतु इन्द्र पद प्राप्त करता है। इन्द्र जिनका सेवक कहनेमें अपना गौरव मानते थे, वे क्यों शतक्रतु बननेकी स्पर्धा करें? अतः श्रीरामने वाजपेयको उत्तम माना। यह यज्ञ भी निष्काम—केवल प्रजाको—विप्रोंको सन्तुष्ट करनेके लिए। संग्रहीत धनके वितरणका उच्चतम आदर्श उपस्थित करनेके लिए यह शुभारम्भ था।

प्रत्येक यज्ञके आरम्भमें सब सम्बन्धी, सब वानर-यूथप आमन्त्रित होते थे। सब अयोध्या आते थे। सब सामन्तगण, ऋषि-महर्षि अयोध्या पधारते थे आमन्त्रित होकर। यज्ञान्तमें भी पर्याप्त समय रुककर तब स्वजन-सम्बन्धियोंको, विभीषणको, सुग्रीवादि वानर-यूथपोंको विदा प्राप्त होती थी। अयोध्याको उत्सव-नगरी बननेका अवसर प्राप्त हो गया था।

अयोध्याके समीप सरयूके दोनों तटोंपर दूर-दूर तक प्रायः यज्ञ-धूम उठता रहता था। यज्ञ-मण्डप बनता था तो उसके समीप ऋत्विकोंका, आचार्यका, ऋषि-मुनियोंका आवास आवश्यक था। यज्ञमें दीक्षित यजमान सपत्नीक, सहायकोंके साथ यज्ञशालासे लगी पत्नीशालामें रहेगा ही। सामग्रीके लिए सेवकोंके लिए भी आवास बनना ही था। इस प्रकार एक पूरा महानगर बन जाता था। आगत राजाओंके शिविर पड़ते थे आसपास।

यज्ञ-कालमें यजमान सपत्नीक संयमपूर्वक रहता है। दोनों आभरण और उत्तम वस्त्र त्याग देते हैं। तैल, अभ्यंग, अङ्गराग, पुष्पमाल्य वर्जित होता है। वेदिकापर कुशास्तरणके ऊपर शयन, हविष्यान्न भोजन, त्रिकाल स्नान-सन्ध्या, यह तो अनिवार्य है ही। यजमान-पत्नी रात्रि-जागरण करके अश्व-परिचर्या करती हैं। यजमानको पत्नीके साथ यज्ञ-शालामें हवन तथा देव-पूजन करते ही प्रायः सात घण्टे प्रतिदिन लगते हैं। मध्याह्न-विश्रामके समय यज्ञशालामें ही कथा-कीर्तन होता है और उसमें यजमानको उपस्थित रहना ही है।

एक वाजपेय यज्ञ कमसे कम सहस्र दिन लेता है। श्रीरामने तेरह सहस्र वर्ष राज्य किया।* इस राज्यकालमें उन्होंने एक सहस्र वाजपेय यज्ञ किये। एक यज्ञमें यज्ञकालके अतिरिक्त उसकी प्रस्तुतिमें, ऋत्विकों तथा सम्बन्धियोंको आमन्त्रित करने तथा उनके आगमनमें और यज्ञान्तमें आगतोंको विदा करने, स्थान स्वच्छादि करनेमें भी समयका लगना स्वाभाविक होता है। सहस्र दिनों तक चलने वाले महायज्ञको फिर प्रारम्भ करनेके लिए पाँच-सात वर्षका अन्तराल अल्प ही कहा जायगा। अतः श्रीरामका तेरह सहस्र वर्षका राज्यकाल एक महायाजीका शासनकाल था जो प्रायः यज्ञ-दीक्षित ही रहा करता था। साम्राज्ञीके साथ कठोर संयम एवं तपका यह जीवन आज तपस्वीके भी लिए कल्पनासे परे है।

---

*श्रीमद्भागवत ९.११.१८। कुछ ग्रन्थोंमें ग्यारह सहस्र वर्षका भी वर्णन है। कल्पभेदसे दोनों वर्णन सत्य हैं।

'आप यही अनुग्रह करें कि सदा हमारे हृदयमें निवास करें।' राजाओंको, ऋषियोंको, सबको सम्राटसे यज्ञान्तमें यही प्रार्थना करनी थी।

यज्ञान्तमें श्रीराम होताको पूर्व दिशाका, ब्रह्माको दक्षिण दिशाका, अध्वर्युको पश्चिमका और उद्गाताको पूर्व दिशाका राज्य अर्पित करके मध्यका सम्पूर्ण राज्य आचार्यको दान कर देते थे। अश्व, गज, गौ, अन्न, वस्त्रादि सर्वस्व दान कर देते थे। साम्राज्ञी श्रीजानकीके शरीरपर भी सौमङ्गल्य चिह्न ही शेष रह जाते थे।

'हम ब्राह्मण शासन नहीं कर सकते, अतः आप यह राज्य हमारा प्रसाद मानकर स्वीकार करें।' महर्षियोंको राज्य लेकर क्या करना था। दूसरे राजाओंके उपहारार्पणसे राज्यकोष परिपूर्ण हो जाता था।

यज्ञान्तमें आगत पशु-पक्षी तकको आहार, दानसे समृद्ध करके सबके साथ सम्राट् अवभृथ स्नान करते थे। विदाके समय श्रीराम प्रायः वानरेन्द्र सुग्रीवसे कहते थे—'अङ्गद तुम्हारे सुपुत्र हैं। इनका सत्कार करना।'

'आप सब हमारे सुहृद हैं। सगे भाइयोंके समान हैं। आपने मुझे विपत्तिसे बचाया है।' जाम्बवन्त, नल, नीलादिसे बार-बार कहते थे। सुग्रीवसे कहते थे—'इन्होंने मेरे लिए प्राणों तकके उत्सर्गकी चिन्ता नहीं की। तुम इनका सम्मान करना।'

'तुम धर्मज्ञ हो। मैं तुम्हारा आदर करता हूँ।' विभीषणको बार-बार सम्राट् स्मरण कराते थे—'लङ्काके राक्षसोंके पिछले अपराध भूल जाना। धर्मपूर्वक राज्य करो। मेरी और सुग्रीवकी स्मृति रखना। हमारी शक्ति तुम्हारे साथ है।'

'हनुमान्! तुम्हारे एक-एक उपकारके बदले प्राण भी दे दूँ तो कम है। तब भी तुम्हारे शेष उपकारोंका ऋणी रहूँगा।' श्रीरामने भरी सभामें अनेक बार कहा गद्‌गदकण्ठ—'तुमपर कभी ऐसा अवसर न आवे कि मैं प्रत्युपकार कर सकूँ।'

'सदा आपके इन श्रीचरणोंमें मेरी भक्ति बनी रहे।' पवनकुमार व्याकुल होकर चरण पकड़ लेते थे। अपने कण्ठकी मणिमाला श्रीरामने अपने करोंसे आञ्जनेयको पहिना दी थी।

बड़े कष्टसे, रुदन करते ही सबको यज्ञान्तमें विदा होना पड़ता होगा। था। यही आश्वासन था कि शीघ्र अयोध्यासे दूसरे यज्ञका आमन्त्रण प्राप्त होगा।

श्रीजानकीका दोहद

आह्निक चर्या तो चलती ही है ; किंतु विशेष अवसरोंके विशेष कृत्य भी होते हैं, पूर्वाह्नमें सम्राट् और साम्राज्ञी दोनों देव-सेवामें पृथक-पृथक लगे होते हैं। श्रीजनक-नन्दिनीने सासुकी देवार्चना उनके रहते ही सम्हाल ली थी। अपराह्न उनका सासुओंकी सेवामें व्यतीत होता था, जब वे थीं और उनकी अनुपस्थितिमें सम्राट्के साथ राजसभामें रहना पड़ता है।

राजसदनके अन्तःपुरका प्रबन्ध सम्हालनेका कार्य करती तो श्रुति-कीर्ति ही हैं ; किंतु उनकी तीनों बड़ी बहिनें मानतीं ही नहीं कि वे बच्ची नहीं रही हैं। सब चाहती हैं कि वे संलालित होती रहें। वे स्वयं साग्रह लगी रहती हैं, अतः कोई उन्हें वारित नहीं करता। सेवक-सेविकाओंका, सम्राट् एवं उनके अनुजोंका, आगत अतिथियोंका सब प्रबन्ध वे स्वयं देखती हैं। प्रतिदिन जो अपरिमित दान होता है, सहस्रशः विप्रवर्ग भोजन करता है, उस सबकी व्यवस्था वे बनाये रखती हैं।

साम्राज्ञीपर कोई भार नहीं है। वे राजसभामें और राजकीय यात्रामें सम्राट्के साथ न हों तो अपने सदन एवं उद्यानमें विराजें। उनसे मिलनेवाली मुनि-पत्नियाँ, नगरकी वृद्धाएँ, कुलवधुएँ इतनी आती हैं। उन्हें इससे अवकाश ही नहीं मिलता।

माण्डवीजीका वेश अवश्य परिवर्तित हो गया भरतके नन्दिग्रामसे राजसदन लौट आनेपर ; किंतु वे उपासनामयी हैं। उन्हें देवसदनमें ही प्रायः पाया जाता है। उनको कलाकी आराधना भी अपने उपासना-कक्षके एकान्तमें ही सूझती है।

स्वभावसे सहज शासिका, तेजस्विनी हैं उर्मिला। जैसे राजसदनकी श्री हों साक्षात्। कहती हैं— 'बड़ी जीजीको अपनी आवश्यकताओंका ही स्मरण नहीं रहता। माण्डवी जीजी तो पूजाकी प्रतिमा हैं। जैसे चाहे वैसे उन्हें बैठा दो और सज्जित कर दो। श्रुतिकीर्ति करती सब है ; श्रम-

शीला है ; किंतु बच्ची है। उसे समझाना पड़ता है। आदेश देना पड़ता है।'

अन्तःपुरके उद्यानसे लेकर सबके अपने भवनोंमें, अश्वशाला, गोशाला, गजशाला तकमें क्या स्थिति है, क्या परिवर्तन आवश्यक है, सबकी सुधि रखती हैं उर्मिला। सब कहीं उनके आदेश पहुँचते हैं। अन्तःपुरमें ही नहीं, राजधानीमें भी जो चित्रशाला, सङ्गीत-विद्यालय, नाट्य-गोष्ठियाँ हैं, उन सबको उर्मिलाजीके आदेश अपेक्षित हैं। कलाकार उन्हें साक्षात् हंसवाहिनी मानते हैं। श्रेष्ठि-समुदाय और स्वयं सम्राट् समझते हैं कि वे अयोध्याकी अधिदेवता श्री हैं। महा सेनापति शस्त्र-पूजाके समय उनसे आशीर्वाद लेने आते हैं। अयोध्याकी विजयवाहिनीका प्रत्येक शूर उनको प्रत्यक्ष महाशक्ति मानकर मस्तक झुकाता है।

आनन्दघन सम्राट्, आनन्दधाम अयोध्या—महोत्सव तो चलते ही रहते हैं। वैदिक धर्म आनन्दका अनुरागी, आनन्दका अभीप्सु, आनन्दका उपासक है। इसीसे भारतीय परम्परामें जयन्ती मनानेकी प्रथा है, निर्वाण-दिवस नहीं मनाये जाते। हम पूर्वजोंके निर्वाण-दिवसको श्राद्ध-दिन—श्रद्धार्पणका दिन कहते हैं। आनन्द ; किंतु उन्मद—उच्छृङ्खल नहीं। सात्त्विकतासे उज्वल, श्रद्धा-समन्वित, श्रेयोन्मुख जीवनका शुभ्र आनन्द अभीष्ट है भारतको। अयोध्याके आनन्दोत्सवोंमें धर्मका, श्रद्धाका भव्य समन्वय रहता है।

अर्थ और काम भी पुरुषार्थ हैं। जीवनमें इनकी आवश्यकता, उपयोगिताको अस्वीकार करनेवाला समाज रसहीन, साधनहीन बन जायगा ; किंतु इन्हींको प्रधानता देनेवाला पुरुष पशु या पिशाच हो जाता है। भारतने धर्मानुकूल अथको उपार्जनीय माना और अर्थ-व्ययका प्रधान प्रयोजन माना धर्म। धर्मसम्मत काम सेवनीय है। अर्थ और कामपर धर्मका अंकुश अपेक्षित है और स्वयं धर्मको मोक्षका साधन-सोपान बनना चाहिये। धर्मकी सफलता ही है अन्तःकरणको निर्मल करके मोक्षका अधिकारी बना देनेमें।

अयोध्यामें मोक्षके साक्षात् स्वरूप परात्पर पुरुष स्वयं उपस्थित थे। वे धर्मके परम प्रभु और श्रुतिके परमोपदेष्टा सृष्टिकर्त्ताके सुत ब्रह्मर्षि वशिष्ठ विद्यमान थे धर्मकृत्योंके सञ्चालक बनकर। अर्थ अयोध्याका आराध्य तो बनता क्या, सेवक भी नहीं समझा गया। वह उपेक्षित रहा,

दूसरेको दानकी वस्तु रहा। जहाँ स्वयं श्री सादर सेविका बनी विद्यमान रहें, जहाँ कोषपति कुबेर ही अपनेको किंकर मानें, वहाँ अर्थ कोई स्वीकार भी करता है तो केवल किसी पर कृपा करके उसे अनुगृहीत करनेके लिए, उसका दान या उपहार मानकर।

कामको अवश्य अवसरोंकी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। उसे अवसर मिलता था विशेष पर्वोंपर। वसन्त पञ्चमी, होली जैसे पर्वोंपर आनन्दोल्लासका उन्मुक्त महोत्सव चलता था। स्वयं श्रीराम भी वैदेहीके साथ अपने रङ्ग भवनमें अथवा अन्तःपुरसे लगे उद्यानमें पधारते थे।

अन्तःपुरसे लगे उपवनमें केवल स्त्री उद्यान-रक्षिकाएँ थीं। सम्राट्के पधारनेके समय वहाँ सङ्गीत, वाद्य, नृत्य चलता था; किंतु नारियोंके समूह द्वारा। उनमें भी सब श्रीसीताकी सखियाँ, सेविकाएँ हो थीं। सरोवरमें जल-विहार, कुञ्जकी सुरम्य, सुरभित, शीतल छायामें नाना विनोद और शतधारा प्रक्षेप (पिचकारीसे परस्पर जल डालना) प्रभृति प्रमोद चलता था।

ऐसे ही एक महोत्सवके समय श्रीजनक-नन्दिनी विनोद-क्रीड़ाके मध्य ही कुछ शिथिलताका अनुभव करके समीपके सुसज्ज विश्राम-कक्षमें चली गयीं। श्रीराघवेन्द्रने उनका अनुगमन किया। ऐसे अवसरपर सखियाँ और सेविकाएँ उस एकान्त कक्षमें नहीं जा सकती थीं। वे कक्षके बाहर समीप ही रहीं, जिससे आवश्यकता होनेपर, आह्वान आनेपर सेवामें तत्काल उपस्थित हो सकें।

'तुम्हें कुछ श्रान्त देखता हूँ।' श्रीरामने समीप बैठते हुए कहा।

'कोई विशेष बात नहीं है।' सङ्कोचपूर्वक श्रीमैथिलीने उत्तर दिया— 'शरीर कुछ शिथिल लग रहा था।'

'अब समय आ गया है, जब तुम अयोध्याके सिंहासनको उत्तराधिकारी प्रदान करने वाली हो।' स्नेहपूर्वक पद्मपाणि करोंमें लेकर श्रीराघवेन्द्रने पूछा— 'तुम्हारा दोहद क्या है? तुम्हारे मनमें जो कुछ आता हो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा!'

नारीकी सफलता है मातृत्व प्राप्त करना। जब उसके उदरमें सन्तान आ जाती है, उसका दोहद—उसके मनमें उठने वाली इच्छा पूण

की जानी चाहिये। अन्यथा सन्तानमें अतृप्त कामनाकी कुण्ठा उसमें अनेक विकृतियोंका रूप ले सकती है। चिड़चिड़ापनसे लेकर उन्माद तक तथा अनेक अस्वाभाविक असंयम इसके परिणाम होते हैं।

'मैं पुण्य तपोवनोंके दर्शन करना चाहती हूँ।' श्रीमैथिलीने सहास्य सलज्ज भावसे कहा— 'आप तो सर्वज्ञ हैं। सब समझ लेते हैं। गङ्गातट-पर जाकर मुनि-पत्नियोंको वल्कल, कन्द, फल, कमण्डलु आदि देकर प्रणाम करनेकी इच्छा है और उनके ही आहारपर, उनके ही समान रहना चाहती हूँ, भले एक ही दिन रहना सुलभ हो सके।'

सुर-मुनियोंके उद्धारके लिए ही जो धरापर आयी हैं, उनके ब्रह्मण्य-देव स्वामीका अंश उदरमें आया तो दोहद भी उसके अनुरूप ही होगा। तपस्वियोंकी सेवा और रक्षा ही तो रघुवंशकी परम्परा रही है। सन्तान जैसी होनेवाली होगी, मातामें दोहद भी वैसा ही तो उत्पन्न होगा।

'मेरा साथ जाना सम्भव नहीं होगा। मेरे जानेसे तुम्हारी इच्छा-पूर्त्तिमें भी बाधा होगी। मेरे साथ अनेक औपचारिकताएँ सम्बद्ध हो गयी हैं। मेरे साथ मन्त्री, सभासद भी जाना चाहेंगे। तपस्वीजन भी मेरा आतिथ्य करना चाहेंगे।' श्रीरामने स्नेहपूर्वक समझाया— 'अतः मैं कल ही तुम्हें लक्ष्मणके साथ भेज दूंगा। तुम तपोवनोंमें इच्छानुसार रुक सकती हो।'

कौन जानता था कि ये लीलामय यह भूमिका क्यों बना रहे हैं। क्रूर नियति—लेकिन इनका पदाश्रित भी प्रारब्ध-परतन्त्र नहीं होता तो इनके लिए नियतिके नियम—प्रारब्धकी परवशता कैसी? लोकादर्शकी रक्षाके लिए शासकको कितने बड़े आत्म-बलिदानको प्रस्तुत रहना चाहिये, यह मर्यादा स्थापित करनी थी मर्यादापुरुषोत्तमको। अतः उनकी इच्छानुसार भगवती योगमाया परिस्थितियोंका विधान करनेमें लग गयी थीं।

अपवाद–श्रवण

अन्तरंग सखा विदूषक विजय श्रीरामके समीप आ बैठा, बन वे उपवन-क्रीड़ासे लौटकर स्नान-सन्ध्यादि सायंकालीन उपासना करके रात्रि-के प्रथम प्रहरमें अपने अन्तरंग मन्त्रणा-कक्षमें आकर आसीन हुए। विजय विदूषक प्रत्यक्ष में और सम्राटका अत्यन्त अन्तरंग गुप्तचर था वास्तविक रूपमें। विदूषक होनेके कारण उसे नगरमें बहुत-सी सुविधाएँ प्राप्त थीं वह सबको अपने परिहासोंसे प्रसन्न कर लेता था। चाहे जहाँ, चाहे जब चला जाता था और इसके लिए पूछे जाने पर अटपटे कारण गढ़ लेता था।

'तू यहाँ क्यों आया ?' किसीके भी अन्तःपुरमें विजयको पहुँच जाने पर कोई वृद्धा या नववधू उसे डाँट दे सकती है। वह किसीके डाँटनेका बुरा नहीं मानता।

'चींटियोंके लिए शर्करा डालने !' विजय ऐसी कोई अटपटी बात कह देगा।

'पिपीलिकाओंको शर्करा भवनके भीतर ?' कोई कहेगा ही—'तुझे वन उद्यान कुछ नहीं मिलता ?'

अरे तो क्या हो गया ? तुझे शर्करा कबसे अप्रिय हो गयी है ?' विजय मुख बनावेगा—'तू ही तनिक देरको पिपीलिका बन जा। ले मुख खोल।'

लेकिन कोई अधिक असन्तुष्ट हो, इससे पूर्व वह चौंककर भाग खड़ा होगा—'अरे ! शर्करा साथ लाना तो मैं भूल ही गया।'

जो सम्राटसे भी ऐसे उलटे-सीधे परिहास कर लेता है, उससे असन्तुष्ट होनेसे लाभ ? सब जानते हैं कि विजय बहुत सीधा है। सर्वथा निर्दोष, निश्छल है। इससे कपट सम्भव नहीं और न किसीका कोई अहित कर सकता। तनिक परिहासप्रिय है। सबको हँसाता रहता है। वह गुप्तचर है, कोई नहीं जानता। सब समझते हैं कि अपने भुलक्कड़ एवं सनकी स्वभावके कारण वह कहीं जाना चाहता है और कहीं जा पहुँचता है। अयोध्यामें इसीलिए वह अव्याहत गति बन गया है।

अत्यन्त गम्भीर, संकोचीनाथ श्रीराघवेन्द्र भी अपने इस विदूषकसे यदा-कदा परिहास कर लेते हैं ; किन्तु आज एकान्त मन्त्रणा-कक्षमें यह अकेले समीप आ बैठा तो श्रीराघवेन्द्रने गम्भीर होकर पूछा—'मित्र ! प्रजा मेरे और राजपरिवारके सम्बन्धमें क्या विचार रखती है ? लोग हमारे सम्बन्धमें परस्पर क्या कहते हैं।'

'कहते हैं कि सम्राट और उनके अनुज रथों पर चढ़ते हैं। कोई भी जटा-दाढ़ीवाला या बड़ी शिखावाला विप्र दीखे तो रथसे कूदकर दौड़ पड़ते हैं उसके पद पकड़ने। मानो वह भाग जानेको उद्यत हो। विजयने हँसकर कहा—'लोगोंका असन्तोष है कि सम्राट् अनन्तशायीके समान इन्दीवरसुन्दर हैं, सबके पालक हैं ; किन्तु चतुर्भुज क्यों नहीं हैं ? अपने एक अनुजको तो चतुर्भुज बना दें।'

'मित्र ! परिहास मत करो और मैं प्रशंसा भी सुनना नहीं चाहता।' श्रीरामने अत्यन्त गम्भीर होकर कहा—'प्रजामें लोग मेरे सम्बन्धमें, राजपरिवारके सम्बन्धमें कुछ दोष भी देखते होंगे। तुमने ऐसी सूचना मुझे कभी नहीं दी।'

'इसमें सूचना देनेकी क्या बात है ? आपने एक वानर पाल रखा है। वह इतना विकट है कि मुझे भी डरा देता है। सौभाग्य है कि इस समय कहीं गया है।' विजयने इधर-उधर देखा कि हनुमान कहीं समीप तो नहीं हैं—'वह कोई समाजिक शिष्टाचार समझता ही नहीं। कभी सुसभ्य मानव रहता है, कभी बड़ी भारी पूँछ प्रकट कर लेता है। एक ओरसे सब स्त्रियोंको आपत्ति है कि वह सबको इतनी कुरूपा मानता है कि किसीकी ओर देखता ही नहीं। सुरुचिके सम्बन्धमें उसे कुछ पता नहीं।'

'विजय ! तुम्हें मेरी शपथ।' श्रीरामने रोका न होता तो विजयका अटपटा प्रवचन पूरे प्रहर भर भी चल सकता था। 'तुम सदा कुछ छिपा जाते हो। मुझे सदा लगता है कि तुम कुछ संगोपन कर रहे हो। कुछ छिपाओ मत। मुझे बताओ कि प्रजा मेरे या राजपरिवारमें किसीके किसी व्यवहारमें त्रुटि देखती है ? किसीको कोई दोष लगाती है ?'

शपथ सुनकर विजय गम्भीर हो गया उसने दोनों हाथोंसे अपना सिर पीट लिया। उसके नेत्र भर आये—'विजय ! अब दुर्भाग्य तुझे दुर्मुख

बननेको बाध्य कर रहा है। इस विपत्तिसे बचनेका कोई उपाय नहीं रहा तेरे समीप।'

अनेक क्षणों तक विजय मौन बना रहा। उसके नेत्रोंसे बड़ी-बड़ी बूँदें टपकती रहीं। श्रीरामने आग्रहपूर्वक पुनः कहा—'मेरी शपथ विजय ! समाचार सुना देनेमें तुम्हें किसी दोषका भागी नहीं बनना पड़ेगा।'

'एक दिन एक रजक अपनी पत्नीको पीटने लगा।' विजयने मस्तक झुकाकर रोते-रोते कहा—'अपराध है यह अयोध्यामें कि कोई किसी नारीपर हाथ उठावे। अतः मैं ब्रह्ममुहूर्तके उस अन्धकारमें कुछ समीप जाकर सुनने लगा। मेरा अभाग्य मुझे वहाँ ले गया था।'

'श्रीराम सम्राट् हैं। वे जो करें, उन्हें सब शोभा देता है। वे कुछ करें, उन्हें कोई अंगुली नहीं उठावेगा।' वह रजक क्रोधमें उच्चस्वरमें कह रहा था—'मैं उनके जैसा स्त्रीजित नहीं हूँ कि रात्रिमें अन्यत्र रही स्त्रीको स्वीकार कर लूं। कौन विश्वास करेगा कि तू पितृगृहमें ही थी। उन्होंने भले चौमास निशाचरके पास रही सीताको स्वीकार कर लिया, मैं तुझे अब अपने गृहमें नहीं रहने दूँगा।'

'मुझे क्षमा करें ?' विजयने रोते-रोते चरण पकड़े—'सती-शिरोमणि जगदम्बा साम्राज्ञीके सम्बन्धमें वे शब्द सुनने भी अपराध थे, अतः मैं वहाँसे दूर चला गया।'

'भद्र ! नागरिक भी कुछ कहते हैं मेरे सम्बन्धमें ?' श्रीरामने पुनः आग्रह किया।

'नागरिक तो बहुमुख हैं। वे आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं कि श्रीरामने समुद्रपर सेतु बाँधकर दुष्कर कार्य किया। सुरासुरजयी दशग्रीवको समरशैया दे दी। वनमें भी वानर-रीछ-सेना सज्जित कर ली।' विजय पुनः धाराप्रवाह बोलने लगा।

'विजय ! मैंने पहिले कहा है कि मैं प्रशंसा नहीं सुनना चाहता।' श्रीरामने रोका—'सीताके सम्बन्धमें यह अपवाद भी लोगोंमें चर्चित है ?'

'है स्वामी !' विजय पुनः व्याकुल रुदन करने लगा। वह हिचकता बोला—'लोग कहते हैं—श्रीरामको सीतासे चिढ़ होनी थी। वे अनाचारी राक्षस रावणके यहाँ रही थीं। राक्षसने अङ्कमें उठाकर ही

उन्हें रथमें डाला होगा, पर यह श्रीराम सहन कैसे करते हैं ? अब पत्नियों-का यह असंयम हमको भी सहन करना पड़ेगा। राजका अनुवर्तन करनेको प्रजा बाध्य है।'

'अच्छा विजय ! तुम भाइयोंको यहाँ भेज दो !' श्रीरामने गम्भीर होकर सुना। अन्तमें विदूषकको विदा कर दिया।

तीनों भाई आदेश सुनकर आ गये। जैसे बैठे थे, वैसे ही चले आये। आकर देखा, उनके अत्यन्त आदरणीय अग्रज अवाङ्मुख, साश्रुनेत्र, कान्ति-हीन बैठे हैं। सब स्तब्ध हाथ जोड़े खड़े रह गये।

'आप सब मेरे सर्वस्व हैं। यह राज्य आपका है।' आज ही श्रीराम अतिशय शोकमें अनुजोंको 'आप' कह रहे थे—'आप सबने भी माताके सम्बन्धमें नगरमें चलता अपवाद सुना है ?'

'कुछ लोगोंमें कुचर्चा है तो सही।' सिर झुकाकर सबने स्वीकार किया। सब चिन्तित, उद्विग्न कि 'अब ये क्या कहने वाले हैं।'

'पुरवासियोंमें, ग्रामोंमें भी सीता-विषयक जो चर्चा चल पड़ी है, वह सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। अत्यन्त गर्हित चर्चा है वह।' श्रीराम उसी प्रकार मन्द, कातर स्वरमें कहते गये—'सीता सत्कुलोत्पन्ना हैं। अयोनिजा हैं। रावणने उनका हरण किया, अतः मेरे मनमें भी सन्देह आया था। मैंने उनको अस्वीकार किया था समस्त वानर-सेनाके सम्मुख। तब जानकीने अग्नि-प्रवेश किया। लक्ष्मण इसके साक्षी हैं। अग्नि, वायु, इन्द्रने मुझे जानकी अर्पित की—'ये शुद्ध हैं। मेरा हृदय सीताको शुद्ध स्वीकार करता है।'

भाइयोंने मस्तक झुका रखा था। कुछ कहनेकी स्थिति नहीं थी। श्रीरामने ही कहा—'मनुष्यपर लांछन लगना मृत्युके तुल्य है। मिथ्या कलंक भी जब तक रहता है, कलंकितकी हानि करता है। महात्माओंने यशको आदरणीय माना है।'

'अपने यश-अपयशसे उदासीन हुआ जा सकता है, किन्तु शासकका अपना व्यक्तित्व नहीं होता।' श्रीरामने कहा—'शासक समाजका है। उसके आचरण—उसका मिथ्यापवाद भी लोगोंका आचरण बन जाता है। अतः शासकको समस्त प्रजाके हितार्थ आत्मोत्सर्गके लिए सदा प्रस्तुत रहना चाहिये।'

सब भाई शान्त, स्तब्ध, शंकित सुनते रहे।

सीता-त्याग

'आप सबको मेरी शपथ ! कोई प्रतिवाद मत करो और किसीसे कुछ मत कहो।' श्रीरामने किसी भाईको बोलनेका अवसर नहीं दिया। वे सत्य ही 'उपासित लोक' हैं। लोक-जनसमूह ही उनका उपास्य है। उनके लिए जनता ही जनार्दन ; अतः उन्होंने कहा— 'लक्ष्मण ! मैं अग्रजके नाते, सम्राट्के नाते आदेश दे रहा हूँ, पालन करो। प्रतिवाद करनेवालेको मेरी हत्याका दोष होगा।'

अब किसीके लिए बोलनेका अवकाश ही कहाँ था। लक्ष्मणको आदेश हुआ— 'महामन्त्री सुमन्त्रके सारथ्यमें सीताको रथपर लेकर कल प्रातः जाओ। सीतासे या किसीसे भी अभी यहाँ कोई कुछ नहीं कहेगा। महर्षि वाल्मीकिके आश्रमके समीप गङ्गातटपर निर्जनमें सीताको छोड़ देना। वे यहाँसे जो कुछ रथमें लेकर जाना चाहें, ले जाने दो। गङ्गातटपर उन्हें उतारकर तब बतला देना कि 'रामने उनका त्याग कर दिया है। वे चाहे जहाँ जानेको स्वतन्त्र हैं।'

'सबको मैं अपने जीवनकी शपथ देता हूँ।' श्रीरामने फिर कहा— 'सीताका पक्ष लेकर विवाद मत करना। कुछ मत कहना। मैं लोकमें आदर्शकी रक्षाके लिए जीवन तक त्याग सकता हूँ।'

सचमुच श्रीराम जीवन ही तो त्याग रहे थे। श्रीजानकी उनका जीवन ही तो हैं। तीनों भाई रुदन करते विदा हुए। श्रीरामकी क्या अवस्था थी, न कहना ही उत्तम है। अन्तरमें दावानल जल रहा था ; किंतु कहना एक शब्द नहीं था। उलटे अपनेको प्रसन्न दिखलाना था। श्रीजनक-नन्दिनीको बोलनेका भी अवसर दिये बिना निद्राभिनय करके शय्या स्वीकार कर लेना ही एकमात्र मार्ग था। जिसे अपनेसे सर्वथा अभिन्न जानते-मानते हैं, जो सर्वथा निर्दोष हैं, उन्हें प्रातः निर्वासित करनेका आदेश देनेके पश्चात् अब उनसे संलाप या स्नेह-प्रदर्शनका दम्भ श्रीरामसे सम्भव नहीं था।

तीनों भाइयोंके अन्तःपुरोंमें भी कुछ ऐसा ही हुआ। तीनोंकी पत्नियोंको प्रतीत हुआ कि उनके स्वामी आज अत्यन्त अस्वस्थ हैं। पूछनेपर एक ही उत्तर— 'आज कुछ मत पूछो। प्रातः स्वयं पता लग जायगा। मानस अत्यन्त अस्वस्थ है।'

'पता नहीं क्या हुआ है?' बहुत अधिक व्याकुलता, अज्ञात अनिष्टकी आशङ्का और भी आकुल करती है। अब निद्रा किसे आनी थी। मौन पड़े रहकर किसी प्रकार रात्रि काट देनी थी। श्रीराम और उनके तीनों भाइयोंको, श्रीसीताकी तीनों बहिनोंको वह रात्रि कल्पके समान दीर्घ प्रतीत हुई। उसके पल भी युग लगे। केवल श्रीजानकी इस सबसे अनभिज्ञ निश्चिन्त सो रही थीं। उनके सुख-शान्तिकी यह अन्तिम रात्रि। उन्होंने समझा था कि स्वामी दिनके आमोद-प्रमोदमें अधिक श्रान्त हो गये हैं।

प्रातःकाल हुआ। ब्राह्ममुहूर्तमें मङ्गल-वाद्य बजने लगे। बन्दियोंने यशोगान प्रारम्भ किया। हाय री सम्राट्की विवशता! वे वाद्य-स्वर, वह स्तवन-शब्दावली विष-बुझे बाणके समान विद्ध कर रही थी अन्तरको; किंतु उसे वारित नहीं किया जा सकता था। शान्त सहन करना था उसे।

प्रातःकृत्य सम्पन्न किये सबने। अयोध्याके अभाग्यका वह सूर्योदय हुआ। गगनमें भले प्रकाश हुआ हो, अयोध्या सदाके लिए अन्धकार-मग्ना होने जा रही थी। सुमन्त्र रथ लेकर राजसदन उपस्थित हुए। लक्ष्मणने निवेदन किया जाकर कि श्रीमैथिलीको वनमें चलना है। श्रीरामने अपनेको आह्निक क्रियामें व्यस्त बना रखा था। अपने हृदयको ही विदा देनेका साहस कोई कहाँसे प्राप्त करे।

श्रीजनक-नन्दिनी अत्यन्त उत्साहमें थीं। उन्होंने सेविकाओंसे रथमें वल्कल, सुस्वादु कन्द, शुष्क फल (मेवे) कमण्डलु आदि मँगाये और आकर बैठ गयीं। मार्गमें मिलनेवाली ग्रामीण प्रजाके लिए भी उन्होंने वस्त्राभरण रखे रथमें। रथ अयोध्यासे निकला तो सबसे प्रथम श्रीराम अपने अन्तःपुरमें लौटे और सूने अन्तःपुरमें शय्यापर गिरकर मूर्छित हो गये।

'अम्बा कहाँ गयीं?' संज्ञा लौटनेपर पवनपुत्रने ही पहिले पूछा।

'वे सदाके लिए चली गयीं।' श्रीरामने सबसे पहिले आञ्जनेयको ही सूचित किया – 'उनके लङ्का-निवासको लेकर प्रजामें गर्हित अपवाद फैलने लगा था। मैंने ही तुम्हारी अम्बाको निर्वासित कर दिया है। वे सदाके लिए अयोध्यासे विदा कर दी गयीं !'

'अम्बा निर्वासित कर दी गयी ?' एक बार आञ्जनेयके नेत्र अङ्गार हो उठे। उन्होंने दाँत कटकटाये। पता नहीं वे क्या करनेवाले थे। वे स्वयं भी कहाँ समझते थे इसे।

'तुम क्रुद्ध हो ? तुम्हारा क्रोध उचित है।' श्रीरामने कातर कण्ठसे कहा— 'तुम्हारी अम्बाको निर्वासित करनेवाला यह राम तुम्हारे सम्मुख है। इसपर क्रोध करो। इसे दण्ड दो।'

'स्वामी ! आप मुझे भी निर्वासित कर दें।' नन्हे शिशुके समान हनुमान फूट-फूटकर चरणोंपर सिर रखकर रुदन करने लगे— 'आपका मैं दास हूँ ; किंतु अम्बाहीन अयोध्यामें रहना मेरे लिए अत्यन्त कष्टप्रद है।'

'हनुमान ! आज राम किसीसे अपने समीप रहनेका अनुरोध करने योग्य नहीं रह गया है।' श्रीरघुनाथके कमलदल-लोचनोंसे प्रवाह फूट पड़ा था— 'यह निर्दय, निर्मम निष्ठुर, अकृतज्ञ है। सीता जैसी परम सतीको इसने निर्वासित कर दिया तो कोई इसपर क्यों विश्वास करे। अब स्वजन बन्धु इसे त्याग दें तो इसे कुछ कहनेका कोई अधिकार नहीं रहा है।'

'मेरे स्वामी ! मेरे आराध्य !' हनुमान जा नहीं सके ; किंतु अद्भुत अवस्था हो गयी उनकी। वे अयोध्याके राजसदनमें आते अब कातर हो उठते थे। यहाँ आहार ग्रहण कर नहीं पाते थे। केवल श्रीराम-की सेवा – वह भी अब राजसभामें अनुपस्थित रहते थे। सिंहासनपर अकेले श्रीरघुनाथके चरणोंके समीप बैठते जैसे हृदय फट जायगा। अब उन्हें श्रीराघवेन्द्रने स्वयं अन्तःपुरके शयन-कक्षमें आ जानेकी अनुमति दी ; किंतु अम्बाकी स्मृति यह करने नहीं देती थी। सर्वथा मूक हो गये थे। अखण्ड राम-नाम-जप और तब आते थे अरण्यसे जब सम्राट् राजसभासे उठते थे। वे श्रीरामके दास थे ; किंतु अयोध्याके सम्राट्से जैसे उनका कोई परिचय नहीं रह गया था।

भरत-शत्रुघ्न प्रातः स्नान-सन्ध्या करने सरयू-तट गये तो तब लौटे जब सुमन्त्र मूर्छितप्राय लक्ष्मणको रथमें लिये लौटे। दोनों भाई साहस कर सके थे श्रीमैथिलीको जाते समय सम्मुख जाकर प्रणाम करनेका ; किंतु रथ चला गया तो उसी दिशाकी ओर देखते बेसुध बैठे रह गये।

अयोध्याके अन्तःपुरमें किसीने आहार-ग्रहण नहीं किया। सम्राट् अस्वस्थ हैं, यह समाचार मिला था। भरत-शत्रुघ्न सरयू तटसे लौटे नहीं थे और लक्ष्मण अत्यन्त कान्तिहींन गये थे। अन्तःपुरमें सब उपोषित, आकुल थे। महामन्त्री भी नहीं थे, अतः किसीसे कुछ पूछकर जाननेका भी मार्ग नहीं था।

विदेह-नन्दिनी अत्यन्त उत्साहपूर्वक चली थीं। उनका दक्षिण नेत्र, स्फुरित हो रहा था ; किंतु उन्होंने अपशकुनोंपर ध्यान नहीं दिया। उनको लग रहा था कि स्वामीने स्नेहवश उनका कहना तत्काल स्वीकार कर लिया है। लक्ष्मण सुमन्त्रके समीप बैठे थे। रथमें पीछे बैठी वैदेहीने इसे अपने लाड़ले देवरका शील समझ लिया था।

'मार्गमें जनपदके नागरिक स्वागत करते थे। जयघोष करते थे। और विप्र आशीर्वाद देते थे—'साम्राज्ञी सौभाग्यवती हों। पतिके अनुकूल पुत्र प्राप्त करें।'

मार्गमें प्रजाजनोंको पारितोषिक प्रदान करते श्रीमैथिलीने ऐसे भी बहुत अधिक दान, उपहार घोषित किये जो अयोध्यासे भेजे जाने थे। लक्ष्मण चुपचाप स्वीकृतिमें सिर हिला देते थे। उनके मौन, अनुत्साहसे आकर्षित होकर श्रीसीताने पूछा—'लक्ष्मण! तुम इतने अनुत्साहित तथा मौन क्यों हो आज ? मैं दिनभरको ही तो आयी हूँ।

'अम्ब! मेरा मन स्वस्थ नहीं है।' लक्ष्मणने कातर प्रार्थना की—'आप अभी कुछ न पूछें। आर्यका आदेश है कि गङ्गातट पहुँचकर मैं आपसे निवेदन करूँ।'

'तब रथ शीघ्र चलाओ!' श्रीजानकी कहाँ जानती थीं कि वे क्या सुननेकी शीघ्रता कर रही हैं।

'अम्ब! अयोध्याके सम्राट्ने कहा है।' रथ जब नौकासे गङ्गा पार पहुँच गया, श्रीजनक-नन्दिनी उतर गयीं रथसे पुलिनपर, तब लक्ष्मण उनके चरणोंके समीप घुटनोंके बल बैठकर हाथ जोड़कर रुदन करते बोले—

'अयोध्याकी प्रजामें आपके लङ्कामें रहनेको लेकर अनेक अपवाद फैल रहे हैं। सम्राट् आपके सम्बन्धमें असन्दिग्ध हैं ; किंतु वे सम्राट् हैं। प्रजाके आदर्शच्युत होनेकी आशङ्का हो गयी है, अतः वे आपको त्यागते हैं। उन्होंने कहा है कि आप कहीं भी जा सकती हैं।'

इतना भी लक्ष्मण किसी प्रकार कह सके। नेत्रोंके आगे अन्धकार छा गया। वे संज्ञाशून्य हो गये।

'सम्राट्का कल्याण हो!' धन्य आर्य-नारी ! यह निर्मम आदेश सुनकर भी उन भूमिजाके मुखसे यही निकला। वे न रुदन कर सकीं, न मूर्च्छित हुईं। जैसे समस्त स्नायु शून्य हो गये हों। जैसे अनन्त मरुस्थलमें वे एकाकिनी हो गयी हों। इस दुःख, शोककी पराकाष्ठाकी प्रथम प्रतिक्रिया साहसमें, वज्र-जैसी स्थिरतामें हुई। उन्होंने स्थिरकण्ठ कहा— 'सम्राट्ने उचित किया है। मैं तो उनके चरणोंकी दासी हूँ—सदा दासी रहूँगी। प्रजाके परितोषके लिए, शास्त्रोंकी मर्यादा मिथ्यापवादसे भी मिटे नहीं, इसके लिए इस दासीकी बलि देनेका स्वत्व है उन्हें। यह उनका आदेश सिरसे स्वीकार करती है। इसका कुछ भी हो, प्रजा सन्तुष्ट रहे। प्रजाकी मर्यादा रक्षित रहे। सम्राट् स्वस्थ-प्रसन्न रहें।'

लक्ष्मणने भूमिपर मस्तक रखा चेतना प्राप्त करके। सुमन्त्र अवसन्न बैठे थे रथपर। उनमें बोलने-हिलनेकी शक्ति नहीं रह गयी थी। लक्ष्मण उठ खड़े हुए—'मुझे आपको यहाँ उतारकर अविलम्ब लौटनेका आदेश है।'

'आदेश ! आदेश ! आदेश !' सब आदेश सञ्चालित प्राणहीन पुतलोंके समान। हृदय या बुद्धि क्या कहती है, इसे सुननेका आदेश नहीं है।

'लक्ष्मण ! तुम्हारा मङ्गल हो। दुःखी मत हो। मैं जानती हूँ कि तुम अवश हो। तुम सम्राट्के आदेश-परतन्त्र हो।' श्रीजानकीने सान्त्वना देकर कहा— 'मेरा एक अनुरोध है, मेरी ओर एक बार देखते जाओ कि मैं अन्तर्वत्नी हूँ। मुझमें जो तुम्हारे अग्रजका अंश है, उसे लेकर कोई अपवाद न उठे।'

'अम्ब ! मैंने वनमें भी कभी आपके श्रीचरणोंके अतिरिक्त ऊपर दृष्टि नहीं उठायी है।' लक्ष्मण मस्तक झुकाये क्रन्दन करते बोले— 'आज जब आप अग्रजसे पृथक हैं, एकाकिनी हैं, मैं आपकी ओर देखनेका साहस नहीं कर सकूंगा। ऐसा आदेश आप मुझे मत दें।'

'अच्छा लक्ष्मण ! तुम जाओ।' अत्यन्त हताश स्वरमें श्रीवैदेहीने कहा—'उनका वह आवेशजन्य साहस, स्थैर्य समाप्त हो रहा था—'सम्राट्से कहना, यह सीता भी उनकी एक विपन्न प्रजा है, इतना अवश्य स्मरण रखेंगे।'

लक्ष्मण शीघ्रतापूर्वक मुड़े। समझ गये कि एक क्षणका भी विलम्ब करनेपर पुनः संज्ञाशून्य हो जायँगे। किसी प्रकार रथमें बैठे। झकझोर-कर सुमन्त्रको सचेत किया और रथ लौटानेका संकेत करके अचेत हो गये। सुमन्त्रने भी श्रीजानकीके मूर्च्छित होकर गिरनेका शब्द सुन लिया; किंतु रथ लौटाना ही था।

आकुल अश्व बार-बार पीछे मुड़ना चाहते थे। सुमन्त्र स्वयं जैसे उन्मत्त हो गये थे। लक्ष्मण अचेत हैं, यह भी उन्हें पता नहीं था। वे कभी लक्ष्मणको, कभी अश्वोंको सम्बोधन करके प्रलाप कर रहे थे। इस उन्मादमें प्राणोंके समान पाले अश्वोंको निष्ठुरता पूर्वक हाँक रहे थे।

'भाग्यहीन, अधम, अतिशय क्रूर सारथिके पल्ले पड़े हो, तुम्हें पता नहीं है ?' लाल-लाल नेत्र सुमन्त्र अट्टहास कर उठते थे—'दैवने इस बधिकको अयोध्याका महामन्त्री बना दिया है। यही था जिसे स्वर्गीय सम्राट्ने अपने प्राणप्रिय पुत्र तथा पुत्रवधूको वनमें पहुँचानेको भेजा और यही है जो आज अपनी पुत्रवधूके समान साम्राज्ञीको वनमें हिंस्र पशुओंके समीप छोड़ चला है।'

'सुमन्त्र ! सृष्टिकर्त्ताने तुझे अयोध्याका अमङ्गल बनाकर उत्पन्न किया है।' महामन्त्री उन्मादग्रस्त होकर कभी क्रन्दन करते थे, कभी अट्टहास—'तू इस समृद्ध साम्राज्यमें अग्नि लगानेके लिए उल्मुक-पिशाच बनाया गया है। अपना कर्त्तव्य पालन कर! कर्त्तव्य!'

मार्ग-भर महामन्त्री प्रलाप करते रहे। अयोध्याके उपकण्ठमें रथ-को—विदारध्वजको आते देखकर भरत-शत्रुघ्न दौड़े थे। महामन्त्रीको उन्होंने ही उनके सदन पहुँचाया और लक्ष्मणको अन्तःपुरमें ले गये।

अयोध्याकी अवस्था

अयोध्याकी अधिदेवताको ही जब वहाँसे निर्वासित कर दिया गया, क्या अवस्था कही जाय वहाँकी! महर्षि वशिष्ठने सुना और बहुत देर तक जैसे-के-वैसे बैठे रह गये। उन्होंने इस सम्बन्धमें कभी किसीसे एक शब्द नहीं कहा; किन्तु जैसे वे शासनसे, प्रजासे सर्वथा उदासीन हो गये। राजसभा अथवा राजसदन बुलानेपर ही पधारनेका नियम कर लिया। पूछनेपर ही बोलते थे। वह भी अत्यल्प शब्द। प्रायः पूछनेवालेका समर्थन कर देते थे। अपनी ओरसे कुछ कहना, समझाना छोड़कर वे अन्तर्मुख रहने लगे।

श्रीराम जैसे केवल सम्राट् रह गये। वह भी अनेक दिनों तक राजसभामें आये ही नहीं। दिनचर्याको भी अत्यन्त संक्षिप्त कर लिया। आवश्यक कार्य मात्र करते थे। मन्त्रियों, प्रजा-प्रतिनिधियोंके पूछनेपर भी अपनी सम्मति न देकर उनसे ही पूछते थे।

महोत्सवमयी अयोध्या सुनसान पुरी बन गयी। जैसे सब केवल कर्तव्य कर्मके लिए जीवित हों। कार्य सब करते थे। प्रमत्त कोई नहीं था; किन्तु जैसे अन्तरका उत्साह, उल्लास जीवनसे विदा हो गया। भरतको राज्य-संचालन करना था। शत्रुघ्नको उनकी सहायता करनी थी। करना था, अतः सब कर रहे थे। जीना था, अतः जीते चले जा रहे थे।

श्रीरामकी आन्तरिक व्यथासे भाई अनजान नहीं थे। आञ्जनेय अब सबसे अधिक दुःखी, सबसे अधिक उदासीन। वे श्रीरामकी सेवा करते थे, प्रमादहीन करते थे। किन्तु जैसे श्रीराघवेन्द्रको बोलकर व्यथित कोई नहीं करना चाहता था, हनुमानको भी कोई बोलकर व्यथित नहीं करता था। श्रीराम व्यथित होने पर अत्यन्त खिन्न होकर एकान्त कक्षमें चले जाते थे; किन्तु हनुमान बहुत बार उग्र हो उठते थे। दाँत कटकटाते, मुट्ठियाँ बाँधते और फिर स्वयं अपने वक्षपर मुष्टि-प्रहार करने लगते। कहीं वनमें भाग जाते। किसीको पता नहीं था कि वे क्या खाते हैं। रात्रिमें कहाँ रहते हैं। बस 'राम, राम, राम' की रट। बोलनेपर भी कदाचित ही उत्तर देते थे।

लक्ष्मणको अपने अग्रजकी व्यथाने व्याकुल बना दिया था। अब वे अपने अन्तःपुरमें भी कम ही जाते थे। रात्रिमें भी श्रीरामके समीप ही सो रहते थे उनके चरणोंके समीप। सब राज्य-कार्य त्यागकर श्रीरघुनाथके साथ ही लगे रहते थे। सीता-हरणके पश्चात् श्रीरामकी व्याकुलता कम करनेके लिए, चित्रकूटमें स्वजनोंकी स्मृतिमें अग्रज व्याकुल न बनें, इसलिए जो उपाय अपनाया था उन्होंने, उसीका अवलम्बन इस समय भी ले रखा था। वे बार-बार प्रश्न करते थे। श्रीरामको उन्हें उत्तर देकर समझाना पड़ता था। लक्ष्मण केवल ज्ञान, वैराग्य, भक्ति ही नहीं पूछते थे। वे प्राचीन पुरुषोंका चरित भी पूछते थे। इस क्रममें श्रीरामको नृग, अम्बरीष, रन्तिदेवादिके सब पुण्य चरित सुनाने पड़े।

अन्तःपुरकी अवस्था इससे अधिक शोचनीय थी। लक्ष्मणका समय अग्रजको सम्हालनेमें और श्रीरामका समय लक्ष्मणको समझानेमें व्यतीत हो जाता था। भरत-शत्रुघ्नको सम्पूर्ण शासनका प्रबन्ध देखना था। पुरी तथा राजसदनको भी सुव्यवस्थित रखना था। लेकिन राजसदनकी नारियोंको—श्रीजानकीकी बहिनों तथा सखियोंको यह सुविधा भी प्राप्त नहीं थी।

माण्डवी और श्रुतिकीर्तिने अब राजसदनकी व्यवस्था अपना दायित्व मान लिया था। उर्मिलाकी अन्यमनस्कताने इन्हें व्यथित बनाया तो व्यस्त भी। सेवकों, सेविकाओंको कोई तो चाहिये जिससे आदेश प्राप्त करें। अतिथि, अभ्यागत आवेंगे ही। उनका उचित सत्कार होना चाहिये। ब्राह्मणोंको प्रतिदिन भोजन कराके सम्राट् श्रद्धा-सहित दान करनेमें सङ्कोच करेंगे नहीं। अतः भरत सचिन्त रहते हैं। इससे राजभवनका भीतरी भार माण्डवीपर आ गया है। श्रुतिकीर्ति उनकी विनम्र सहायिका हैं।

श्रीजानकीकी सहेलियोंका, दासियोंका सबसे अधिक ध्यान रखा जाता है। उनका सम्मान किया जाता है। उनसे सेवा इसलिए ली जाती है कि सेवा न लेनेपर वे अधिक दुःखी होंगी। उनको अपनी उपेक्षा, अपने तिरस्कारका अनुभव न हो, इसका बहुत अधिक ध्यान माण्डवी-श्रुतिकीर्ति रखती हैं। उनको अपनी सहेलियोंसे अधिक सत्कार देती हैं।

'हाय जीजी! विपत्ति अकेले तुम्हारे ललाटमें विधाताने लिखी।' उर्मिलाने सुनते ही सिर पीट लिया। वे मनस्विनी जैसे उसी पल हारकर,

थककर गिर गयीं। फिर उनमें ओज, तेज, स्फूर्ति आयी ही नहीं। वे कलाकी साक्षात् स्वरूपा; किंतु वे सरस्वती मूक बन गयीं। उनकी वीणा, तूलिका फिर नहीं उठी। सेविकाने एक दिन धूलि झाड़नेका उपक्रम किया तो उन्होंने सब कुछ नगरके सङ्गीत-शिक्षणालय तथा कला केन्द्रको भिजवा दिया। वहाँ वे उपकरण श्रद्धा-सम्मान-सहित रख लिये गये; किंतु वहाँ भी उनका उपयोग नहीं था। अब कहाँ कोई शिक्षणार्थी आता था। अब सङ्गीत, नृत्य, अभिनयके महोत्सव तो अयोध्यामें स्वप्न बन चुके थे। सम्राट्को उनके अनुजोंको जब उनमें रुचि नहीं थी, महामन्त्री तक उनके नामसे चिढ़ उठते थे। ऐसे आयोजनोंका उत्साह कहाँसे आवे?'

'यह सब विस्तार किसलिए? किसके लिए?' अयोध्याके राज-सदनका रसोईघर अब बहुत सामान्य पदार्थ प्रस्तुत करता था; किंतु उर्मिलाको उसपर भी आपत्ति थी—'केवल अतिथि, अभ्यागत एवं विप्रोंके लिए रन्धन पर्याप्त है।'

सचमुच राजकुलमें तो अब किसीके अन्तःपुरमें कोई वधू कुछ भी बनाती नहीं। किसके लिए बनावे? किसीका उत्साह आस्वादनमें नहीं है। कोई नहीं देखता कि सम्मुख क्या परसा गया है। जैसे सबको कर्तव्य मानकर कार्योंमें लगे रहना है, वैसे ही केवल एक समय कुछ मुखमें डाल लेना है। यह भी कोई नहीं सूचित करता कि लवण, अम्ल, तिक्त या मधु व्यंजनमें अत्यधिक है, अल्प है या सर्वथा नहीं है।

राजवधुएँ तीनों तपस्विनी हो गयी हैं। जब सम्राट् और उनके अनुजोंने ही प्रायः आभरण, अङ्गराग, माल्यका परित्याग कर दिया है, उनकी पत्नियोंको शृङ्गार प्रिय लग सकता है? यह तो अच्छा है कि तीनों सगर्भा हैं। फलतः सहेलियाँ उनके केशोंमें बलात् तैल डालकर केश कुछ सम्हाल देती हैं। अन्यथा वे तो जटाधारिणी बननेको उद्यत हैं।

'तुम सब इतना श्रम क्यों करती हो। उद्यानकी यह सेवा, यह सज्जा किसके लिए?' उर्मिलाको एक ही प्रश्न सर्वत्र सूझता है—'यह सब किसके लिए?' वे उद्यानको अब पुष्पित, फलित देखकर भी दुःखी होती हैं—'जीजी वनमें चली गयीं! सम्राट्को भी वन प्रिय है। वन बन जाने दो इस उपवनको।'

'आर्यपुत्र उचित कर रहे है !' अभिन्न सहयोगिनी हैं उर्मिला अपने स्वामीकी। उनका कहना है—'सम्राट् स्वयं जीजीको निर्वासित करके अचेत हो गये हैं। अग्रजकी इस अवस्थामें सेवा-सम्हाल अत्यन्त आवश्यक है अनुजके लिए।'

'जीजीके लिए वन है और हमारे लिए ये राजसदनके भोग है !' उर्मिलाने अपने सदनसे सब सज्जा हटा दी है। वे अब शय्याके स्थानपर वेदिकाके ऊपर मृगचर्म बिछाकर शयन करने लगी हैं। आहारमें भी कन्द-मूल लेती हैं।'

'जीजी ! तुम यह सब न करो तो ?' श्रुतिकीर्ति अनेक बार चरण पकड़कर रो पड़ती हैं—'तुमने तो चौदह वर्ष पूरे राजसदनको सप्राण रखा था ; किंतु इस बार तुम्ही शिथिल हो रही हो तो मैं कहाँसे साहस संग्रहीत करूँ ?'

'मैं तो तेरा संग्रहालय समृद्ध कर रही हूँ।' उर्मिला हँसकर भी हास्यमें उल्लास नहीं ला पातीं। वह स्वर्णप्रतिमा, महासेनापतिके शब्दोंमें साक्षात् महाशक्ति अब अत्यन्त शिथिल हो गयीं हैं। फीका हास्य उनका—'तू जानती है कि मुझे इन सबका अच्छा अभ्यास है। अब तू बच्ची नहीं रही। अन्तःपुर सम्हालनेका अनुभव है तुझे।'

अश्रु पीकर उठ जाना पड़ता है श्रुतिकीर्तिको। अब वे बच्ची नहीं रहीं, अतः विधाताने भी उनके ही ऊपर सब विपत्तिका भार डाल दिया है। जब साम्राज्ञीसे सुताके समान स्नेह पानेका समय आया, दुर्भाग्यने दूर कर दिया उनको।

उर्मिलाको पुष्प, सुगन्धि, अङ्गराग—सबसे अरुचि हो गयी है। अनेक बार वे अपनी ही कलाकृतियोंको उठाकर फेंक देती हैं। अपने बनाये श्रीजानकीके चित्रके सम्मुख जा खड़ी होती हैं—'जीजी ! हम अभागिनी बहिनें तुम्हारी सेवाके योग्य नहीं हैं ? तुम परम सतीने हमें अपने पाद-स्पर्शकी अधिकारिणी नहीं समझा ?'

वृद्धाएँ कहती हैं—'सगर्भा वधुओंको दुःखी नहीं रहना चाहिये।'

'हाय ! जीजी अन्तर्वत्नी थीं। इतना अपार दुःख उनपर अकस्मात् आ पड़ा।'

उर्मिलाको अपने शरीरका स्मरण ही कम रहता है। वे अपनी आदर्शभूता, आराध्या जीजीके सम्बन्धमें ही सोचते-सोचते उन्मादिनी हुई जा रही हैं।

महामन्त्री सुमन्त्र अब स्वस्थ नहीं रहते। कहते हैं — 'बहुत वृद्ध हो गये। स्मृति साथ नहीं देती है।'

प्राय: एकान्तमें रहते हैं। कभी रुदन–कभी अट्टहास। इन सम्मान्य-ने अपना कार्यभार प्राय: सब पुत्रपर छोड़ दिया है। अब राजसभामें इनके पुत्र ही पिताके दायित्वका निर्वाह करते हैं। श्रीराघवेन्द्र भी कभी ही, अत्यन्त आवश्यक होनेपर, अतिशय नम्रतापूर्वक सुमन्त्रका स्मरण करते हैं।

विचारे विजयके दु:खपर कौन ध्यान दे। वह आनन्दमूर्त्ति विदूषक, सदा दूसरोंको हँसाने वाला—अब वह एकाग्रसेवी गम्भीर बन गया है। उसने दूसरे ही दिन सम्राट्से सेवा-निवृत्तिकी स्वीकृति ले ली। सम्राट्ने भी उसका आग्रह स्वीकार कर लिया।

'सब जा रहे हैं। सबको जाना चाहिए। राम ऐसा नहीं है कि इस-पर विश्वास करके कोई इसके समीप रह सके। इसने सीता जैसी परम सतीको निर्वासित कर दिया।' श्रीराम बार-बार अपने आपसे कहते हैं। किसी सेवकको, किसी सखाको कार्य-निवृत्त होनेसे रोकते नहीं। जो अवकाश चाहता है, उसे स्वीकृति दे देते हैं— 'पितृव्य सुमन्त्र तटस्थ हो गये। कुलगुरु नित्य निरपेक्ष हैं। विजय चला गया!'

श्रीरामकी व्यथा समझते हैं आञ्जनेय; किंतु वे भी अपने अन्तर-पर कहाँ पूरा नियन्त्रण रख पाते हैं। वे भी अपनेको अन्यमनस्क अथवा उत्तेजित होनेसे रोक नहीं पाते। केवल लक्ष्मण छायाके समान साथ लगे हैं। इन्होंने अग्रजमें अपने आपको उत्सर्ग कर रखा है।

कोई गणना थी कि अयोध्यामें कितने अतिथि, स्वजन सम्बन्धी प्रतिदिन आते रहते थे। अब सबको अयोध्याका मार्ग एक साथ भूल गया। महाराज विदेह अब आ नहीं पाते। श्रीसीता अयोध्या नहीं रहीं—यह स्मृति ही उन्हें अस्तव्यस्त बना देती है। कोई नहीं आ पाता मिथिलासे और अयोध्यासे किसीको मिथिला अब आमन्त्रित भी किया जाता तो कोई जा पाता?

विदर्भ, दक्षिण कौशल, कैकय—सभी सम्बन्धियोंकी एक ही दशा है। अब अयोध्या आनेका उत्साह कहीं किसीमें नहीं रहा है और अयोध्याके किसीको भी आमन्त्रित करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता।

देवता तक जैसे अयोध्यासे उपरत हो गये हैं। अब वे भी किसी अर्चनके आह्वानमें प्रत्यक्ष नहीं पधारते। नहीं पधारते आजकल देवर्षि और दूसरे सुरासुर-वन्दित ऋषि-मुनिगण। जो विद्वान, विरक्त महर्षि वशिष्ठके सान्निध्यमें बस गये हैं, वे अयोध्या त्यागकर चले नहीं गये, यह उनकी असीम अनुकम्पा; किंतु उन्होंने भी अब नगरमें, राजसदनमें आना त्याग दिया है। उनमें-से कुछ मौनव्रती बन गये हैं। कुछ अत्यन्त उपरत होकर शिलाद या कणाद बन गये हैं।* कुछने क्षेत्र-संन्यास ग्रहण कर लिया है।

प्रजा ? प्रजा तो अद्‌भुत है। जनरुचि कभी एक-सी रहती नहीं। अधिक लोग दु:खी हैं अपने सम्राट्‌के उदासीन, दु:खी रहनेसे। दबे स्वरमें कहा जाने लगा है—'सम्राट्‌ने उचित नहीं किया। निरपराध, सर्वथा शुद्ध साम्राज्ञीका त्याग किसी प्रकार नहीं करना चाहिये था।'

'सम्राट्‌ने उचित किया।' यह कहनेवाले कम नहीं थे। ऐसे स्वार्थ-दृष्टि सदासे समाजमें अधिक रहे हैं। उन्हें दूसरेके सुख-दु:खसे प्रयोजन नहीं था। उनकी दृष्टि केवल अपनेपर थी—'अब हमारी स्त्रियाँ, हमारी कुलवधुएँ कोई दुस्साहस नहीं कर सकेंगी। कभी कोई दुर्घटना हो ही गयी जैसी वैदेहीके साथ हुई तो वे समुद्धारकी आशा करनेके स्थानपर स्वयं उसी समय आत्मोत्सर्ग कर देंगी।'

'सम्राट्‌ने उचित निर्णय किया; किंतु उसे करनेमें देर की।' यह कहने वाले पामरजन भी थे। अन्तमें—अश्वमेधके अन्तमें महर्षि वाल्मीकि-के शपथ-ग्रहणपर भी इसी वर्गके विक्षोभके कारण कोई बोलनेका साहस नहीं कर सका था।

---

* फसल कट जानेपर खेतोंमें गिरे दाने 'शिल' कहे जाते हैं। उन्हें चुनकर अपना निर्वाह करनेवाले शिलाद कहलाते हैं। अन्नमण्डी उठ जानेपर बिखरे दाने 'कण' हैं। उनपर जो जीविका चलाते हैं वे कणाद हैं। अमुक निश्चित सीमासे बाहर न जानेका व्रत क्षेत्र संन्यास है।

वैदेही वाल्मीकि आश्रममें

'आर्य ! आप धैर्य धारण करें ! अन्यथा आपकी अपकीर्त्ति होगी।' लक्ष्मण बार-बार श्रीरामको समझाते हैं— 'लोग कहेंगे कि श्रीराम स्त्रीजित हैं। स्त्रीके लिए व्याकुल हैं। ऐसी स्त्रीके लिए.........। वह न कहने योग्य अपवाद पुनः शक्ति प्राप्त कर लेगा। वैसे मैं आपकी मनोव्यथा समझता हूँ।'

'वत्स ! तुम्हारे समान मनोनुकूल भाई संसारमें दुर्लभ है।' श्रीरामने अपनेको किसी प्रकार स्थिर किया— 'सीताने क्या कहा ? उनका क्या हुआ, तुम्हें कुछ पता है ?'

'वे आर्या अम्बा पहिले यही समझती थीं कि मैं आपसे एक दो दिनके वियोगसे ही दुःखी हूँ।' मुझे मार्गमें समझाती थीं— 'सम्राट् मेरे भी तो प्रिय हैं, तुम इतने दुःखी क्यों ?' लक्ष्मणने रोते-रोते सुनाया— 'महामन्त्री रथको नौकापर रोके रहे। गङ्गाके दूसरे पार उतरकर मैंने आपका आदेश सुनाया। सुनकर दो क्षण अवसन्न रह गयीं। फिर बोलीं— 'वत्स ! तुम राजाज्ञा पालन करो। मैं आज ही सुरसरिको शरीर अर्पित कर देती; किंतु मेरे भीतर उनका अंश पल रहा है, अतः मैं जीवित रहूँगी। गुरुजनोंको मेरा प्रणाम कहना। तुम्हारे अग्रज धर्ममें स्थित हैं। वे मुझे शुद्ध जानते हैं, मेरे लिए इतना पर्याप्त है। उनसे कहना— 'वे मेरे स्वामी हैं, मेरा कर्त्तव्य है कि जिससे उनका कलङ्क दूर हो, वह मैं करूँ। मेरी परम गति वही हैं। मेरा त्याग उचित था। वे प्रसन्न रहें। पति ही स्त्रीका देवता है, गुरु है। प्राण देकर भी मैं उनका हित करनेकी चेष्टा करती रहूँगी।'

'आर्य ! उन पूज्याने कहा कि मैं देखता जाऊँ कि वे अन्तर्वत्नी हैं।' लक्ष्मणने दोनों करोंसे मुख ढक लिया— 'मैं कैसे उनकी ओर दृष्टि उठा सकता था। किसी प्रकार उनके चरणोंमें प्रणाम करके मैं नौकापर आकर रथमें बैठ गया। वे भूमिपर गिरीं और छटपटाकर मूर्च्छित हो गयीं,

यह देखकर भी वज्र-हृदय लक्ष्मण उनके समीप लौट नहीं सका। केवल बार-बार दृष्टि लौटती थी। मैंने देखा कि दूरसे उनकी यह अवस्था देखकर गङ्गातटपर स्नानार्थ आये कुछ बालक ब्रह्मचारी दौड़ पड़े, वे वनकी ओर गये। कुछ क्षणोंके उपरान्त ही दौड़ते हुए महर्षि वाल्मीकि आये। उन्होंने आर्याके मुखपर जल डाला। वे सचेत हुईं। महर्षिने कुछ कहा। वे उठीं और महर्षिके पीछे-पीछे उनके आश्रमकी ओर चली गयीं।'

'मार्गमें मैंने उन्मत्तप्राय महामन्त्रीसे कहा—'आर्या त्रिभुवन-पावन हैं; किंतु पहिले उन्हें रावण हरण कर ले गया और अब पतिने इन्हें त्यागनेका अतिशय नृशंस कर्म किया है।' लक्ष्मणके नेत्र लाल हो रहे थे। अजस्र अश्रुप्रवाह चल रहा था—'आर्य क्षमा करें! इस क्षुद्र सेवककी समझमें इस कर्मका औचित्य कभी नहीं आवेगा। अपनी उस अर्द्धोन्मादावस्थामें ही महामन्त्रीने जो कहा, उसे सुनकर मैं अत्यन्त भय-भीत हो गया हूँ।'

'वत्स! मैं वह सुननेको उत्सुक हूँ।' श्रीराघवेन्द्रने कहा—'राम अब वज्रहृदय हो गया है। कुछ भी सुन सकता है।'

महामन्त्रीने कहा—"लक्ष्मण! मुझे ऐसी स्थिति आवेगी, यह बहुत पहिलेसे ज्ञात था; किंतु मैंने किसीसे कहा नहीं। महर्षि दुर्वासाने स्वर्गीय श्रीचक्रवर्ती महाराजसे कहा था—'श्रीराम सीता, लक्ष्मण, भरत सबको त्याग देंगे।"

'आर्य!' लक्ष्मणने अत्यन्त आर्त्त होकर अग्रजके चरण पकड़ लिये।

'वत्स! यदि रामने ऐसा किया तो तुम्हें त्यागनेके अनन्तर वह अपना शरीर भी नहीं रख सकेगा। सीताका त्याग करके राम जीवित है; किंतु तुम्हारा त्याग करके जीवन नहीं रख सकेगा।' अनुजको हृदयसे लगा कर राघवेन्द्र भी रो रहे थे—'अन्ततः महर्षिने कोई कारण भी तो बतलाया होगा?'

'पितृव्य महामन्त्रीने कहा था कि महर्षि दुर्वासा उस समय कुलगुरु-के आश्रममें चातुर्मास्य कर रहे थे, जब महामन्त्री हमारे स्वर्गीय पिताके साथ उनके दर्शन करने गये थे।' लक्ष्मणने सुनाया—'पिताश्रीने उन सर्वज्ञसे पूछा था कि मेरे ज्येष्ठ पुत्र और वंश कैसा होगा? इसके उत्तरमें महर्षिने एक आख्यायिका सुना दी।'

‘ देवासुर-संग्राममें देवताओंने दैत्योंको पराजित करके उनका पीछा किया। प्राण-भयसे दैत्य भागे। वे महर्षि भृगुकी पत्नीकी शरणमें गये। दयामयी ऋषि-पत्नीने उन्हें अभय दिया। इससे रुष्ट होकर विष्णुने भृगु-पत्नीका अपने चक्रसे सिर काट दिया।’ दुर्वासाजीने सुनाया— ‘पत्नी-वियोगसे क्रुद्ध भृगुने हरिको शाप दिया— “तुमने मुझे पत्नीसे वियुक्त किया है, मैं भी तुम्हें पत्नीसे वियुक्त करूँगा।”

‘ महर्षि भृगुको शाप देकर पश्चाताप हुआ। अन्ततः विष्णुपत्नी रमा उनकी पुत्री ही हैं। यह शाप उन्होंने आवेशमें अपनी सुताको ही दे डाला।’ महर्षि दुर्वासाने बतलाया—‘ क्रोधके आवेशमें कैसे विवेक लुप्त हो जाता है, इसका अनुभव मुझसे अधिक किसीको नहीं होगा; किंतु स्वभाव दुस्त्यज है, यह भी मैं जानता हूँ। महर्षि भृगुने विष्णुका पूजन करके उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया।’

‘ मैं रामावतारमें पत्नी-वियोग स्वीकार कर लूँगा।’ श्रीहरिने यह आश्वासन दिया।

‘ मुनिगण कहते हैं, आप साक्षात् श्रीहरि हैं।’ लक्ष्मणकी यह बात सुनकर श्रीराम गम्भीर हो गये।

× × ×

‘ भगवन्! अपने आश्रमके समीप ही सुरसरि-तटपर एक तेजोमयी देवी अनाथाके समान रुदन करती थीं।’ महर्षि वाल्मीकिसे उनके आश्रमके ब्रह्मचारी बालकोंने दौड़ते हुए आकर उतावलीमें सुनाया— ‘वे अभी-अभी छटपटाकर मूच्छित हो गयी हैं। एक कोई राजपुरुष नौकापर रथ लेकर आये थे। हम दूरसे देख रहे थे। वे उन्हें वहाँ छोड़कर चले गये। उनका रथ तो दूसरे तट पहुँच गया होगा।’

महर्षि वाल्मीकि दौड़े। उनका उत्तरीय मृगचर्म वहीं गिर गया। पादुका पदोंमें आयी ही नहीं। ब्रह्मचारी बालक गुरुदेवकी अनुमतिके बिना साथ तो नहीं गये, किंतु दूरसे देखते रहे।

महर्षिने गङ्गाका जल लिया चुल्लूमें और कुछ मन्त्र पढ़कर श्रीजानकीके मुखपर छिड़का! भगवती सीताने पलकें खोलीं। महर्षिको देखकर उठ बैठीं। बैठे-बैठे ही भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया।

'वत्से ! मैं जानता हूँ कि तुम दिवंगत चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथकी स्नुषा हो।' महर्षि स्वयं समीप खड़े होकर वात्सल्यपूर्ण स्वरमें बोले—'महाराज सीरध्वज जनक मेरे मित्र हैं। अतः तुम अपनेको पिता-के समीप ही समझो। तुम्हें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं तपोबल-से सब जानता हूँ। तुम्हारी पवित्रतासे मैं अवगत हूँ। तुम निष्पापा हो। श्रीराम भी निर्दोष हैं। सम्राट्को—शासकको लोकादर्शकी रक्षाके लिए आत्मबलि भी देनी पड़ती है। यह भी जानता हूँ कि तुम इस परिस्थितिमें पितृगृह नहीं जा सकती हो, अन्यथा मैं तुम्हें साथ लेकर मिथिला चल सकता था। पुत्री ! तुम्हारा स्वागत। यहाँसे थोड़ी ही दूरीपर बहुत-सी तापसी रहती हैं। वे तुम्हें अपने मध्य पाकर प्रसन्न होंगी, तुम्हारा पालन वे प्रयत्नपूर्वक करेंगी। तुम चलकर उनका अर्घ्य स्वीकार करो। उनके समीप ही रहो।'

'भगवन् ! अब इस अनाश्रयाके आप ही आश्रय हैं।' श्रीजानकीने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया और उठ खड़ी हुईं—'दुर्दैवने श्रीचरणों-में मुझे डाल दिया है। आपकी आज्ञा स्वीकार है मुझे।'

महर्षि वाल्मीकि मुड़ पड़े। वे मन्द पदोंसे चलने लगे; क्योंकि जानते थे कि श्रीवैदेही शीघ्र गतिसे नहीं चल सकेंगी। मस्तक झुकाये, पृथ्वीकी ओर देखती श्रीजानकी महर्षिके पीछे-पीछे चल पड़ीं।

महर्षि वाल्मीकिके अपने उटजसे थोड़ी दूरीपर तपस्विनियोंकी कुटिया थी। ब्रह्मचारी बालकोंने दौड़कर उन्हें समाचार दिया—'सुरसरि-तटपर एक तेजोमयी देवी मूर्च्छिता पड़ी थीं। हमारे गुरुदेव उन्हें सचेत करके इधर ही लिये आ रहे हैं।'

तपस्विनियोंमें अनेक उन ब्रह्मचारी बालकोंकी माताएँ थीं। महर्षि वाल्मीकि विपद्ग्रस्ता, सपुत्र विधवा वृद्धा ब्राह्मणियोंको आश्रय दे देते थे। उन देवियोंको भी आश्रय दे देते थे, जिनके पति दीर्घकालके लिए प्रवासमें चले गये हों, अथवा तपस्यामें लगे हों। उनके पुत्र महर्षिके समीप रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे।

सबकी सब तपस्विनियाँ एक साथ अपनी कुटीरोंसे निकल आयीं। उन्होंने आगे आकर श्रीजानकीका स्वागत किया। उनको आसन देकर अर्घ्य अर्पित किया। श्रीवैदेहीने उनको प्रणाम किया।

'सीतासे कुछ पूछनेकी आवश्यकता नहीं है।' महर्षिने तपस्विनियों-से कहा— 'ये अब यहीं रहेंगी। सबको इनका सावधानीसे पालन करना चाहिये। इनको श्रम करने अथवा जल, कन्द-फल आदि लानेका कभी अवसर नहीं मिला। यह कार्य अन्तेवासी बालक कर दिया करेंगे। किसी आपत्तिग्रस्ता अत्यन्त दुःखियाकी सेवा कैसे करनी चाहिये, यह तुम सब जानती हो। सीताकी सेवा तुम्हारी साधनाका अङ्ग होकर तुम्हें शीघ्र सफलता देगी।'

महर्षिके आदेशसे तपस्विनियोंकी कुटियोंके समीप ही ब्रह्मचारियोंने पृथक थोड़ी बड़ी पर्णकुटी दूसरे ही दिन बना दी और उसमें शयनके लिए समतल वेदिका निर्मित कर दिया।

विचित्र विधान है विधाताका। सम्पूर्ण पृथ्वीके एकछत्र सम्राट्की राजमहिषी रथमें मुनियों, मुनि-पत्नियोंके लिए उत्तम, कोमल वल्कल, मृगचर्म, व्याघ्राम्बर, रुद्राक्ष-तुलसीकी मालाएँ, कमण्डलु आदि रथमें भरकर अयोध्यासे उत्साहपूर्वक चली थीं। वह सब सामग्री रथमें धरी रह गयी। अयोध्या लौट गयी। उन श्रीजानकीको तपस्विनियोंसे प्राप्त वल्कल, मृगचर्म, कुशासन, तृण चटाइयाँ, व्याघ्राम्बर, जल-कलश, कमण्डलु, तुम्बे, कन्द, मूल, फल प्रभृति कितने ही आवश्यक उपकरण सङ्कोचपूर्वक स्वीकार करने पड़े।

'वत्से! तू इतना सङ्कोच क्यों करती है?' वृद्धा तापसाओंने मिलते ही अपना लिया— 'तू हमारी अपनी ही पुत्री है। तेरी जो अवस्था है, उसमें ये उपकरण तो अत्यल्प हैं तेरे लिए।'

'अम्ब! आप हमें वारित क्यों करती हैं?' महर्षिके आश्रमके बालक ब्रह्मचारियोंने निश्चल श्रद्धासे कहा— 'गुरुदेव कहते हैं, आप साक्षात् महाशक्ति हैं। देवी हंसवाहिनी भी आपके अनुग्रहकी आकांक्षा करती हैं। आपकी सेवाका सौभाग्य हमें मिला तो आप वारित मत करें।'

'वत्से! तेरे सुकोमल अरुण कर और ये पङ्कज-पद श्रम करने योग्य हैं?' तपस्विनोंमें जैसे वात्सल्य उमड़ पड़ा है —'इस समय तू उस शिशुपर तो दया कर, जो तेरे भीतर है। तुझे तनिक भी श्रान्त नहीं होना चाहिये।

बालकोंने वेदिकापर बहुत अधिक कुशास्तरण किया है। उसके ऊपर व्याघ्राम्बर, मृगचर्म अनेक डाले हैं। उनपर भी वल्कल बिछाया

है। उनका वश चले तो वे प्रतिदिन किसलय-तल्पपर कुसुम-दलोंका अस्तरण करें ; किंतु भगवती जानकी यह स्वीकार ही नहीं करती हैं।

तपस्विनीके समीप जो उत्तम नूतन वल्कल, कलश, कमण्डलु, तूंबे, मृगचर्म थे, वे सब इस उटजमें आ गये। अनेक औषधियाँ, कन्द-मूल, फल ब्रह्मचारी बालक प्रतिदिन दे जाते हैं। अस्वीकार करनेपर भी रख जाते हैं। कुटियाको सुरभित सुमनोंसे सजा दिया करते हैं। तापसियाँ अनेक औषधियाँ रख गयी हैं। अनेक प्रकारकी धूप जलाती रहती हैं यहाँ आकर।

स्वयं महर्षि वाल्मीकि प्रातःकृत्यके पश्चात् एवं सायंकाल पधारते हैं। सब व्यवस्था देखते है। पूछते हैं। कुछ-न-कुछ कन्द, मूल, फल प्रसाद दे जाते हैं कुछ आदेश दे जाते हैं—'वत्से! तू दुःखी रहेगी तो शिशुपर कुप्रभाव पड़ेगा। तुझे अपनेको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न रखना चाहिये। श्रम थोड़ा करना चाहिये। बालक तुलसी-पुष्प रोपित कर देंगे यहाँ। तू उनकी देख-भाल कर लिया कर। मृग शावकोंसे, मृगियोंसे तनिक विनोद कर लिया कर!'

महर्षिके आश्रममें तो मृग, केहरी, व्याघ्र सब एक साथ घूमते, बैठते, क्रीड़ा करते हैं। आश्रमके सबसे बड़े व्याघ्रने और महासिंहने पता नहीं क्यों अब श्रीजानकीके उटजके द्वारपर ही अपनी बैठक बना ली है। उनकी संगिनियाँ उनसे सटी बैठी रहती हैं। मृगयूथ उछलता उटजके भीतर तक आ जाता है। शशक जैसे छोटे प्राणी चाहे जब अङ्कमें आ बैठते हैं।

महर्षिने अब अपने दैनिक कथा-सत्सङ्गकी दिशा बदल दी है। अब वे तत्त्व-विवेचन, वैराग्य, योगकी व्याख्याके स्थानपर पुण्यश्लोक, प्रचण्ड-पौरुष प्राचीन सम्राटोंकी गाथाएँ सुनाया करते हैं। एकाग्रमना श्रीजानकी श्रवण करती हैं उन्हें।

'भगवती' बालकोंने यह नाम दे दिया है। तापसियोंको भी यह सम्बोधन रुच गया है। श्रीजानजी कितना भी चाहें, उन्हें जल लाना तो दूर, कोई उटज-मार्जन भी नहीं करने देती। वे संकोचमयी, श्रद्धा-मयी ; किंतु यहाँ वे सबकी वात्सल्य-भाजना हैं। महर्षि तकको भी केवल प्रणाम ही कर पाती हैं। वे भी अपने उटजमें वल्कल तक बिछाने नहीं देते।

पशु-पक्षियोंको भी न्याय

'अन्यमनस्कताके कारण आज चार दिन हो गये, मैंने राजकार्य देखा नहीं है। लक्ष्मण ! यह कर्तव्यच्युति मेरे लिए बड़े कष्टकी बात है। अतः प्रजा-प्रतिनिधिगणोंको, मन्त्रियोंको सूचना दो कि वे राज-सभामें उपस्थित हों। कुलगुरुसे भी प्रार्थना करो। नगरमें घोषणा कराओ कि कार्यार्थी उपस्थित हों।' श्रीरघुनाथने अपना चित्त स्थिर कर लिया था। उनका स्वस्थ स्वर सुनकर लक्ष्मणको प्रसन्नता हुई— 'राजाके द्वारपर न्यायार्थियोंकी भीड़ लगे तो राजा पाप-भागी होता है। न्याय ठीक, अविलम्ब, सरल, सहज सुलभ होना चाहिये सबके लिये। दूरसे आये लोगोंको यहाँ राजधानीमें रुकनेमें असुविधा हो सकती है। उनके घरपर आवश्यक कार्य हो सकते हैं। प्रजाको न्याय प्राप्तिमें कठिनाई और विलम्ब नहीं होना चाहिये।'

मध्याह्न-विश्रामसे पूर्व ही यह आदेश लक्ष्मणको मिल गया। आज श्रीरामने सम्राटोचित वेश धारण किया। मुकुट, वस्त्र, आभरण, अंगराग पुष्पमाल्य सब स्वीकार किया उन्होंने। आञ्जनेयकी उदासीनता, अरण्य-प्रियताके कारण अब लक्ष्मणको ही अग्रजके समीप सदा उपस्थित रहना था।

तृतीय प्रहरके प्रारम्भमें सम्राट राजसभामें पधारे। प्रजा-प्रतिनिधि, मन्त्रीगण, विप्रगण प्रथम आकर अपने स्थानोंपर बैठ चुके थे। सम्राटके आनेपर सबने अभ्युत्थान दिया। इसी समय महर्षि वशिष्ठ पधारे। सम्राटने उठकर उनकी पद-वन्दना की। महर्षिके आसन ग्रहण कर लेने पर सम्राट सिंहासनासीन हुए। अयोध्याके इतिहासका यह प्रथम दिन था, जब सम्राट बिना साम्राज्ञीके अकेले राजसभामें सिंहासनपर बैठे थे।

बड़ा अटपटा, बहुत असंगत लगता था सबको; किन्तु सम्राट श्रीराम शान्त, गम्भीर थे। लक्ष्मणने राजाज्ञा पाकर बाहर पुकारकर देखा। आकर निवेदन किया— 'कोई कार्यार्थी राजसभाके द्वारपर नहीं है।'

'आप सबमें-से किसीको कुछ कहना है ?' श्रीराघवेन्द्रने मन्त्रियों, प्रजा-प्रतिनिधियोंकी ओर देखा। सबने मस्तक झुका लिया। राजसभाकी बैठक समाप्त हो गयी। सम्राट् सिंहासनसे उठ गये। यह प्रतिदिनका क्रम बन गया। अब कहाँ किसमें उत्साह था कि राजसभामें कार्यार्थी न होनेपर काव्य-रसास्वादन, कला-चर्चा अथवा विनोद-वार्ता होती। श्रीराघवेन्द्रने नगर-भ्रमणका उत्साह नहीं दिखलाया। अब वे सम्राट्—केवल सम्राट् थे और सम्राट्का कर्तव्य अप्रमत्त पालनको प्रस्तुत थे; किन्तु केवल कर्तव्य-पालन, इससे अधिक कुछ नहीं।

'लक्ष्मण! कोई न्यायार्थी तो नहीं आया है ?' एक दिन इसी प्रकार श्रीरघुनाथने राजसभामें धर्मासनपर बैठते ही आदेश दिया।

'कोई नहीं आया है देव!' लक्ष्मणने जाकर पुकारा और लौटकर सूचना दी।

'एक बार और जाकर ध्यानसे देखो!' आज श्रीरामने अनुजसे कहा—'मेरा मन कहता है, किसीको होना चाहिये।'

'एक श्वान अवश्य बाहर खड़ा है।' लक्ष्मणने लौटकर निवेदन किया—'वह यहांके लिए अपरिचित लगता है। मेरी ओर देखकर रोता था।'

'लक्ष्मण! शासकको प्राणिमात्रका रक्षक होना चाहिये। इस धर्मासनपर बैठकर मानवेतर प्राणियोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सबको समुचित न्याय देना शासकका कर्तव्य है।' श्रीरामने आदेश दिया—'उस श्वानको ले आओ।'

'महाभाग! तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?' लक्ष्मणने श्वानके समीप जाकर पूछा—'तुम न्याय पाने आये हो, अतः आशा करनी चाहिये कि तुम हमारी भाषा समझते होगे। सारमेय! स्वस्थ-मन कहो अथवा संकेत-से ही सूचित करो।'

'जो सर्वेश्वर हैं, शरणागतवत्सल हैं, मैं उपेक्षणीय पशु उनके सम्मुख ही अपनी प्रार्थना उपस्थित करना चाहता हूँ।' श्वानने स्पष्ट मानव-भाषामें कहा—'मैं अस्पृश्य पशु हूँ, अतः उन पतितपावनकी आज्ञाके बिना राजसभामें प्रवेश नहीं कर सकता।'

'वह कोई हो, ले आओ!' श्रीराघवेन्द्रने सुनकर भाईको आदेश दिया— 'धर्मासनके सम्मुख आनेका सबको अधिकार है।'

लक्ष्मणके द्वारा अनुमति पाकर श्वानने राजसभामें प्रवेश किया। उसने अपने ढंगसे दोनों पैर आगे फैलाकर, उसपर सिर लम्बा रखकर अभिवादन किया। उसके मस्तकपर आघात लगा था। वहाँ रक्तसे सने केश स्पष्ट दीख रहे थे। श्रीराघवेन्द्रने मेघ-गम्भीर स्वरमें कहा— 'सारमेय! यहाँ तुम सर्वथा निर्भय हो। अपनी बात स्पष्ट, निर्भीक कहो।'

'राजा ही सर्वपालक होता है। सभी प्राणी राजाके रक्ष्य होते हैं। आप धर्मके रक्षक हैं। सब प्रमाणोंके प्रमाण हैं। मैं मस्तक झुकाकर आपको प्रणाम करता हूँ।' श्वानने पहिलेके समान पुनः अपने ढंगसे अभिवादन करके अभियोग उपस्थित किया— 'भिक्षु सर्वार्थसिद्ध एक विप्रके घर रहता है। उसने मुझे निरपराध लगुडसे आहत किया है।'

'अभियुक्त उपस्थित किया जाय?' सम्राट्ने आदेश दिया।

राजसेवक अविलम्ब दौड़ गये। थोड़े ही समयमें भिक्षु सर्वार्थसिद्ध सिंहासनके सम्मुख उपस्थित किया गया। सम्राट्ने शान्त स्वरमें कहा— 'आप साधनोन्मुख प्रतीत होते हैं। शास्त्रज्ञ लगते हैं। आप जानते हैं कि क्रोध तप, यज्ञ, दान आदि पुण्योंका नाशक है। क्रोध पापका पिता है। आपने इस श्वानपर क्यों प्रहार किया? इस प्राणीने आपका क्या अपराध किया था?'

'मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझसे अपराध हुआ है।' भिक्षुने भी स्वस्थ कण्ठ, निर्भय कहा— 'मैंने क्रोधावेशमें ही इस पर प्रहार किया। इसका कोई अपराध नहीं है। यह मार्गमें खड़ा था। मैंने इससे हटनेको कहा, पर यह हटा नहीं। मैं इसे एक ओर त्यागकर जा सकता था; किंतु मैं क्षुधातुर था क्षुधापीड़ित होनेसे मुझे रोष आया।'

'आपको भिक्षाके लिए भटकना पड़ता है?' श्रीरामने चौंककर पूछा।'

'सम्राट् अन्यथा अर्थ न लें!' भिक्षुने नम्रतापूर्वक निवेदन किया— 'मैंने कुछ नियम कर रखा है। सरयू-तटके वानप्रस्थोंके उटजसे ही भिक्षा-ग्रहण करता हूँ। आज अपने अध्ययन, जपमें भिक्षाके समयका

ध्यान नहीं रहा। भिक्षाका समय व्यतीत हो गया था। वानप्रस्थाश्रमी अपने अन्य नियमोंमें लग गये थे। मुझे भिक्षा मिली नहीं थी। दोष सब मेरा था; किन्तु क्षुधाने मुझे रुष्ट कर दिया था। मैंने इस निर्दोष पशुपर लगुड-प्रहार किया। मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे दण्ड दें। जब शासकसे अपराधका दण्ड प्राप्त हो जाता है, तब वह दण्ड ही प्रयश्चित बन जाता है। तब नरकका भय नहीं रहता। अतः आप मुझे दण्ड देकर शुद्ध कर दें।'

'अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार करता है; किंतु—' श्रीरामने मन्त्रियों, सभासदों तथा कुलगुरुकी ओर देखा—'यह ब्राह्मण है। विवेकशील साधक है। इसे शरीर-दण्ड देनेकी अनुमति शास्त्र नहीं देता। इसे क्या दण्ड दिया जाना चाहिये?'

'वेदज्ञ साधन-निष्ठसे अपराध भी हो जाय तो शासकको उसे शरीर-दण्ड नहीं देना चाहिये। यह स्मृतिकी आज्ञा है। जो स्वयं अन्यके घर रहता है, भिक्षा माँगकर उदरपूर्ति करता है, उस अपरिग्रहीके पास धरा क्या है कि उसे कोई अर्थ-दण्ड देगा। अतः उसके लिए दण्ड-निर्णय समस्या तो थी ही।

'आप मुझसे प्रसन्न हैं, सन्तुष्ट हैं तो इसे कुलपति महन्त बना दें।' श्वानने स्वतः कहा—'कौलक्चर (कालिञ्जर) देशमें कौलापत्य पद दे दें।'

'लक्ष्मण! इन भिक्षु महानुभावको कौलक्चरका कौलापत्य बनाया गया।' सम्राट्ने आदेश किया—'इनको गजशालासे गज चुन लेने दो। उपयुक्त वस्त्राभरण देकर उस गजपर इनकी नगर-शोभा-यात्रा निकालो और सम्मानके साथ सेवक साथ देकर इन्हें कौलक्चर भेज दो।'

भिक्षु अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने आशीर्वाद दिया—'सम्राट्का कल्याण हो।'

'आपने इसे दण्ड दिया या पुरस्कृत किया?' एक मन्त्रीने पूछा। भिक्षु राजसभासे लक्ष्मणके साथ जा चुका था।

'मैंने केवल वह किया जो अभियोग उपस्थित करनेवालेने चाहा।' सम्राट्ने गम्भीर होकर कहा—'यह दण्ड है या पुरस्कार, आप इन सारमेय महाभागसे ज्ञात करें।'

'यह दण्ड है सम्राट् !' श्वान फिर स्वतः बोला— 'मैं इस शरीरसे पूर्व वहींका कुलपति था। सबको खिलाकर खाता था। देव-सम्पत्तिकी सुरक्षा करता था। अत्यन्त सावधानी रखता था। लेकिन एक दिन देवार्चनके लिए शीत-कालमें हाथसे घृत निकालने लगा। वह घृत मेरे नखोंमें रह गया। मैंने उष्ण भोजन किया तो वह आहारमें मिलकर उदरमें चला गया। इतनी सावधानी रखने पर भी मुझे श्वान होना पड़ा। यह तो प्रमादी है। देवधन, गोधनका सेवन नरक देनेवाला है। इसका प्रमाद ही अब इसे नरकगामी बनावेगा।'

× × ×

'सम्राट् न्याय करें ! सरिता-तटपर स्थित महावट मेरा है।' ऐसे ही एक दिन राजसभामें एक गीध उपस्थित हो गया। वह बिना अनुमति उड़ता आया और सिंहासनके सम्मुख सबके मध्य निर्भीक बैठकर मनुष्य भाषामें बोला।

'वह वृक्ष मेरा है सम्राट् !' गृद्धके पीछे ही उड़ता एक असाधारण बड़ा उलूक आया। वह भी गीधके बराबर बैठ गया भूमिपर। मनुष्य-भाषामें ही बोला।

'आप दोनोंमें उस वृक्षपर कौन कितने वर्षोंसे रहते हैं, यह सूचित करनेका कष्ट करें।' सम्राट्ने दोनोंकी ओर देखकर कहा।

'मैं बहुत ऊँचे उड़ सकता हूँ। सम्पूर्ण पृथ्वी देख सकता हूँ।' गीध-ने कहा— 'मैं जब उस वृक्षपर सर्वप्रथम बैठा था, तब प्रथम मनु स्वायम्भुवके पुत्र पृथ्वीपर बसे थे। वे ब्रह्मलोकसे आये थे। मनुकी सन्तान-के साथ ही मेरी उत्पत्ति हुई है।'

'यह तथ्य है कि मैं दिनमें देख नहीं सकता हूँ; किंतु रात्रिमें निर्बाध उड़ता हूँ। रात्रिके अन्धकारमें समस्त पृथ्वी मैंने देखी है। उस समय गुहाएँ ही थीं, उन्हें भी मैंने देखा है।' उलूकने कहा— 'मैंने जब उस वृक्ष-कोटरमें प्रथम अपना नीड बनाया, पृथ्वीपर केवल वृक्ष थे। कुछ सरीसृप, क्षुद्र कीट, तितलियाँ और हम अण्डज पक्षी थे। उस समय तक द्विपाद मनुष्य तो क्या चतुष्पाद भी उत्पन्न नहीं हुए थे। जलचरोंके सम्बन्धमें मैं नहीं जानता।'

'लक्ष्मण ! वह वृक्ष इन लक्ष्मी-वाहनका है। सेवक भेजकर इनके लिए सुरक्षित कर दिया जाय।' सम्राट्ने निर्णय दिया—'अन्यके स्वत्वपर अधिकार करनेकी चेष्टाका दण्ड गृद्धको प्राप्त होना चाहिये।'

'राम ! गीधको मत मारो। यह तो पहिलेसे मृतप्राय है।' अचानक आकाशवाणी हुई— 'यह पूर्वकल्पमें कुबेरके समान धनाढ्य ब्रह्मदत्त नामक विप्र था। महर्षि गौतम इसके अतिथि हुए। इसने अहङ्कार और प्रमादवश उनको भोजनमें मांस परसा। ऋषिने शाप दे दिया— 'गृद्ध होजा आमिषाशी !' इसे आगामी कल्पमें कुबेर होना है।'

'मैंने जानबूझकर आपके दर्शनकी आकांक्षासे उस उलूकसे विवाद किया।' गीध बोला— 'समझता था कि आप न्याय करेंगे। मुझे प्राण-दण्ड प्राप्त होगा। आप अनन्त दयार्णवसे अनुरोध करूँगा कि आपकी उपस्थितिमें मुझे दण्ड दिया जाय तो आप उसे स्वीकार कर लेंगे। अब आकाशवाणीने मुझे इस सौभाग्यसे भी वञ्चित कर दिया।'

'आपको देखकर मुझे पितृव्य जटायुका स्मरण हो आया था। मैं उनके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकता।' श्रीरामने भरे कण्ठसे कहा— 'आकाशवाणीने मुझपर अनुग्रह किया। आपको प्राण-दण्ड देनेका साहस मैं नहीं कर सकता था। आपको दण्ड दिया जाय, यह निर्णय करके भी मैं सचिन्त था कि आपको कौन-सा दण्ड दिया जाय। आप कहाँ निर्वासित होना स्वीकार करेंगे।'

'सत्य ही श्रुति-संत आपको करुणासिन्धु कहते हैं।' गीधने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा— 'आप अपने कर-स्पर्शसे मेरा उद्धार कर दें' यद्यपि मैं इसका अधिकारी नहीं हूँ। आमिशाषी अपवित्र पक्षी हूँ। अपराधी हूँ; किंतु अब आपके सम्मुख आ गया हूँ।'

श्रीराम सिंहासनसे उठे। वे शान्त, स्थिर पदोंसे गृद्धके समीप आये। अपना दक्षिण कर बढ़ाकर उन्होंने गीधके पृष्ठदेशका स्पर्श किया। सहसा एक अद्‌भुत ज्योति प्रकट हुई। गीधका शरीर अदृश्य हो गया। जैसे वह गृद्ध-देह घुलकर ज्योति बन गया हो। वह प्रकाश पुनः पुञ्जीभूत हुआ और एक दिव्य पुरुषाकारमें प्रकट हुआ। उस पुरुषने श्रीरामका स्तवन किया। उनकी प्रदक्षिणा की। अन्तमें अन्तरिक्षमें ऊपर चला गया।

'अब गृद्ध-स्पर्शसे शुद्ध होनेके लिए स्नान करना आवश्यक है।' स्वयं श्रीरामने कहा। वे सिंहासनपर नहीं गये। राजसभा विसर्जित हो गयी उस दिन, उसी समय।

शत्रुघ्नकी लवण-वधार्थ यात्रा

' आप सब अनुग्रह करके अयोध्या आये हैं। आत्माराम, आप्त-काम महात्मागणोंका अपना तो कोई प्रयोजन होता नहीं। वे हम जैसे प्रपञ्चासक्त पुरुषोंके कल्याणार्थ ही पर्यटन करते हैं।' ग्रीष्मकालमें एक दिन बहुतसे तपस्वी ऋषि-मुनि अयोध्या आये। श्रीरघुनाथने उनका स्वागत किया। उनकी अर्घ्य, पाद्यादिसे पूजा की आसन देकर। अर्चाके अनन्तर अञ्जलि बाँधकर बोले— ' यह राज्य, मेरा जीवन और सब वैभव महात्माओंकी सेवामें ही अर्पित है। आप सब आज्ञा करें किमैं आप सबकी क्या सेवा करूँ ?'

' हम सब भयाक्रान्त आपकी शरण आये हैं।' उन आगत तापसोंने कहा— ' अशरणोंकी आप ही शरण हो। प्राणीको तभी तक भव-भय भी भी रहता है, जब तक वह आप अभयदके पादपद्मोंकी शरण नहीं लेता।'

' आप सबको कौन भय दे रहा है ?' श्रीरामके स्वरमें अत्यन्त गम्भीरता आ गयी।

' सतयुगमें लोला-का पुत्र मधु हुआ। यद्यपि वह दैत्य था; किंतु ब्राह्मणोंका भक्त था।' आगत ऋषियोंमें-से भार्गवने कहा— ' मधुकी भक्ति तथा तपसे प्रसन्न होकर भगवान शिवने उसे दर्शन दिया।'

आशुतोष वृषभध्वजने उसे अपना ज्योतिर्मय त्रिशूल प्रदान करके वरदान दिया— ' जब तक यह त्रिशूल तुम्हारे हाथमें रहेगा, तुम सबसे अपराजित रहोगे।'

' उस धर्मात्मा दैत्यने मधुपुरी बसायी। अयोध्याके समान ही सप्तपुरियोंमें प्रसिद्ध मोक्षदायिनी पुरी मथुराका उसके द्वारा पुनरुद्धार हो गया।' भार्गवने कहा— ' भगवान शङ्करके अन्तर्हित होनेपर वह धर्म-पूर्वक शासन करता रहा। लेकिन उसकी पत्नी अनूलाके गर्भसे उसे जो पुत्र प्राप्त हुआ लवण, वह जन्मसे ही दुर्विनीत एवं मदमत्त निकला।

जब पुत्रको किसी प्रकार मधु सत्पथपर नहीं ला सका, तब दुःखी होकर मधुपुरी त्यागकर वरुणालय चला गया।'

'पिताके चले जानेसे लवणासुरपर रहा-सहा अंकुश भी समाप्त हो गया।' महर्षि भार्गवने कहा—'भगवान शङ्करने जो त्रिशूल मधुको दिया था, वह लवणको प्राप्त हो गया। इससे वह और भी उद्धत हो गया। सुरालय नष्ट कर दिये उसने, विप्रोंको उत्पीडित करके भगा दिया। सभी सात्विकजनोंको बड़ा कष्ट देता है। उस मोक्षदा पुरीको उसने यमपुरी बना रखा है।'

'वह रहता कहाँ है?' श्रीरामने पूछा–'उसका आहार क्या है?'

'रहता वह मधुवनमें ही है।' ऋषियोंने कहा—'यों तो वह प्राणि-भक्षी है; किंतु तापस-भक्षण उसका प्रिय आहार है।'

'इस सुर-साधु-सङ्कटको समाप्त करना आवश्यक है। श्रीराघवेन्द्र गम्भीर हो गये। स्वाभाविक तो यह था कि स्वयं उस तापस-भक्षी दैत्यको मारने जाते; किंतु श्रीजानकीके त्यागके पश्चात् वे बहुत शोक-सन्तप्त, व्यवहारसे उपरत हो रहे थे। उन्होंने भाइयोंकी ओर देखकर पूछा—'इस असुरके वधको कौन उद्यत है?'

'मैं इसे मार दूंगा।' भरतने उठकर कहा—'यह सेवा मेरा भाग है।'

'आपने आरम्भसे अयोध्याका पालन किया हैं।' शत्रुघ्नने हाथ जोड़कर खड़े होकर प्रार्थनाकी—'आर्य! आप आजकल सम्राट्की जो मनःस्थिति है, उससे अवगत हैं। इस समय इनका त्याग मत करें। राज्यके सञ्चालनका आपको अनुभव है। यह सेवा मैं सरलता पूर्वक सम्पन्न कर दूंगा।'

'ठीक है, यह कार्य कुमारको ही सम्पन्न करना चाहिये।' श्रीरामने स्वीकृति घोषित करके लक्ष्मणको संकेतसे समीप बुलाकर कुछ कहा। लक्ष्मण राजसदन गये। शीघ्र तिलक करनेकी सामग्री ले आये।

'कुमार! उत्तर मत देना। आज्ञा-पालन करो। अब श्रीरामने शत्रुघ्नकुमारको समीप बुलाया—'मैं तुम्हें मधुपुरीके राज्यपर अभिषिक्त कर रहा हूँ। इस राज्याभिषेकको स्वीकार करो। तुम्हें अब मधुपुरी रह-

कर असुरके अत्याचारसे सन्त्रस्त प्रजाको आश्वस्त करना है। उसे सुव्यवस्था प्रदान करना है।'

'यह तो अधर्म है कि बड़ोंके रहते छोटेका अभिषेक हो ; किंतु मैं आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता।' बहुत लज्जित हुए शत्रुघ्न। बहुत मन्द स्वरमें बोले— 'अपराध मेरा ही है कि मैंने बड़ोंके सम्मुख मौन बने रहनेका अपना व्रत भङ्ग किया। आर्य भरतके स्वीकार करनेपर भी बीचमें बोल पड़ा। यह निर्वासन इसीका दण्ड है।'

'कुमार ! यह मेरी इच्छा है।' श्रीरामने स्नेहपूर्वक समझाया— 'मधुपुरी अयोध्याके समान ही मोक्षदायिनी पुरी है। उस नित्यधामको लवणासुरने उत्पातका केन्द्र बना रखा है। असुरको मार देना ही पर्याप्त नहीं है। उसके अनुयायी वर्गको तो वहाँ प्रतिष्ठित किया नहीं जा सकता। वहाँके उत्पीडनसे पलायित विप्रोंको, प्रजाको बुलाकर बसाना है। उच्छिन्न, ध्वस्त देव-मन्दिरोंकी पुनः प्रतिष्ठा करनी है। वहाँ एक श्रमशील, उत्साही, प्रजासे सहानुभूति रखनेवाला, श्रद्धालु शासक आवश्यक है।'

महर्षि वशिष्ठने विप्रोंके साथ मन्त्र-पाठ करते हुए सविधि शत्रुघ्न-कुमारका अभिषेक किया। श्रीराघवेन्द्रने उनके मस्तकपर रत्न-मुकुट रखकर राज्य-तिलक किया।

'कुमार सावधान ! तुम्हें इस प्रकार यात्रा करनी है कि इसने अभियानका पता लवणासुरको पहिलेसे नहीं लगना चाहिये।' श्रीराम अनुजको समझाया— 'भगवान शङ्करका त्रिशूल अमोघ है। वैसे भी त्रिपुरारिके शस्त्रकी महिमा सुरक्षित रहनी चाहिये। लवण अवश्य उसे अपने सदनमें सम्मानपूर्वक रखकर उसकी नित्य पूजा करता होगा। जब वह त्रिशूलको छोड़कर कहीं गया हो, तब नगर घेर लो और उसे बिना त्रिशूलके युद्ध करनेपर विवश करके मार दो।'

'वहाँ न धन है, न सेवक हैं, न स्त्रियाँ हैं। वहाँ तुमको सर्वथा नवीन निर्माण करना है। लवण-वधके पश्चात् जो प्रजा बचेगी या अन्यत्रसे आवेगी, वह अत्यन्त विपन्न होगी। उनमें अनेक पत्नी-विरहित होंगे। उनको यदि वे स्वीकार करें, विवाहित करना होगा। उन्हें भवन बनवाकर देने होंगे। सम्पत्ति और पशुधन प्रदान करना होगा।' श्रीरघुनाथने

विस्तृत निर्देश दिया— 'तुम पर्याप्त बड़ी सेना साथ ले जाओ। गज, अश्व, रथ, पदाति सभी अधिक होने चाहिये। तुम्हारी पत्नीके साथ सेविकाएँ तथा अन्य कुमारिकाएँ जायँगी। सेवकोंका समुदाय, गोधन, स्वर्ण, अन्न सब साथ भेजनेकी व्यवस्था भरत करेंगे। इसमें सङ्कोच मत करो। यह समझकर मत यात्रा करो कि केवल असुर-संहार करना है। तुम्हें नवीन राज्य स्थापित करना है। निर्जनमें नगर बसा लेनेकी अपेक्षा अत्याचारी असुरके उत्पातसे सन्त्रस्त, विध्वस्त स्थानमें सुव्यवस्थित राज्यकी स्थापना अधिक कठिन होती है।'

आगत ऋषि-मुनियोंको आश्वासन प्राप्त हो गया। उन्होंने शत्रुघ्न-का मार्ग-दर्शन स्वीकार कर लिया। लवणासुरको पहिलेसे सचेत नहीं करना था; अतः शत्रुघ्नके साथ जानेवाली सेना, सामग्री, सेवकादिके अनेक दल बनाये गये। इन सब दलोंको पृथक मार्गोंसे यात्रा करना था। इनमें-से अनेक दलोंको पर्याप्त घूमकर पहुँचना था।

सैनिकोंका एक भाग सामग्री, स्त्रियों और सेवकोंकी सुरक्षाके लिए सुनिश्चित कर दिया गया। इस भागकी अनेक सैनिक टुकड़ियाँ बना दी गयीं। इनको सामग्री, सम्पत्ति, सेवक, स्त्रियोंके भी कई भाग करके उन्हें विभिन्न पथोंसे अपने संरक्षणमें ले जाना था। इन्हें आदेश दिया गया था कि ये लोग अपनेको तीर्थयात्री प्रकट करेंगे। मन्द गतिसे चलेंगे। लवणासुरके मारे जानेका समाचार मिल जानेपर मधुपुरी पहुँचेंगे।

मधुपुरी सप्तपुरियोंमें-से एक मोक्षदायिनी पुरी है। जो वहाँ जा रहे हैं, वे तीर्थयात्रा नहीं कर रहे हैं? उनको युद्धमें तो सम्मिलित नहीं होना था अतः उन्हें कहाँ असत्यका आश्रय लेना था। उन दिनों मन्त्रियोंके दल चलते थे। उनकी सुरक्षाके लिए साथ सैनिक चलते थे पृथ्वीके सम्राट्के स्वजन तीर्थयात्रा करेंगे तो उनके साथ गज, अश्व, रथ, गायें, अपार अन्न, धन तो जायगा ही। 'तीर्थयात्री हैं' इतना उत्तर पर्याप्त होता है किसी-के मार्गमें पूछनेपर। तीर्थयात्रीका कोई निश्चित लक्ष्य तो है नहीं। वह तो तीर्थ भ्रमण करने निकला है। देवभूमि भारतमें तो कोई दिशा नहीं, जिस ओर लोक-प्रसिद्ध तीर्थ न हों।

तीर्थयात्रीके समीप ध्वज होते हैं, वाद्य होते हैं। भजन-कीर्तन करते यात्री-दल चलता है। सम्पन्न यात्री मार्गमें किसीका आतिथ्य स्वीकार नहीं करते। जलकी सुविधा देखकर जनपदोंसे दूर ही शिविर-स्थापन करते हैं।

मार्गमें पड़नेवाली पवित्र सरिताओंमें स्नान, देवस्थानोंके दर्शन, विप्रों तथा तीर्थपुरोहितोंका दान-मानसे सत्कार करता तीर्थयात्री-दल चलता है। अयोध्याके इस यात्री दलको भी यह सब करना था।

सेनाका दूसरा भाग जो युद्धके लिए निश्चित किया गया, उसमें शत्रुघ्नकुमारने जो पदाति रखे, उनको भी आदेश था कि वे मार्ग-श्रमसे श्रान्त न हों। उन्हें यात्रा रथोंपर बैठकर करनी थी। इस दलकी भी टुकड़ियाँ बना दी गयीं। यह दल भी यात्री-दलोंके साथ सुरक्षा-सैनिकके रूपमें ही अयोध्यासे चला। केवल इसे यह विशेष आदेश था कि जब यात्री दल मधुपुरीसे दूर रुक जायँ, ये सैनिक अपने वाहनोंसे शीघ्र मधुपुरीके समीप पहुँच जायँ, किन्तु अपनेको अरण्यमें छिपाये केवल रात्रिमें यात्रा करें। मुख्य यात्री-दलसे पृथक होनेके पश्चात् सैनिक-दलोंको किसी भी जनपदसे दूर रहना चाहिये।

सामान्य यात्री दलोंसे इतनी दूरीपर पृथक होना था कि एक ही रात्रिमें मधुपुरीके पार्श्व तक तीव्रगामी वाहनोंसे पहुँचा जा सके। मधुपुरीके चारों ओर सघन अरण्य हो गया था। लवणासुरने सुदृढ़ प्राकारसे परिवेष्टित अपने पिताकी इस पुरीको भी प्रायः निर्जन बना दिया था वहाँ उसके अनुचर असुर ही अवशिष्ट थे। उसके आतङ्कके कारण दूर-दूरके जनपदोंके लोग उस ओर जानेका साहस ही नहीं करते थे। अतः मधुपुरीके चारों ओरका अरण्य मधुवन निर्जन था। सैनिकोंका अभियान उसमें गुप्त रह सकता था। उसके प्रकट होनेकी कोई आशङ्का नहीं थी।

यह भी स्वाभाविक था कि मधुवनके आतङ्कग्रस्त क्षेत्रके समीप पहुँचकर यात्रीदल विश्राम करेंगे। आगेकी यात्राकी सावधानीसे योजना बनावेंगे। वे कहीं-न-कहींसे, किसी-न-किसी ओरसे घूमकर ही जायँगे; किन्तु बहुत अधिक घूमनेसे मार्ग बढ़ता देखकर हिचकेंगे। पता लगानेका स्वयं प्रयत्न करेंगे। उनके कुछ सैनिक मधुवनमें कुछ दूरी तक भीतर अवश्य जायँगे। मधुवनके सीमान्त जनपदोंके लोगोंको तीर्थयात्री-दलोंकी इन प्रवृत्तियोंका ऐसा परिचय हो गया था कि वे सामान्य सूचना देने, सावधान कर देनेके अतिरिक्त अधिक रूचि नहीं लिया करते थे। यात्री दलके रुकने पर उनको कुछ विक्रयका अवसर ही मिलता था। अतः यात्री-दल अधिक रुकें, इसमें उनका लाभ था।

शत्रुघ्नकुमारने अपने साथ बहुत थोड़े सैनिक लिये थे। वे निश्चित स्थान समय निश्चित पहुँच जाने वाले थे। मधुपुरीके चारों ओर अरण्यमें छिपे उनके सैनिक उनके आगमन और संकेतकी प्रतीक्षा करेंगे तथा लवणासुरकी गति विधिका ध्यान रखेंगे। वह कब क्या करता है, पुरीसे कब बाहर जाता है, यह विवरण उन्हें रखना था। वह कब लौटता है, कैसे लौटता है, किस दशामें लौटता है, यह सब सूचनाएँ पहुँचते ही शत्रुघ्नको देनी थी।

शत्रुघ्नकुमारको प्रजाके लोग पहिचानते थे। अतः उन्हें जनपदोंसे दूर रहते तपोवनों, अरण्योंके मार्गसे ही आगे बढ़ना था उनको यात्री-दलों अथवा मधुवनमें प्रविष्ट होने वाले सैनिकोंसे दो दिन पीछे पहुँचना था।

युद्ध-यात्राके समान यात्रा नहीं थी। अतः रणवाद्य मूक बने रहे। शंख, शृंगादि मङ्गलवाद्य बजे यात्रा प्रारम्भ करते समय। ये वाद्य तो यात्री-दल अपने ठहरनेके स्थानोंपर पहुँचते तथा प्रस्थान करते समय बजाता ही है।

प्रत्येक दलके साथ आगत ऋषि-मुनियोंमें-से कुछ तपस्वी थे। शत्रुघ्नके साथ सपरिवार विद्वान ब्राह्मण भेजे गये थे; क्योंकि नवीन पुरीकी—राज्यकी स्थापना अभीष्ट थी। ब्राह्मणोंके बिना तो यह सम्भव नहीं था। मधुपुरीसे पलायित विप्र तो पीछे क्रमशः आने वाले थे।

श्रीरामने, भरतने, लक्ष्मणने, कुलगुरुने, और महामन्त्री सुमन्त्रने नगर-सीमा तक जाकर शत्रुघ्नको विदा किया। सुमन्त्रने अपने पुत्रको शत्रुघ्नके साथ कर दिया था। बड़ोंको प्रणाम करके, उनका आशीर्वाद लेकर यह दल विदा हुआ। अयोध्यासे आगे जाकर उसे अनेक दलोंमें विभक्त होना था।

लव-कुश-जन्म

'आपका मङ्गल हो। भगवतीने युग्म पुत्ररत्न प्राप्त किये।' एक तापसीने महर्षि वाल्मीकिको समाचार दिया। महर्षि आज प्रातःसे इस समाचारकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बार-बार श्वासकी गति देखते थे और ग्रह-स्थितिपर विचार करते थे।

तपस्विनियोंने भी वैदेहीकी कुटियाको ही सूतिकागार बना दिया था। उसमें औषधियोंकी धूनी दी जा रही थी। शस्त्र-तलवार लटकायी गयी थी महर्षिकी शिक्षण-शालासे लाकर। तपस्विनियाँ ही वहाँ धात्री थीं, स्वजन थीं, सेविकाएँ थीं और सहायिकाएँ थीं। वे सहज वीतराग; किन्तु सीतापर उनका अपार वात्सल्य था। उन्होंने वैदेहीके पुत्र-जन्मपर शङ्ख-ध्वनिकी और श्रुति-मन्त्रोंका गान किया।

एक सामान्य जनके भी पुत्र होता है तो बधाईके वाद्य बजते हैं, उत्सव होता है; किन्तु पूरी पृथ्वीके सम्राट्के पुत्र हुए—एक नहीं, दो पुत्र और केवल शंख-नाद, कुछ मन्त्र-पाठ—बस।

महर्षि वाल्मीकिने ही स्नान करके बालकोंका जातकर्म-संस्कार कराया। वे स्वयं आचार्य थे और पिताके स्थान-पूरक भी थे। जातकर्मके पश्चात् तपस्विनियोंने ही नाल-छेदन किया।

अकस्मात् सैनिकोंके साथ शत्रुघ्नकुमार उसी दिन आश्रममें पहुँचे। महर्षिको उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और प्रार्थना की—'आर्या भगवतीने आपके ही यहाँ आश्रय लिया है, यह जानकर उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम करनेके लोभसे यहाँ आया हूँ।'

'वत्स! देख ही रहे हो कि अतिथि होनेपर भी मैंने तुम्हें अर्घ्य नहीं दिया है।' महर्षिने मङ्गल-सूचना दी—'तुम्हें जात-सूतक प्राप्त है। श्रीराम पिता हो गये हैं। पुत्री सीताने आज ही युग्म पुत्ररत्न प्राप्त किये हैं।'

'कुमार ! तुम किञ्चित् विलम्बसे आये हो, अन्यथा अपने भ्रातृ-पुत्रोंको देख सकते थे।' महर्षिने कहा—'उनका जातकर्म सम्पन्न हो चुका है।'

शत्रुघ्नको मन मसोसकर रह जाना पड़ा। नाल-छेदनके पूर्व शिशु सूतिकागारसे बाहर आता है कुछ क्षणोंको। तब उसको देखा जा सकता है। नाल-छेदनके पूर्व जात-सूतक-दोष नहीं होता। तब तक दान किया जा सकता है। दोनों अवसर हाथसे निकल गये थे। अब तो किसीको कुछ दान भी नहीं किया जा सकता था। ऐसा निर्मम दैव—आर्या भगवतीको निर्वासित होना पड़ा। उनके प्रथम सन्तान भी हुईं तो उपस्थित रहते हुए भी शत्रुघ्न कोई दान, कोई उपहार किसीको देनेकी स्थितिमें नहीं रहे।

अब यह जात-सूतक द्वादश दिनपर समाप्त होगा। सैनिक आगे जा चुके हैं। ब्राह्मण हैं, स्त्रियाँ हैं, पशु हैं, सामग्री है और वह भी अनेक दलोंमें विभक्त है। सबको सूचना देकर मार्गमें रोकपाना शक्य नहीं है। लवण जैसा दुर्धर्ष शत्रु है। उसे तनिक भी पता लगेगा तो सावधान हो जायगा। त्रिशूल साथ रखने लगेगा तब अजेय हो जायगा। किसी भी प्रकार यहाँ भगवान प्राचेतसाश्रममें रुका नहीं जा सकता।

शत्रुघ्नको रात्रिमें निद्रा नहीं आयी। महर्षि वाल्मीकिने पहिले ही क्षमा माँग ली थी—'कुमार ! मैं आज तुम्हारा उचित आतिथ्य नहीं कर सकूँगा। बहुत व्यस्त हूँ।'

शत्रुघ्नकुमार यह देखकर हर्षित हुए थे कि महर्षि स्वयं बहुत उत्साहित थे। 'मैंने दौहित्र पाया है।' वे बार-बार कहते थे। आश्रमके ब्रह्मचारियोंको लेकर वे आश्रम सजानेमें लगे थे। उन्होंने देवताओंको सन्तुष्ट करनेके लिए यज्ञ किये। रक्षोघ्न मन्त्रोंसे सूतिकागारकी रक्षा कर आये। ग्रह-शान्ति की।

'पुत्रीके सन्तान होनेसे उसके पिताको सूतक नहीं प्राप्त होता।' महर्षि उत्सव कर रहे थे—तपोवनके उपयुक्त उत्सव। वे आज स्वयं अपने अन्तेवासियोंके साथ सस्वर सामगान कर रहे थे। उन्होंने आसपासके सब तपस्वियोंको आमन्त्रित कर दिया था। पशु-पक्षी सबको फल, कन्द, अंकुर अर्पित करनेमें लगे थे।

प्राचेतसाश्रममें महोत्सव था उस दिन। भले पृथ्वीपर होनेवाला महोत्सव अल्प हो, गगनसे अनवरत पुष्प-बर्षा हो रही थी। गन्धर्वोंके वाद्य, अप्सराओंके नृत्य, किन्नरोंका कलगान क्या कभी दूसरे दिन अथवा अन्यत्र कृतार्थ होता ?

लताएँ फूलोंके गुच्छभारसे पत्रहीन प्रतीत हो रही थीं। तरुओंमें सुपक्व फल लदे थे और उनसे मधु-क्षरण हो रहा था। भ्रमरोंके झुंड गुंजार करते घूमते थे। पक्षियोंमें जैसे कलगानकी प्रतिस्पर्धा चल रही थी। मयूरोंके नृत्य और कोकिलकी कूक विरमित ही नहीं होती थी।

गायें, मृग ही नहीं, केहरी तक कूदते थे, नाचते थे। सम्पूर्ण तपोवन आनन्दमग्न था। पत्ता-पत्ता झूम रहा था। उठ रहा था महर्षिके हवन-कुण्डसे अखण्ड सुरभित धूम्र। गूँज रहा था सस्वर सामगान। इधर-उधर दौड़ते फिर रहे थे तपस्वी ब्रह्मचारी बालक।

शत्रुघ्न तथा उनके साथके सैनिक दिनके चतुर्थ प्रहरके अन्तमें, सायंकाल आश्रम आये थे। इतनेपर भी मन्त्रमुग्ध रह गये थे। प्रकृति भी उत्सव मनाती है ? पशु-पक्षी ही नहीं, तरु-लता-तृण तक आनन्दमग्न होते हैं ?

अयोध्यामें ऐसे प्रकृतिके अनेक चमत्कार शत्रुघ्नने देखे थे। देखा था जब श्रीरामके विवाहोत्सवपर बारात चली थी अयोध्यासे। देखा था जब नववधुओंको लेकर बारात लौटी थी। देखा था जब चौदह वर्षके पश्चात् अयोध्याके सर्वस्व अरण्यसे आये थे पुष्पकपर बैठकर। अणु-अणुका नर्तन, तृण-तृणका लास्य, पृथ्वी-पर्वतोंमें मणियोंका प्राकट्य, सरिता-वापियोंमें, सरोंमें, कमल-कुमुदका एक साथ खिल उठना, सब देखा था शत्रुघ्नने; किन्तु आज प्रकृतिने इस प्राचेतसाश्रममें जैसे अपना समस्त वैभव उड़ेल दिया था, इसके सम्मुख तो वह सब कुछ भी नहीं था। इसका तो स्वप्न भी इससे पूर्व सम्भव नहीं था। इतना ऐश्वर्य, इतना उल्लास और इस सबमें अलौकिक शान्ति, अखण्ड सात्विकता।

शत्रुघ्न तथा उनके साथके सैनिक स्वयं नहीं समझ सके कि वे रात्रि भर पक्षियोंका संगीत सुनते रहे, निर्झरोंका मधुर निनाद सुनते रहे, कोई अतिलौकिक स्वप्न देखते रहे अथवा समाधिस्थ रहे।

महर्षिको, उनके अन्तेवासियोंको निद्रा नहीं आती थी। तपस्विनी-वृन्द तो श्रीजानकीके समीप एकत्र था। उसे निद्रा लेनेका प्रश्न ही नहीं था। निद्रा तो उस रात पशु-पक्षियों तकने नहीं ली। पद्मोंने भी अपने दल नहीं समेटे। प्राचेतसाश्रममें उस रात निद्रा तीनका ही सत्कार पा सकी। दोनों नवजात शिशुओंका और सद्यःप्रसूता उनकी सकल-वन्दनीया जननीका।

शत्रुघ्नकुमारने अपने साथके सैनिकोंके साथ ब्रह्ममूहूर्तमें ही नित्य-कर्म किया। स्नान करके सन्ध्या की। अब हवन-तर्पण-देव-पूजन तो बारह दिन पश्चात् ही करने थे। अपना अहोभाग्य माना उन्होंने कि यह सुअवसर उन्हें प्राप्त हुआ। अन्यथा अयोध्यामें स्थित शिशुओंके पिता तथा पितृव्य तो इस सौभाग्यकी सूचनासे भी वञ्चित ही रहे।

महर्षिको अभिवादन करके शत्रुघ्नने सूर्योदयके पश्चात् अनुमति ली। उन्हें शीघ्र मधुवन पहुँचना था। प्राचेतसाश्रमके मङ्गल-समाचारने उनको बहुत अधिक उत्साहित कर दिया था।

तपस्विनियोंको शिशुओं तथा अपनी स्नेह भाजना भगवतीकी सेवा-सुरक्षामें अपने आह्निक विस्मृत ही हो गये थे। महर्षि तथा ब्रह्मचारी बालक आवश्यक औषधियाँ, फल, कन्द, पुष्प तथा दूसरे उपकरणोंके संग्रहमें लग गये थे। देव-पूजनादि भी करते रहना था उन्हें।

पशु-पक्षियोंके समूह एकत्र हो गये थे भगवतीके उटजके समीप। वे हटानेपर भी बार-बार वहीं आ जाते थे। उन सबने भी उपहारार्पण आरम्भ कर दिया था—दुर्लभ उपहारार्पण। उनके समान अलभ्य मणि, औषधि आदि मनुष्य तो दुर्गम स्थानोंसे नहीं ला सकता।

लवण-वध

असुर लवण आशासे अधिक प्रमत्त निकला। शत्रुघ्नके सैनिक उसकी पुरीके चारों ओर पहुँच गये ; किंतु उसे पता नहीं लगा। वह शिवका त्रिशूल पाकर अपनेको अपराजेय मानता था। उसने साथी और सहायक भी नहीं बनाये थे। उसके उद्धत स्वभावके कारण उसके पिता मधुके स्वजन-सम्बन्धी, सेवक भी लवणको त्यागकर चले गये थे।

लवणासुर विलासी-कामी नहीं था। अतः उसने स्त्रियोंका संग्रह नहीं किया। कहीं कन्या अथवा नारी-अपहरण करने नहीं गया। उसके समीप शूर्पणखाने आकर शरण ली थी। वही उसकी संरक्षिका बन गयी थी। लवण उसका कुछ सम्मान करता था।

लवणासुर क्रोधी था, हिंसा-व्यसनी था। वह प्राणि-भक्षी था। उसकी उदर-पूर्ति सहजमें नहीं होती थी। इसके लिए प्रायः प्रतिदिन आखेट करने निकलता था और तपस्वी उसके विशेष लक्ष्य थे। नगरमें बहुत थोड़े राक्षस लवणासुरके अनुगामी रह गये थे। स्त्रियाँ तो जैसे थीं ही नहीं।

लवणासुर रूक्ष-प्रकृति, क्रोधी, आखेटक था ; किंतु महत्त्वाकांक्षी नहीं था। वह प्राणियोंका वध करके प्रतिदिन ले आता था। उनसे उदर-पूर्ति करके सोता रहता था। उसे प्राणियोंका कच्चा मांस और रुधिर-पान प्रिय था। रसोईकी खटराग अनावश्यक थी। उसे विश्वास था कि वह अपराजेय है। अतः किसीके आक्रमणका उसे भय नहीं था। दूसरे राज्यों अथवा स्वर्गादि पर आक्रमणका उसमें उत्साह नहीं था। जब तक मधुवनमें उसकी उदर-पूर्तिको पर्याप्त प्राणी मिलते हैं, वह क्यों कहीं अन्यत्र जाकर युद्धका श्रम उठावे। मारो, खाओ, सो जाओ—इतनी ही जीवनकी कृतार्थता उसने मान रखी थी। ऐसे व्यक्तिका आश्रय लेने दैत्य, दानव, राक्षस क्यों आते ? उन्हें क्या मिलने वाला था। इस चिड़चिड़े व्यक्तिकी सेवा कोई क्यों करे ?

शत्रुघ्न पहुँचे तो उनके अरण्यमें छिपे सैनिकोंने लवणासुरकी पूरी प्रवृत्ति निवेदन की। वह प्रायः दिनके प्रथम प्रहरमें पुरीसे निकलकर आखेटके लिए जाता था। प्रत्येक दिन पृथक-पृथक दिशाओंमें जाता था। मध्याह्नके कुछ ही पश्चात् बहुतसे प्राणी अपने कन्धोंपर लादे, शूलमें पिरोये रक्त-लथपथ लौटता था। नगरमें जाकर उस दिन फिर बाहर नहीं निकलता था। आखेटमें भी उसके साथ जाते दूसरे किसीको देखा नहीं गया था।

'नगरको घेर लो! सावधान रहो कि कहींसे कोई निकलकर बाहर न जा सके।' शत्रुघ्नने सब सुनकर अपने सैनिकोंको आदेश दिया—'राक्षस बहुत मायावी होते हैं। आकाशपर भी सतर्क दृष्टि रखो। कोई गगन मार्गसे निकले—पक्षीके भी रूपमें तो उसे बाण मारकर गिरा दो।'

लवणासुर आखेट करने निकल गया था। शत्रुघ्नने अवसरका समुचित लाभ उठाया। अरण्यमें आश्रय लिये उनके छिपे सैनिकोंने शीघ्र नगरको घेर लिया। शत्रुघ्नने घूमकर अपनी सेनाके व्यूहका निरीक्षण किया। फिर स्वयं धनुष चढ़ाकर नगर-द्वारके सम्मुख खड़े हो गये। अब इस कङ्कण-व्यूहबद्ध अयोध्याकी विजयवाहिनीके भीतरसे बाहर अथवा बाहरसे भीतर किसीका भी प्रवेश अशक्य हो गया।

कज्जल-कृष्ण-वर्ण, पर्वताकार काया, तप्त-ताम्र-केश, श्मश्रु, सर्पाकार रोमोंसे आच्छादित शरीर, गोलाकार प्रज्वलित नेत्र, कराल दंष्ट्रा, लवणासुर मध्याह्नके पश्चात् लौटा। उसने महिष, वाराह, मृगादि बहुतसे पशु अपने शूलमें पिरोकर कन्धेपर लाद रखे थे। उन पशुओंके रक्त तथा स्वेदसे उसका शरीर लथपथ था।

बहुत लोगोंको चलते-फिरते या खड़े-खड़े भोजन करना अच्छा लगता है। बहुतोंको व्यवस्थित बैठे बिना आहार अच्छा नहीं लगता। लवण दूसरे वर्गमें था। उसे कच्चे पशु ही चबाने थे; किंतु अपने भवनके भीतर एकान्त कक्षमें वह अपना आहार ग्रहण किया करता था। आज वह अधिक असन्तुष्ट था। उसे कोई तपस्वी नहीं मिला था। तपस्वियोंका कङ्कालप्राय शरीर अपने आहारमें उसे विशेष चर्व्य, मूली आदिके समान लगता था। पता नहीं सबके सब तपस्वी कहाँ चले गये थे। उसकी दृष्टि यह अपराध था। मांसाहारी व्यक्ति जैसे मुर्गी या बकरा पालते हैं, मधुवन में तपस्वियोंको लवणने उसी दृष्टिसे बसने दिया था। वह वैसे ही उ

क्रमशः खा रहा था। आज कोई तपस्वी न मिलनेसे उसका मध्याह्न-भोजन उसे स्वादहीन लगने वाला था।

'तू कौन है ? यहाँ द्वारपर क्यों खड़ा है ?' शत्रुघ्नको देखते ही लवण गर्जा— 'द्वारसे हट। जीवित रहना चाहता है तो भाग जा !'

'अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्ने मुझे इस पुरीका शासक नियुक्त किया है।' शत्रुघ्नने उत्तर दिया— 'उनका आदेश है कि यह पावन पुरी असुरोंके द्वारा अपवित्र न करने दी जाय। तुझे जीवित रहना है तो अब पाताल चला जा। पृथ्वीपर परम धर्मज्ञ सम्राट् श्रीरामका शासन है।'

'राम—जिसके अनुजने बुआ सूर्पणखाको कर्ण-नासाहीन बनाया ? जिस रामने बुआके भाई रावणको मार दिया ?' लवणासुर गर्ज उठा— 'मैं नहीं मानता उसे सम्राट्।'

'मैं उन्हीं श्रीरामका अनुज हूँ।' शत्रुघ्नका स्वर भी तीव्र हुआ— 'तू उनके शासनकी उपेक्षा करके यमलोक जायगा। रावणके समीप पहुँचनेकी शीघ्रता है तुझे ?'

'ठहर ! मुझे अपना शस्त्र लेने दे।' लवणासुरने महिष, वाराह आदिके शवोंसे विद्ध शूल एक ओर फेंका और शत्रुघ्नको धक्का देकर पुरी-द्वारमें प्रवेश करने झपटा।

'तू नगरमें नहीं जा सकता !' शत्रुघ्नने खड्ग खींच लिया— 'आगे बढ़ते ही तेरा मस्तक पृथ्वीपर लुढ़कता दीखेगा !'

लवणासुरने अपना शूल रिक्त किया मृत पशुओंको फेंककर; किंतु उसका प्रयत्न व्यर्थ था। शत्रुघ्नके शरोंने वह शूल काट दिया। लवणासुरने वृक्ष, शिलाएँ जो उठायीं, शत्रुघ्न काटते गये बाणोंसे। अन्तमें श्रीरामके द्वारा प्रदत्त खड्गसे उसका मस्तक काट दिया उन्होंने।

लवणासुर मारा गया। उसके अनुयायियों तथा शूर्पणखाके पास अब अधोलोकोंमें स्थित दानवोंके पास जानेके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था। शत्रुघ्नने सैनिकोंका घेरा पुरीपर-से उठा लिया। इससे असुरोंको भाग जानेका अवकाश मिल गया। वे सब भाग गये।

प्रतीक्षा करते दलोंको सन्देश भेज दिया गया। वे सब शीघ्र आ गये। शत्रुघ्नने साथ आये ब्राह्मणोंको सबसे प्रथम उनकी रुचिके अनुकूल

आवास दिया। मधुपुरी यमुना-तटपर परिखा-परिवेष्टित थी। शत्रुघ्नको उसमें देवमन्दिरों, यज्ञशालाओंका उद्धार अधिक करना पड़ा। लवणासुरने इन्हें ध्वस्त कर दिया था।

मधुने पुरी व्यवस्थित बसायी थी। भवन सुदृढ़ थे। गजशाला, अश्वशाला, गोशालाके निर्माण उत्तम थे। सभागृह, चतुरष्क, राजपथ, वीथियाँ सब थीं। सरोवर, वापियाँ, कूप स्वच्छ करने पड़े। उपवन (फलोद्यान) तथा पुष्प-वाटिकाएँ बन चुकी थीं। इनकी ओर लवणासुर क्यों ध्यान देता। उसे न पुष्पोंसे प्रीति थी, न वह फलाहारी था। इन सबको परिष्कृत करवाना पड़ा कुमारको।

पान्थशाला तथा आपण अनेक वर्षोंसे उपयोगमें न आनेके कारण वनपशुओंके तथा चमगादड़ोंके आवास बन गये थे। इनको संस्कारित करवाना पड़ा।

साथ आये पूरे समाजको पहिले राजसदन तथा कुछ भवनोंमें स्थान देकर देवालयोंका जीर्णोद्धार एवं पुनर्निर्माण पहिले प्रारम्भ कर दिया। भारतीय सभ्यता शरीरको पीछे, किंतु श्रद्धाको पहिले पोषित करना उत्तम मानती है।

मन्दिर, सरोवर, कूप, वापी आदिके कार्यारम्भमें सुविधा भी थी। साथ आये सब श्रद्धा-प्रेरित श्रममें लग गये। समीपके जनपदोंमें सुप्रचार हुआ। देवालय-निर्माण, तीर्थके पुनरुद्धारकी प्रेरणा बहुतसे श्रद्धालु सात्त्विक जनोंको आकर्षित करके ले आयी। उनके आगमनने श्रम-जीवियोंको, स्थापत्य-शिल्पियोंको उत्साहित किया। व्यापारी आने लगे। विप्र, वृद्ध एवं भावप्रिय साधक आये। तीर्थयात्री उत्साहित हुए।

मधुपुरीसे जो लोग लवणके उत्पातसे भाग गये थे, उनका पता लगनेपर शत्रुघ्नने उन्हें सादर आमन्त्रित किया। कुछ स्वयं आ गये। उनके भवन, उद्यान उनको दिये गये। आवश्यक उपकरण, उपयोगी पशु, आर्थिक सहायता प्राप्त होने लगी उन्हें। अवश्य किसी उत्पातीके उपद्रव जितनी शीघ्र नगरको उजाड़ देता है, उतनी शीघ्र कोई भी सुव्यवस्था उसे बसा नहीं पाती; किंतु मधुपुरीको एक विशेषता प्राप्त थी। उस मोक्षदायिनी पुरीका अपना आकर्षण कम नहीं था। अतः उसे समृद्ध नगर बननेमें बहुत अधिक विलम्ब नहीं हुआ।

मथुराकी भाग्यलिपि ही सम्भवतः ऐसी ही थी। वह अनेक बार उजड़ी और बसी। अनेक बार आक्रान्ताओंने उसे ध्वस्त किया। श्रद्धालु मधुने उसे बसाया था ; किंतु उसके पुत्रने ही उसे उजाड़ डाला। शत्रुघ्न-को सुनसान नगर प्राप्त हुआ था। उसमें भी देवस्थान ध्वस्त हो चुके थे। शत्रुघ्नने बसाया उसे। द्वापरान्तमें भी तो महाराज उग्रसेनकी इस पावन पुरीको उनके पुत्र कंसने असुरोंका केन्द्र बना डाला था। यदुवंशी और विप्रोंको भगा दिया था। श्रीकृष्णने इसे पुनः समृद्ध किया और स्वयं निर्जन बनाकर द्वारिका जा बसे। उसे फिर बसाया उनके प्रपौत्र वज्रनाभ-ने। उसके पश्चात् भी मथुरा आक्रान्ताओंका आखेट होती रही।

कुमार शत्रुघ्नने नित्यपुरी मथुराका पुनरुद्धार किया। वहाँ राज्य-की स्थापना की। प्रजाको बसाया। ऐसे नवीन स्थानकी स्थापनामें श्रम तो होता ही है ; किंतु उसका एक सुफल भी होता है। संस्थापककी अपनी योजना पूर्णतः सफल होती है। सब आगत प्रजा एवं सेवक वर्ग उसके सम्पूर्ण नियन्त्रणमें रहता है। उसे किसी अन्यके पूर्व निर्माण तथा उसके द्वारा संस्थापित उन लोगोंसे काम नहीं चलाना पड़ता, जिनमें अनेकोंका उसे सङ्कोच करना पड़े और अनेक उससे सम्मानकी आशा करें। शत्रुघ्नका यह राज्य भरपूर सुव्यवस्थित बना। यमुनातट तपस्वी विप्रोंके वेदपाठसे गुञ्जित होने लगा।

मधुपुरी भारतका हृदय है। वह द्वारिका, प्रयाग, उत्तराखण्ड तथा रामेश्वर जानेवाले तीर्थ-यात्रियोंकी मिलन-स्थली है। अतः व्यापारियों-का केन्द्र बनते उसे विलम्ब नहीं होना था। क्षत्रिय सैनिकोंकी पर्याप्त बड़ी संख्या शत्रुघ्न अपने साथ अयोध्यासे ले आये थे। उनके साथके सेवक तो थे ही, बाहरके लोग आये तो उनके सेवक भी साथ आये। मधुपुरी चारों वर्णोंके गृहोंसे परिपूर्ण हो गयी।

शत्रुघ्नने विद्वान विप्रोंमें-से अपने मन्त्री नियुक्त किये। प्रजाके प्रत्येक वर्गकी पञ्चायतें बनी और उनके प्रतिनिधियोंको राजसभामें स्थान मिला। मधुपुरीकी पूरी शासन-व्यवस्था एवं विधान अयोध्याकी शासन-व्यवस्थाकी अनुकृति थी। शत्रुघ्न ही अयोध्याके शासनका अनेक वर्षों तक सक्रिय सञ्चालन करते रहे थे, अतः इस नूतन राज्यकी स्थापनाके लिए उनके समीप परिपक्व अनुभव था।

शत्रुघ्नकी स्वयंकी दिनचर्या भी अयोध्यामें ही सुनिश्चित हो चुकी थी। एक आदर्श आर्यपुरुषकी दिनचर्या ही तो मर्यादा-पुरुषोत्तमके परिवार-में चल सकती थी। नवीन शासकके आचार-व्यवहारका प्रजा सहज अनु-करण कर लेती है। मधुपुरीका उच्छिन्न जीवन व्यवस्थित हो गया।

अपने अग्रज अयोध्याके सम्राट्का आदर्श था शत्रुघ्नके सम्मुख। उसका सुपरिणाम शीघ्र स्पष्ट हो गया। राज्य स्थापित हुआ, समृद्ध हुआ, जन-बहुल हो गया। शासकका सुयश फैला दिशाओंमें। अयोध्याके पश्चात् कला-जीवियोंका, कवियोंका, वेदज्ञ विद्वानोंका, तपस्वी ऋषि-मुनियोंका और घूमकर व्यापार करनेवालोंका भी मधुपुरी आकर्षण-केन्द्र बन गयी।

शत्रुघ्नकुमारने मधुपुरीमें दो पुत्र प्राप्त किये, सुबाहु और श्रुत-सेन। ये दोनों परस्परमें दो वर्षकी आयुका ही अन्तर रखते थे। यह सब हुआ; किंतु शत्रुघ्नकुमारका मन अयोध्याके लिए छटपटाता ही रहा। वे अपनेको निर्वासित ही मानते रहे। उनका पवित्र हृदय प्रभुत्व नहीं, अपने आराध्य अग्रजकी सन्निधि एवं स्नेह-प्राप्तिका आकुल बना रहा। वे मधुपुरीमें राज्यकी सुस्थापनाके निमित्त बारह वर्ष रहे। इसके अनन्तर मन्त्रियोंको प्रबन्ध देकर पत्नी-पुत्रोंके साथ अयोध्या लौटे।

शत्रुघ्न लौटे—

अयोध्या लौटनेका निश्चय करते ही जैसे एक बड़ा भार सिरसे उतर गया। श्रुतिकीर्तिको भी अपनी बहिनोंसे पृथक मधुपुरीमें रहना कभी प्रिय नहीं लगा था। उन्हें यहाँकी सेविकाओंका महाराज्ञी कहना बहुत अटपटा ही नहीं लगता था, उत्पीडक भी लगता था। ऐसा लगता था कि उन्होंने किसी और-का स्वत्व अन्यायपूर्वक अपहरण कर लिया है।

स्वयं शत्रुघ्नकुमार कदाचित ही राजसभामें सिंहासनपर बैठते थे। वे अपनेको अन्य कार्योंमें इतना व्यस्त रखते थे कि राजसभामें विशेष अधिवेशनके अतिरिक्त उनके बैठनेका अवसर ही नहीं आता था। नवीन राज्य था। नवीन प्रजा आकर बसी थी। राजा स्वयं घूमकर सब कुछ देखते थे। कोई विवाद भी हो तो उसे उसी स्थानपर सुलझा देते थे। राज सभामें कोई न्याय माँगने आवे, इसका एक भी अवसर नहीं आया।

मन्त्री, पुरोहित, प्रजा-प्रतिनिधियोंको प्रबन्ध सौंपकर अयोध्या लौटना निश्चित हुआ तो स्मृतियोंने अन्तरको अत्यधिक आकुल कर दिया। सबसे प्रमुख स्मृति थी महर्षि वाल्मीकिके आश्रम की। उस प्राचेतसाश्रम पहुँचकर भी आराध्य श्रीजनक-नन्दिनीके चरण-दर्शन नहीं हो सके थे। अब उनका दर्शन होना था। उनके कुमारोंको देखना था, जो अब बारह वर्षके हो चुके होंगे।

श्रुतिकीर्तिजीमें अपनी आदरणीया अग्रजासे मिलनेकी उत्कण्ठा कम नहीं थी; किन्तु अनेक बार अपनी उत्सुकताको प्रमुखता देना उचित नहीं हुआ करता। श्रीसीता ऋषि-आश्रममें रहती थीं। तपस्विनी वेशमें, तापसीके समान रहती होंगी। उन्हींके समान रहते होंगे उनके दोनों कुमार। जो वस्तुतः साम्राज्ञी हैं, निर्दोष निर्वासिता हैं, आज विवशा वनवासिनी बने रहनेको वाध्य हैं, उनके समीप जानेका प्रश्न था।

किसी मुनि-पत्नीके समीप कोई महारानी जावें, यह एक भिन्न स्थिति है; किन्तु निर्वासिता साम्राज्ञीके समीप महारानीके वेशमें, वस्त्रा

लङ्कार-सज्जिता उनकी अनुजा पहुँचे यह किसी प्रकार उचित नहीं था। यह तो उनको तिरस्कृत, क्षुब्ध करनेका प्रयत्न होता। उनके कुमार हैं—अयोध्याके साम्राज्यके वास्तविक उत्तराधिकारी कुमार और वे मुनि-बालक-वेश में होंगे। उनके समीप श्रुतिकीर्ति अपने राजकुमारोंको कैसे ले जायँ? यह तो उन कुमारोंकी अवहेलना होगी।

वे दोनों कुमार और शत्रुघ्नके पुत्र भी बालक ही तो हैं। इन बालकोंमें किसीने कुछ पूछ लिया तो? कैसे परिचय देना शक्य होगा?

शत्रुघ्नने अपनी जीवन-संगिनीसे मन्त्रणा की। दोनोंने निर्णय किया कि श्रुतिकीर्ति अपने पुत्रोंके साथ सीधे अयोध्या जावेंगी। जैसे वे आते समय सीधी आयी है, जाते समय भी वैसे ही लौटेंगी। उनके साथ महामन्त्री सुमन्त्रके पुत्र तथा सैनिक जायँगे। केवल दो-चार सैनिकोंके साथ शत्रुघ्नकुमार महर्षि प्राचेतसके आश्रम होकर अयोध्या आवेंगे।

शत्रुघ्नकुमारको मार्गमें सात-आठ दिन लगने थे। अब युद्धयात्रा तो थी नहीं कि रथके अश्व पूरे वेगमें हाँके जायँ और रात्रि-विश्राम भी नाम-मात्रका किया जाय। श्रुतिकीर्ति महामन्त्रीके पुत्रके साथ सैनिकोंकी सुरक्षा-में पहिले अयोध्या पहुँचे, इसमें कोई आपत्ति नहीं थी।

महर्षि वाल्मीकिने शत्रुघ्नका स्वागत किया। उनको अर्घ्य दिया। उनके साथियोंको, रथोंके अश्वोंको सुव्यवस्थित विश्राम-स्थान दिया। अश्व वृक्षोंसे बाँध दिये गये। उन्हें ब्रह्मचारी बालकोंने पर्याप्त तृण डाल दिया। ऋषि-आश्रममें आगत-अतिथिके ठहरनेका स्थान यज्ञशाला होती है। शत्रुघ्नको तथा साथके सैनिकोंको भी वहीं रात्रि-विश्राम करना था।

महर्षि स्वयं शत्रुघ्नको लेकर श्रीजानकीके समीप पहुँचा आये। सूर्यास्त हो चुका था। शत्रुघ्नने सायं सन्ध्या समाप्त कर ली थी स्नान करके। श्रीसीताकी कुटीर तैल-दीपसे आलोकित थी। उनके दोनों कुमार अपने अभ्यास-अध्ययनके निमित्त महर्षिके उटजमें थे।

'कुमार! तुम्हारा कल्याण हो।' श्रीमैथिलीने अपने पदोंमें प्रणत शत्रुघ्नको सस्नेह आशीर्वाद दिया। कुशासन दिया बैठनेके लिए।

'आज बारह वर्ष पश्चात् अयोध्या लौट रहा हूँ।' शत्रुघ्नने संक्षिप्त वर्णन सुना दिया मधुपुरी जाने, लवण-वधादिका। यह भी सुना दिया कि

जाते समय यहाँ होते गये थे ; किन्तु उस दिन साक्षात्कारका अवसर ही नहीं था।

'श्रुतिकीर्ति प्रसन्न है ?' श्री वैदेहीने अपनी चर्चा ही नहीं की। शत्रुघ्नने संकोचपूर्वक अपने दोनों पुत्रोंकी ओरसे प्रणाम किया तो उल्लसित जानकीने कहा—'दोनों दीर्घायु हों। अपने उज्वल कुलके अनुरूप यशस्वी, ऐश्वर्यशाली हों।'

अद्भुत क्षमता—श्रीजानकीने अपने क्लेशकी चर्चा ही नहीं की। अपने पुत्रोंकी चर्चा नहीं की। किस कष्टसे, विपन्न स्थितिमें उनका पालन पोषण हो रहा है, कोई चर्चा नहीं। शत्रुघ्न किस मुखसे अपने उन भ्रातृ पुत्रोंके सम्बन्धमें पूछें ?

'सम्राट्का मंगल हो! उनके श्रीचरणोंमें मेरा प्रणाम मूक रहकर ही कर लेना।' अन्तमें शत्रुघ्नको विदा करते उन महनीयाने कहा—'वे ही मेरे सर्वस्व हैं। वे ही मेरे आराध्य हैं। उनको मेरी चर्चा करके व्यथित मत करना। मैं उनके पुत्रोंको योग्य बनानेमें लगी हूँ। महर्षिका उनपर मातामहके समान स्नेह है। दोनों सुयोग्य होंगे तो स्वयं पिताका वात्सल्य अर्जित कर लेंगे।

श्रद्धा, सतीत्व, संयम, आस्था और आत्मोत्सर्गकी साक्षात् मूर्तिके पदोंमें पृथ्वीपर मस्तक रखकर शत्रुघ्नने प्रणाम किया। रात्रि हो रही थी। तपस्विनियाँ सम्भवतः विदा होनेकी ही प्रतीक्षा कर रही थीं। दोनों कुमार लौटे नहीं थे। विलम्ब करना उचित नहीं था। शत्रुघ्न अपने विश्राम-स्थानपर लौटे ; क्योंकि श्रीजानकीने बतला दिया—'दोनों अरण्यमें उत्पन्न बालक हैं। मुनि-कुमारों जैसे ही अल्हड़, अभय। आवश्यक नहीं है कि वे रात्रिमें माताके समीप आ ही जावें। वैसे भी उपनयनके पश्चात् ब्रह्मचारीको गुरुगृह रहना चाहिये। यहाँ महर्षि उनके मातामह भी हैं, आचार्य भी। दोनों उनके समीप भी रात्रि-शयन कर लेते हैं। पूरी रात अभ्यास भी चलता है उनका कभी-कभी। उनपर मेरा न स्वत्व है, न अंकुश मैं तो उनकी पालिका मात्र हूँ। मुझसे अधिक चिन्ता उनकी महर्षि करते हैं।'

शत्रुघ्न अपने विश्राम-स्थानपर लौट आये। उन्होंने चित्रकूटमें इन आर्याका तपस्विनी-वेश देखा था और आज यहाँ देखा। चित्रकूटमें वनदेवी

लगती थीं ये आर्या और यहाँ साक्षात् जगद्धात्री लगती हैं। इतनी महिमा-मयी कि मन इनकी महिमाका स्पर्श नहीं कर पाता। अपने परमाराध्यके वियोगका असीम वड़वानल अन्तरमें लिये विश्वको वात्सल्य बाँटती, स्नेह-शान्तिकी मूर्ति।

कहाँकी निद्रा, कहाँका विश्राम। मन उन्हीं परम पूजनीयाके पादारविन्दोंका चिन्तन कर रहा था। सहसा वीणाका स्वर श्रवणोंमें पड़ा। इतना मधुर स्वर, ऐसा स्वर-ताल कि भ्रम हो गया—क्या भगवती हंस-वाहिनी स्वयं प्राचेतसाश्रम पधारी हैं? क्या वे यहाँ आज स्वयं अपनी कला प्रकट करने लगी हैं।'

तभी सुमधुर संगीत श्रवणमें पड़ा। मन-प्राण सब श्रवणोंमें समाहित हो गये। स्पष्ट कोई बालक-कण्ठ था। अत्यन्त ललित काव्य—श्रीराम-कथाका काव्य। एक-एक पदके अनेक-अनेक अर्थ। बड़े मधुर स्वरमें गाया जा रहा था। निश्चय दो बालक होंगे। एक वीणा-वादन कर रहा था और एक गा रहा था। कभी दोनों सम्मिलित गान करते थे। अवश्य यह लोकोत्तर काव्य महर्षि प्राचेतसकी प्रतिभाका प्रसाद होना चाहिये।

संगीत सम्पूर्ण रात्रि तो नहीं चला; किन्तु ब्रह्ममुहूर्तसे पहिले विरमित भी नहीं हुआ। उठकर नित्यकर्म, स्नान, सन्ध्या, हवन-तर्पणादिसे निवृत्त हुए शत्रुघ्न और जाकर महर्षि वाल्मीकिके चरणोंमें प्रणाम किया। दोनों बालक महर्षिके समीप ही बैठे थे। दोनों कमल लोचन, इन्दीवर-सुन्दर, विशालबाहु वक्ष। महर्षिने कहा दोनोंको शत्रुघ्न की ओर संकेत करके—'ये तुम्हारे प्रणम्य हैं।'

दोनोंने प्रणाम कर लिया। महर्षिने परिचय देना उचित नहीं माना तो शत्रुघ्नको भी पूछना धृष्टता प्रतीत हुई। रात्रिमें ही पता लग गया था कि श्रीजनक-नन्दिनी मध्याह्न-पर्यन्त मौन रहती हैं। अतः महर्षिको प्रणाम करके, अनुमति लेकर अयोध्याकी ओर चल पड़े।

अनुजोंके पुत्र

'आर्य ! मेरा दुर्भाग्य कि मैं सुर-मुनीन्द्र-सेव्य आपके इन श्रीचरणोंसे द्वादश वर्ष दूर रहा।' स्नेहवश स्वयं श्रीराघवेन्द्र शत्रुघ्नको लेने नगरद्वार तक आ गये थे। शत्रुघ्नने रथसे उतरकर उनके सम्मुख प्रणिपात किया। अनुजको बलपूर्वक उठाकर श्रीरामने जब हृदयसे लगा लिया, तब लगभग रुदन करते शत्रुघ्नने कहा—'आपसे पृथक मैं मधुपुरी रह नहीं सकता।'

'तुम्हारा आगमन तो बहुत अच्छा हुआ।' छोटे भाईको हृदयसे लगाये ही श्रीरघुनाथ बोले—'मैं स्वयं चाहता था कि तीनों बड़े राजकुमारोंका उपनयन एक साथ हो और वे एक साथ गुरुगृह-निवास करें।'

शत्रुघ्नने भरत तथा लक्ष्मणकी चरण-वन्दना की। यह समाचार तो मथुरा मिल ही गया था कि भरत तथा लक्ष्मणके भी दो-दो पुत्र हो चुके हैं। जैसे शत्रुघ्नने अपने प्रत्येक पुत्रके उत्पन्न होनेपर अयोध्या समाचार भेजा था, भरत एवं लक्ष्मणके भी प्रत्येक पुत्रके होनेका समाचार उन्हें प्राप्त होता रहा था।

श्रीभरतलालके पुत्रोंका नाम था तक्ष तथा पुष्कल। लक्ष्मणके पुत्र थे अङ्गद और चित्रकेतु। इन सब कुमारोंमें आयुका थोड़ा-थोड़ा अन्तर था। क्षत्रिय बालकका उपनयन संस्कार सातसे नौ वर्ष तककी अवस्थामें हो जाना चाहिये। इनमें-से तक्ष, अङ्गद तथा सुबाहु अब उपनयनके योग्य हो चुके थे। इनमें आयुका अन्तर दोसे तीन मासका था। सबसे बड़े तक्ष अब नवम वर्षमें प्रवेश कर चुके थे। तीनों भाइयोंके छोटे पुत्र अपने सहोदर अग्रजोंसे दो वर्षके लगभग छोटे थे। अतः पुष्कल, चित्रकेतु तथा श्रुतसेनकी आयुमें परस्पर दो-से-तीन मासका अन्तर था। इनमें सबसे छोटे शत्रुघ्नके द्वितीय पुत्र श्रुतसेन अभी छठवें वर्षमें ही प्रविष्ट हुए थे।

श्रीजनक-नन्दिनीके भी पुत्र हैं और वे इन सब कुमारोंमें ज्येष्ठ हैं, यह जानते हुए भी कहनेका साहस कोई नहीं करता था। यद्यपि यह भी सब जानते थे कि अन्तःपुरमें उर्मिलाने स्पष्ट घोषित कर रखा था कि—

'सब अनुज सम्राट्के सेवक हैं, अतः सम्राट्को पुत्रोंपर स्वत्व प्राप्त है। वे उनके संस्कार स्वेच्छानुसार करा सकते हैं; किन्तु मैं अपने उदरजातमें किसीको परिवेत्ता* नहीं बनने दूंगी। उर्मिलाके जीवित रहते यह अधर्म इस कुलमें नहीं होगा।'

श्रीराघवेन्द्र अपनी ओजस्विनी अनुज-वधूका यह आक्रोश लक्ष्मणके द्वारा सुनकर मौन रह गये थे। अभी सब भ्रातृपुत्र बालक थे। अभी उनके विवाहका प्रश्न नहीं उठता था; किन्तु उर्मिला बालकोंके किसी भी संस्कारके समय अत्यन्त उदास हो जाती थीं। वे केवल उतने कर्तव्यका निर्वाह किसी प्रकार कर देती थीं, जो माताको नियमानुसार करने ही चाहिये। ऐसे अवसरोंपर वे प्रायः अपने कक्षमें बन्द पड़ी रहती थीं।

तीन कुमारोंका उपनयन संस्कार हुआ—अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्के भ्रातृपुत्रोंका; किन्तु जब कुमारोंके माता-पितामें ही उत्साह न हो, केवल सम्राटका उत्साह कितना उत्सवको सप्राण बना सकता है। मन्त्रियोंमें, प्रजामें पूरा उत्साह था। नगर सम्पूर्ण सज्जित हुआ। राज-सदन भी सज्जित हुआ; किन्तु उर्मिलाने अपना अन्तःपुर सज्जित करनेसे सेविकाओंको रोक दिया तो माण्डवी, श्रुतिकीर्तिने भी उनका अनुकरण किया। कुमारोंका संस्कार श्रीरामने अपने सदनमें सम्पन्न कराया।

महर्षि वशिष्ठ भी उपराम हो रहे थे। वे राजसभामें और प्रधान संस्कारोंके समय विप्रवृन्दके साथ उपस्थित तो हो जाते थे; किन्तु कुमारों-के सब संस्कार जैसे उनके पौत्र महर्षि पराशरने सम्पन्न कराये थे, उप-नयनमें उन्होंने ही कुमारोंको गायत्री-दीक्षा दी। सूर्यकुलमें महाराज इक्ष्वाकुके समयसे आते कुलगुरुने अब अपना भार अपने पौत्रको दे दिया था।

कुमारोंने गुरुकुल-गमन किया। उनकी शिक्षा-दीक्षा महर्षि पराशर-के आचार्यत्वमें ही सम्पन्न हुई। यद्यपि यह सम्भव नहीं था कि श्रीराम एवं उनके अनुजोंके समान उनके पुत्र चौंसठ दिनोंमें ही सम्पूर्ण वेद-वेदांग, षट्शास्त्र एवं समस्त कलाओंके पारंगत हो जाते; किन्तु अन्य अन्तेवासियोंके समान उन्हें बारह वर्ष या उससे भी अधिक नहीं लगा। तीन वर्षमें उन्होंने अपना प्रशिक्षण पूर्ण कर लिया।

---

* जब बड़े भाईके अविवाहित रहते छोटा भाई विवाह कर लेता है तो उसे परिवेत्त कहते हैं। यह अधर्म है इसका प्रायश्चित विधान है।

बड़े तीनों कुमार गुरुगृहमें ही थे, जब उनके तीनों अनुजोंका भी उपनयन हो गया। अपने अग्रजोंके समावर्तनसे पूर्व ही उनकी शिक्षा प्रारम्भ हो गयी। इस प्रकार सभी कुमारोंकी शिक्षा पाँच वर्षमें पूर्ण हो गयी।

सेवकोंके पुत्रोंको आठ वर्षकी अवस्थासे आज्ञापालन एवं सेवा करनेका अभ्यास हो तब वे उत्तम सेवक होते हैं। दस वर्षकी अवस्थाका वैश्य-बालक व्यापारी बन जाता है। बारह वर्षकी अवस्थामें क्षत्रिय-कुमार महारथी हुए हैं और चौदह वर्षकी अवस्थाके विप्र-पुत्रोंने कठिनतम वैदिक अनुष्ठानोंका सफल आचार्यत्व किया है।

रघुवंशी कुमार अपने पिता-वर्गके समान तेजस्वी, धीर, प्रतिभाशाली थे। उनमें ओजस्विता, स्फूर्ति, प्रत्युत्पन्न-मति और शीघ्र ग्रहणकी जन्मजात क्षमता थी। गुरुगृहमें उनको धनुर्वेदकी सैद्धान्तिक सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त हुई। वहाँ इसका व्यावहारिक अभ्यास अल्प ही हो सकता था। महर्षि वशिष्ठ तथा पराशरजी भी अस्त्र-शिक्षण सैद्धान्तिक ही अधिक देते थे।

धनुर्वेदकी व्यावहारिक शिक्षा कुमारोंके गुरुगृहसे लौटनेपर उन्हें शत्रुघ्नने दी। उनकी इसमें अभिरुचि थी और अवकाश भी उन्हींको था। भरतने श्रीरामकी आज्ञासे दिग्विजय यात्रा की और बहुत अधिक गन्धर्वोंको विजय करके असीम सम्पत्ति करके रूपमें ले आये। लक्ष्मणको सम्राट्की सेवामें रहना था। शत्रुघ्नने इसलिए भी यह कार्य स्वयं अपने ऊपर ले लिया, जिससे श्रीराम उन्हें पुनः मथुरा जानेका आग्रह न कर सकें।

क्षत्रिय-कुमारके शस्त्र-शिक्षणके अनिवार्य अङ्ग हैं मल्लयुद्ध, अश्वारोहण, रथचालन तथा गज-वशीकरण। बालकोंको शत्रुघ्न अस्त्र-शस्त्र-संचालन, लक्ष्यवेधकी शिक्षा देते थे। अश्वारोहणका अभ्यास कराते थे। महामन्त्री सुमन्त्रके पुत्रोंसे वे रथ-सञ्चालन सीखते थे और गजशालाके महामात्र-प्रमुख उन्हें गजोंको अपनी इच्छानुसार चलाना, दौड़ाना तथा उन्मत्त गजको भी नियन्त्रणमें ले आना समझाते-सिखलाते थे।

आखेट आवश्यक था क्षत्रिय-कुमारके लिए; क्योंकि उसके केवल चल-लक्ष्यवेधका ही अभ्यास नहीं होता। उससे अप्रमत्त दीर्घकाल तक स्थिर रहना, अन्धकारमें भी आहटका अनुमान करना, श्रवण तथा

दृष्टिका सूक्ष्मतम उपयोग और शीत-उष्ण एवं मशकादिसे उपद्रुत होनेपर पर भी स्थिर, अचञ्चल रहनेका अभ्यास होता है।

आखेट क्षणार्धमें निर्णय लेने तथा सक्रिय होनेकी शिक्षा है। आखेट दृष्टिमात्रसे शत्रु-मित्र-उदासीनको परखनेकी विद्या है। आखेट सम्मुखके शत्रुके भावको उसकी दृष्टि अथवा रोमके किञ्चित् हिलनेसे भाँप लेनेकी कला है। आखेट वन, पर्वतोंपर पड़े सामान्य दृष्टिके लिए अदृश्य सूक्ष्मतम संकेतोंको शीघ्रतासे पढ़ते-दौड़ते जानेकी विद्या है।

राजकुमारोंको आरम्भमें ही समझा दिया गया कि वे बधिक नहीं है। वन-पशुको मारनेमें उनकी वीरता नहीं है, वृद्ध, अकेले पड़े, अपने आपको ही भार बने वनपशु वध्य होते हैं। मनुष्य-भक्षी अत्यन्त धूर्त वन-पशुको ढूँढ़कर मार देनेमें शौर्य है और जहाँ अत्यधिक संख्या-वृद्धिके कारण वन्यपशु कृषकोंकी कृषि तथा वनके उच्छेदक बन गये हों, वहाँ उनकी संख्या सीमित करनेके लिए सावधानी आवश्यक है आखेटमें। वहाँ भी केवल नर पशु जो शिशु न हों वध्य होते हैं।

कुमारोंके लिए आखेट आवश्यक था; क्योंकि दीर्घकालसे श्रीराम तथा उनके अनुज आखेटसे उपरत हो गये थे। वनके वृद्ध एवं बढ़े पशुओंका आखेट करनेकी प्रजा माँग कर रही थी। इससे राजकुमारोंका जहाँ अभ्यास परिमार्जित होना था, वहीं प्रजाकी आवश्यकता-पूर्ति भी होती थी।

राजकुमार केवल आखेट-सहायक निषादराज गुहके पुत्रको साथ लेकर अरण्यमें जाते थे। शीघ्र ही उनकी यह व्यावहारिक शिक्षा सम्पन्न हो गयी। तब उन्हें दिव्यास्त्र प्राप्त हुए। वे सविधि सैन्य-सञ्चालक शूर बन गये।

लव-कुश-प्रशिक्षण

एकान्त-सेवी आराधकोंको अरण्य आशीर्वाद देता है अथवा प्रबल पौरुष व्यक्तिको प्रमादहीन रखना सिखलाता है। अरण्यमें अनेक भय हैं तो अनन्त सद्गुण भी हैं ; किंतु इतना सुनिश्चित है कि कितनी भी सुव्यवस्था कर ली जाय, अन्ततः अरण्य तपस्थली ही रहता है। वहाँ पहुँचकर सम्राटोंको भी सहन करनेका अभ्यास करना पड़ता है।

काननवासीका अभय सहज स्वभाव है। संघर्ष एवं आशङ्काके मध्य सतत सतर्क रहना उसे वन सिखला देता है। सङ्कट एवं मृत्यु उसके लिए अर्थहीन हो जाते हैं। इनके मध्य वह हँसते-खेलते रहना सीख लेता है।

कुश और लवकी उत्पत्ति अरण्यमें हुई। एकछत्र भूमण्डलके सम्राट्के ये सुत तपोवनमें तापसियोंके द्वारा पालित हुए। इन्हें सुरभित अङ्ग-मार्जन एवं सुगन्धित तैल सुलभ नहीं हुआ ; किंतु सुरदुर्लभ औषधियाँ, अद्भुत-प्रभाव वन-फलोंके बीजोंके तैलोंके द्वारा विश्ववन्द्य तपस्विनियोंने इन्हें संलालित किया।

सौन्दर्य-सद्गुणैक-सिन्धु माता-पिताके ये दोनों शिशु सूतिकागारसे बाहर आते ही केशरी, कपि, ऋक्षादिके स्नेह-भाजन हो गये। किस शिशुको सिंहनी स्नेहसे सूँघकर अपना सुख-स्पर्श देती है और अपना पयपान करानेका प्रयत्न करती है ? किस अबोधके करोंसे केश खींचे जाने-पर भल्लूक नाच उठता है ? किसको कपि भी अङ्कमें उठाकर वृक्षोंपर कूदनेको आतुर बनते हैं ? किसे लताओंका नैसर्गिक पुष्पित दोला प्राप्त होता है और मयूर, हंस, पिक लोरी सुनाकर शयन कराते हैं।

जगन्माता श्रीजानकी, अरण्यमें पशुओंकी श्रद्धा प्राप्त करने और उन्हें स्नेहदानका पूर्वाभ्यास था उनको। वे चाहे जब अपने दोनों शिशु पुष्पोंसे लदी मालतीके दोलेमें सुलाकर केशरी या गजसे कह देतीं— 'अब तुम इन्हें संदोलित करके शयन कराओ।'

लव-कुशके संस्कार भले नगरके भव्य समारोहोंके चाकचिक्यमें सम्पन्न नहीं हुए ; किंतु सविधि सम्पन्न हुए। महर्षि वाल्मीकिने प्रत्येक संस्कार समयपर और तपोबलके उपयुक्त विधिसे सावधानीपूर्वक सम्पन्न कराये।

इन शिशुओंको घुटनों सरकनेके लिए सुचिक्कन मणि-प्राङ्गण भले अप्राप्त रहा ; किंतु असंख्य वनपशुओंका सङ्ग सुलभ रहा। झुण्डके झुण्ड पक्षी इनके साथ क्रीड़ा करने उपस्थित ही रहते थे। महर्षि प्रातस, उनके आश्रमके अन्तेवासी, तपस्विनियोंका समुदाय इन शिशुओंको पाकर वात्सल्य-विभोर हो गया था। ये किलकते सरकते भागते थे तो लताओंसे पुष्प झरकर भूमिको कोमल कर देते थे। वृक्षोंके पत्र व्यजन करते हिलते थे। सम्पूर्ण प्रकृति इनकी धात्री बन गयी थी।

श्रीसीता वात्सल्यमयी हैं। वात्सल्य इनका स्वरूप है। तृण, तरु, पिपीलिका तक प्रत्येक प्राणी ही इनका स्नेह-भाजन है। अब मातृत्वने इनके वात्सल्यको जैसे नित्य कृपोन्मुख कर दिया था। अपने दोनों शिशुओं-की तो उन्हें चिन्ता करनी नहीं थी। इन चञ्चलोंके असंख्य पशु-पक्षी सखा थे। इनको स्नान कराने, पुष्प-शृङ्गार करनेवाले तपस्विनियोंके तपःपूत कर थे। केवल इनको दुग्ध-पान कराना था और वह स्वयं स्मरण रखना था। ये दोनों तो आनन्दसिन्धुके सुत थे। जन्मसे ही रुदन इन्होंने जाना ही नहीं था।

लव-कुश पैरों चलने योग्य हुए और उनका शिक्षण, प्रशिक्षण दोनों प्रारम्भ हो गया। श्रीजनक-नन्दिनीके समीप दूसरा तो कोई कार्य ही नहीं था। वे चाहे जितना आग्रह-अनुरोध करें, उन्हें उटजमार्जन, जलानयन जैसे कार्य तपस्विनियाँ करने नहीं देती थीं। शिशुओंकी सेवामें उनको सुख मिलता था। ब्रह्मचारी बालक फल, कन्द, शाक लाना भूल सकते नहीं थे। उलटे वनपशु जो उपहार डाल जाते थे, उन्हें वितरित करते रहना था।

जहाँ बालकको विनोदमें, बहलानेके लिए भी व्याकरणके सूत्र और श्रुतियोंके मन्त्र सुननेको मिलते हों, वहाँ उसे विद्वान बननेके लिए श्रम कहाँ करना पड़ता है। अक्षर-ज्ञान ही नहीं, आरम्भिक अधिकांश शिक्षा मातासे अनौपचारिक रूपमें प्राप्त हो गयी। जब अक्षरारम्भ-संस्कार

हुआ, लव-कुश सरलतासे भूर्जपत्रपर अङ्कित ग्रन्थ पढ़ सकते थे। उपनयन-के समय तक तो उनको श्रुतियोंके अधिकांश मन्त्र सस्वर कण्ठ हो चुके थे। महर्षिके अन्तेवासी इन दोनों बालकोंको मन्त्र तथा मन्त्रोंके धन, जटा-पाठ करानेकी क्रीड़ा तबसे करने लगे थे, जबसे दोनोंने बोलना प्रारम्भ किया था।

महर्षि वाल्मीकिको दोनों अनुपम श्रुतधर शिष्य प्राप्त हुए थे। अतः महर्षिने वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र शिक्षाके साथ इन दोनोंको गान्धर्ववेदका उत्तम अभ्यास कराया। मातासे इन्होंने वीणावादन सीखा। महर्षिने इन्हें अपना आदि काव्य कण्ठस्थ करा दिया और उसके गायनकी पद्धति सिखलायी। लव-कुश कभी-कभी इस अमृतवर्षी काव्यके गानमें तन्मय होते थे तो सम्पूर्ण निशा व्यतीत हो जाती थी आश्रमके समस्त वासियोंकी स्वरतन्मय होकर।

शत्रुघ्नकुमार जब मधुपुरीसे लौटते हुए रात्रिमें प्राचेतसाश्रम रुके थे, उस रात्रि लव-कुश दोनों भाई अपने गानमें निमग्न थे। तब इनकी आयु केवल बारह वर्षकी थी।

महर्षि वाल्मीकि आदि कवि ही नहीं थे, अलौकिक तपस्वी थे और उस तपस्यासे पूर्व सुप्रसिद्ध धनुर्धर रहे थे। उन्होंने अब अपने पूर्वके पराक्रम एवं पद्धतिको स्मरण कर लिया था। लव-कुशको लक्ष्यवेधका अभ्यास कराते समय वे अपने शरीरको भी विस्मृत हो जाते थे।

'वत्से! इन बालकोंको वाल्मीकि सृष्टिका सर्वोत्तम अस्त्रवेत्ता बना देगा।' महर्षिने श्रीमैथिलीको आश्वासन दिया था—'अपने सर्व-समर्थ, सवज्ञ पितासे ये किञ्चिन्यून भी नहीं रहेंगे।'

उत्तम विनयी, श्रद्धालु, प्रतिभा-सम्पन्न शिष्य प्राप्त हो तो शिक्षक-को उसके साथ श्रम करनेमें आनन्दानुभव होता है। लव-कुश श्रद्धा, विनयमें जैसे अद्वितीय थे, सेवातत्पर थे, वैसे ही उनकी स्फूर्ति, स्मरण-शक्ति तथा धृतिकी सीमा नहीं थी। सामान्य शस्त्र-चालनका अभ्यास उनका बहुत शीघ्र उत्तम हो गया। उन्होंने साधारण धनुषसे ऐसी शर-वर्षाका अभ्यास कर लिया कि संसारके सुप्रसिद्ध धनुर्धर भी उनका सामना नहीं कर सकते थे।

यह सत्य है कि तबतक सृष्टिमें सर्वश्रेष्ठ दिव्यास्त्र-ज्ञाता महर्षि विश्वामित्र ही थे और उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको अपने सब दिव्यास्त्र इन दोनोंकी बाल्यावस्थामें ही दे दिये थे ; किंतु महर्षि वाल्मीकिने दूसरी जो पद्धति अपना ली , उसके साथ विश्वामित्रके श्रेष्ठत्वका भी सम्मान समाप्त हो गया। ऐसा कौन-सा सुर था जो आदिकविके आह्वानकी उपेक्षा कर देता। महर्षि एक-एक दिन कई-कई देवताओंका आह्वान करते थे और उनके उपस्थित होनेपर आदेश कर देते थे— 'यदि ये दोनों बालक आपको अधिकारी प्रतीत हों तो आप अपना दिव्यास्त्र इन्हें सब भेदोपभेदोंके साथ प्रदान करें।'

इस प्रकार स्वयं अग्निने लव-कुशको आग्नेयास्त्र प्रदान किया। वायु वायव्यास्त्र दे गये। वरुणने वारुणास्त्रके साथ अनेक प्रकारके पाश दिये। दूसरोंकी चर्चा व्यर्थ है , भगवान् ब्रह्माने आकर ब्रह्मास्त्र , ब्रह्म-शिरस्त्रास्त्र दिये। कैलासेश्वर वृषभध्वज प्रसन्न होकर पाशुपत दे गये।

जब श्रीहरिने नारायणास्त्रके साथ इषीकास्त्र , सम्मोहनास्त्र भी दे दिया , तब ऐन्द्रास्त्र जैसे अस्त्र कैसे अलभ्य रह सकते थे। लव-कुश दोनों सृष्टिके अद्वितीय अस्त्र हो गये। अग्निदेवने दोनोंको दिव्य अखण्डनीय धनुष तथा अक्षय त्रोण प्रदान किये।

संसारमें कम शूर थे त्रेतामें जो वितस्ति वाणोंका प्रयोग कर सकते थे। अयोध्यामें भी श्रीराम तथा उनके अनुज और अनुजपुत्र मात्र ; किंतु लव-कुशके लिए इन नन्हें वाणोंसे खेलना साधारण क्रीड़ा थी। वे सामान्य धनुषकी ज्याके सहारे भी इनकी अजस्त्र वर्षा करके बर्र जैसे उत्पीड़क मक्षिका-वर्गके प्राणियोंको भी मारे बिना, अपने समीप आनेसे रोक दिया करते थे।

भगवान नर-नारायणके अतिरिक्त पृथ्वीपर किसीके समीप इषीकास्त्र नहीं रहा है ; किंतु दोनों भाइयोंने अपने अभ्यास-कालमें धरासे अम्बर तक इषीकास्त्रसे अच्छिद्र भित्ति बना दी इषीका (सींकों) की। वायुकी गति रुद्ध हो गयी।

इन अमोघास्त्रोंका प्रयोग , उपसंहार प्राप्त करके भगवती सीताके ये दोनों सुत त्रिभुवनमें सबसे अजेय हो गये थे। सुर-असुर सम्मिलित आक्रमण करके भी इन्हें पराभूत करनेकी आशा नहीं कर सकते थे। लेकिन

दोनों मर्यादा-पुरुषोत्तमके पुत्र थे। शक्तिका गर्व उनके मानसको कभी स्पर्श नहीं कर सका।

असत् पुरुषके समीप शक्ति होती है तो वह उद्धत हो जाता है। उसकी शक्ति उसे निर्बलोंको उत्पीडित करनेके लिए उत्साहित करती है। वह उच्छृङ्खल बनकर सभी मर्यादाओंकी उपेक्षा करने लगता है।

सत्पुरुषके समीप शक्ति होती है तो वह अधिक विनम्र, सेवाशील बन जाता है। अबलोंका संरक्षण उसे अपना अनिवार्य कर्त्तव्य लगता है। अतः वह इसीमें व्यस्त, संयमी तथा मर्यादाओंके माननेमें सदा सतर्क रहनेवाला होता है।

लव-कुश दोनों भाइयोंके समीप अनन्त अस्त्रज्ञानकी शक्ति थी, परन्तु साथ ही सन्तोषका पाठ उन्हें माताके दूधके साथ प्राप्त हुआ था। उनके लिए संयम सहज स्वभाव था। असंयम, औद्धत्यको उन्होंने सदा घृणास्पद, त्याज्य ही सुना-समझा था।

लव-कुशके लिए अपनी स्नेहमयी जननी परमाराध्या इष्टदेवी थीं। महर्षि वाल्मीकि शिक्षक थे, गुरु थे, पूज्य थे; किंतु दोनों भाई कभी समझ नहीं सके कि दूसरे अन्तेवासियोंके समान वे महर्षिका पाद-संवाहन क्यों नहीं कर सकते। उन्होंने मातासे पूछा था—'अम्ब! भगवान प्राचेतस हमारे पूज्य हैं?'

'परम पूज्य हैं वत्स!' श्रीवैदेहीने मस्तक झुकाया।

'किंतु हमारा अपराध क्या है कि वे वन्दनीय हमें अपनी चरण-सेवाका अवसर ही नहीं देते।' दोनों बालक कुछ खिन्न स्वरमें कह रहे थे—'अन्य सभी अन्तेवासियोंको यह सौभाग्य सुलभ है।'

'तुम दोनोंको वे अपना दौहित्र मानते हैं।' श्रीमैथिलीने श्रद्धा-विगलित स्वरमें कहा—'दौहित्रको स्नेह पानेका स्वत्व है। उसकी सेवा स्वीकार करनेकी श्रुति आज्ञा नहीं देती। तुम दोनोंको आग्रह करके उन्हें सङ्कोचमें नहीं डालना चाहिये। उनके विनम्र आज्ञापालक बने रहो।'

'अम्ब! तुम भी तो अपनी चरण-सेवा नहीं देती हो।' दोनों बालक ही थे। दोनों अन्तेवासियोंको सेवाशील देखते थे। उनके सरल श्रद्धापूरित चित्तमें खेद होता था—'कोई भी ऋषि-मुनि अथवा तपस्विनी मातामही हमें सेवाके योग्य क्यों नहीं मानतीं?'

'स्त्रियोंको बालकोंसे शरीर-सेवा नहीं लेनी चाहिये।' सस्मित श्रीजानकीने कहा— 'मैं तुम्हारे लाये फल, कन्दादि तो स्वीकार करती ही हूँ। दूसरे सबके तुम दोनों दौहित्र हो। अतः तुम दोनों सबके द्वारा संलालित होने योग्य हो। कोई भी तुम्हारा सेव्य बनना स्वीकार नहीं करेगा।'

'हमारा कोई सेव्य नहीं है?' दोनों भाइयोंने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

'हैं—बहुत हैं तुम्हारे सेव्य!' भगवती वैदेहीके दृग भर आये— 'किंतु अभी तुम दोनों बालक हो। दूरस्थ हैं तुम्हारे सेव्य। दूसरे आश्रमोंके ऋषि-मुनि जब यहाँ अतिथि होते हैं, वे तुम्हारी सेवा स्वीकार कर लेंगे। अभी तो तुम बालक हो।'

'अम्ब! तुम रुदन मत करो।' दोनों व्याकुल हो उठते हैं जब उनकी ये आराध्या जननी दृगोंमें अश्रु भर लेती हैं। दोनों समझ गये हैं कि इनसे कुछ पूछनेपर ये प्रायः दुःखी हो जाती हैं। दोनों आश्वस्त हैं— 'हम बड़े होकर दूरस्थ सेवनीयोंके दर्शन कर लेंगे। हमको कोई शीघ्रता नहीं है। हम सेवा करेंगे—सारे संसारकी सेवा करेंगे।'

कुशसे लव कुछ ही पल छोटे हैं; किंतु कुशका वात्सल्य है अपने अनुजपर। दोनोंको कदाचित ही कभी लगा हो कि वे योद्धा हैं—भूमण्डलके अद्वितीय योद्धा। दोनोंको गायन प्रिय है। महर्षिके आदि काव्यका गायन करते रहते हैं दोनों। महर्षि इसमें प्रोत्साहन देते रहते हैं। दोनोंकी एक ही महत्त्वाकांक्षा है— 'बड़े होकर वे सेवा करेंगे—संसारके सब प्राणियोंकी सेवा।'

शत्रुघ्नका पुत्रोंको अभिषेक

'अब तुमको मधुपुरी प्रस्थान करना चाहिये।' श्रीरामने एक दिन शत्रुघ्नकुमारको समीप बैठाकर स्नेहपूर्वक समझाया— 'शासककी अपनी रुचि, अपने सुखका कोई महत्त्व नहीं है। क्षत्रियका पुत्र दूसरोंको शान्ति-सुरक्षा देनेके लिए ही उत्पन्न होता है। कर्त्तव्य कठोर है, इसलिए कातर होना उत्तम नहीं है। प्रजा-प्रतिनिधि तथा मन्त्रियोंके बार-बार सन्देश आ रहे हैं। उनका अनुरोध उचित है। उनको एक सुयोग्य संरक्षक चाहिये। एक अवश्य उनके मध्य ऐसा चाहिये, जिसकी निष्पक्षतापर, सहानुभूति-पर वे विश्वास करते हों। जिसका सम्मान करते हों। साथ ही जो उन्हें अपने समूहसे शक्तिशाली लगे।'

'मनुष्य बहुत समय तक केवल आन्तरिक शक्तिके आधारपर संयमित रह सकता है, यदि वह एकान्त-सेवी हो अथवा परमार्थ-कामी हो।' श्रीरामने कहा— 'किंतु अर्थ, धर्म, काममें लगे लोगोंसे स्वतः मर्यादापालनकी सम्भावना बहुत काल तक नहीं करनी चाहिये। उनको नियन्त्रणमें रखना आवश्यक है। नियन्त्रक—शासक वह सफल होता है, जिसकी शक्तिसे सब भय भी मानें और जिसके स्नेह तथा सेवाके कारण उसपर श्रद्धा भी करें।'

'कुमार! तुम्हें अपनेसे पृथक करते मुझे कम दुःख नहीं होता है; किंतु तुम जानते हो कि राम प्रजाके हितके लिए अपना अङ्ग-छेद करनेको भी उद्यत रहता है।' श्रीरघुनाथने आदेश किया— 'मधुपुरीकी प्रजाकी आस्था है तुमपर। तुम उनके प्रिय हो। तुमने उनको असुरके उत्पातसे परित्राण दिया है। अतः उनका पालन करो। मेरे अभिषेकको अन्यथा मत करो। अब सीधे पहुँचो वहाँ। अयोध्यामें मुझे जैसे ही तुम्हारी आवश्यकता होगी, अवश्य तुम्हें बुला लूंगा। लेकिन अब मधुपुरीको शासकहीन करके मत आना। अपने पुत्रोंको वहाँकी प्रजाके पालनका दायित्व देकर आना।'

इस आदेशमें अनेक बातें अन्तर्निहित थीं—

१—शत्रुघ्नको अपने स्त्री-पुत्र सबको साथ ले जाना था और सीधे जाना था अर्थात् इस बार वे महर्षि वाल्मीकिके आश्रम रुकते जायँ, यह सम्राट्को स्वीकृत नहीं था।

२—अब शत्रुघ्नकुमारको अयोध्याका आमन्त्रण पाये बिना यहाँ नहीं आना चाहिये। यद्यपि परमोदार अग्रजने बिना अनुमति आ जानेपर उपालम्भ नहीं दिया था; किंतु यह सूचित कर दिया था कि यह उन्हें अच्छा नहीं लगा।

३—अब अयोध्यासे तब बुलाया जायगा, जब श्रीरघुनाथ स्वयं शत्रुघ्नका यह निर्वासन समाप्त कर देना चाहेंगे। उस अवस्थामें शत्रुघ्नको अपने पुत्रोंको मधुपुरीके राज्यपर अभिषिक्त करके आना है।

प्रजाके अत्यन्त घृणित, अज्ञानपूर्ण, शत्रुघ्नकी समझसे दण्डनीय आक्षेपको भी सम्मान देकर जिन्होंने परम पवित्र पत्नीका परित्याग कर दिया, उनकी प्रजा-प्रीति, प्रजापालनकी चिन्ताका महत्त्व कम समझनेका साहस कौन कर सकता है। अत: शत्रुघ्नको यह आदेश स्वीकार करना पड़ा। एक ही आश्वासन था कि सम्राट् उन्हें कभी-न-कभी अपने समीप बुला लेनेको—सदाके लिए बुला लेनेका कह चुके। सत्यसन्ध श्रीरामके वचन अन्यथा नहीं हुआ करते।

शत्रुघ्नको स्वयं कुछ नहीं करना था। श्रीराघवेन्द्रने पहिलेसे अपने इन अनुजकी यात्राका पूरा प्रबन्ध कर रखा था। चतुरङ्गिणी सेना, अपार सम्पत्ति, सेवक-सेविकाओंका समूह—सब प्रस्तुत था। शत्रुघ्नको समाचार नहीं था और सब सज्जित था। यह अग्रजका स्नेहोपहार था। इसे अस्वीकार किया नहीं जा सकता था।

श्रुतिकीर्तिको अपनी बहिनोंसे विदा लेनी पड़ी। दोनों बालक सुबाहु और श्रुतसेन अपने भाइयोंसे, मित्रोंसे मिलकर विदा हुए। विप्रोंने स्वस्त्ययन किया। मङ्गलवाद्य साथ चले। उर्मिला और माण्डवीकी पद-रज मस्तकपर धारण करके शत्रुघ्न राजसदनसे निकले। श्रीराम भाइयोंके साथ उन्हें सरयूतट तक पहुँचाने गये। वहाँ भी हाथ पकड़कर उन्होंने शत्रुघ्नको रथपर बैठाया। शत्रुघ्नको और उनके पुत्रोंको आशीर्वाद दिया। बार-बार शत्रुघ्नको पुनः अयोध्या बुला लेनेका आश्वासन दिया। आत्मीय जनोंसे इस प्रकार दीर्घकालके लिए विदा होना सभीको विह्वल बना देता है। ये तो अत्यन्त प्रिय सुहृद वियुक्त हो रहे थे।

संसारका स्वरूप ही यह है कि यहाँ एक स्थानका विषाद, अन्यत्र-का उल्लास बनता है। एकके शोकाश्रु किसीके हास्यको उत्पन्न करते, उत्साहित करते हैं। शत्रुघ्न मार्गमें विश्राम करते मधुपुरी पहुँचे तो वहाँ उनका अत्यन्त भव्य स्वागत हुआ। पहिले तो वे लवणासुरकी पुरीपर आक्रान्त बनकर गुप्त रीतिसे आये थे। विजयी होनेपर भी निर्जन पुरी प्राप्त हुई थी उन्हें प्रवेशके समय; किंतु यह पहिला अवसर था, जब प्रजाको अपने पालक, अपने उद्धार-कर्त्ता, अपने संरक्षक शासकका स्वागत करनेका अवसर मिला था। शत्रुघ्न जैसे प्रजाके पूजनीय पिता थे। सबमें उत्साह उमड़ पड़ता था।

वाद्यघोष, मन्त्रपाठ, नृत्य, स्तवन, लाजा-हरिद्रा, कुंकुम, कुसुम, दूर्वाङ्कुर वर्षा, नीराजन तथा प्रजाके उपहारार्पणके मध्य शत्रुघ्न सपरिवार राजसदन पहुँचे। उन्होंने विप्रोंको, श्रेष्ठिवर्गको, सूत-मागधादि-को, सेवकोंको—सबको पुरस्कार देकर सम्मानित किया। अयोध्या-सम्राट्की ओरसे वस्त्र, आभरण, अन्न, गज-अश्व, गायें प्राप्त हुईं यथा-योग्य सबको।

मन्त्रियों तथा प्रजा-प्रतिनिधियोंके मतैक्यने राज्यको समृद्ध बनाया था। राज्यकोषमें अन्न-धन बढ़ा था। अश्व, गज, रथ, पदाति सेना समृद्ध हुई थी। नगर तथा नगरसे दूर ग्रामोंकी भी शोभा-समृद्धि बढ़ी थी। पथ, मन्दिर, पान्थशालाएँ, सरोवर, कूप, वापी, सरिताओंपर सेतु—सब जनोपयोगी निर्माण सभी ओर पर्याप्त अधिक हुए थे।

प्रजामें कोई असन्तोष, कोई विवाद कहीं नहीं था। किसी एकको भी उत्पीडन अथवा शासक कर्मचारियोंकी उपेक्षाका उपालम्भ नहीं देना था। केवल प्रजा अपने परम प्रिय शासकका सान्निध्य पानेको उत्सुक थी।

'हम राजदर्शनके पुण्यसे वञ्चित रहें, ऐसा हमारा कोई अपराध है?' प्रजा मन्त्रियों तथा अपने प्रतिनिधियोंसे बार-बार पूछती थी। शत्रुघ्नको आकर पहिले इसी सम्बन्धमें सावधान होना पड़ा कि लोग उत्साहातिरेकमें उपहारार्पण करके अभावका कष्ट न उठावें।

अपने कुमारोंको शत्रुघ्नने प्रजासे परिचित होनेको उत्साहित किया। उन्हें शासनके अनुभवका अधिकतम अवसर देने लगे। छोटे कुमार श्रुतसेन-

ने नगरसे बाहर दूरस्थ भागोंका निरीक्षण आरम्भ कर दिया था और सुबाहुने नगरके लोगोंका स्नेहार्जन किया।

'अयोध्यासे आह्वान आवेगा?' शत्रुघ्नके प्राण इसीकी आतुर प्रतीक्षा करते रहते थे।

'उर्मिला और माण्डवी जीजीके पदोंमें बैठनेका सौभाग्य पुनः प्राप्त होगा।' श्रुतिकीर्तिकी प्रधान आशा यही थी।

मन्त्रियोंको, प्रजा-प्रतिनिधियोंको शत्रुघ्नने स्पष्ट सूचित कर दिया था कि वे कभी भी अयोध्या जा सकते हैं। लेकिन अब प्रजाने अपने शासक प्राप्त कर लिये थे। कुमार सुबाहु एवं श्रुतसेनके शील, सौजन्य, शौर्य, औदार्य तथा सौहार्द्रने सबको सम्मोहित कर लिया था।

अयोध्यासे आह्वान आया—यद्यपि पर्याप्त विलम्बसे आया; किंतु शत्रुघ्नके प्राण मानो पुनरुज्जीवित हो उठे। श्रीराघवेन्द्रने शम्बूक-वधके पश्चात् अयोध्या लौटकर अपने अश्वमेध-यज्ञ करनेका निर्णय घोषित किया था। इस महायज्ञमें सहायताके लिए सभी सुहृदोंको आमन्त्रित किया गया था। शत्रुघ्नने अपनी सङ्गिनीको सचेत कर दिया—'सम्राट्ने आश्वासन दे रखा है कि अयोध्या आकर पुनः पृथक होना अब हमारी इच्छापर निर्भर करेगा।'

मन्त्रियोंको, प्रजा-प्रतिनिधियोंको सूचना दे दी गयी। प्रजाको राज-सदनकी घोषणासे आश्चर्य नहीं हुआ। सबको पहिलेसे सम्भावना थी कि कभी ऐसी स्थिति आ सकती है। अतः सर्वत्र घोषणाका स्वागत हुआ।

अल्पकालिक शुभ मुहूर्त शोधित करके कुमार शत्रुघ्नने मधुपुरी राज्यके दो भाग किये। राजधानीके सिंहासनपर ज्येष्ठ पुत्र सुबाहुका और दूसरे भागपर श्रुतसेनका अभिषेक कर दिया '

प्रजासे, पुत्रोंसे सत्कृत होकर शत्रुघ्न सपत्नीक अयोध्याकी ओर चल पड़े। उन्होंने पुत्रोंको आदेश दे दिया था कि अश्वमेधके आरम्भमें अयोध्यासे आदेश आनेपर वे सम्राट्की सेवामें उपस्थित हों।

शम्बूक-वध

आप कहीं चले जायँ, पृथ्वीके किसी भी राज्यमें आपको वैज्ञानिक शोधकी असीम स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होनेवाली है। व्यक्तिको शक्ति प्राप्त करनेकी उतनी ही स्वतन्त्रता दी जा सकती है, जितनी समाजकी मर्यादाओंकी सुरक्षाको सन्दिग्ध न बनाती हो। आप चाहते हों—शक्ति प्राप्त करनेका इसलिए उद्योग करते हों कि कभी भी बिना वैधानिक मार्ग-के राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्रीकी कार्यकारिणीमें उनकी इच्छाके विपरित प्रविष्ट हो सकें तो आपके प्रयत्नकी सफलतासे पूर्व—आपके शक्ति-सम्पन्न होनेसे पहिले आपको प्राणदण्ड दे देनेवाला शासक सावधान समझा जाना चाहिये। उसके विरुद्ध अन्यायका आरोप नहीं लगाया जा सकता। शम्बूक-वधके प्रसङ्गमें यह तथ्य स्मरण रखें।

यदि सम्भावना हो जाय कि कोई ऐसी शक्ति प्राप्त करनेके प्रयत्नमें हैं कि वह बलात् अवैधानिक रूपमें विधान सभामें बैठ सके और ऐसी शक्ति प्राप्त कर लेना सम्भव भी हो तो सङ्कट उत्पन्न होनेसे पूर्व उसको मार देना उचित उपाय माना जायगा।

सुर आग्नेय-तत्त्व-प्रधान ज्योतिमर्य सूक्ष्म देह-धारी हैं। स्वर्ग मानसिक सूक्ष्म लोक है। वहाँ कोई मानव किसी समय परिस्थिति विशेषमें अल्पकालके लिए अतिथि हो सकता है; किन्तु सशरीर स्थायी रूपसे स्वर्गमें रहनेकी मानवकी आकांक्षा अवैधानिक है। यह उस लोककी मर्यादाके प्रतिकूल हैं, अतः अपराध है।

त्रिशंकुने यह अपराध किया था। महर्षि विश्वामित्रके तपोबलने उसे सशरीर स्वर्ग भेज दिया; किन्तु सुरोंने उसे वहाँ रहने नहीं दिया। वह अविलम्ब नीचे गिरा दिया गया। जहाँ पुण्यात्मा प्राणी देहत्यागके पश्चात् जाते हैं, वहाँ सशरीर ना धमकनेका प्रयत्न ऐसा ही है जैसे कोई गुरिल्ला वनमानुष बलपूर्वक विधान सभामें घुस जाना चाहे। तब उसका स्वागत होगा या उसे गोली मारी जायगी?

शम्बूक शूद्र था। युग त्रेताका था। वह उग्र तप कर रहा था। उसका उद्देश्य सशरीर स्वर्ग जाना था। अनधिकारी व्यक्ति, निषिद्ध समयमें, निषिद्ध रीतिसे, निषिद्ध स्थानमें प्रवेशका प्रयत्न कर रहा था। तपस्यामें अपार शक्ति है। अनेक बार तपोबलसे असुरोंने (यद्यपि वे देववर्गके ही हैं, देवताओंके अग्रज हैं) स्वर्ग पर अधिकार कर लिया है। अतः शम्बूकके तपसे सुरोंका सशङ्क होना स्वभाविक था। विप्रपुत्रकी मृत्यु तो सुरोंकी ओरसे पृथ्वीके शासकको जो मर्यादाकी रक्षाका दायित्त्व रखता था, सावधान करनेका प्रयत्न था।

अयोध्याकी राजसभामें प्रायः कोई कार्यार्थी नहीं आता था। प्रजाके लोग सन्तुष्ट, सम्पन्न, शान्त थे और स्वधर्मनिष्ठ थे। अतः असन्तोष, अभाव, संघर्ष स्वप्न हो गये थे। शासकके लिए कोई कार्य नहीं रह गया था।

'अकाल मृत्यु ?' अचानक एक दिन पूरे नगरमें सनसनी व्याप्त हो गयी। त्रेतामें किसी बालककी मृत्यु एक अकल्पनीय दुर्घटना थी और वह घटित हुई थी। घर-घर, जन-जनके मुखपर वही चर्चा, सब आशङ्का-ग्रस्त—'अकाल मृत्यु ?'

किसी दूरस्थ ग्रामसे एक ब्राह्मण अपने शिशुका शव हाथोंपर उठाये रुदन करता अयोध्या आया था। वह रोते-रोते बार-बार कह रहा था—'वत्स ! तुम्हारा कोई पाप नहीं था। मैंने सब विचार करके देख लिया, ग्रहगणित कर लिये, तुम्हें दीर्घायु योग मिला था। मैंने भी ऐसा कोई पाप नहीं किया कि मुझे पुत्र-वियोग प्राप्त हो। यह अवश्य और किसीका दोष है। दूसरेके दोषका दण्ड दूसरेको मिले तो वह शासकका प्रमाद होता है। तुम पितृ-श्राद्ध किये बिना परलोक कैसे चले गये ?'

'राम ! तुम्हें दीर्घायु प्राप्त हो।' ब्राह्मणके पुत्रकी अकाल मृत्यु सुनकर सम्राट् स्वयं भाइयोंके साथ राजद्वारपर आये तो उन्हें देखकर ब्राह्मणने शाप नहीं दिया, क्रोध नहीं किया। केवल दुःखित स्वरमें बोला—'हम पति-पत्नी ती यहाँ राजद्वारपर अनशन करके देहत्याग करने आ गये है; क्योंकि राजाके दोषसे ही राज्यमें ऐसे अमङ्गल होते हैं। अब इस शिशुके शवका तुम्हें जो उचित लगे, करो।'

ब्राह्मणने पुत्रका शव सम्मुख रख दिया। श्रीराम बहुत दुःखी हुए। उन्होंने उस विप्रसे कहा—'ब्रह्मन् ! आप हमें कुछ समय द। इस शिशुको

पुनर्जीवन देनेके लिए जो भी प्रयत्न सम्भव होगा, राम अवश्य करेगा।'

'शिशुका शरीर तैलद्रोणीमें इस प्रकार सुरक्षित किया जाय कि सप्राण होनेपर उसे कष्ट न हो।' भरतको आदेश हुआ 'निरन्तर तब तक सावधान सेवक इस शरीर पर दृष्टि रखें, जब तक यह सप्राण नहीं हो जाता।'

'लक्ष्मण ! कुलगुरुको और आस-पास जितने महात्मा प्राप्त हों, सबको शीघ्र बुला लो।' मर्यादा-पुरुषोत्तमको मृत्यु-लोककी मर्यादा भी सुरक्षित रखनी थी। वे सक्रिय हो चुके थे—'जब तक यह शिशु जीवन नहीं प्राप्त करता, राम जल ग्रहण नहीं कर सकता।'

ब्राह्मण और उसकी पत्नी अवाक् देखते रह गये। अब आग्रह करनेका कोई भी अर्थ नहीं था। सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम एक बातको दो प्रकार-से तो बोल नहीं सकते। उनके मुखसे निकल गया वह अटल हो गया। श्रीराम जल-ग्रहण नहीं करेंगे तो उनके भाई, भ्रातृपत्नियाँ, राजपरिवार-के सेवक-स्वजन अथवा अयोध्याके कोई भी प्रजाजन जल ग्रहण कर सकेंगे ?

अब केवल ब्राह्मण दम्पतिके अनशन तक बात कहाँ रही ? अयोध्या के तो पशु-पक्षियों तकने अहारसे मुख हटा लिया। कैसा भी होता इस बालकका प्रारब्ध-जिसके जीवनके साथ इतने प्राण सम्बद्ध हो गये, उसे मार देनेका साहस स्वयं मृत्युमें भी होगा ! यह तो सुनिश्चित हो गया कि शिशुको प्राण प्राप्त होकर रहेंगे। वह जीवित होगा, दीर्घायु होगा। प्रश्न केवल समयका रह गया और जब स्वयं श्रीरामने जल-ग्रहण त्याग दिया, समय दीर्घ नहीं हो सकता। विश्वका विधायक इतने बड़े समूहके ऐसे संकल्पके सम्मुख अधिक सुस्थिर नहीं रह सकता।

ब्राह्मण और उसकी पत्नीका रुदन शान्त हो गया। उन्होंने राजद्वार पर पड़े रहनेका आग्रह स्वतः त्याग दिया और पान्थशालामें चले गये। उनसे आहार-ग्रहणको भी कहा जाता तो वे अपने ऐसे उदार सम्राट्की जीवन-रक्षाके लिए वह भी कर लेते। अब पुत्रके पुनर्जीवनका उनका आग्रह उन्हें मोह लगने लगा था। वे अपने इस प्रकार अयोध्या आनेपर दुःखित थे, पश्चात्ताप-पीड़ित थे; किन्तु अब बात उनके वशमें नहीं थी।

अब तो सम्राट्ने संकल्प कर लिया था। सम्राट् उपोषित थे तो किसीको भी जल-ग्रहण नहीं करना था।

'मेरा क्या दोष है? इस त्रेतायुगमें ही बालककी मृत्यु कैसे हो गयी?' महात्माओंके आते ही श्रीरामने उनका सत्कार करके पूछा। क्योंकि सतयुग अथवा त्रेतामें मृत प्राणीको जब त्रेतामें मनुष्य शरीर प्राप्त करने योग्य प्रारब्ध मिला तो उसे अपने उद्धारका अवसर प्राप्त हुए बिना काल-कवलित क्यों होना चाहिये। ऐसे कलुषित प्रारब्धोंका उदय तो केवल कलियुगमें होता है, जब कि नरकसे अथवा पशुयोनिसे प्राणी केवल मानव-शरीरमें आने मात्रको जन्म लेकर मर जा सकता है।

देवर्षि नारद आ गये अकस्मात्। श्रीराघवेन्द्रका प्रश्न उन्होंने सुन लिया था। उन नित्य परिव्राजकका स्वभाव ही ऐसा है कि उठकर चल देनेकी शीघ्रता लगी रहती है उन्हें। अतः स्वयं बोले—'रामभद्र! यह बालमृत्यु वर्णाश्रम धर्ममें विपर्ययकी सूचक है। वर्णाश्रमकी मर्यादामें सबको रखना शासकका कर्तव्य है।'

'निष्काम कर्म अथवा तप करनेका सबको सब समय अधिकार है। अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए, मोक्षके लिए, भगवत्प्रेम-प्राप्तिके लिए किये जानेवाले साधन प्रतिबन्धोंसे प्रायः विनिमुक्त हैं।' देवर्षिने अपने वचनोंकी व्याख्या की—'लेकिन जब कर्म सकाम होता है, तब वह तप, जप, यज्ञ, पाठ, अर्चन कुछ भी हो, उसमें देश, काल तथा अधिकारीका निर्णय आवश्यक हो जाता है। इसमें विपर्यय होनेपर लोकमें व्यवस्था-विपर्यय अनिवार्य है।'

'प्रथम पाद्मकल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें तो एक ही वर्ण था। मानव केवल प्रणवका जप करता था, तप एवं ध्यानमें तल्लीन वृक्षोंके नीचे या गुहामें चाहे जहाँ रहता था; किन्तु वर्तमान श्वेत वाराह कल्पके इस वैवस्वत मन्वन्तरके सतयुगमें केवल ब्राह्मणको सकाम तप करनेका अधिकार था। भौतिक भोगों एवं यज्ञादिके सम्बन्धमें सबकी प्रारब्ध पर दृढ़ आस्था थी। ब्राह्मण स्वर्ग-काम तप करते थे। वे सन्तोषी, तितिक्षु तथा भोग-पराङ्मुख थे, अतः उनका तप कोई अव्यवस्था उत्पन्न नहीं करता था।'

'त्रेतामें सतयुगके समान सब सात्त्विक नहीं रह गये। रजोगुण बढ़ा तो कर्म-प्रवृत्ति बढ़ी। क्षत्रियके पुरुषार्थकी पुकार उठी कि वह यश एवं

प्रभुत्वकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करेगा। अतः त्रेतामें तप करनेका अधिकार क्षत्रियको भी प्राप्त हो गया। इससे भी कोई अव्यस्था उत्पन्न नहीं होती थी। क्योंकि क्षत्रिय भोगोन्मुख नहीं हैं। उन्हें प्रभुत्व चाहिये, शक्ति चाहिये शेष समाजकी रक्षा करनेके लिए। अतः वे तपसे शक्ति-सम्पन्न बनें तो बाधा नहीं है।'

'आगे द्वापर संशयका युग आवेगा। मनुष्य प्रारब्ध-प्रधान या पुरुषार्थ—इसमें सन्दिग्ध हो जायेगा। वैश्यको अर्थ चाहिये। यद्यपि अर्थ उसे भी उपभोगके लिए नहीं धर्मके लिए, यज्ञ, देवस्थान धर्मशाला सरोवरादि-निर्माण तथा दानके लिए ही चाहिये; किन्तु इसमें वह पुरुषार्थ करना श्रेष्ठ मानता है तो आधिदैविक उपाय—तप भी उसके लिए विहित हो गया। उसके तपसे भी कोई अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होती।'

'अव्यवस्था तब उत्पन्न होती है जब भोग-काम लोग आधिदैविक उपायका अवलम्बन लेते हैं। कलियुगमें ऐसा होगा। तब दरिद्र, अयोग्य व्यक्ति साधुवेश स्वीकार करेंगे। जप-तप करेंगे—इसलिए करेंगे कि इससे उन्हें कोई सिद्धि प्राप्त हो जाय अथवा समाजमें उनके प्रति श्रद्धा जागृत हो जाय। इस सिद्धि अथवा लोक-श्रद्धाके द्वारा वे अर्थोपार्जन करके विशाल भवन तथा प्रभूत भोगोंका परिग्रह करेंगे। फलतः अकाल, महा-मारी—असामयिक मृत्यु प्रभृति उपद्रव संसारमें सामान्य घटना बन जायँगे।'

'श्रीराम, इस त्रेतामें असमयमें, एक शूद्र-अनधिकारी उग्र सकाम तप—अनधिकृत साधन, सशरीर स्वर्ग जानेकी कामनासे, अनुचितकी उपलब्धिके लिए कर रहा है।' देवर्षिने अब कारण स्पष्ट किया—'अतः उसके पार्श्वमें बसनेवाले इस विप्रका पुत्र मरा है। ब्राह्मण वेदज्ञ होनेके कारण पड़ोसीको वारित करनेका दायित्व इसका भी है। वह शूद्र तपसे निवृत्त हो तब विप्रपुत्र सजीव होगा।'

देवर्षिने कारण बतलाया और 'नारायणहरि' कीर्तन करते चले गये। श्रीरामने पुष्पक विमानका स्मरण किया। विमान उपस्थित होनेपर लक्ष्मणके साथ उसमें आरूढ़ हुए। अरण्यमें तपोनिरत शूद्रका अन्वेषण नहीं करना पड़ा। वह दिव्य विमान सीधे उस स्थानपर पहुँचा। अब श्रीरामको इस अनधिकारीके तपमें अपने योगदानका भी आभास हुआ। यह

दण्डकारण्य था। यहाँ तपस्वी ब्राह्मणोंको भी राक्षस उदरस्थ कर लेते थे। श्रीरामने राक्षसोंको मारकर इसे निरुपद्रव न किया होता तो महातप करने आकर शूद्र कभीका राक्षसोंके पेटमें पहुँच चुका होता।

दण्डकारण्यके भी दक्षिण भागमें एक कृष्ण वर्ण, दीर्घ जटा-श्मश्रु, कंकालप्राय पुरुष अपने दोनों पैर वृक्षकी शाखासे बाँधकर उलटे लटका नीचे आर्द्र इन्धन जलाकर उठते धूम्रमें मुख किये था। पुष्पक वहाँ उतरा श्रीरामने समीप जाकर पूछा—'महानुभाव ! आप कौन हैं ? अपना परिचय दें। आप यह अशास्त्रीय तामस तप किस उद्देश्यसे कर रहे हैं ?'

शूद्रका साहस नहीं था कि वह सम्राट्को देखकर भी स्थिर रह पाता। प्रयत्न करके उसने हाथ ऊपर उठाकर शाखा पकड़ी। ऊपर शाखा पर बैठकर अपने पैर खोले, नीचे आया। उसने अपना परिचय दिये बिना मस्तक झुकाकर कहा—'मैं इसी शरीरसे देवत्व पानेका प्रयत्न कर रहा हूँ।'

'आप यज्ञोपवीतहीन हैं, अतः द्विज नहीं हो सकते।' श्रीरामने शासकके आदेशपूर्ण स्वरमें कहा—'मानव-शरीरसे देवत्व नहीं पाया जाता। यह विप्रके लिए भी वर्जित दुराग्रह है। आप इस तपका त्याग करके अपने आवास लौटें। अपना समाजोचित कर्तव्य करें। मैं आपको आपके स्थानपर पहुँचा दे सकता हूँ। विमानमें बैठें।'

शूद्र तापसने स्वीकृतिमें सिर भी नहीं हिलाया। वह चुप खड़ा रहा। तब श्रीरामने खड्ग खींच लिया। यद्यपि आघात करते उनका कर कम्पित हुआ; किन्तु उसका मस्तक काट दिया उन्होंने। सहसा उसके शरीरसे एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। देवताओंने पुष्प-वर्षा की। देवलोकका विमान उस दिव्य पुरुषको लेने आ गया।

'इन तपस्वीकी कामना पूर्ण हो गयी।' श्रीरामने विमानमें आये देवताओंसे प्रार्थना की—'अब उस मृत ब्राह्मण-पुत्रको भी जीवनदान प्राप्त हो।'

'वह जीवित हो चुका सम्राट् !' देवताओंने प्रसन्न होकर कहा—'आपने सुरोंका प्रिय किया और पृथ्वी तथा देवलोक दोनोंकी मर्यादा-रक्षा की है।'

अश्वमेधकी प्रेरणा—

अगस्त्याश्रम वहाँसे दूर नहीं था, जहाँ तक तपस्वी शूद्रका अन्वेषण करते विमान आ पहुँचा था। वैसे भी सत्पुरुष अपनी प्रशंसा-श्रवणसे बचना चाहते हैं। जब मृत ब्राह्मणपुत्र जीवित हो चुका, तब तत्काल अयोध्या लौटना अनावश्यक हो गया। वहाँ अभी जाकर तो प्रशंसा ही सुनना था। अतः महर्षि अगस्त्यके दर्शन करना अधिक उचित प्रतीत हुआ।

अमिततेजा महर्षि अगस्त्य जैसे पुष्पकके आगमनकी प्रतीक्षा ही करते हों। विमानके भूमिपर उतरते ही अर्घ्य लिये आगे आ गये। श्रीराघवेन्द्रने लक्ष्मणके साथ भूमिष्ठ होकर प्रणिपात किया। महर्षिने दोनों भाइयोंको उठाकर हृदयसे लगाया। उटजमें ले जाकर आसन देकर पूजन किया।

श्रीराम अब भी कुछ लज्जित थे। इन्होंने मस्तक झुका रखा था। एक तपस्वीको मारना पड़ा, यह कर्म अब भी करुणासिन्धुको उचित नहीं प्रतीत हो रहा था। सर्वज्ञ महर्षिने इसे लक्षित किया। बोले— 'तुम सम्राट् हो, मेरे प्रिय हो और आज तो धर्म-रक्षक होकर उपस्थित हुए हो। एक विप्रके पुत्रको तुमने जीवनदान किया है, अतः अत्यन्त आदरणीय हो गये हो। शासकको लोकोत्पीडकका उच्छेद करना कर्तव्य है।'

'भगवन्! वह अरण्यमें एकाकी तप कर रहा था।' श्रीरघुनाथने शंकाकी।

'वह सुरोंके लिए आतङ्क बन रहा था।' महर्षिने स्नेह-पूर्वक तनिक झिड़का— 'अज्ञके समान तुम ऐसे तर्क नहीं कर सकते। तप-मन्त्र या यन्त्र-शक्ति, भूत-प्रेत साधनके द्वारा जो दूर बैठकर दूसरोंके अनिष्टका कारण बनते हैं, वे केवल अपराधी ही नहीं होते, घोर दुष्कर्मी होते हैं। उनका वध एक समर्थके शासनका विधान होना चाहिये। ऐसे अप्रत्यक्ष उत्पीड़कोंसे प्रजाको परित्राण देनेवाला अधिक प्रशंसनीय है। तुमने उस

अनधिकारी, अनुचित दुराग्रही शूद्रको मारकर शासकका कर्तव्य पालन किया है।'

'श्रीराम! राजा उचित कर्म करनेवालोंको विशेष अवसरोंपर पुरस्कृत करता है।' महर्षिने हँसकर कहा—'ऐसे ही राजा भी कोई प्रशंसनीय कर्म करे तो उसे पुरस्कृत किया जाना चाहिये। तुम मेरे उपहार स्वीकार करो।'

कभी देवी लोपामुद्रा (अगस्त्यपत्नी) के मनमें दक्षिणके किसी राज-सदनमें जानेपर वहाँकी रानीको देखकर वैसे उत्तम वस्त्र तथा आभूषणोंकी कामना जागी थी। उन्होंने आकर पतिसे कहा। महर्षि हँस पड़े थे; किन्तु विश्वकर्माने स्वतः महर्षिके मनकी बात समझकर महर्षि-पत्नी तथा महर्षि-के भी उपयुक्त दिव्य वस्त्र तथा आभरण प्रस्तुत कर दिये थे। ऐसे वस्त्र जो न कभी मलिन होते थे, न जीर्ण होते थे। ऐसे आभूषण जिन्हें धारण करनेपर अंगकान्ति अम्लान रहती थी। शरीर स्वस्थ बना रहता था। स्फूर्ति जागृत रहती थी।

'अब हम इन वस्त्राभरणोंको धारण करके भोगी बनेंगे?' विश्वकर्मा उन्हें अर्पित करके चले गये तो महर्षिने पत्नीकी ओर देखा। उन अमल अन्तःकरण देवीको बड़ी ग्लानि हुई। अतिशय लज्जा लगी। अपने मानसिक लोभको भी च्युति मानकर उन्होंने बहुत दिनों तक कठोर तप किया। वस्त्राभरण वैसे ही उपेक्षित पड़े रहे।

महर्षिने उन वस्त्राभरणोंमें-से पुरुषोचित वस्त्र, आभूषण उठाये और बोले—'ये हम अरण्यवासियोंके लिए अनुपयोगी हैं। इन्हें स्वीकार करो।'

'भगवन्! क्षत्रियको किसीसे भी दान नहीं लेना चाहिये।' श्रीरामने संकोचपूर्वक कहा—'ब्राह्मणसे प्रतिग्रह लेना तो किसी प्रकार उचित नहीं।'

'आदि सतयुगमें कोई शासक नहीं था। पृथ्वींपर जब रजोगुणका प्रभाव पड़ा, मतभेद उत्पन्न होने लगा, ऋषियोंने सुरेन्द्रसे शासक प्रदान करने की प्रार्थनाकी। सुरोंने मनुको ही प्रथम शासक नियुक्त किया।' महर्षि ने समझाया—'तभीसे राजाका सत्कार करना सबका कर्तव्य निश्चित हुआ। राजाको सबसे भेंट लेनेका अधिकार देवताओंने दिया।'

महर्षिके स्नेहकी अवमानना अनुचित थी, अतः उनका उपहार स्वीकार करना पड़ा। महर्षिके आग्रहपर सानुज श्रीराम उस रात्रि उसी आश्रममें रहे।

'देवराज इन्द्रने देवताओंको दुःखी होते देखकर अपने ही तपस्वी पुरोहित विश्वरूपका वध किया था। यद्यपि विश्वरूप ब्राह्मण थे; किन्तु अपने मातृस्नहके कारण मातृपक्षीय असुरोंको भी अप्रत्यक्ष आहुति देकर पुष्ट करते रहते थे।' प्रातःकाल विदा होनसे पूर्व श्रीरामको महर्षि अगस्त्यने एक वेदिक आख्यान सुनाया— 'इससे इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी। इस हत्याका प्रायश्चित्त अश्वमेध यज्ञके द्वारा करके देवेन्द्र परिशुद्ध-कल्मष हो गये थे।

महर्षिने देख लिया था कि श्रीरामके मनसे शूद्र-तापसके वधकी ग्लानि जा नहीं रही है। वे समझानेपर शील-संकोचके कारण बोलते नहीं है; किंतु उनका अतिशय उदार अन्तःकरण सुरोंके तथा मेरे कहनेपर भी अपने कर्मको नृशंस ही मानता है। कर्त्तव्यके कठोर दायित्वको पूरा करनेके लिए इन्होंने उसे मार तो दिया; किंतु मनमें दुःखी हो रहे हैं। अतः महर्षिने इस उपाख्यानके अन्तमें कहा— 'सुरगुरु बृहस्पतिने विधान किया है कि अश्वमेध करके मूर्धाभिषिक्त नरेश समस्त विश्वके वधसे भी निष्पाप हो जाता है।'

'वत्स श्रीराम ? तुम समर्थ हो। तुम्हारे पूर्वजोंने सौ-सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं। तुम अश्वमेध करो।' अगस्त्यने प्रेरणा दी— 'इससे तुम्हारा सुयश सम्पूर्ण भूमण्डलमें विस्तीर्ण होगा। अश्वमेधके समान दूसरा कोई यज्ञ शक्तिशाली नरेशके लिए यश, पुण्य और परमैश्वर्य प्रदाता नहीं है।'

'कुछ करना चाहिये—कुछ अवश्य किया जाना चाहिये, जिससे यह मानसिक ग्लानि मिटे।' शम्बूक-वधके पश्चात् बार-बार श्रीराघवेन्द्रका अन्तःकरण पुकार रहा था; किंतु क्या किया जाना चाहिये, यह नहीं सूझ रहा था। ऐसे कर्मोका प्रायश्चित्त स्वयं निर्णय किया जाय, यह मर्यादा नहीं है। सुर उसे अपराध ही नहीं मानते थे। महर्षि अगस्त्यने भी उसे उचित कह दिया, इससे श्रीरामकी उलझन ही बढ़ी थी। अब दूसरा कोई ऋषि-महर्षि इस कर्मको अकरणीय ही नहीं मानेगा तो प्रायश्चित्त कैसे बतावेगा ?

अनेक अवसरोंपर हिंसा उचित होती है। युद्धमें किसीकी प्राण-रक्षार्थ, गौ-ब्राह्मण, बालक, नारी तथा अपने प्राण-संकटसे परित्राणके लिए हिंसा अनुचित नहीं है। शम्बूककी हत्यासे विप्रपुत्रको जीवन प्राप्त हुआ, अतः वह हत्या उचित थी, यह तो प्रमाणित हो गया; किंतु यह कार्य मर्यादाके अनुरूप नहीं हुआ। मर्यादा-पुरुषोत्तमका अनुकरण करेंगे आगे मानव। सामान्य मनुष्यकी निर्णायिका क्षमताको छुट्टी नहीं मिलनी चाहिये। जिसे भी कोई तपस्वी, साधक अनुचित तप करते लगे, वही राजा उसका वध कर दे, यह मर्यादा तो स्थापन करने योग्य नहीं है। वेन जैसे श्रुति-संत-विरोधी शासक भी तो होंगे—हो सकते हैं।

मानवके मनकी राजस-तामस प्रवृत्तियोंको तनिक भी अवलम्ब मिल जाय तो वे अनर्थकारिणी हो जाती हैं। अतः मर्यादा-पुरुषोत्तमको यही लोकमें दिखलाना था कि वे स्वयं अपने तापस-वधके कार्यको उचित नहीं मानते, भले सुर एवं ऋषि उसमें अनौचित्य न देखते हों। इसके लिए कुछ प्रतिकार किया जाना आवश्यक था। प्रतिकार भी ऐसा जो अपने ही मनसे निर्णीत न हो। जिसको शास्त्र प्रतिपादित कहा जा सके। जिसे किसी सुप्रसिद्ध ऋषिका समर्थन प्राप्त हो।

अब महर्षि अगस्त्यने प्रायश्चितका स्पष्ट नाम लेकर अश्वमेध यज्ञ करनेका आदेश दिया तो समस्याका समाधान हो गया। श्रीरामका चित्त प्रसन्न हो गया। मनमें कलसे जो उलझन चल रही थी, मिट गयी। इनके सदा गम्भीर मुखपर प्रसन्नता आ गयी।

'मैं अवश्य आदेशका पालन करूँगा।' श्रीराघवेन्द्रने स्वीकार किया। महर्षिके चरणोंमें सानुज प्रणाम करके उनसे बिदा लेकर, उनकी परिक्रमा करके पुष्पकपर बैठे। विमान अयोध्या उतरा तो वहाँ सम्राट्की आतुर प्रतीक्षा चल रही थी। ब्राह्मण दम्पति जीवित पुत्रको लिये हर्ष-विभोर सबसे आगे दौड़ते आये।

श्रीरामने उस ब्राह्मणको बहुत अधिक धन, गायें आदि देकर आदरपूर्वक भोजन कराके विदा किया। उसके जानेके पश्चात् कुलगुरु तथा विप्रोंको भोजन कराके सब भाइयोंके साथ जब स्वयं भोजन कर लिया, तब अयोध्याकी प्रजाने अपने व्रतका पारण किया।

स्वर्ण-सीता

अश्वमेध यज्ञ किया जाय, इस सम्बन्धमें अयोध्यामें दो मत हो ही नहीं सकता था। प्रजा और प्रजा-प्रतिनिधि बहुत पहिलेसे इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। राज्यकी विजय-वाहिनीके सैनिकोंकी यह परमाभिलाषा थी। महासेनापति अनेक सैनिक समारोहोंमें कह चुके थे— 'दशग्रीव-दलनका श्रेय वानर-रीछोंने ले लिया। अब तो अयोध्याके सैनिकोंको सम्राट्के अश्वमेध यज्ञके समय अपने शौर्यको सार्थक करनेका अवसर प्राप्त होगा ?'

'कब आवेगा वह अवसर ?' सैनिक बार-बार पूछते थे। राजसूय तथा वाजपेय यज्ञोंने उनको सन्तुष्ट नहीं किया था। अश्वमेध करनेकी सम्राट्की इच्छाका पता लगा तो सैनिकोंको लगा कि उन्हें वरदान प्राप्त हुआ।

'अपना राजकोष परिपूर्ण है। प्रजा सम्पन्न है। सामन्तगण समृद्ध हैं। कहीं कोई शत्रु है नहीं।' महामन्त्रीने सब ओरसे समीक्षा करके सम्मति दी— 'इससे अधिक उपयुक्त अवसर अश्वमेध यज्ञके लिए दूसरा नहीं हो सकता।'

महामन्त्रीकी सम्मतिको सभी मन्त्रियोंका समर्थन प्राप्त था। श्रीरामने भरत तथा लक्ष्मणसे पूछा। उनका उत्तर था— 'हम तो आपके सेवक हैं। आपकी इच्छामें हमारी इच्छा नित्य सन्निहित है; किंतु अश्व-मेध यज्ञकी परम्पराका निर्वाह हुआ है इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न अयोध्याके अधिपतियोंके द्वारा। अपने पूर्वपुरुषोंकी परम्पराका निर्वाह शोभनीय समझा जायगा।'

'अश्वमेध होगा तो देवरके साथ श्रुतिकीर्तिको अयोध्या आनेका अवसर प्राप्त होगा।' अन्तःपुरमें इस समाचारका स्वागत इस आशाके साथ हुआ— 'सम्भव है सम्राट् जीजीका निर्वासन इस सुयोगमें समाप्त कर दें।'

'वत्स ! अश्वमेध यज्ञ सुरोंके, ऋषियोंके सत्कारका उत्तम अवसर देता है।' महर्षि वशिष्ठने श्रीरामका प्रस्ताव सुनकर गम्भीर होकर कहा— किंतु अश्व-परिचर्या कौन करेगा ? तुम पुनः पत्नी-परिग्रह स्वीकार कर लो तो यह यज्ञ तुम्हारे लिए सरल एवं सुख-सौभाग्यदायी होगा।'

'भगवन् ! आप ऐसा आदेश मत करें।' श्रीरामने व्याकुल होकर कुलगुरुके चरण पकड़ लिये— 'रामने प्रतिज्ञा कर ली है कि सीताके अतिरिक्त सृष्टिकी समस्त कन्याओंको सदा माता मानेगा। अश्व-परिचर्या मैं स्वयं सम्पन्न करूँगा।'

जिनके छोटे भाई वनमें चौदह वर्ष अनिद्र रहे, अनाहार रहे, सतत सावधान एवं श्रमशील रहे, वे स्वयं दिन भर यज्ञ-कुण्डके समीप बैठकर आहुति दें और रात्रिमें जागकर अश्व-परिचर्या भी कर लें, यह अशक्य तो नहीं था। यदि अनुज चौदह वर्ष अनिद्र रह सकता है तो अग्रज कुछ महीने नहीं रह सकेगा, यह कहनेका साहस करेगा कोई ?

'कठिनाई तो है ; किंतु तुम पहिले अपने स्वजन-सम्बन्धी, परिचित जनोंको आमन्त्रित करो। कठिनाईका भी कुछ उपाय अवश्य निकलेगा।' महर्षिने कुछ सोचकर कहा— 'अपने सब सहायकोंको आमन्त्रित करो। यज्ञके उपयुक्त सामग्री मैं सूचित कर दूँगा। सुमन्त्रको मेरे समीप भेज दो। पृथ्वीके सब प्रसिद्ध पुरुषोंको आमन्त्रित करो। सभी ऋषि-मुनि, राजागण, कलाजीवी, प्रधान वणिक्, अरण्यानी जातियोंके अग्रणी, सेवा-कुशल लोग बुलाओ। उनके आवास तथा सत्कारकी व्यवस्था करो।'

श्रीरामने सबसे पहिले दूत भेजे शत्रुघ्नकुमारको बुलाने मथुरा और सुग्रीवको बुलाने किष्किन्धा। पवनकुमारको सभी वानर-रीछ-यूथपों-को ससैन्य आमन्त्रित कर आनेका आदेश दे दिया। निषादराज गुह अपने सेवकोंके साथ अयोध्या आकर टिक गये और यज्ञस्थलकी स्वच्छताका भार उन्होंने स्वयं उठा लिया।

दक्षिण कोशल, मगध, कैकय, मिथिला प्रभृति सभी सम्बन्धियोंके यहाँ दूत भेजे गये। सर्वत्र पृथ्वीपर एक ही चर्चा फैल गयी— 'अयोध्या सम्राट् अश्वमेध यज्ञ करेंगे ?'

'सम्राट् पुनः विवाह करेंगे ?' जो सुनता था, उसीके मनमें दो ही प्रश्न पहिले उठते थे--'अथवा उन्होंने सीताको अपना लेनेका निश्चय किया है ?'

पत्नीके बिना अश्वमेध तो क्या गृहस्थ कोई भी यज्ञ, तीर्थादि कर नहीं सकता। इतना महान यज्ञ यजमान एकाकी नहीं कर सकता और पत्नी साथ है नहीं। तब दोमें-से कोई एक निर्णय अवश्य अयोध्यामें किया गया होगा। मिथिलामें आशा तथा आशङ्का दोनोंने सभीको उद्विग्न किया। अनेक स्थानोंमें राजाओंको आशाका आलोक दीखा। अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट् पुनः विवाह स्वीकार करें तो लोकपाल, दिक्पाल भी अपनी पुत्री प्रदान करना चाहेंगे। राजाओंने पता लगानेको अपने चर अयोध्या भेजे तो अनुचित किया, यह नहीं कहा जा सकता।

कोई चर अयोध्या आकर क्या पता लगाता ? स्वयं अयोध्याके नागरिकोंको कुछ पता नहीं था। वे स्वयं ही समझ नहीं पा रहे थे कि उनके सम्राट् क्या करने वाले हैं। लेकिन यह अनिश्चय अधिक समय तक नहीं रहा। सुमन्त्रके द्वारा जो सम्राट्का निश्चय ज्ञात हुआ, उसने सबको चकित कर दिया। सब श्रीराघवेन्द्रकी स्थिरता, शील तथा संयमकी स्तुति करने लगे।

महामन्त्री सुमन्त्र कुलगुरु महर्षि वशिष्ठके समीप गये थे। महर्षिने उनसे कहा— 'सुमन्त्र ! श्रीराम अश्वमेध यज्ञ करना चाहते हैं। मैंने उनसे पूछा था कि वे पुनः पत्नी-परिग्रह स्वीकार करेंगे ? उन्होंने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया।'

'इस सेवकको क्या आदेश है ?' सुमन्त्रके मनमें भी यही उलझन चल रही थी। वे सर्वथा निर्दोष साम्राज्ञीके निर्वासनसे बहुत दुःखी थे। इस सुअवसरमें यदि वे महिमामयी आ सकें तो अयोध्याका अहोभाग्य !

'श्रीरामने अश्व-परिचर्याका दायित्व स्वयं वहन करना स्वीकार करके वैदेहीको बुलानेमें अपनी अनिच्छा भी व्यक्त कर दी है।' महर्षिकी वाणीने महामन्त्रीकी आशापर तुषारपात कर दिया।

'पत्नीकी अनुपस्थितिमें यज्ञका कोई विधान है ?' सुमन्त्रने पूछ लिया।

'इसीलिए तुम्हें यहाँ बुलाया है। किसीकी भी अनुपस्थितिमें किसी भी कार्यमें उसका प्रतिनिधि नियुक्त किया जा सकता है।' महर्षिने

अत्यन्त गम्भीर स्वरमें कहा— 'यह प्रतिनिधि सजीव ही हो, आवश्यक नहीं है। हम ब्राह्मण तो यज्ञ-हवनादिमें केवल गौरी, गणपति, नवग्रहादिके ही प्रतीक नहीं रखते, जहाँ ब्राह्मणोंका अभाव हो, उपयुक्त अथर्ववेदीय न प्राप्त हो, वहाँ ब्रह्माके स्थानपर कुशसे ब्रह्माका प्रतीक बनाकर स्थापित करके काम चला लेते हैं।'

'कुशका ब्रह्मा—ब्राह्मणका प्रतीक।' महामन्त्री कई क्षण तक मस्तक झुकाये सोचते रहे— 'अर्थात् भगवन् आपका आदेश है कि इस यज्ञमें साम्राज्ञीका प्रतीक प्रस्तुत करके काम चलाया जावेगा?'

'इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है। यज्ञमें पत्नीके स्थानकी पूर्ति आवश्यक है। श्रीराम न दूसरी पत्नी स्वीकार करेंगे और सीताको बुलाना ही चाहते हैं।' महर्षि वशिष्ठने अब स्पष्ट किया— 'मैंने तुम्हें इसलिए बुलाया है कि तुम ऐसे कुशल मूर्त्ति-निर्माताका अन्वेषण करके उसे अविलम्ब इस कार्यमें लगा दो। स्वर्ण-निर्मित सीताकी उनके रूप, रङ्ग आकारकी उतनी ही बड़ी मूर्ति बठी हुई आवश्यक होगी। मूर्तिकारको समझा देना कि मूर्ति यजमानके वाम भागमें विराजमान, सम्राट्के उन्मुख ठीक-ठीक सीताके समान बननी चाहिये।'

'विश्वकर्मा भी हमारी सौन्दर्य-सिन्धु साम्राज्ञीकी अनुकृति निर्माणमें समथ होंगे, मुझे आशा नहीं है।' सुमन्त्रने वही स्पष्ट अस्वीकार कर दिया।

'जानता हूँ कि सीताकी अनुकृति सम्भव नहीं है।' महर्षिने महामन्त्रीको समझाया— 'कुशसे बनाया गया ब्रह्मा क्या किसी भी विद्वान ब्राह्मणके समान दीखता है? हताश मत बनो। मूर्तिकारोंको कहो कि मूर्ति सीताके समान दीखे, वे इसका पूरा प्रयत्न करें।'

सुमन्त्रने लौटकर प्रसिद्ध स्वर्णकार मूर्त्ति-निर्माताओंको बुलाया तो सम्राट्के निश्चयका समाचार नगरमें फैल गया। जो राजाओंके चर अयोध्या आये थे, वे निराश होकर भी सम्राट्की स्तुति करते ही लौटे।

कलाकारोंने मूर्त्ति-निर्माणकी स्वीकृति दी एक नियमके साथ। मूर्त्ति-निर्माण राजसदनमें होगा और सम्राट् उसमें सहयोग देंगे। वे मूर्त्ति-के निर्माणमें स्वयं देखकर सुझाव देते रहेंगे। श्रीरघुनाथने इस सहयोगकी स्वीकृति दे दी।

अश्वमेधका आरम्भ

अश्वमेधके उपयुक्त अश्वका निर्देश महर्षि अगस्त्यने किया था, अतः श्रीरामने उनसे प्रार्थनाकी— 'भगवन् ! आप मेरी अश्वशाला देख लेनेकी अनुकम्पा करें। आप ही निर्णय करें कि उसमें कोई अश्वमेधके योग्य अश्व है या नहीं।'

महर्षि अगस्त्यके साथ दूसरे अनेक ऋषि-मुनि तथा उपस्थित लोग अश्वशाला गये। श्रीरघुनाथ भाइयोंके साथ उनका अनुगमन कर रहे थे। अश्वशालाके अध्यक्षने स्वागत किया। अनेक रङ्गोंके, अनेक गुणोंसे सम्पन्न अश्वोंकी पंक्तियाँ थीं वहाँ। ऋषि-मुनियोंको अश्वोंमें विशेष अभिरुचि नहीं थी। अश्वशालाका अध्यक्ष इसे समझता था। अतः उसने उन्हें श्यामकर्ण अश्वोंके समीप सीधे पहुँचा दिया।

'वत्स श्रीराम ! तुम्हारी अश्वशालामें सहस्त्रों अश्व अश्वमेधके योग्य हैं।' एक दृष्टि डालकर महर्षि अगस्त्य सन्तुष्ट बोले— 'इन अश्वोंमें-से प्रत्येक सुलक्षण, सर्वगुणयुक्त है। [illegible]से उत्तम अश्व वरुणके पास भी नहीं हैं।'

अश्व-चयन अनावश्यक हो गया। सरयूतटपर चार योजन वर्गाकार भूमि स्वर्ण-हलसे स्वयं श्रीराघवेन्द्रने जोती। अब उस भूमिमें मण्डपोंका निर्माण प्रारम्भ हुआ। यज्ञ-कुण्ड बनाये गये। अनेक रत्नोंसे वे कुण्ड सुसज्जित हुए। यज्ञ-मण्डप भली प्रकार मूल्यवान वस्त्रों एवं रत्न-मालाओंसे अलंकृत किये गये।

महर्षि वशिष्ठने अपने शिष्य भेजकर महर्षि-वृन्दको आमन्त्रित किया। देवर्षि नारद, असित, पर्वत, कपिल, जातूकर्ण्य अङ्गिरा, मरीचि, अत्रि आर्ष्टिषेण, गौतम, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, हारीत संवर्त प्रभृति सभी सुप्रसिद्ध महर्षि पधारे। उनका भली प्रकार सत्कार हुआ। उनको महर्षि वशिष्ठने अपने समीप अवास दिया।

वसन्त ऋतुका आरम्भ होनेपर कुलगुरु महर्षि वशिष्ठने यज्ञ प्रारम्भ करनेकी आज्ञा दी। अग्रजके आदेशसे लक्ष्मणने सेनापति कालजितको सेना सज्जित करके अश्वशालासे सर्वोत्तम श्यामकर्ण अश्व ले आनेको कहा।

लोकपाल भी उस दस ध्रुवक (भौंरी) वाले ह्रस्वरोमा अश्वको देखकर मुग्ध हो गये। उस चन्द्रोज्वल हयकी पूँछ पीली थी, मुख लाल था, दोनों कर्ण काले और छोटे थे। वह मणिकण्ठ, मुक्तामालसे सज्जित, रत्नोंसे आभूषित था। उसका मुख तथा शरीर मनोरम था। उसपर श्वेत छत्र लगा था और दोनों ओर चवँर चल रहे थे। वह सैनिकोंसे सेवित, सुरक्षित आया। वह स्वयं हिनहिनाता, उछलता, पदोंसे पृथ्वी खोदता यज्ञ-मण्डपमें आया।

अश्वके उपस्थित होनेपर यज्ञानुष्ठानका आरम्भ हुआ। श्रीरघुनाथने आभूषणोंका, कौशेयाम्बरका परित्याग करके यज्ञ-दीक्षा ली। उत्तरीय मृगचर्म बना। हाथोंमें मृगशृङ्ग तथा कक्षमें दण्ड, शोभित हुआ। स्वर्ण-निर्मित श्रीसीताकी मूर्तिके साथ बैठे। अब वर्षभर एक समय हविष्यान्न भोजन, रात्रिमें भूमिपर शयन व्रत बन गया।

महर्षि वशिष्ठने आचार्यत्व ग्रहण किया। अमित तेजस्वी महर्षि अगस्त्य ब्रह्मा (कृताकृत दर्शक) बने। इस प्रकार अध्वर्यु, उद्गाताका भी वरण करनेके अनन्तर यज्ञ-मण्डपके तोरणयुक्त आठों द्वारोंपर मन्त्रवेत्ता दो-दो ब्राह्मण बैठाये गये। पूर्व द्वारपर महर्षि देवल और असित, दक्षिण द्वारपर प्रजापति कश्यप एवं अत्रि, पश्चिम द्वारपर ऋषि जातूकर्ण्य तथा जाजलि, उत्तर द्वारपर द्वित तथा एकत-की नियुक्ति हुई। इनके मध्यके कोण-द्वारोंपर भी मन्त्रवेत्ता दो-दो ऋषि बैठे।

गणपति, नवग्रह, योगिनी, दिक्पालादिका पूजन हो जानेके पश्चात् अश्वका पूजन प्रारम्भ हुआ। सर्वाभरणभूषिता सौभाग्यवती स्त्रियोंने हरिद्रा, अक्षत, चन्दनादि द्वारा अश्वका पूजन अश्वशालामें ही किया था। अब यज्ञ-मण्डपमें श्रीरामने उसका पुनः पूजन करके नीराजन किया।

महर्षि वशिष्ठने चन्दन-कुंकुम-चर्चित अश्वके प्रशस्त भालपर स्वर्णपत्र बाँधा। उसमें अंकित था— 'सुरेन्द्रके भी सम्मान्य मित्र स्वर्गीय चक्रवर्ती महाराज दशरथके पुत्र त्रिभुवनजयी दुर्धर्ष दशग्रीव-दलन-कर्त्ता

श्रीरामने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। उनके इस अश्वमेधीय अश्वकी रक्षा कुमार शत्रुघ्न अयोध्याकी अपार विजयवाहिनीके साथ कर रहे हैं। जो अपनेको धनुर्धर माननेका गर्व करते हों, जिनमें अपनी शक्तिका दर्प हो, वे इस अश्वको पकड़नेका साहस करें। जहाँसे अश्व जा रहा है, वह भूमि अयोध्या-सम्राट्की अधिकृत मानी जायगी। सावधान! अश्व पकड़नेवालेका दर्प चूर्ण करके अश्व प्राप्त किया जायगा।'

'कुमार! तुम्हें अश्वका अनुगमन और सेवा करनी है। वह अपनी इच्छासे जहाँ-जिधर जाना चाहे, उसके पीछे चलो। वह दौड़े या खड़ा रहे, उसको बाधा मत दो।' महर्षि वशिष्ठने शत्रुघ्नकुमारको समझाया— 'अब अश्व साक्षात् यज्ञस्वरूप नारायण हो चुका। वह जहाँ खड़ा रहे, वहाँ दान करो। जहाँ मूत्र या पुरीषोत्सर्ग करे, वहाँ हवन किया जाना चाहिये। उसे कोई कष्ट न हो। साथ ही उसकी रक्षामें बहुत सावधानी आवश्यक है। अश्वमेध यज्ञके अश्वका देवता, दैत्य सभी हरण कर सकते हैं। अत: न केवल नरपतियोंसे, मायावी अदृश्य रहनेवालोंसे भी सतर्क रहना।'

'कुमार! अश्वके अनुगमनमें अनेक स्थानोंपर युद्ध अनिवार्य है।' श्रीरामने शत्रुघ्नको सावधान किया— 'युद्ध अनिवार्य ही हो, तभी किया जाना चाहिये। युद्धमें आहत होनेपर भी क्रोधावेशमें कोई अनुचित प्रहार न किया जाय, इस विषयमें सचेत रहना है। वृद्ध, बालक, रोगी, ब्राह्मण तो अवध्य हैं ही, भीत, शस्त्र या वाहनहीन, भागते, शरण आये शत्रुपर भी प्रहार मत करना। जो दिव्यास्त्र नहीं जानते, उनपर भूलकर भी दिव्यास्त्र मत उठाना। युद्धमें पर-पक्षकी भी न्यूनतम हानि हो, यह ध्यान रखना। अश्वमेध करनेवाला सम्राट् होता है। जो अश्व पकड़ते हैं। पराजित होनेपर वे भी अपनी प्रजा ही होंगे। उनका पालन, उनकी क्षति-पूर्ति अपना कर्त्तव्य हो जायगा। अतः उनके औद्धत्यसे, उनकी अज्ञतासे होनेवाली उनकी हानि, उनके यहाँका संहार भी अपनी ही हानि है। इस तथ्यको कभी विस्मृत मत करना।'

'सैनिकोंमें कोई भी कभी पराये धन अथवा परस्त्रीकी ओर लुब्ध दृष्टिसे देखेगा तो दण्डनीय होगा।' श्रीराघवेन्द्रने सावधान किया— 'सैनिकोंको, वाहनोंको आवश्यकता होनेपर भी प्रजामें-से किसीके क्षेत्र उपवनादिमें-से कुछ अनुमतिके बिना नहीं लेना चाहिये। जो लोग स्वेच्छा-

से भेंट करें, उनकी अस्वीकृतिको मत देखो, उनको उनके पदार्थका पूरा मूल्य दो। अश्वका अनुगमन करते हुए यदि कहीं सेनाके गमनके कारण किसीकी कृषिकी, वाटिकाकी कोई हानि होती है, कहीं वृक्ष कटते या टूटते हैं तो उनकी क्षति-पूर्ति करो। वे न चाहें तो भी क्षति-पूर्ति करो।'

'शत्रुघ्न! सेनाके साथ भिषक् हैं। सरिताओंपर सेतु बनानेके साधन हैं। दुर्गम स्थलोंमें मार्ग बनानेकी शक्ति है।' श्रीरघुनाथने आदेश किया—'यह तुम्हारा अभियान केवल दिग्विजयके लिए नहीं है। यह प्रजाकी पूरी स्थिति देख लेने और उसे सुविधा-दानके लिए भी है। जहाँ प्रजाको चिकित्साकी आवश्यकता है, सरिताओंपर सेतु अथवा दुर्गम स्थानोंमें मार्ग अपेक्षित हैं, जहाँ उन्हें कूप-सरोवरादि चाहिये अथवा जहाँ वे हिंसक प्राणियोंसे आतङ्कित हैं, वहाँ उनको सुखी करो, उनको अभीष्ट सुविधा दो, उनका भय दूर करो। इसके लिए जहाँ तुम्हारे पास समय न हो, वहाँकी सूचना यहाँ भेज दो। सर्वत्र तुमको व्यवस्था करनेका समय नहीं मिलेगा; किंतु तुम प्रजाको आश्वस्त करते चलो।'

'जो आयुमें बड़े हैं, आदरणीय हैं, उनपर प्रथम प्रहार मत करना।' श्रीराघवेन्द्रने शत्रुघ्नकुमारको और भी आदेश दिये—'मार्गमें जो वेदज्ञ, तपस्वी विद्वान अथवा कला-प्रवीण मिलें, उनसे अयोध्या आनेकी प्रार्थना करना। वे स्वीकार कर लें तो उनकी यात्रा-व्यवस्था करते जाना। तीर्थोंका, देवमन्दिरोंका, ब्राह्मणोंका, तपस्वियोंका पूजन, सत्कार करना और भरपूर दान करते चलना। सत्पुरुषोंका, धर्मात्माओं-का, भगवद्भक्तोंका सम्मान करना।'

'यह युद्ध-यात्रा नहीं है। सैनिकोंको भली प्रकार समझा देना कि अश्वका अनुगमन साक्षात् यज्ञेशका अनुगमन है। अतः समस्त प्राणियोंके प्रति उदार, आदर-भाव रखकर संयमपूर्वक, तप-तितिक्षाका पालन करते सबको चलना है।' अन्तिम आदेश हुआ—'सब भगवन्नाम-स्मरण करते चलें। सतर्क रहनेके साथ प्रमाद तथा परस्परके वार्तालापसे यथासम्भव बचे रहें। सैनिक जहाँ तीर्थादिमें धर्म-कृत्य करना चाहें, उन्हें स्वीकृति तथा सुविधा देते रहना है।'

'कुमार शत्रुघ्न अश्वरक्षाके लिए जा रहे हैं। इनका आदेश-पालन करते हुए इनके साथ कौन जाना चाहते हैं?' श्रीरामने अपने हाथपर

पानका बीड़ा रखकर हाथ आगे बढ़ाया— 'जो यात्राके कष्टको सहनेको उद्यत हों और प्रबल शत्रुके साथ संग्राम करनेका जिनमें उत्साह हो, वे यह बीड़ा उठा लें।'

श्रीभरतलालके पुत्र पुष्कलने तत्काल उठकर बीड़ा उठा लिया— 'मैं आपकी अनुमति चाहता हूँ।'

सबने पुष्कलकी प्रशंसा की। श्रीरघुनाथने स्वयं हनुमानको आदेश किया— 'पवनकुमार! मेरी आज्ञासे तुम भी शत्रुघ्नके रक्षक बनकर इनके साथ जाओ। मेरी ही भाँति मेरे इन छोटे भाईकी रक्षा करना। जहाँ इनकी बुद्धि विचलित हो, वहाँ समझा-बुझाकर इन्हें कर्त्तव्यका ज्ञान कराना।'

अङ्गद, गवय, मयन्द, दधिमुख, शतबलि, नील, नल तथा वानरेन्द्र सुग्रीवको भी वानरोंकी विशाल सेनाके साथ जानेका आदेश हुआ। इसके पश्चात् श्रीरामने महामन्त्री सुमन्त्रसे पूछा— 'अश्वकी रक्षामें और किनको नियुक्त किया जाना चाहिये?'

महामन्त्रीके सुझाव देनेपर प्रतापाग्र्य, नीलरत्न, लक्ष्मीनिधि, रिपुताप, उदग्राश्व, शस्त्रवित् प्रभृति सुप्रसिद्ध धनुर्धर शूर नरेशोंको भी अपनी चतुरङ्गिणी सेनाके साथ अश्व-रक्षार्थ शत्रुघ्नके साथ जानेका आदेश हुआ।

शत्रुघ्नको पुष्कल अत्यन्त प्रिय थे। वे माताओंसे विदा होकर आ गये। अब शङ्खनाद हुआ, ब्राह्मणने स्वस्ति-पाठ किया। श्रीरघुनाथने अश्वको प्रणाम करके प्रार्थना की— 'अब आप इच्छानुसार भू-भ्रमण करने पधारें।

अश्वने हींसकर हर्ष प्रकट किया। अश्वके पीछे सभी ऋषि-मुनि, सदस्यगण यज्ञशालाके बाहर तक आये। भेरी-घोष, जयनादके मध्य अश्व आगे बढ़ा। श्रीरघुनाथ तथा मुनिगणोंको प्रणाम करके कुमार शत्रुघ्न पुष्कलके साथ अश्वके पीछे चले। सम्पूर्ण सेना अयोध्याके सेनापति कालजितके सेनापतित्वमें साथ थी। अश्व, गज, रथ, पदातिकी वह अपार चतुरंगिणी सेना अश्वका अनुगमन कर रही थी। अश्वको किसी प्रकारकी बाधा न पड़े, इसलिए सम्पूर्ण सेनाको अश्वसे कम-से-कम अध

कोस पीछे ही रहना था। केवल कुछ अश्वारोही अश्वसे इतनी दूर चल रहे थे, जिससे आगे जाते अश्वपर दृष्टि बनी रहे और उसकी सेवा एवं सुरक्षा आवश्यक होनेपर तत्काल उसके समीप पहुँचा जा सके। लेकिन यह दूरी भी पर्याप्त बढ़ जाती थी, जब वह प्रबल-वेग अश्व प्रसन्न होकर दौड़ना प्रारम्भ कर देता था।

'यह अयोध्याके सम्राट्का अश्व है।' सर्वत्र अश्वको देखकर लोग प्रसन्न होते थे—'दशकन्धरजयी, शीलसिन्धु, परमोदार हमारे सम्राट्का अश्व!'

सामान्य जनताने ही नहीं, प्रसिद्ध शूर नरेशोंने भी अश्वका स्वागत किया। शत्रुघ्नका सत्कार करके वे कहते थे—'यह राज्य तथा पुत्र, पशु, धन-वैभव-सहित हम भी आपके ही हैं। हम सम्राट् श्रीरामके सेवक हैं। हमें सेवाका अवसर देकर अनुगृहीत करें।'

अयोध्यासे चला अश्व इस प्रकार अबाध असम प्रदेश तक चलता गया। शत्रुघ्नको सर्वत्र स्वागत-सत्कार मिलता गया। वे अहिच्छत्रा नगरीके समीप पहुँचे। उस नगरीकी शोभा अद्भुत थी। अत्यन्त उच्च एवं भव्य था उस नगरीके मध्य देवी कामाख्याका मन्दिर। मन्त्री सुमतिसे परिचय प्राप्त करके शत्रुघ्नने मन्दिरमें जाकर देवीका दर्शन-पूजन किया। मन्त्री सुमतिकुमार शत्रुघ्नको वहाँके नरेश सुमदका पूर्ववृत्त सुनाने लगे—'सम्मिलित शत्रुसेनासे पराभूत होकर राजा सुमद हेमकूटके शिखरपर दीर्घकाल तक तप करते रहें। उन्हें विचलित करनेमें सुराङ्गनाएँ और स्वयं मन्मथ असफल हो गया। भगवती दुर्गाने उन्हें दर्शन दिया। देवीके वात्सल्य-भाजन ये नरेश सुरासुर सबसे अजेय, परमभक्त एवं धर्मात्मा हैं।'

राजा सुमदको भी अश्वमेधीय अश्वके नगरमें आनेका समाचार मिला। उन्होंने सेवकोंसे पता लगाया और श्रीरामका अश्व है, यह सुनते ही हर्ष-विभोर हो गये—'अब मेरा जन्म सफल हुआ' अब मैं कृतकृत्य हुआ। जगदम्बाने प्रथम दर्शन देकर ही कहा था कि यह अश्व आवेगा, तब सम्पूर्ण राज्य इसके रक्षक श्रीरामके अनुजको अर्पित करके मैं उन परात्पर पुरुषके सेवकोंमें सम्मिलित होनेका अधिकारी हो जाऊँगा।'

मन्त्रियों, पुरोहितों, पुत्रादिके साथ राजा सुमद स्वागत करने बढ़े। उन्होंने महागजपर शत्रुघ्न तथा पुष्कलको बठाया और स्वयं उनपर

छत्र लगाकर बैठे उनके पीछे। नगरमें समस्त सेनाको ले आये। सबका स्वागत-सत्कार किया। सुमदने तो निश्चय कर ही लिया था कि वे शत्रुघ्न-कुमारकी सेवामें साथ अवश्य जायँगे। उन्हें समझाया नहीं जा सकता था। वे निर्मल-हृदय, परम भक्त; किंतु इस प्रकार किसीका राज्य भी तो शत्रुघ्न स्वीकार नहीं कर सकते थे।

'राजन्! मैंने आपका राज्य-कोष सब स्वीकार कर लिया। अब आप मेरा आदेश मान लें।' कुमार शत्रुघ्नने सुमदसे कहा—'आपके राजकुमार यहाँके प्रशासनका दायित्व ग्रहण करें। आप अपने पुरोहितोंको बुलाकर उनका अभिषेक करा दें।'

राजकुमारका राज्याभिषेक हो गया। शासनका भार उन्हें देकर राजा सुमद शत्रुघ्नके साथ अश्वरक्षक बनकर चल पड़े। यह दल परस्पर धर्म-चर्चा, भगवच्चर्चा करता आगे बढ़ा। क्योंकि अश्व मुड़ पड़ा था, उसके पीछे यह सेना नीलाचल (श्रीजगन्नाथ पुरी) की ओर चल पड़ी।

पुरी पहुँचकर सभीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कुमार शत्रुघ्नने सबके साथ समुद्र-स्नान किया और श्रीजगन्नाथके दर्शन किये। प्रचुर दान मिला ब्राह्मणोंको।*

*वर्त्तमान जगन्नाथ पुरी द्वापरान्तके पश्चात् प्रतिष्ठित हुई है; किंतु पद्मपुराण पातालखण्डके इस वर्णनसे सिद्ध है कि पूर्वकल्पमें भी यह क्षेत्र इसी प्रकार था।

सुबाहु-शापोद्धार

अश्व नीलाचल पहुँचनेसे पूर्व मार्गमें च्यवनाश्रम रुका था। कुमार शत्रुघ्नने महर्षि च्यवनकी वन्दना की। वे भृगुनन्दन श्रीरामके अनन्य भक्त मर्यादापुरुषोत्तमका स्तवन एवं उनके माहात्म्यका वर्णन करने लगे। शत्रुघ्नने प्रार्थना की—'आप अयोध्या पधारकर हमारे नगरको अपनी चरण-रजसे पवित्र करें।'

'अच्छा!' ऋषि-मुनियोंको यात्राके लिए प्रस्तुत होनेमें क्या विलम्ब। महर्षिने कमण्डलु उठाया, मृगचर्म समेटकर कक्षमें दबाया, पत्नीसे बोले—'भद्रे! चलो, अयोध्या चलें।'

'आप आज्ञा दें तो मैं ऋषिको पहुचा आऊँ।' हनुमानजीने कुमार शत्रुघ्नसे पूछा। क्योंकि महर्षि च्यवन पैदल चल पड़े थे। उन्होंने यह भी अपेक्षा नहीं की कि शत्रुघ्न कोई वाहनकी व्यवस्था करते। पवन-पुत्रको सहर्ष अनुमति मिली। उन्होंने ऋषिको सपत्नीक अपने कन्धोंपर बैठाया और अयोध्या कूदकर पहुँचे। यहां से यह क्रम ही बन गया कि जो ऋषि-मुनि मार्गमें मिलते, अयोध्या जाना चाहते, उन्हें हनुमानजी पहुँचा आया करते। अयोध्यामें श्रीराघवेन्द्र उनका स्वागत तो करते ही थे।

अश्व नीलाचलमें अधिक रुका नहीं। अश्वमेधीय अश्व तो यज्ञ पुरुषसे आविष्ट होता है। वह कहीं किसीपर मार्गमें अनुग्रह करनेको भले रुके, अन्यथा वह सीधे वहाँ जाता है, जहाँ उसके पकड़े जानेकी सम्भावना होती है। राजा सुमदके यहाँ वह अनुग्रह करने पहुँचा था। अब नीलाचल से चला तो चक्राङ्का नगरी पहुँचा था।

'मेरे पिताजीके भूमण्डलपर विद्यमान रहते, यह इतना अहंकार किसने प्रदर्शित करनेका साहस किया है?' चक्राङ्कापुरीके नरेश सुबाहुके राजकुमार दमन आखेट करने निकले थे। अश्व उनके सम्मुख जाकर खड़ा हो गया था। उसके सिरपर बँधा स्वर्ण पट्ट पढ़कर राजकुमारके अधर फड़कने लगे—'इस उद्दण्डताका परिणाम उसे भोगना चाहिये। हम शान्त

हैं, इसका यह अर्थ तो नहीं है कि हम दुर्बल या भीरु हैं। कोई हमें चुनौती देनेका साहस कैसे करता है ?'

राजकुमारने सेवकोंको आदेश दिया कि वे उस अश्वको पकड़कर नगरमें ले जायँ। अपने सेनापतिको शीघ्र सैन्य-सज्जित करके आनेको कहला दिया। अश्व वेगपूर्वक दौड़ता आया था। जब तक उसके पीछे आने वाले अंगरक्षक आये, कुमार दमनकी सुसज्ज सेना आ पहुँची थी और उसने व्यूह बना लिया था।

'अश्व कहाँ गया ? किसने उसे पकड़नेका दुस्साहस किया है ?' पहिली बार अश्व पकड़ा गया था। अभी तक उसका सर्वत्र स्वागत होता आया था। अतः उसके रक्षक सैनिक आवेशमें आ गये।

'मैंने पकड़ा है तुम्हारा अश्व।' धनुष चढ़ाये राजकुमार दमनने उसी सतेज स्वरमें उत्तर दिया—'तुम लोग अपने साथ आये सेनापति, स्वामीसे कह दो कि उनमें पौरुष हो तो अश्वको युद्ध करके प्राप्त करें।

महारथी राजा प्रतापाग्रच अश्व-रक्षक अग्रचारी दलके नायक थे। राजकुमार दमनकी बात सैनिकोंने जाकर उनसे कही तो वे अपने चार अश्वोंसे जुते स्वर्ण-रथपर बैठे क्रोधमें भरे अग्रचारी पूरी सेनाके साथ युद्ध करने आ पहुँचे। दमनको देखकर उन्होंने डाँटा-- 'तू अभी बालक है। बाल-चापल्य-वश तूने, अश्व पकड़ा है। उसे छोड़ दे और नगरमें जाकर बालकोंके साथ खेल।

'महाराज ! बालकोंका मन बहुधा बड़ोंके साथ भी खेल लेनेको उत्सुक होता है।' दमनने शालीनता-सहित उत्तर दिया—'क्षत्रिय बालकोंकी प्रिय क्रीड़ा युद्ध है। आप धनुष उठाइये। युद्धके बिना अश्व पानेका और कोई मार्ग आपके समीप नहीं है।'

तुमुल युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों दलोंके अश्व, गज मरने लगे। रथ टूटने लगे। सैनिकोंके कर, पद, मस्तक कटने लगे। रक्तका तर्पण पृथ्वी प्राप्त करने लगी। हुंकार, चीत्कारसे गगन गूँजने लगा। अन्तमें कुमार दमनके वाणसे आहत राजा प्रतापाग्रच मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। सारथि उन्हें उठाकर रथमें डालकर युद्धभूमिसे बाहर ले गया।

सैनिकोंने यह समाचार कुमार शत्रुघ्न तक पहुँचाया। सुनकर शत्रुघ्न सेनाके साथ युद्ध-स्थलमें आये। वहाँ तो गज, अश्व तथा शूरोंके

शवसे मेदिनी पटी पड़ी थी। इसी समय भरतकुमार पुष्कलने प्रार्थना की —'पितृव्य ! प्रतिपक्षमें एक बालक राजकुमार है। उससे युद्ध करना आपके योग्य नहीं है। आप मुझे इस सामान्य कार्यको सम्पन्न करनेकी अनुमति दें।'

शत्रुघ्नने अनुमति दे दी। पर्याप्त बड़ी सेना पुष्कलके साथ कर दी। इस बारका युद्ध समबल, समवय राजकुमारोंमें था। दोनों दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता थे। दोनोंने उनका प्रयोग किया और प्रतिपक्षके दिव्यास्त्रको प्रत्यास्त्र से प्रशमित किया आग्नेय, वारुणास्त्र, वायव्य, पार्वतास्त्र, वज्रास्त्र प्रभृतिके प्रयोग दोनों करते गये। अन्तमें पुष्कलके वाणका आघात हृदयपर लगनेसे राजकुमार दमन मूर्छित हो गया। सारथि उसके रथको एक ओर हटा ले गया।

रक्तमें लथपथ आहत सैनिक भागते नगरमें पहुँचे। उन्होंने राजा सुबाहुको समाचार दिया—'राजन् ! आपके पुत्रने अयोध्या-नरेशके अश्वमेधीय अश्वको पकड़वा लिया युद्ध अनिवार्य था। राजकुमारने बड़ा विकट युद्ध किया। अश्व-रक्षकोंके अग्रणीको भी आहत कर दिया; किन्तु यह सुनकर अश्व-रक्षक सेनाके प्रधान सेनापति अयोध्या-नरेशके छोटे भाई शत्रुघ्न आ पहुँचे। शत्रुघ्नके भ्रातृपुत्र पुष्कलके साथ युद्धमें आपके पुत्र आहत होकर मूर्छित हो गये हैं।'

सैनिकोंसे यह समाचार पाकर राजा सुबाहु अपने रथपर बैठे। उनके गदायुद्ध-निपुण छोटे भाई सुकेतु तथा राजकुमार चित्राङ्ग एवं विचित्र भी युद्ध सज्ज हुए। सम्पूर्ण चतुरंगिणी सेनाके साथ राजा सुबाहु युद्ध-भूमिमें आये। उनकी सेनाको आते देखकर शत्रुघ्नकी सेना भी युद्धोद्यत हो गयी। सुबाहुने पहिले अपने पुत्र दमनको देखा। राजकुमार दमन मुख-पर जलके छींटे पड़नेसे सचेत हो गया। पिताने उसके पौरुष एवं प्रयत्नकी प्रशंसा की। राजा सुबाहुने तत्काल सेनाको क्रौञ्च-व्यूह बनानेका आदेश दिया।

'कुमार ! इस राज्यके सभी लोग विष्णुभक्त, धर्मात्मा, परस्त्रीको माता माननेवाले हैं।' मन्त्री सुमतिने शत्रुघ्नको सावधान किया—'ये राजा सुबाहु और इनकी प्रजा संसारके सम्बन्धकी चर्चा न सुनती है, न करती है। ये लोग सदा हरि-कथामें ही सुख लेते हैं। विष्णुभक्ति, धर्माचरण तथा विप्रोंके सेवाव्रती होनेसे ये अतुलनीय पराक्रमी हो गये हैं।'

शत्रुघ्नकुमारने मन्त्रीकी बात सुनकर अपने दलको पुकारा—' प्रतिपक्षके क्रौञ्च-व्यूहका भेदन करनेमें समर्थ शूर मेरे हाथसे पानका वीड़ा ग्रहण करे।'

महाराज जनकके युवराज श्रीलक्ष्मीनिधिने आगे आकर पानका पा बीड़ा उठा लिया। कुमार शत्रुघ्नके आदेशसे महारथी रिपुताप, नीलरत्न, उग्रास्य, वीरमर्दन प्रभृति नरेश लक्ष्मीनिधिके साथ व्यूह-भेद न करने चले।

व्यूहके मुखभागमें राजा सुबाहुके छोटे भाई सुकेतु थे, अतः लक्ष्मीनिधिका द्वन्द्व युद्ध उनसे होना ही था। सुकेतु युद्धके आरम्भमें ही लक्ष्मीनिधिके आघातसे आहत हो गये। उनके रथके चारो अश्व तथा सारथि मारे गये। धनुष कट जानेपर सुकेतु भारी गदा उठाकर पैदल आगे बढ़े। लक्ष्मीनिधिने भी अपनी गदा उठायी और रथसे कूद पड़े। गदा-युद्ध देर तक चलता रहा; किन्तु जब लक्ष्मीनिधिकी गदा सुकेतुने पकड़ ली तब लक्ष्मीनिधि बाहु युद्ध करने उनसे लिपट गये। इस मल्लयुद्धके आघात-प्रतिघातमें दोनों वीर एक साथ मूर्छित होकर गिरे। सेनाओंमें दोनोंकी प्रशंसा, दोनोंका जयनाद गूंजने लगा।

क्रौञ्च व्यूहके कण्ठ भागमें राजा सुबाहुके दूसरे पुत्र चित्राङ्ग थे, सुकेतुके गिरनेसे व्यूहका मुख भाग भंग हुआ तो युद्धका भार उनपर आ पड़ा। चित्राङ्गकी विषम वाणवर्षासे अपने पक्षका संहार होता देखकर कुमार पुष्कल आगे आ गये। अब दिव्यास्त्रोंका प्रयोग प्रारम्भ हो गया। पुष्कलने भ्रामकास्त्रका प्रयोग करके चित्राङ्गका रथ आकाशमें अश्वोंके साथ उड़ा दिया। एक मुहूर्ततक व्योममें अश्वोंके साथ घूमनेके पश्चात् वह रथ कठिनाईसे भूमिपर आया किन्तु भूमिपर आते ही चित्राङ्गने भी पुष्कलका रथ इसी प्रकार उड़ा दिया।

पुष्कलका रथ भी पृथ्वीपर कठिनाईसे आया अब उन्होंने चित्राङ्गका रथ नष्ट कर दिया। उसका सारथि तथा अश्व मार दिये। चित्राङ्ग रथ परिवर्तित करता रहा; किन्तु उसके दस रथ पुष्कलने नष्ट कर दिये। चित्राङ्गने भल्ल-प्रहार करके पुष्कलको आहत किया तो क्रोधमें आकर पुष्कलने चित्राङ्गके वधकी प्रतिज्ञा कर ली। श्रीरघुनाथके पादपङ्कजोंके विश्वासपर की गयी प्रतिज्ञाको पूर्ण होना ही था। यद्यपि पुष्कलके वाणको

चित्राङ्गने मध्यसे काट दिया ; किन्तु वाणाग्रने उसका मस्तक उड़ा दिया धड़से।

राजा सुबाहु पुत्रके मारे जानेसे शोकार्त हो उठे ; किन्तु उनके दोनों पुत्र दमन तथा विचित्रने आकर उन्हें समझाया कि युद्धमें मरण तो शूरका सौभाग्य है। वे दोनों पिताकी आज्ञा लेकर युद्ध करने शत्रुदलमें प्रविष्ट हो गये। दमनने रिपुतापसे और विचित्रने नीलरत्नसे युद्ध-प्रारम्भ किया। स्वयं राजा सुबाहु शत्रुघ्नकुमारके साथ युद्ध करने आगे बढ़े।

राजा सुबाहुका व्यूह भंग हो चुका था। वे पुत्र-वधके कारण क्रोधमें भरे अजस्र वाणवृष्टि कर रहे थे। कुमार शत्रुघ्नके पार्श्वरक्षक पवनकुमार यह देखकर क्रुद्ध हो उठे। सुबाहुने हनुमानजीको लक्ष्य बनाया ; किन्तु हनुमानने उनके वाणोंको हाथसे पकड़कर तोड़ फेंका। राजा सुबाहुके रथके अपनी पूँछमें लपेटकर खींच ले चले। इस अवस्थामें भी सुबाहु विचलित नहीं हुए। वे हनुमानकी पूँछ, मुख बाहुपर तीक्ष्ण वाण-प्रहार करते रहे। अब हनुमानको क्रोध आ गया। उछलकर उन्होंने सुबाहुके वक्षपर अपने दक्षिण चरणसे प्रहार किया।

पवनपुत्रके पादाघातसे पीड़ित सुबाहु मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके मुखसे उष्ण शोणित वमन होने लगा। वेगपूर्वक श्वास लेते हुए वे कांप रहे थे। यह तो सुबाहुकी वाह्य दशा थी ; किन्तु आञ्जनेयके चरण-प्रहारने उनके अन्तरको भी उद्वेलित कर दिया था। मूर्छामें ही स्वप्न-के समान उनको श्रीरघुनाथके दर्शन हुए। अयोध्यामें सरयूतटपर बनी त्रिलोक-मनोहर यज्ञशाला मूर्तिमान हो गयी। मानस-नेत्रोंके सम्मुख ऐणेयाजिनोत्तरीय, मृगश्रृंगकर, नवदूर्वादलश्याम श्रीरामका श्रीविग्रह प्रकट हो गया। देवर्षि, महर्षि, गन्धर्वगण तथा मूर्तिमान वेद उन परम पुरुषका स्तवन करते दीखे।

सुबाहु धर्मात्मा थे। विष्णुभक्त थे। निर्मल हृदय थे। 'यह युद्ध भी उनका अहंकार नहीं था, क्षत्रिय-कर्तव्य था। केवल एक प्रतिबन्ध था, उन्हें अब तक किसी महापुरुषकी पदरज नहीं प्राप्त थी। पवनपुत्रके पद-प्रहारसे परिपूतवे भगवद्दर्शनके अधिकारी हो गये। श्रीरघुनाथने उन्हें दर्शन दिया मूर्छामें ही।

मूर्छा दूर होते ही सुबाहु उठे। दोनों पुत्रोंको पुकारा—' युद्ध बन्द करो। दमन ! कितना अनर्थ हुआ कि तुमने साक्षात् श्रीहरिके यज्ञीय

अश्वको अवरुद्ध किया। श्रीराम तो कार्य-कारणातीत साक्षात् परब्रह्म हैं। अभी इस तत्त्वको मैं समझ सका हूँ।'

'मैं तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे तीर्थाटन कर रहा था।' सुबाहुने पुत्रोंको अपना पूर्ववृत्त सुनाया—'अनेक ऋषि-मुनियोंका सत्सङ्ग करते असिताङ्ग मुनिके समीप पहुँचा। उन परम दयालुने मुझे समझाया कि श्रीराम ही साक्षात् परमब्रह्म हैं; किन्तु अपनी मूर्खतावश मैंने उन मुनिका उपहास किया। मैंने श्रीरामको सामान्य मनुष्य कहा। इसपर क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दे दिया—'तू मेरी अवज्ञा करता है और परात्पर पुरुषको सामान्य मानव कहता है, अतः तत्त्व-ज्ञान-शून्य होकर उदरपूर्तिमें ही लगा रहा।'

'मैंने व्याकुल होकर मुनिके चरण पकड़े, उनसे प्रार्थना की। वे सदय हुए।' सुबाहुने सुनाया—'उन्होंने शापानुग्रह किया कि श्रीरामचन्द्र-जीके अश्वमेधयज्ञमें दीक्षित होनेपर उनका अश्व तुम्हारे राज्यमें आवेगा। उसे अवरुद्ध करनेपर युद्ध होगा। तब श्रीपवनपुत्रके पाद-प्रहार-से तुम्हें श्रीरामके स्वरूपका ज्ञान होगा।'

'उन महामुनिका आशीर्वाद आज सत्य हुआ। अतः अब तुम लोग उन मेरे परमाराध्यके अश्वको ले आओ।' सुबाहुने अश्रुमोचन करते कहा—'मैं उन अयोध्यानाथके अनुजके चरण पकड़कर क्षमा माँगूंगा। धन, रत्न, कोष तथा राज्य भी उन्हें अर्पण कर दूँगा। अब अयोध्या जाकर यज्ञके तथा उन पुरुषोत्तमके दर्शन करूँगा।'

पितृ-भक्त पुत्रोंने पिताको आश्वस्त किया—'हम तो आपके श्रीचरणोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। हम सभी आपके ही किंकर हैं, अतः राज्यके साथ हमें भी अर्पित कर दीजिये।'

अश्व वहाँ लाया गया। राजा सुबाहु पुत्र-पौत्र, मन्त्री आदिके साथ उसे लेकर पैदल ही शत्रुघ्नके समीप गये। उन्होंने पृथ्वीमें पड़कर शत्रुघ्नको प्रणाम किया तो दौड़कर शत्रुघ्नकुमारने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया। राजा सुबाहुने शत्रुघ्नका पूजन किया। प्रार्थना की—'मेरा पुत्र दमन बालक है, अज्ञ है, उसके अपराधको क्षमा कर दें। मेरा यह समृद्ध राज्य, समस्त सेना श्रीरामकी सेवामें समर्पित है। ये मेरे पुत्र और मैं भी

आपका सेवक हूँ। हम आपकी आज्ञाका पालन करेंगे। इस सबको स्वीकार करके हमें कृतार्थ करें।'

राजा सुबाहु श्रीराम-दर्शनको उत्सुक थे। हनुमानजीको अपना उद्धारक मानकर उनकी चरण-वन्दना की उन्होंने। कुमार शत्रुघ्नके आदेशसे अपने पुत्र दमनका राज्याभिषेक कर दिया। पुष्कलके हाथसे मारे गये अपने पुत्र चित्राङ्गकी अन्त्येष्टि की। इस क्रियाके पश्चात् राजा सुबाहु सेनाके साथ अश्व-रक्षकोंमें सम्मिलित हो गये।

यज्ञीय अश्व यहाँसे पुनः पूर्व चला और भारतकी वामावर्त परिक्रमा करता आगे बढ़ा। उसकी सर्वत्र अर्चा, स्वागत ही हो रहा था। नरपति-गण शत्रुघ्नका ससैन्य सत्कार करना अपना सौभाग्य मानते थे।
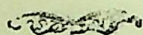
सत्यवानका सर्वस्व समर्पण

अश्व स्वेच्छापूर्वक चलता हुआ तेजःपुर पहुँचा था। शतशः देव-मन्दिरोंसे सुशोभित इस नगरमें आकर अश्व अत्यन्त प्रसन्न जान पड़ा। वह बार-बार हिनहिनाता था और उछलता-कूदता नृत्य-सा करता था। भगवती भागीरथीके तटपर बसे इस नगरमें पहुँचकर कुमार शत्रुघ्न तथा उनके साथके सभी लोगोंके मन अचानक शान्त, प्रसन्न हो गये। सुरसरिके तटपर असंख्य ऋषि-महर्षियोंके आश्रम, नगरके भवनोंमें-से प्रायः प्रत्येकसे उठता अग्निहोत्रका सुरभित धूम—लगता था कि जैसे सब लोग फिर अयोध्या ही पहुँच गये हों।

'मन्त्रिवर! यह किस पावन पुरुषके द्वारा पालित नगर है?' कुमार शत्रुघ्नने मन्त्रीसे पूछा—'इतना समृद्ध, सात्विक, शान्तिदायी नगर अयोध्याके अतिरिक्त पृथ्वीपर दूसरा भी है, हम तो यह समझते ही नहीं थे। अवश्य यहाँके शासक धर्मात्मा तथा कोई महाभागवत होने चाहिये।'

'आपका अनुमान ठीक ही है।' मन्त्री सुमतिने बतलाया—'यहाँ-के नरपति अपने अयोध्यानाथके अनन्य चरणानुरागी, जीवन्मुक्त, श्रुति-सेतुपालक, यज्ञानुष्ठानरत सत्यवानजी हैं। हमारा देवात्मा अश्व अवश्य उनपर अनुग्रह करने ही यहाँ आया है।'

सुमति मन्त्रीने बतलाया कि यहाँके नरपति पहिले महाराज ऋतम्भर थे। महर्षि जाबालिके उपदेशसे उन्होंने सन्तान-प्राप्तिके लिए निष्ठापूर्वक गो-पूजन किया। गाय तो सर्वदेवमयी हैं। राजा ऋतम्भरने गोमूत्र यावक व्रत लेकर गो-पूजन प्रारम्भ किया था। गोचारण, गौ जल पी ले तब जल-ग्रहण, गौ बैठे तब बैठना, रात्रिमें गोशालामें दीपक रखकर वहीं भूमि-शयन करना, इस नैष्ठिक गोसेवासे गौकी प्रसन्नता प्राप्त हुई। सुप्रसन्ना सुरभिसे उन्होंने वरदान ही माँगा कि—'मुझे सुन्दर, सुशील, पितृ-सेवक, धर्मात्मा, श्रीरामभक्त पुत्र हो।'

'यहाँके वर्त्तमान नरेश सत्यवानकी उत्पत्ति गोमाताके उस वरदान-के फलस्वरूप हुई।' मन्त्री सुमतिने कहा—'राजा ऋतम्भरा ऐसा पुत्र पाकर कृतार्थ हो गये। युवा होनेपर पुत्रको राज्य देकर वे वनमें जप करने चले गये। सत्यवानका समय भगवन्नाम-स्मरण, देव-पूजन, भगवत्कथा तथा यज्ञादि धर्म-कार्योंमें ही व्यतीत होता है। इन पुण्यात्मा राजाके प्रभावसे सम्पूर्ण प्रजा हरिभक्त, धर्मात्मा हो गयी है। इस ओरके ऋषि-मुनि यहीं आश्रम बनाकर रहने लगे हैं। इस राज्यमें आठ वर्षकी आयुसे अस्सी वर्ष तकके सब मनुष्य एकादशी व्रत करते हैं। सबको गो-सेवा एवं तुलसी-सेवा प्रिय हैं।

'यदि यहाँ युद्ध हुआ?' शत्रुघ्नकी आशङ्का अकारण नहीं थी। अश्व यहाँ अपने आप आया था। अनेक भगवद्भक्त अपने क्षत्रिय धर्मको महत्त्व दिया करते हैं। अभी सुबाहुसे ही युद्ध हो चुका था जो धर्मात्मा थे, भगवद्भक्त थे। यहाँ अनन्य भागवतसे काम पड़ा है—'मेरे अग्रज अपना-पराया कभी देखते नहीं। उन्हें केवल अपना चरणाश्रित सूझता है। सत्यवान जैसे महाभागवतसे संग्राममें विजय पाना अशक्य भी हो सकता है; क्योंकि श्रीअयोध्यानाथकी शक्ति एवं आशीर्वादके वे मुझसे कहीं अधिक अधिकारी हैं। सबको सावधान कर दो कि कुछ भी हो, कोई भी परिस्थिति आ जाय, प्राण-सङ्कटमें भी यहाँ किसीके द्वारा मन, वाणी, कर्मसे किसीकी अवज्ञा नहीं होनी चाहिये।'

'आपका निर्णय आपके ही योग्य है।' सुमतिने हँसकर कहा—'किंतु मैं यहाँ पहिले भी आ चुका हूँ। आप जानते ही हैं कि मुझे तीर्थाटन और उसमें भी अपने आराध्यके अनुरागियोंका सान्निध्य प्राप्त करनेका व्यसन है। मैं राजा सत्यवानका स्वभाव जानता हूँ। ये महाभाव तभी रोष करते हैं, जब कोई किसी मर्यादाका उल्लंघन करे। श्रुति-शास्त्र, सुर-विप्रकी अवज्ञा तथा भगवन्निन्दा इन्हें असह्य है। अन्यथा ये अत्यन्त शान्त स्वभाव हैं। युद्ध अप्रिय है इन्हें। मुझे तो विश्वास है कि अश्वके आगमनका समाचार पाकर वे अविलम्ब सर्वस्व समर्पण करने आपके समीप चल देंगे। हमें उनका सत्कार करनेको प्रस्तुत रहना चाहिये।

मन्त्री सुमतिका अनुमान सत्य निकला। अश्वपर जसे ही लोगोंकी दृष्टि पड़ी, उसके भालपर बँधे पट्टको पढ़ते ही नगर गूंजने लगा—

'श्रीरामचन्द्र भगवानकी जय ! मर्यादा-पुरुषोत्तमकी जय ! कुमार शत्रुघ्न-की जय !'

लोगोंने भूमिष्ठ होकर अश्वको प्रणिपात किया। उसका पूजन, नीराजन चलने लगा। पूरे नगरमें लोग दौड़ने लगे। एक दूसरेको समाचार देने लगे। ऐसा उल्लास जैसे उनके मध्य स्वयं श्रीरघुनाथ आ गये हों। छोटे बालक तक अश्वके पैरोंमें पुष्पाञ्जलि देने दौड़े। अश्वके सम्मुख हरित तृण तथा सुस्वादु पदार्थोंका ढेर उपस्थित हो गया। विप्रोंने वेद-मन्त्रोंसे उसका अभिषेक तथा स्तवन प्रारम्भ कर दिया था। अश्व-रक्षक दूरसे चकित देख रहे थे कि अश्व इतना प्रसन्न है, मानो बहुत दिनोंके पश्चात् उसे अपने परिचितोंके मध्य पहुँचनेका अवसर मिला है। वह लोगोंको सूँघता है, कूदता है, हर्षसे हिनहिनाता है।

'महाराज ! आपके नगरमें अयोध्याधीश मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम-का अश्वमेधीय अश्व आया है।' एक बड़ी भीड़ लगभग साथ ही अपने प्रिय पालक राजा सत्यवानके समीप पहुँची। लोग दौड़ते आये थे। हर्ष-विह्वल थे— 'उन सर्वेश्वरके अनुरूप ही है उनका भुवन-मनोहर अश्व। अश्व-रक्षक सेनाके नायक होकर श्रीरामके सबसे छोटे भाई कुमार शत्रुघ्न आये हैं आपके नगरमें।'

'जो मेरे सर्वस्व हैं, जिनका स्मरण ही मेरा जीवन है, उन मेरे स्वामी श्रीरामका अश्व मेरे यहाँ आया है ? उनके अनुजने यहाँ आनेकी अनुकम्पा की है ?' सुनते ही सत्यवानके नेत्रोंसे अविरल अश्रु-प्रवाह चल पड़ा। रोम-रोम पुलकित हो गया। स्वेदसे शरीर स्नात हो उठा। अङ्ग काँपने लगा। अत्यन्त उत्कण्ठा कि उठकर दौड़ पड़ें ; किंतु देह तो क्या पलक तक जैसे स्तब्ध, गतिहीन हो गये। नरेश पाषाणकी मूर्त्तिके समान बन गये। विलम्ब लगा इस स्तब्धीभावसे छूटकर सचेष्ट होनेमें।

'अश्वके साथ तो श्रीरघुनाथके परम भक्त पवनपुत्र भी होंगे।' सत्यवान उठे भी तो आनन्द-विह्वल नृत्य करने लगे। उच्च स्वरसे राम-नाम लेते कीर्त्तन करने लगे दोनों हाथ उठाकर। प्रजाके लोगोंके लिए अपने महाभागवत नरेशका यह रूप अपरिचित नहीं था। लोग भी राजा-के साथ हाथ उठाकर कीर्तन करते नृत्य करने लगे। सब प्रेम-विह्वल। सबको शरीरका ही स्मरण नहीं रहा।

'यहाँके वर्त्तमान नरेश सत्यवानकी उत्पत्ति गोमाताके उस वरदान-के फलस्वरूप हुई।' मन्त्री सुमतिने कहा—'राजा ऋतम्भरा ऐसा पुत्र पाकर कृतार्थ हो गये। युवा होनेपर पुत्रको राज्य देकर वे वनमें जप करने चले गये। सत्यवानका समय भगवन्नाम-स्मरण, देव-पूजन, भगवत्कथा तथा यज्ञादि धर्म-कार्योंमें ही व्यतीत होता है। इन पुण्यात्मा राजाके प्रभावसे सम्पूर्ण प्रजा हरिभक्त, धर्मात्मा हो गयी है। इस ओरके ऋषि-मुनि यहीं आश्रम बनाकर रहने लगे हैं। इस राज्यमें आठ वर्षकी आयुसे अस्सी वर्ष तकके सब मनुष्य एकादशी व्रत करते हैं। सबको गो-सेवा एवं तुलसी-सेवा प्रिय हैं।

'यदि यहाँ युद्ध हुआ?' शत्रुघ्नकी आशङ्का अकारण नहीं थी। अश्व यहाँ अपने आप आया था। अनेक भगवद्भक्त अपने क्षत्रिय धर्मको महत्त्व दिया करते हैं। अभी सुबाहुसे ही युद्ध हो चुका था जो धर्मात्मा थे, भगवद्भक्त थे। यहाँ अनन्य भागवतसे काम पड़ा है—'मेरे अग्रज अपना-पराया कभी देखते नहीं। उन्हें केवल अपना चरणाश्रित सूझता है। सत्यवान जैसे महाभागवतसे संग्राममें विजय पाना अशक्य भी हो सकता है; क्योंकि श्रीअयोध्यानाथकी शक्ति एवं आशीर्वादके वे मुझसे कहीं अधिक अधिकारी हैं। सबको सावधान कर दो कि कुछ भी हो, कोई भी परिस्थिति आ जाय, प्राण-सङ्कटमें भी यहाँ किसीके द्वारा मन, वाणी, कर्मसे किसीकी अवज्ञा नहीं होनी चाहिये।'

'आपका निर्णय आपके ही योग्य है।' सुमतिने हँसकर कहा—'किंतु मैं यहाँ पहिले भी आ चुका हूँ। आप जानते ही हैं कि मुझे तीर्थाटन और उसमें भी अपने आराध्यके अनुरागियोंका सान्निध्य प्राप्त करनेका व्यसन है। मैं राजा सत्यवानका स्वभाव जानता हूँ। ये महाभाव तभी रोष करते हैं, जब कोई किसी मर्यादाका उल्लंघन करे। श्रुति-शास्त्र, सुर-विप्रकी अवज्ञा तथा भगवन्निन्दा इन्हें असह्य है। अन्यथा ये अत्यन्त शान्त स्वभाव हैं। युद्ध अप्रिय है इन्हें। मुझे तो विश्वास है कि अश्वके आगमनका समाचार पाकर वे अविलम्ब सर्वस्व समर्पण करने आपके समीप चल देंगे। हमें उनका सत्कार करनेको प्रस्तुत रहना चाहिये।

मन्त्री सुमतिका अनुमान सत्य निकला। अश्वपर जसे ही लोगोंकी दृष्टि पड़ी, उसके भालपर बँधे पट्टको पढ़ते ही नगर गूंजने लगा—

'श्रीरामचन्द्र भगवानकी जय ! मर्यादा-पुरुषोत्तमकी जय ! कुमार शत्रुघ्न-की जय !'

लोगोंने भूमिष्ठ होकर अश्वको प्रणिपात किया। उसका पूजन, नीराजन चलने लगा। पूरे नगरमें लोग दौड़ने लगे। एक दूसरेको समाचार देने लगे। ऐसा उल्लास जैसे उनके मध्य स्वयं श्रीरघुनाथ आ गये हों। छोटे बालक तक अश्वके पैरोंमें पुष्पाञ्जलि देने दौड़े। अश्वके सम्मुख हरित तृण तथा सुस्वादु पदार्थोंका ढेर उपस्थित हो गया। विप्रोंने वेद-मन्त्रोंसे उसका अभिषेक तथा स्तवन प्रारम्भ कर दिया था। अश्व-रक्षक दूरसे चकित देख रहे थे कि अश्व इतना प्रसन्न है, मानो बहुत दिनोके पश्चात् उसे अपने परिचितोंके मध्य पहुँचनेका अवसर मिला है। वह लोगोंको सूँघता है, कूदता है, हर्षसे हिनहिनाता है।

'महाराज ! आपके नगरमें अयोध्याधीश मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम-का अश्वमेधीय अश्व आया है।' एक बड़ी भीड़ लगभग साथ ही अपने प्रिय पालक राजा सत्यवानके समीप पहुँची। लोग दौड़ते आये थे। हर्ष-विह्वल थे—'उन सर्वेश्वरके अनुरूप ही है उनका भुवन-मनोहर अश्व। अश्व-रक्षक सेनाके नायक होकर श्रीरामके सबसे छोटे भाई कुमार शत्रुघ्न आये हैं आपके नगरमें।'

'जो मेरे सर्वस्व हैं, जिनका स्मरण ही मेरा जीवन है, उन मेरे स्वामी श्रीरामका अश्व मेरे यहाँ आया है ? उनके अनुजने यहाँ आनेकी अनुकम्पा की है ?' सुनते ही सत्यवानके नेत्रोंसे अविरल अश्रु-प्रवाह चल पड़ा। रोम-रोम पुलकित हो गया। स्वेदसे शरीर स्नात हो उठा। अङ्ग काँपने लगा। अत्यन्त उत्कण्ठा कि उठकर दौड़ पड़ें; किंतु देह तो क्या पलक तक जैसे स्तब्ध, गतिहीन हो गये। नरेश पाषाणकी मूर्त्तिके समान बन गये। विलम्ब लगा इस स्तब्धीभावसे छूटकर सचेष्ट होनेमें।

'अश्वके साथ तो श्रीरघुनाथके परम भक्त पवनपुत्र भी होंगे।' सत्यवान उठे भी तो आनन्द-विह्वल नृत्य करने लगे। उच्च स्वरसे राम-नाम लेते कीर्त्तन करने लगे दोनों हाथ उठाकर। प्रजाके लोगोंके लिए अपने महाभागवत नरेशका यह रूप अपरिचित नहीं था। लोग भी राजा-के साथ हाथ उठाकर कीर्तन करते नृत्य करने लगे। सब प्रेम-विह्वल। सबको शरीरका ही स्मरण नहीं रहा।

'असंख्य भगवद्भक्त आये होंगे अश्वके साथ। मेरे स्वामीके स्वजन, उनके चरणानुरागी। आज यह नगर उन सबकी चरणरेणुसे पवित्र हो गया।' सत्यवानके अन्तरमें भावनाओंका प्रबल उद्रेक हो रहा है। वे जैसे थे, वैसे ही उठकर कीर्त्तन करते, नृत्य करते चल पड़े। उन्हें स्वयं पता नहीं कि वे कहाँ जा रहे हैं, तो अब आगतोंकी अभ्यर्थना, अर्घ्य आदि देनेका स्मरण किसे रहे।

मन्त्रियोंको राजगुरुने सावधान किया। उन्होंने शत्रुघ्नकुमारको अर्पित करनेके लिए बहुमूल्य उपहार साथ लिये। अन्ततः उनके नरेशको इतने सम्मानित अतिथिका दर्शन रिक्त हस्त तो नहीं करना चाहिये।

शत्रुघ्नकुमारने जयघोष सुना। हाथ उठाये कीर्त्तन करते आती बहुत बड़ी भक्ति-भावित लोगोंकी भीड़ अपनी ओर आती देखी। उसके मध्य राजा सत्यवानको पहिचान लेना कठिन नहीं था। कुमार उठे, आगे बढ़े। सहसा संकीर्त्तन बन्द हुआ। पूरे समूहने पृथ्वीमें पड़कर प्रणिपात किया।

'आज सेवकके सौभाग्यका उदय हुआ। आज स्वामीने इसे अपनानेका अनुग्रह किया।' शत्रुघ्न बार-बार प्रयत्न करके राजा सत्यवानको उठाते थे; किंतु सत्यवान उनके चरणोंको पकड़कर बैठ जाते थे। अपने अश्रुओंसे उन्होंने शत्रुघ्नके चरण प्रक्षालित कर दिये।

'तुम लोग यह सब क्यों ले आये?' राजा सत्यवानने अपने मंत्रियोंको उपहार देते देखकर कहा— 'यह राज्य, भूमि, कोष, भवन क्या सत्यवानका है कि वह उसमें-से उपहार अर्पित करेगा? यह सब जिनका है, उनके प्रतिनिधि ये आज स्वयं आ गये यहाँ। अब ये जानें और इनका राज्य जाने। सत्यवान अब इनके श्रीचरणोंको छोड़कर कहीं पृथक रहने वाला नहीं है।'

सर्वस्व-समर्पण राजा सुबाहुने भी किया था। वे भी शत्रुघ्नके साथ ही थे; किंतु उनका मस्तक झुक गया था। यह सहज समर्पण तो श्रीरघुनाथकी असीम अनुकम्पा हो तब कहीं अन्तरमें आता है।

कुमार शत्रुघ्नके अनुरोध करने, समझानेपर भी राजा सत्यवान पुनः मन्त्रियोंके साथ नगरमें नहीं गये। वे गये; किंतु इस प्रकार जैसे

शत्रुघ्नके सेवक हों और उनके साथ ही आये हों। सत्यवानके पुत्र राजकुमार रुक्मको सिंहासनपर शत्रुघ्नने ही बैठाकर अभिषेक किया।

मन्त्रियोंने, कुलगुरुने सेनाके साथ शत्रुघ्नकुमारका आतिथ्य किया। राजा सत्यवान तो मिलते ही जैसे इस नगरके राजा नहीं रह गये। उन्होंने सच्चे हृदयसे सर्वस्व अर्पित कर दिया था। उनके चित्तका दृढ़ भाव— 'अब नगर कोई अपना है कि हम आतिथ्य करेंगे। जो आये हैं, नगर उनका है। अपने स्थानमें आये हैं वे। वे स्वामी हैं। उनको आदेश करके सेवकोंसे सेवा लेनी चाहिये।'

सत्यवानने तब भी पत्नी-पुत्र एवं मन्त्रियोंसे कुछ नहीं कहा, जब वे शत्रुघ्नके साथ जाने लगे। कोई सेना, कोई सैनिक या सामग्री साथ जायगी या नहीं, इस ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। उनके पुत्रने जो उपहार, अश्व, गज, रत्न, सैनिक दिये, शत्रुघ्नने स्वीकार कर लिया। राजा सत्यवानने तो केवल अपना कवच, धनुष, त्रोण तथा रथ लिया और अश्व-रक्षकोंमें आकर सम्मिलित हो गये।

विद्युन्माली-वध

अचानक दिशाएँ अन्धकारमें डूब गयीं। जैसे पावसारम्भमें अथवा शरद ऋतुमें जब गगनमें बहुत छोटे मेघ-खण्ड हों, उनकी छाया पृथ्वीपर बढ़ती आती है और सहसा सूर्यका प्रकाश अन्तर्हित हो जाता है, वैसे ही अन्धकार बढ़ता आया। शत्रुघ्नकुमार और साथके लोग कुछ समझ सकें, इससे पहिले ही सब कुछ दीखना बन्द हो गया। मेघाच्छन्न अमानिशाके समान अन्धकार। अपना हाथ भी फैलानेपर न दीखे। दिनमें अचानक ऐसे अन्धकारके फैलनेसे पक्षी वृक्षोंपर चीत्कार करने लगे। अश्व, गज, रथ सबकी गति रुक गयी। पशुओंने भी व्याकुल शब्द करना प्रारम्भ किया।

मनुष्योंमें भी सब परस्पर अपने समीपस्थोंको पुकारने लगे। केवल यही उपाय रह गया था यह जाननेका कि दूसरे सकुशल हैं। क्योंकि कोई आघात किसी पर नहीं हो रहा था, कुमार शत्रुघ्नको भी यह सोचना कठिन हो गया कि वे क्या करें। वे किसी दिव्यास्त्रका प्रयोग कर सकते थे; किन्तु पहिले यह निश्चय होना आवश्यक था कि अन्धकारका कारण क्या है। किसी तपस्वीका प्रभाव, किसी देवताका कोप, किसी असुरकी माया, अथवा स्थानकी ही कोई विशेषता, अनेक कारण अन्धकारके सम्भव थे। अतः कारण जाने बिना प्रतिकार करना उचित नहीं था। कुछ देर प्रतीक्षा ही करनी थी सबको। वाहनोंकी गति स्वतः अवरुद्ध हो गयी थी। किसीको भी कष्ट नहीं हो रहा था, अतः प्रतीक्षा उचित थी।

जैसे अन्धकार बढ़ता आया था, वैसे ही दो घड़ीके पश्चात् दूर हो गया। ऐसा लगा मानो आकाशमें ही कोई बात हुई हो। कभी-कभी खग्रास सूर्य-ग्रहण होनेपर ऐसा अन्धकार होते सुना गया है। जब अन्धकार दूर हुआ, पक्षियोंका प्रसन्न कलरव सुनायी पड़ा। सबने सबसे पहिले वाहन देखे, आसपास दृष्टि डाली। कहीं कोई उत्पात, किसी हानिका कोई चिह्न नहीं था।

'अपना अश्व कहाँ है ?' सबसे पहिले कुमार पुष्कलका ध्यान इस ओर गया। क्षणभरमें सब चौंक गये। अब यह कहना नहीं रह गया कि किसी मायावीने अश्व-हरणके लिए ही मायासे इस अन्धकारको प्रकट किया था। अन्धकारके आवरणमें उसने अश्वका हरण किया। 'कौन है वह ? किसी दुर्बुद्धिने ऐसा साहस किया ? किसे यमराज अपना आखेट बनानेको उत्सुक हैं ?'

'वह एक राक्षस है।' सेनाके अग्रचर दलने आकर सबकी उलझन दूर कर दी। 'उसके साथ सहस्रों राक्षस हैं। अश्वको उसीने पकड़ा है। वह भागा नहीं, युद्धके लिए प्रस्तुत जान पड़ता है।'

राक्षस विद्युन्माली रावणका सखा था। पातालमें निवास करता था। दशग्रीव-वधका समाचार पाकर बहुत दुःखी हुआ था। उसे इसका भी क्षोभ था कि उसके मित्र रावणने समयपर उसे स्मरण नहीं किया। वह श्रीरामसे अपने मित्रके वधका प्रतिशोध तो लेना चाहता था ; किन्तु जानता था कि अयोध्यापर आक्रमण करके विजय-प्राप्तिकी कोई आशा नहीं है। उसे सबसे अधिक भय वशिष्ठके शापसे लगता था। वे रघुकुलगुरु कभी भी कुपित हो सकते थे।

'राम कभी तो अश्वमेध करेंगे।' विद्युन्माली प्रतीक्षा ही कर रहा था। उसके चर अयोध्याका समाचार उसे देते रहते थे। उसकी आशा सफल हुई। श्रीरामने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। अब विद्युन्मालीने अपनी योजना बनायी। वह चाहता था कि अश्व दुर्गम अरण्यमें आ जाय, तब वह उसका अपहरण करे। उसने अयोध्यासे दूर हिमालयके पद-प्रान्त-का अरण्य अपने उपयुक्त माना था।

विद्युन्माली अश्वको लेकर पाताल जा सकता था। अश्वको कहीं छिपा दे सकता था ; किन्तु यह सब उसकी योजनामें नहीं था। वह जानता था कि अश्व-रक्षामें अयोध्याकी सेनाका चतुर्थांशसे अधिक नहीं होगा। वह इस सेनाको ध्वस्त कर दे, तब भी अयोध्याके सब महारथी एक साथ नहीं आवेंगे। श्रीराम अपने भाइयों, भ्रातृपुत्रों तथा सम्बन्धियोंको क्रमशः युद्ध करने भेजेंगे। स्वयं अन्तमें आवेंगे। तब आवेंगे जब दूसरे कोई सहायक उनके समीप नहीं रह जायँगे। विद्युन्माली समझता था कि इस प्रकार उसे अयोध्याकी विजय-वाहिनीको अनेक भाग करके विध्वस्त

करनका अवसर मिलेगा। वह अपनी पूरी सेनाके साथ है। प्रतिपक्ष विभक्त होकर आवेगा। अयोध्यामें सब ऋषि-मुनि यज्ञमें वरण किये गये होंगे। वे इस समय युद्ध-स्थलमें नहीं आ सकते।

अन्धकार विद्युन्मालीने इसलिए प्रकट किया था, जिससे अश्वको पहिले अधिकृत कर ले। अश्व-हरणके प्रयत्नमें ही युद्ध होने लगे, यह उसे स्वीकार नहीं था। अपने अविश्वासी हृदयके अनुसार सोचता था—'अश्व यदि उन लोगोंके समीप रहा तो युद्धमें मेरी क्षणिक मूर्छाको भी अपनी विजय मानकर वे यहींसे अश्वको अयोध्या भेज दे सकते हैं। अश्व अपने अधिकारमें रहेगा तो युद्ध करनेको वे विवश रहेंगे।'

विद्युन्मालीके लिए अश्व युद्धकी चुनौती था। वह अश्वको कहीं छिपाने नहीं ले गया। वहीं उसने अपनी सेनाके पृष्ठ भागमें अश्वको सुरक्षित किया। अश्व देखा जा सके प्रतिपक्षके द्वारा; किन्तु सहसा छीना न जा सके, इतना पर्याप्त था। उसे तो युद्ध करना ही था।

विद्युन्मालीके साथके राक्षस रथोंपर बैठे थे। उन रथोंमें अश्वतरी (खच्चर) अथवा गर्दभ जुते थे। स्वयं विद्युन्माली एक उत्तम विमानपर बैठा हुआ था। गज, अश्व, पदाति सेना उसके समीप नहीं थी। गगनसे विमान द्वारा और पृथ्वीपर रथोंसे तीव्र वेग आक्रमणके पक्षमें था वह।

'पर्वताकार, अञ्जन-कृष्ण, रक्त-श्मश्रुकेश, उग्रदंष्ट्रा, विकराल मुख राक्षसोंकी सेना है उस दुरात्मा राक्षसके साथ।' अग्रचर दलने शत्रुघ्न-कुमारको समाचार दिया। स्पष्ट था कि उस राक्षससे संग्राम करनेका साहस अग्रचर दल नहीं कर रहा था।

'किन-किनको इस राक्षसके संहारके लिए नियुक्त किया जाना चाहिये ?' शत्रुघ्नकुमारने अपने मन्त्रीसे पूछा।

'कुमार पुष्कल अस्त्र-शस्त्रोंके महान ज्ञाता हैं। युवक होनेसे उत्साही हैं। राक्षसोंसे युद्धका अनुभव करनेका उन्हें अवसर मिलना चाहिये।' स्पष्ट हो गया कि जैसे शत्रुघ्नकुमार राक्षसोंकी सेनाको इस योग्य नहीं मानते थे कि स्वयं पूरी सेनाके साथ उनसे युद्ध करना आवश्यक मानते, वैसे ही मन्त्री सुमतिको भी राक्षस अधिक ध्यान देने योग्य नहीं लगे। उन्होंने केवल इतना कहा—'राजकुमार लक्ष्मीनिधि तथा हनुमान-

कुछ प्रधान योद्धाओंके साथ पुष्कलके साथ युद्धमें जायँ, यह आदेश आप दे दें।'

मन्त्री सुमतिके इस सुझावने पुष्कलको उत्साहित किया। उन्होंने प्रतिज्ञा की—'मैं भले उस राक्षसको यमलोक न भेज सकूँ, किन्तु उसे मूर्च्छित अवश्य कर दूँगा। श्रीरघुनाथके चरण-कमलोंकी अनुकम्पासे मैं अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी कर दूँगा।'

'आप आज्ञा दीजिये, मैं उस राक्षसको अकेला ही सेना-सहित मार दूँगा।' श्रीहनुमानजी पुष्कलकी प्रतिज्ञा सुनकर आवेशमें आ गये—'यदि मैं ऐसा न कर सकूँ तो मैं श्रीराघवेन्द्रका सेवक नहीं।'

'मैं उस राक्षसको आज अपने बाणोंसे मार न दूँ तो पापका भागी बनूँ! मेरी अधोगति हो!' शत्रुघ्नने धनुष उठाकर प्रतिज्ञा की। वे पवन-कुमारका अत्यधिक आदर करते थे। उन्हें आञ्जनेयके आवेश-वचन असह्य हो गये। उनकी उपस्थितिमें केशरी-कुमारको प्रतिज्ञा क्यों करनी पड़े।

अब कुछ चुने लोगोंको युद्ध करने भेजनेका प्रश्न ही दब गया। शत्रुघ्नकुमारने पुष्कलको आज्ञा दी—'वत्स! तुम आगे चलो। तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेका अवसर मिलना चाहिये। मैं तुम्हारे पीछे शीघ्र आ रहा हूँ।

'राम कहाँ है? मेरे सखा रावणको मारकर वह अयोध्यामें छिपा बैठा है?' पुष्कलको देखते ही विद्युन्माली ने अट्टहास किया—'आज उसके भाइयोंको, उसे और तुम सबको मारकर मैं रामका रुधिर-पान करूँगा!'

'दुर्बुद्धि निशाचर! व्यर्थ बकवाद मत कर।' पुष्कलने प्रताड़ना की—अपना पराक्रम प्रकट कर। तेरी मृत्यु तुझे यहाँ ले आयी है। अपना धनुष उठा। मरणोन्मुख पिपीलिकाओंके पङ्ख प्रकट हो जाते हैं। वे ऐसे उत्साह से उड़ती हैं, जैसे पूरे व्योमको पार कर लेंगी।'

पुष्कलको अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेमें विलम्ब नहीं लगा। विद्युन्मालीने ही प्रथम प्रहार किया। उसने पूरी शक्तिसे शक्ति चलायी; किंतु पुष्कलने बाण मारकर उसके टुकड़े उड़ा दिये। पुष्कलका बाण

विद्युन्मालीका कवच फोड़कर उसके वक्षमें प्रविष्ट हो गया। रक्तकी धारा फूट पड़ी। राक्षस मूर्छित होकर विमानसे पृथ्वीपर गिर पड़ा।

विन्द्युन्मालीका छोटा भाई उग्रदंष्ट्र विमानमें अपने अग्रजके समीप ही बैठा था। शीघ्रतासे उसने बड़े भाईका शरीर उठाकर विमानमें रखा। अब पुष्कलके साथ उग्रदंष्ट्रका युद्ध आरम्भ हो गया। यद्यपि पुष्कलने प्रहार करके उग्रदंष्ट्रको भी व्याकुल कर दिया; किंतु उसने भयङ्कर त्रिशूल फेंका पुष्कलपर। उसका आघात वक्षपर लगनेसे पुष्कल मूर्छित होकर रथमें ही गिर गये।

पुष्कलके मूर्छित होते ही पवनकुमारको क्रोध आया। वे आकाशमें स्थित होकर गर्जना करने लगे। विमानमें बैठे राक्षस योद्धाओंको वे अपने नखोंसे विदीर्ण करने लगे। जो हनुमानकी पकड़में आया, उसका शरीर चिथड़ा हो गया। कितनोंको उनकी पूँछके प्रहारने यमलोक भेज दिया, अनेक उनके चरणोंसे कुचल गये। बहुतसे नखोंसे फाड़ दिये गये। विमान कामवेग था। उसे पूरे वेगसे उसका चालक भगा ले जाना चाहता था; किंतु वायुपुत्रके अतर्क्य वेगसे विमान परित्राण पाता? वे इस समय प्रलयंकर हो रहे थे। नन्हे पत्तेके समान विमान उनके प्रहारोंसे अस्त-व्यस्त वहीं चक्राकार घूमने लगा था।

उग्रदंष्ट्रने इस समय आञ्जनेयपर अपना प्रज्वलित त्रिशूल चलाया। पवनकुमारने उस ज्वालमालावृत त्रिशूलको मुख खोलकर अपने मुखमें ही ले लिया और दाँतोंसे चबाकर चूर-चूर कर दिया। अब उन अप्रमेय-पराक्रम पवनकुमारके थप्पड़ पड़ने लगे उग्रदंष्ट्रपर। राक्षसने दो थप्पड़में ही समझ लिया कि यदि तीसरा पड़ गया तो उसके प्राण प्रयाण कर जायँगे। मायासे अदृश्य होकर उसने माया प्रकट की।

अचानक पहिलेके समान अन्धकार छा गया सर्वत्र। अन्धकार तनिक हल्का हुआ तो नग्न, भयानकाकार, कुरूप दैत्य चारों ओर दौड़ते दीखने लगे। वे मुख फाड़े निगल लेनेको उद्यत दौड़े आते थे। यह देखकर सेनामें भगदड़ पड़ गयी। चारों ओर लोग 'त्राहि! त्राहि!' पुकारने लगे।

'डरो मत!' मेघ-गम्भीर घोष गूँजा शत्रुघ्नका। भागते सैनिकोंको आश्वासन मिला। शत्रुघ्न युद्धभूमिमें पहुँचे ही थे कि यह मायिक अन्धकार तया नग्न दैत्य दीखे। उन्होंने अपना धनुष चढ़ाया, श्रीरघुनाथका स्मरण

करके मायोच्छेदक दिव्यास्त्रका प्रयोग किया। जैसे मेघावरणको भेदन करके सहस्रांशु प्रकट हो जायँ, प्रकाश हो गया सर्वत्र। अन्धकारमें दीखने वाले मायिक दैत्योंका कहीं नाम नहीं था।

शत्रुघ्नके आने तथा अस्त्र-प्रयोगसे एक क्षणके लिए विमानमें बैठे राक्षसोंको परित्राण ही प्राप्त हुआ; क्योंकि पवनकुमारके प्रलयङ्कर प्रहार बन्द हो गये। वे शत्रुघ्नके समीप चले गये थे; किंतु राक्षसोंको प्रसन्न होने-का कारण नहीं था। शत्रुघ्नकुमारके स्वर्णपुंख सहस्रशः शर अनवरत विमानपर ही पड़ने प्रारम्भ हो गये थे। कुछ ही क्षणोंमें विमान टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके आरोहियोंको कूदकर ही अपने प्राण बचाने पड़े।

विद्युन्माली अबतक सचेत हो चुका था। विमानके टूटते ही उसने अपना धनुष चढ़ाया। उसके राक्षस सैनिक अपनी जन्मजात सिद्धिके कारण भी गगनचारी रह सकते थे। वे विमानके टूटनेपर पुनः आकाशमें जाकर प्रतिपक्षपर प्रहार करने लगे थे। विद्युन्मालीने वाण-वृष्टि करके शत्रुघ्नका रथ ढक दिया।

कुमार शत्रुघ्नने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया। उससे न केवल शत्रुके शर उड़ गये, व्योममें स्थित राक्षस वात्याचक्रमें पड़कर भूमिपर पटापट गिरने लगे। इस स्थितिके साथ सुलझनेके लिए राक्षसने रौद्रास्त्र उठाया। उसकी असह्य ज्वाला सबको दग्ध कर देती; किंतु शत्रुघ्नकुमारने नारायणास्त्रका प्रयोग किया उसी समय। इस अमोघास्त्रने रौद्रास्त्रको निरस्त कर दिया। सब राक्षसोंके वाण भस्म हो गये। अब विद्युन्माली त्रिशूल लेकर शत्रुघ्नपर टूटा। मूर्ख राक्षस! उसे पता नहीं था कि नारायणास्त्र प्रतिकारके प्रयत्नसे अधिक उग्र हो जाता है। त्रिशूल उठाने वाली भुजा मूलीके समान कट गयी। राक्षसका मस्तक कुण्डल-सहित कट-कर पृथ्वीपर कूदने लगा।

भाईका मस्तक कट गया, इससे क्रुद्ध उग्रदंष्ट्र राक्षस शूरोंको लेकर शत्रुघ्नपर टूटा। प्रज्वलित पावकपर पतङ्ग पावसमें टूटते हैं; किंतु परिणाम क्या होता है? शत्रुघ्नके क्षुरप्र सायकने उग्रदंष्ट्रका सिर भी उड़ा दिया।

अब जो राक्षस बच गये थे, उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये। कवच उतार फेंके। रथोंपर जो थे, वे भी कूदकर पृथ्वीपर आ गये। दोनों हाथ उठाकर उन्होंने पुकारना प्रारम्भ किया—'प्राणदान! हम आपका शरण हैं!'

प्रतिपक्षके द्वारा प्रतिकारका प्रयत्न त्यागकर शरणकी पुकार किये जानेपर नारायणास्त्रकी ज्वाला शान्त हो गयी। राक्षसोंने अश्व लाकर अर्पण किया। शत्रुघ्नने उन्हें अभय देकर आदेश किया—'तुम सब पाताल चले जाओ। पृथ्वीपर आनेका साहस मत करना। पृथ्वी पर ही रहना हो तो लङ्का जाकर विभीषणजीसे आश्रय माँगो और उनके अनुवर्ती होकर रहो।'

राक्षस पाताल चले गये। विजय-दुन्दुभि बजने लगी। शङ्खनाद होने लगा। बन्धन-मुक्त होकर यज्ञीय अश्व उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा।

आरण्यक मुनि

अपनी गतिमें अश्व स्वतन्त्र था। वह सीधे किसी एक ही दिशामें जाय, यह आवश्यक नहीं था। विद्युन्मालीके बन्धनसे मुक्त होनेपर मुड़ा और मध्य भारतकी ओर दौड़ पड़ा। अश्व दौड़ता गया। वह आकर अमर-कण्टकपर नर्मदा-उद्गमके समीप रुका।

नर्मदा-तटपर अनेक ऋषि-महर्षि निवास करते थे। लेकिन एक पुरानी पर्णशाला पलाशके पत्तोंसे बनी ऐसी दीखी, जो लगभग जलमें बनी थी। नर्मदाकी लहरोंका जल उसको सींचता लगता था। शत्रुघ्नने मन्त्रीसे पूछा— 'सुमति! यह रेवाके सलिलसे सटा किसका आश्रम है?'

'यह उग्र तपस्वी, समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ, श्रीरघुनाथके अनन्य भक्त आरण्यक मुनिका उटज है।' मन्त्रीने कहा— 'हम लोगोंको इनका दर्शन करना चाहिये। ऐसे सन्तोंका दर्शन प्राणीको पवित्र करता है।'

शत्रुघ्नने सेनाको वहीं छोड़ा। मन्त्री तथा दो-चार प्रधान नरेश एवं पवनपुत्रके साथ उस आश्रममें गये। सबने मुनिको प्रणिपात किया। मुनिने पूछा— 'आप सब कहाँ एकत्रित हुए हैं? यहाँ कैसे पधारे हैं?'

'हम लोग रघुकुल-नरेशके अश्व-रक्षक हैं।' मन्त्रीने ही कहा— 'वे अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं।'

'बहुत सामग्री एकत्र करके, बहुत श्रम एवं समय लगाकर किये जानेवाले यज्ञोंसे क्या लाभ?' ऋषि-मुनि प्रायः सांसारिक लोगोंकी बातों-पर ध्यान नहीं देते। आरण्यक मुनिने भी मन्त्री सुमतिकी बातपर ध्यान नहीं दिया। वे कहने लगे— 'इन सब पुण्य कर्मोंका फल क्षणभंगुर है। भगवान् श्रीरामका स्मरण ही समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला तथा परमपद-प्रदाता है।'

आरण्यक मुनिने अपना पूर्वचरित सुनाना प्रारम्भ किया कि वे तत्त्वज्ञानकी इच्छासे महर्षियोंके आश्रमोंमें भटकते फिरे थे। मानव-शरीर पाकर भव-सागरसे पार होना ही चाहिये, यह उनकी तीव्र उत्सुकता थी,

उन्हें अनेक प्रकारके साधन बतलाये गये ; किंतु जिसका जो अधिकार है, उसके अनुरूप साधनमें ही उसकी रुचि हो सकती है। सौभाग्यवश उन्हें महर्षि लोमश मिल गये। उन्होंने आरण्यकजीको श्रीराम-मन्त्र दिया। श्रीरामका ध्यान बतलाया तथा सम्पूर्ण रामचरित सुनाया ।*

---

* पद्मपुराण, पाताल खण्डमें यह श्रीरामचरित आया है। इसकी विशेषता है कि इसमें अनेक स्थानोंपर आयु तथा घटनाओंकी तिथि निर्दिष्ट है। यद्यपि ये आयु-निर्देश तथा तिथियाँ वाल्मीकीय रामायणसे मेल नहीं रखतीं, इसीलिए मैंने इनका उपयोग मूल चरितमें नहीं किया है ; किंतु यहाँ इनको दे रहा हूँ। महर्षि लोमश अत्यन्त दीर्घजीवी हैं। पता नहीं उन्होंने किस कल्पके रामचरितका वर्णन सुनाया। महर्षि वाल्मीकि-वर्णित चरित इससे भिन्न कल्पका है, यह निश्चित है। यहाँ संक्षिप्तमें आयु तथा तिथियोंके उल्लेख मात्र दे रहा हूँ। स्मरण रखें कि ये तिथियाँ वाल्मीकि-वर्णित चरितसे भिन्न हैं।

—श्रीरामने पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें जनकपुरमें पिनाक तोड़ा। विवाहके समय सीताजीकी अवस्था छः वर्षकी थी।

—बारह वर्ष तक अयोध्या रहनेके उपरान्त सत्ताइस वर्षकी आयुमें श्रीरामको वनवास हुआ।

—तीन रात्रि अयोध्यासे चलनेपर केवल जल पीकर रहे। चौथे दिन फलाहार किया। पाँचवें दिन चित्रकूट पहुँचे।

—बारह वर्ष वनवासके बीत जानेपर तेरहवें वर्ष पंचवटी जाकर रहने लगे।

—माघ कृष्ण अष्टमीको वृन्द नामक मुहूर्तमें रावणने सीता-हरण किया।

—इस सीता-हरणके दस महीने पीछे कार्त्तिक शुक्ल नवमीको सम्पातीने वानरोंको सीताका पता बतलाया। एकादशी (प्रबोधिनी) को हनुमानने समुद्र-लंघन किया। द्वादशीकी रात्रिमें उन्हें श्रीसीताजीका दर्शन हुआ। त्रयोदशीको उनका अक्षय-कुमारादिसे युद्ध हुआ। चतुर्दशीको उन्हें मेघनादने ब्रह्मास्त्रसे बाँधा। उसी दिन लङ्का जली। पूर्णिमाको वे वानरोंके समीप लौट आये।

—मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदासे पञ्चमी तक मार्गमें लगा। षष्ठीको मधुवनमें पहुँचे। सप्तमीको श्रीरामको सीताजीका समाचार दिया।

—मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमीको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें, विजय नामक मुहूर्तमें, मध्याह्न समय श्रीराम कपि-सेनाके साथ लङ्काकी ओर चले। सात दिन मार्गमें लगा, तब समुद्रतट पहुँचे। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदासे तृतीया तक समुद्रतट टिके रहे। चतुर्थीको विभीषण मिले। पञ्चमीको समुद्रपार करनेपर विचार हुआ। चार दिनोंतक श्रीरामने अनशन किया। दशमीसे सेतु-बन्धन प्रारम्भ हुआ। यह त्रयोदशीको पूर्ण हुआ। चतुर्दशीको श्रीराम समुद्रपार सुवेलपर पहुँचे। मार्गशीर्ष पूर्णिमासे पौष कृष्ण द्वितीया तक सेना समुद्रपार हो सकी।

पौष कृष्ण तृतीयासे दशमी पर्यन्त आठ दिन लङ्कापुरीपर वानर-सेनाका घेरा पड़ा रहा। एकादशीको रावणके चर शुक-सारण सेनामें घुस आये। द्वादशीको

'मेरे उन उपदेष्टा परम दयालु महर्षि लोमशने मुझसे कहा है।' आरण्यक मुनिने चरित सुनाकर कहा— 'श्रीराम अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करेंगे, उनका अश्व तुम्हारे आश्रमपर आवेगा। तुमको अश्व-रक्षक अयोध्या

शार्दूलने वानर-सेनाकी गणना की। रावणको उसने प्रधान वानरोंका परिचय दिया। त्रयोदशीसे अमावस्या तक रावणने अपने सैनिकोंको युद्धके लिए प्रस्तुत किया।

पौष शुक्ल प्रतिपदाको अंगद दूत होकर लङ्का गये। पौष शुक्ल द्वितीयासे युद्ध प्रारम्भ हुआ। अष्टमी तक वानरोंसे युद्ध होता रहा। नवमीको मेघनादने श्रीरामको नागपाशसें बाँधा। दशमीको वायुदेवने श्रीरामको गरुड़-मन्त्र बतलाया। उसके जपसे एकादशीको गरुड़ने आकर नाग-पाश दूर किया।

द्वादशीको श्रीरामने धूम्राक्षको मारा। त्रयोदशीको उन्होंने कम्पनका वध किया। चतुर्दशीसे माघ कृष्ण प्रतिपदा तकके युद्धके पश्चात् नीलने प्रहस्तको समर-शय्या दी। द्वितीयासे चतुर्थी तक रावण श्रीरामसे युद्ध करता रहा। अन्तमें हारकर भाग गया लङ्कामें।

माघ कृष्ण पञ्चमीसे अष्टमी तकके प्रयत्नसे कुम्भकर्ण जगाया जा सका। नवमीसे कुम्भकर्णने युद्ध प्रारम्भ किया। श्रीरामके द्वारा वह चतुर्दशीको मारा गया। कुम्भकर्णकी मृत्युके शोकमें रावणने माघकी अमावस्याको युद्धविराम रखा।

माघ शुक्ल प्रतिपदासे चतुर्थी तकके चार दिनोंमें विसतन्तु प्रभृति पाँच राक्षस-नायक खेत रहे। पञ्चमीसे सप्तमी तक युद्ध करके अतिकाय सदाको सो गया। अष्टमीसे द्वादशी तकके संघर्षमें निकुम्भ-कुम्भ मौतके घाट उतर गये। तीन दिन मकराक्ष युद्ध करके मरा।

फाल्गुन कृष्ण द्वितीयाको इन्द्रजितने लक्ष्मणपर शक्ति-प्रहार किया। तृतीयासे सप्तमी तक लक्ष्मणके उपचारमें व्यस्त श्रीरामने युद्ध-विराम रखा। अष्टमीसे युद्ध प्रारम्भ करके त्रयोदशीको लक्ष्मणने मेघनादको मार दिया। चतुर्दशीको रावणने यज्ञ-दीक्षा ली। युद्ध बन्द रहा।

फाल्गुन अमावस्याको रावण युद्धभूमिमें आया। फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी तक दशग्रीव युद्ध करता रहा। षष्ठीसे अष्टमी तकमें महापार्श्व प्रभृति सेनापति मारे गये। नवमीको लक्ष्मणको शक्ति लगी, रावणके द्वारा। दशमीको श्रीरामने घोर युद्ध किया। एकादशीको इन्द्रका रथ उनका सारथि मातलि श्रीरामके पास ले आया। द्वादशीसे चैत्र कृष्ण चतुर्दशी तक अट्ठारह दिन राम-रावणका घोरतर संग्राम हुआ। इसी चैत्रकृष्ण चतुर्दशीको रावण मारा गया। यह युद्ध पौष शुक्ल द्वितीयासे चैत्रकृष्ण चतुर्दशी तक सत्तासी दिन हुआ। मध्यमें पन्द्रह दिन बन्द रहा। बहत्तर दिन यह संग्राम चला। रावणादिका दाह-संस्कार चैत्र अमावस्याको हुआ।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको श्रीराम युद्धभूमिमें ही रहे। द्वितीयाको विभीषणका राज्याभिषेक हुआ। तृतीयाको श्रीजानकीकी अग्नि-परीक्षा हुई। चतुर्थीको श्रीराम पुष्पकारूढ़ होकर लङ्कासे चले। चैत्र शुक्ल पञ्चमीको भरद्वाजाश्रम पहुँचे। षष्ठीको नन्दिग्राम आकर भरतसे मिले।

चैत्र शुक्त सप्तमीको श्रीरामका राज्याभिषेक हुआ। इस राज्याभिषेकके समय श्रीराम बयालिस वर्ष पूरा कर रहे थे। उस समय श्रीजानकीकी अवस्था तैंतीस वर्षकी थी।

पहुँचा देंगे। वहाँ तुम उन कमल-लोचन परात्पर पुरुषका प्रत्यक्ष दर्शन पा सकोगे। मैं उसी पुण्यक्षणकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

'अच्छा, अब तुम लोग बतलाओ कि यहाँ क्यों आये हो?' आरण्यकजीने जैसे अब सावधानी प्राप्त की— 'कौन धर्मात्मा राजा यज्ञानुष्ठान कर रहा है?'

'भगवन्! हम सब आपका दर्शन करके कृतार्थ हुए।' मन्त्री सुमतिने निवेदन किया— 'महर्षि अगस्त्यके आदेशसे हमारे स्वामी अयोध्यानाथ श्रीराम ही अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। उन्हींके यज्ञीय अश्वकी रक्षा करते उनके अनुज ये शत्रुघ्नकुमार आपके श्रीचरणों तक पहुँचे हैं।'

'आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। आज मेरा जन्म-धारण सफल हुआ। आज मैं धन्य हो गया।' आरण्यक मुनि तो आनन्दके मारे उठकर नृत्य करने लगे— 'अब मैं अयोध्या जाकर अपने आराध्यके दर्शन कर सकूँगा। वहाँ उन श्रीरघुनाथके परम भक्त पवनपुत्रके पदोंमें प्रणाम करूँगा तो वे मुझे हृदयसे लगावेंगे।'

'ब्रह्मर्षि! मैं हनुमान आपको प्रणाम करता हूँ।' हनुमानजीने आगे आकर प्रणाम किया। आरण्यक मुनिने सुनते ही उठकर आञ्जनेयको हृदयसे लगाया।

'ये श्रीरघुनाथके सबसे छोटे भाई शत्रुघ्नकुमार हैं।' अब हनुमानजीने परिचय देना प्रारम्भ किया— 'ये भरत-कुमार पुष्कल हैं। ये परम रामभक्त राजा सुबाहु हैं और श्रीरामका नाम सुनते ही अपना सर्वस्व समर्पित कर देनेवाले ये राजा सत्यवान हैं।'

हनुमानजीने सबका परिचय दिया। मुनि आरण्यकको सबने प्रणाम किया। आरण्यकजीने सबका सत्कार किया। सब लोग वहीं एक रात्रि रहे; क्योंकि अश्व वहाँ चुपचाप खड़ा था। सम्भवतः वह दीर्घ यात्रासे श्रान्त हो गया था।

प्रातःकाल सबने नर्मदा-स्नान किया। आरण्यक मुनि बहुत वृद्ध थे। अतः शत्रुघ्नकुमारने उनके लिए शिविकाकी व्यवस्था की। मुनिको शिविकामें बैठाकर उन्हें अयोध्या भेजा और उनसे अश्वके पीछे जानेकी आज्ञा ली। अब अश्व मन्दगतिसे चल पड़ा था।

महामुनि आरण्यक मार्गमें श्रीरामके ध्यानमें मग्न रहे। उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। आराध्यके दर्शन इस प्रकार सुलभ होंगे, इसकी कल्पना उन्होंने नहीं की थी। उन्हें पता ही नहीं लगा कि पथ कैसे समाप्त हो रहा है। अमरकण्टकसे अयोध्या पर्याप्त दूर है। शिविका-वाहकों-को पथ-विश्राम भी करना ही था। मार्गमें मुनिके आहारादिकी व्यवस्था शत्रुघ्नकुमारने कर दी थी; किंतु मुनिको शरीर-सुधि हो तब शिविकासे उतरें। वे तो बैठे और जैसे समाधिमें स्थित हो गये। उन्हें तो चेतना तब आयी जब अयोध्यामें यज्ञशालाके द्वारपर उनकी शिविका पहुँच गयी और श्रीराघवेन्द्र सूचना पाकर उनका स्वागत करने आये।

श्रीरामके दूर्वादल श्रीअङ्गपर दृष्टि पड़ते ही आरण्यक मुनि हड़बड़ा कर उठे। श्रीरघुनाथने गोत्र, पिताका नाम लेकर उन्हें प्रणिपात किया; किंतु मुनिका शरीर तो जसे काष्ठ अथवा पाषाण-निर्मित हो, इस प्रकार निष्क्रिय हो गया। उनके नेत्रोंसे झरती अश्रुधारा ही कहती थी कि वे जीवित हैं।

श्रीरामने उठकर स्वयं उनका कर पकड़ा। उन्हें ले आकर यज्ञ-मण्डपमें मुनि-मण्डलके मध्य एक उच्चासनपर बैठाया। स्वयं स्वर्ण-पात्रमें जल लेकर उनके चरण-प्रक्षालन करने बैठ गये। आरण्यक मुनिके नेत्र श्रीरामके मुखपर लगे थे। उनका शरीर निस्पन्द था। वे केवल चलते आये थे, बैठ गये थे; किंतु इन क्रियाओंका भी उन्हें पता नहीं था।

सहसा तीव्र शब्दके साथ मुनिका ब्रह्मरन्ध्र फटा। उससे एक ज्योति निकली। सबके देखते वह श्रीराममें प्रविष्ट हो गयी। यज्ञ-मण्डप गूँजने लगा—'धन्य! धन्य! साधु! साक्षात् परम पुरुषसे अत्यन्त दुर्लभ सायुज्य प्राप्त हुआ इन महापुरुषको।'

मर्यादा-पुरुषोत्तमको शास्त्रीय मर्यादा माननी ही थी। आरण्यक मुनिका विमान सज्जित हुआ। मुनि-मण्डल साथ चला। स्वयं श्रीरामने उस पावन देहको सरयू-समर्पित किया। उस दिन यज्ञ तो विरमित रहना ही था। यज्ञशालाकी आवश्यक शुद्धि भी अपेक्षित थी। महर्षि वशिष्ठने शुद्धि, प्रायश्चित्त प्रभृति सम्पन्न कराये।

शिव-भक्तसे संग्राम

आरण्यक मुनिके आश्रमसे चलकर अश्व नर्मदा किनारे आगे बढ़ा। इस क्रममें वह देवताओं द्वारा निर्मित देवपुर पहुँचा। ऐसा अद्भुत नगर, जिसके भवनोंकी भित्तियाँ स्फटिक-निर्मित थीं। सामान्य सेवकोंके सदन भी रजतसे बने थे। नगरका गोपुर माणिक्यसे बना था और उसमें सभी रंगोंकी मणियाँ जड़ी थीं। जहाँ स्वयं भगवान् त्रिलोचन इन्दु-भाल भक्त-भाव-परवश पुर-पाल बनकर रहते हों, उस वीर-शिरोमणि नरेश वीर-मणिके नगरका वैभव वर्णनसे बाहर है।

नरेश वीरमणिके युवराज रुक्माङ्गद अपनी रानियों तथा सेविकाओंको साथ लेकर वन-विहार करने निकले थे। उनके समीप अश्वमेधीय अश्व पहुँचा तो युवराज्ञीने ही कहा—'स्वामी! इस शोभाशाली अश्वको तो देखें। इसके मस्तकपर स्वर्ण-पत्र बँधा है। किसका है यह अश्व? इस प्रकार उन्मुक्त क्यों घूम रहा है? इसे पकड़िये।'

रुक्माङ्गदने क्रीड़ा-पूर्वक अश्व पकड़ लिया; किन्तु अश्वके भालपर बँधे स्वर्णपत्रको पढ़कर उसकी भृकुटि कठोर हो गयी—'स्वयं भगवान् पिनाकपाणि जिनके रक्षक हैं, उन मेरे पिताके समान पृथ्वीपर दूसरा कौन शौर्य एवं बलमें समान हो सकता है। यह राजा रामचन्द्र कौन है जो इतना अहङ्कार करता है। देवता, दानव, यक्ष सभी तो मेरे पिताकी चरण-वन्दना करते हैं। अतः इसी अश्वके द्वारा मेरे पिता अश्वमेध-यज्ञ करेंगे।'

रुक्माङ्गदके साथ सैनिक नहीं गये थे। वह स्त्रियोंके साथ वनमें क्रीड़ा करने गया था। अतः अश्वको पकड़कर स्वयं नगरमें लौटा। स्त्रियों-को उसने अन्तःपुरमें भेज दिया। पिताके सम्मुख राजकुमार अश्व लेकर उपस्थित हुआ तो राजा वीरमणिने उसकी प्रशंसा की। पुत्रकी भर्त्सना तो उन्होंने नहीं की; किन्तु उनके मनमें सन्देह उठा—'यह तो अश्व लेकर चुपकेसे चला आया है, यह कार्य तो चोरके जैसा हुआ।'

वीरमणिने भगवान् शङ्करसे जाकर पुत्रका कर्म सुनाया। सुनकर सदाशिव बोले—'तुम्हारे पुत्रने अच्छा नहीं किया। जिनका मैं हृदयमें ध्यान करता हूँ, जिनका नाम-जप करता रहता हूँ, उन्हीं मेरे आराध्यका यह यज्ञीय अश्व है। युद्ध होता है तो उसका परम-लाभ यह अवश्य होगा कि हम लोग श्रीरघुनाथके चरण-कमलोंका दर्शन कर सकेंगे; किन्तु मेरे द्वारा रक्षित होनेपर भी शत्रुघ्न अश्व अवश्य बलपूर्वक ले जायँगे। अतएव मेरी सम्मति तो यह है कि तुम विनीत बनकर जाओ और राज्य-सहित अश्व अर्पण करके श्रीरघुनाथकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त करो।'

'यह अवसर कहाँ रहा देव? अश्व आया था, तभी सहर्ष मैं जाता इसमें शोभा थी। अब अश्व लेकर जाना मेरी भीरुता मानी जायगी।' वीरमणिने हाथ जोड़कर कहा—'अब तो क्षत्रियोचित युद्ध ही कर्तव्य बन गया है। मैं आपकी शरण हूँ।'

'मैं तुम्हारी भक्तिके कारण तुम्हारे वशमें हूँ। युद्धमें मैं तुम्हारे साथ चल रहा हूँ। शत्रुघ्नके सहित उनकी सेना पराजित होगी; किन्तु भगवान् भोलेनाथने कह दिया—'यदि मेरे स्वामी श्रीरघुनाथ स्वयं आ गये तो मैं उनकी चरण-वन्दना ही करूँगा। उनसे युद्ध नहीं कर सकूँगा।'

'तब आप अपने इस सेवकको अश्व तथा राज्यके साथ उनके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दें।' वीरमणिने हर्षित होकर कहा—'इससे अधिक सौभाग्य मेरा नहीं हो सकता।'

राजा वीरमणिने अपनी सेनाको सज्जित होनेका आदेश दे दिया। राजकुमार रुक्माङ्गदने युद्धमें प्रथम नेतृत्व सम्हाला। दूसरी ओर कुमार शत्रुघ्नके सैनिक अश्वका अन्वेषण कर रहे थे। अश्व अचानक अदृश्य हो गया था। सैनिकोंके सम्मुखसे अश्व दौड़ा था। अब वह कहीं दीख नहीं रहा था।

'यहाँ आसपास कोई बलवान राजा रहता है?' शत्रुघ्नकुमारने मन्त्रीसे पूछा—'उसने अश्वका अपहरण किया हो तो उसकी शक्ति तथा सैन्यबल कितना है?'

मन्त्री सुमतिको उत्तर देनेका अवकाश नहीं मिला। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ आकाशसे उतरे। आते ही उन्होंने कहा—'कुमार! तुम लोग अश्वके सम्बन्धमें चिन्तित हो; किन्तु मैं यहाँ युद्ध देखने आया

हूँ। समीप ही देवपुर है। उसके नरेश वीरमणि ससैन्य आ रहे हैं और आ रहे हैं उनकी सहायता करने स्वयं भगवान् त्रिपुरारि भूतगणोंके साथ। अश्व तो तुम्हें इस युद्धके पश्चात् प्राप्त होगा। तुम्हारी विजय तो होगी ; किन्तु बहुत विकट संग्रामको प्रस्तुत रहो।'

देवर्षि नारद आकाशमें स्थित रहकर युद्ध देखना चाहते थे, अतः वे चले गये। देवपुरकी सेनाके रणवाद्य सुनायी पड़ने लगे थे। राजा वीरमणिके सेनापति रिपुवार, राजाके छोटे भाई वीरसिंह, राजकुमार रुक्माङ्गद तथा शुभाङ्गद सभी रथोंपर आरूढ़ नगरसे निकले।

मन्त्री सुमतिकी सम्मतिसे कुमार पुष्कल दूसरे राजाओंके साथ संग्राम करने आगे बढ़े। शत्रुघ्नको भगवान् शिव अथवा राजा वीरमणिके युद्धमें आनेपर उनसे युद्ध करना था। पुष्कलने प्रथमाक्रमण किया। फलतः युवराज रुक्माङ्गदको अपनी सेनाकी रक्षाके लिये आगे आना पड़ा।

पुष्कल और रुक्माङ्गदका युद्ध अद्भुत था। दोनों अस्त्रज्ञ थे। दोनोंने शर-वृष्टि करना आरम्भ किया था। दोनोंका तेज अप्रतिहत था। रुक्माङ्गदने चुनौती दी—'पुष्कल ! सावधान बैठना। तुम्हारा रथ आकाशमें जा रहा है।'

सचमुच राजकुमार रुक्माङ्गदके भ्रामकास्त्रसे पुष्कलका रथ अश्वों सहित उड़ा और एक योजन दूर जा गिरा। पृथ्वीपर आकर भी वह चक्कर काटता रहा। कठिनाईसे सारथिने रोका। युद्ध-भूमिमें आकर पुष्कलने कहा—'रुक्माङ्गद ! तुम वीर हो। तुम्हारे जसे उत्तम अस्त्रज्ञ पृथ्वीपर रहने योग्य नहीं हैं। तुम्हे शीघ्र स्वर्ग जाना चाहिए।'

पुष्कलके अस्त्र-प्रयोगने रुक्माङ्गदका रथ उड़ाकर सूर्य मण्डलके समीप पहुँचा दिया। अश्व सहित रथ भस्म हो गया उस प्रचण्ड ज्वालामें। वहाँ कहाँ राखका पता लगना था। रुक्माङ्गद रथसे कूदा ; किन्तु देर हो चुकी थी। रथ बहुत दूर जा चुका था। पृथ्वीपर उसका अर्ध दग्ध, प्राणहीन शरीर गिरा।

पुत्रकी वीरगति देखकर राजा वीरमणि क्रोधमें भर उठे। उन्होंने पुष्कलकी ओर रथ बढ़ाया। यह देखकर हनुमानने हुंकार की और कूदे ; किन्तु पुष्कलने उन्हें रोका—'महाकपे ! आप क्यों मध्यमें आते हैं। आप पूज्य पितृव्यके समीप रहें। आप तो जानते हैं कि श्रीरघुनाथका स्मरण

करके प्राणी सब दुस्तर संकटोंके पार हो जाता है। मैं उनके श्रीचरणोंके ही आश्रित हूँ। इस युद्ध-संकटको मैं अवश्य पार कर लूँगा।'

'पुष्कल ! तुम बालक हो और वीरमणि अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। स्वयं भगवान् पुरारि इनके रक्षक हैं।' हनुमानजीने समझाया —' अतः तुम इनके सामने मत पड़ो।'

' भगवान शिव स्वयं जिनका सदा स्मरण करते हैं, मैं उनके सहारे खड़ा हूँ।' पुष्कलने स्थिर स्वरमें कहा—' वीरमणिको आज मुझसे पराजित होना पड़ेगा।'

ऐसी अविचल आस्थाको पराजित करनेकी शक्ति सम्भवतः सर्वेश्वर के समीप भी नहीं है। हनुमानजी यह सत्य भली प्रकार जानते हैं। वीरमणिने ही आगे आकर कहा—' बालक ! मेरे सामने मत पड़ो। इस समय मैं क्रोधमें भरा हूँ। प्राण बचाना हो तो हट जाओ यहाँसे।'

' राजन् ! आप अपनेको सम्हालें ! श्रीरामका सेवक जब उनके सहारे खड़ा होता है, उसे त्रिभुवनमें पराजित करनेवाला कोई नहीं हो सकता।' पुष्कलने हँसकर कहा—' आप पौरुष प्रकट करें।'

राजा वीरमणि खुलकर हँसे। उन्हें पुष्कलका यह कोरा बाल-हठ लगा। दोनों ओरसे आघात-प्रत्याघात चलने लगे। इस युद्धमें अन्ततः राजा वीरमणिका कवच, शिरस्त्राण कट गया। उनका रथ नष्ट हो गया। उन्हें दूसरा रथ स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने स्वीकार किया—' पुष्कल ! तुम धन्य हो।'

' आप वृद्ध होनेके कारण सम्मान्य हैं !' पुष्कलने कहा —' तथापि युद्धमें अब युद्धोचित सत्कार करनेको मैं बाध्य हूँ। मेरे तीन वाणोंसे ही आप मूर्छित हो जाने वाले हैं।'

पुष्कलका प्रथम वाण अग्निके समान तेजस्वी था ; किन्तु उसे वीरमणिने काट दिया। दूसरा वाण पुष्कलने अपनी मातृ-भक्तिका स्मरण करके चलाया, वह भी कट गया। तीसरा वाण श्रीरघुनाथका स्मरण करके छूटा। वह प्रज्वलित वाण राजा वीरमणिके वक्षको विदीर्ण कर गया। वे मूर्छित होकर गिर पड़े। देवपुरकी सेनामें हाहाकार मच गया।

राजा वीरमणिके अनुजने अपने अग्रजको मूर्छित होते देखा तो अपना रथ बढ़ाया ; किन्तु उन्हें पवनकुमारने रोक दिया। वीरसिंहकी

वाण-वर्षा प्रचण्ड थी ; किन्तु व्रजदेह आञ्जनेय पर उसका क्या प्रभाव पड़ता। हनुमानने एक मुष्टिका धर दी। वक्षमें महावीरका मुष्टिका प्रहार पड़ते ही वीरसिंह मूर्छित हो गये। राजकुमार शुभाङ्गद दौड़ा चाचाको गिरते देख ; किन्तु पवनपुत्रने पूँछमें लपेटकर उसका रथ पटक दिया। वह भी मूर्छित हो गया।

अपने भक्तकी सहायता करने अब भगवान शङ्कर स्वयं संग्राम भूमिमें पहुँचे। उन प्रलयङ्करके साथ उनके प्रमथ गण आये पृथ्वी कम्पित करते। कुमार शत्रुघ्नने आगे रथ बढ़ाया अपना। शत्रुघ्नको देखकर शिवने वीरभद्रका आज्ञा दी—'तुम मेरे प्रिय भक्तको पीड़ा देनेवाले पुष्कलसे प्रतिशोध लो। मैं शत्रुघ्नको सम्हालता हूँ।'

हनुमानसे नन्दी युद्ध करने लगे। कुशध्वजसे प्रचण्ड सुबाहुसे भृंगी, सुमदसे चण्ड, इस प्रकार शिवगण सब प्रधान राजाओंसे युद्ध करने लगे।

रात-दिन अविराम चलने लगा युद्ध। पुष्कलने वीरभद्रका त्रिशूल काट दिया तो वीरभद्रने पटककर पुष्कलका रथ तोड़ डाला। कौन कल्पना कर सकता है कि बालक पुष्कल उद्‌भट वीरभद्रसे मल्लयुद्ध कर सकेंगे ; किन्तु चार दिन-रात अविराम मल्लयुद्ध किया पुष्कलने। पाँचवे दिन पुष्कलने वीरभद्रको पटक लिया ; किन्तु सुरासुरजयी वीरभद्र स्वयं रुद्रके मूर्तिमान क्रोध हैं। उन्होंने पुष्कलको पैर पकड़कर घुमाया और पृथ्वीपर पटक दिया। फिर उनके कुण्डल-भूषित मस्तकको त्रिशूलसे काट दिया। इसके अनन्तर वीरभद्र भीषण गर्जना करने लगे। सैनिक थर्रा उठे।

पुष्कलकी मृत्यु सुनकर शत्रुघ्न दुःखी हो गये। शिवने समझाया—'शत्रुघ्न ! दक्ष-यज्ञ ध्वन्स करने वाले, मेरे साक्षात् अंश वीरभद्रसे पाँच दिन युद्ध करके पुष्कल धन्य हो गया। तुम उसका शोक छोड़ो और युद्ध करो।'

शत्रुघ्न क्रुद्ध हो उठे। उनकी शर-वर्षा प्रचण्डतम हो उठी। भगवान महेश्वरके धनुषसे भी अजस्र वाण छूटने लगे। सब सशङ्क हो गये—'पता नहीं क्या होने वाला है।'

ग्यारह दिनों तक यह युद्ध अखण्ड चला। बारहवें दिन शत्रुघ्नने ब्रह्मास्त्र प्रयोग किया, पुरारि हँसकर उसे पी गये। इससे शत्रुघ्नको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे चकित ही थे कि शिवका प्रज्वलित वाण उनके वक्षपर पड़ा। शत्रुघ्न मूर्छित हो गये।

हनुमानने यह देखा। पुष्कलका शरीर तथा मस्तक उठाकर रथपर रखकर उन्होंने सुरक्षित किया और फिर शिवके सम्मुख पहुँचे। ललकारा —'आप श्रीरघुनाथके स्मरण करनेवाले होकर रामभक्तोंका वध करनेको उद्यत हो, अतः दण्डनीय हो गये हो।'

हनुमान क्रोधमें पूँछ पटककर कटकटा रहे थे। भगवान गंगाधरने शान्त स्वरमें कहा—'कपिश्रेष्ठ! तुम धन्य हो। तुमने जो कुछ कहा, वह सत्य है। सुरासुर-सेवित श्रीराम ही मेरे स्वामी हैं; किन्तु वीरमणि मेरा परम प्रिय भक्त है। मैं अपने भक्तकी उपेक्षा नहीं कर सकता।'

हनुमानने भारी शिला उठाकर शिवके रथपर पटक दी। रथ, अश्व, सारथि, ध्वज सहित ध्वस्त हो गया। अब भगवान वृषभध्वज वृषभारूढ़ हुए। हनुमान पर उन्होंने त्रिशूल फेंका, किन्तु हनुमानने उसे पकड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बड़ा भयंकर संग्राम शिव तथा हनुमानका चलने लगा। अन्तमें हनुमानने भूतनाथको अपनी पूँछमें वृषभ सहित लपेटा और उनपर मुष्टिकाघात करने लगे। नन्दी व्याकुल हो गया; किन्तु भगवान भवानीनाथ उलटे सन्तुष्ट होकर बोले—'हनुमान! आज तुमने अपने पराक्रमसे मुझे प्रसन्न कर दिया। अतः कोई वरदान माँगो।'

'महेश्वर! श्रीरघुनाथके प्रसादसे मुझे कुछ अप्राप्त नहीं है।' आञ्जनेयने कहा—'फिर भी आपका सम्मान करनेके लिए मैं आपसे वरदान माँगता हूँ। आप अपने गणोंके साथ हमारे पक्षके मारे गये तथा मूर्छित लोगोंकी रक्षा करते रहें। इनके शरीर नष्ट न हों। मैं द्रोण गिरि पर औषधि लेने जाता हूँ।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।' आशुतोषने शिथिल स्वरमें कहा। उन्होंने देख लिया कि उनके विपक्ष समर्थक होनेके कारण हनुमान उनके द्वारा अपने पक्षके लोगोंको जीवित कराना भी स्वीकार नहीं करना चाहते। वह भी वे अपने पौरुषसे ही सम्पन्न करनेके पक्षमें हैं।

हनुमानजी द्रोणाचलके पास पहुँचकर उसे उखाड़ने लगे। पर्वत काँपने लगा। उसके रक्षक देवता प्रकट हुए—'इसे छोड़ दो। तुम क्यों बार-बार इस पर्वतको नष्ट करने आ जाते हो? एक शिखर इसका तुम लंका-युद्धके समय ले जा चुके हो। अब क्यों आ गये?'

'देवपुरमें वीरमणिके साथ युद्धमें हमारे पक्षके बहुत योद्धा मारे गये हैं। उनको जीवित करनेके लिए मैं यह पर्वत ले जाऊँगा।' पवनकुमारने ललकारा—'बाधा मत दो! अन्यथा सबको मरना पड़ेगा। तुम औषधि देकर पर्वत बचा सकते हो, अन्यथा मैं पूरा पर्वत अवश्य ले जाऊँगा।'

ऐसे प्रबलसे प्रतिरोध करना व्यर्थ था। देवताओंने प्रणाम करके श्रीपवननन्दनको औषधि दे दी। हनुमान औषधि लेकर युद्ध-क्षेत्रमें आये। उन्होंने मन्त्री सुमतिसे कहा—'केवल अपने पक्षके लोगोंको जीवित करना अन्याय होगा। भगवान शिवने ही हमारे पक्षके मृत-मूर्छितोंके शरीरोंकी रक्षाकी है। अतः मैं उनके सेवकोंको भी जीवित करूँगा।'

'यदि मैं सचमुच श्रीरघुनाथका सेवक हूँ तो औषधि इन्हें जीवित कर दे।' हनुमानने पहिले पुष्कलके सिरको धड़से जोड़कर उनके वक्षपर औषधि रखकर कहा। तत्काल पुष्कल उठ बैठे। फिर तो यह सबके लिए महामन्त्र हो गया। बिना स्वपर-भेदके आञ्जनेयने सभी मृत-मूर्छितोंको स्वस्थ, सजीव बना दिया।'

युद्ध पुनः प्रारम्भ हो गया। राजा वीरमणि शत्रुघ्नसे युद्ध करने लगे। दानों ओरसे दिव्यास्त्रोंकी वर्षा आरम्भ हुई। आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, पावतास्त्र, वज्रास्त्रके प्रयोग चलते रहे। अन्तमें राजा वीरमणिने ब्रह्मास्त्र प्रयुक्त किया। कुमार शत्रुघ्नने मोहनास्त्रसे ब्रह्मास्त्रको शान्त कर दिया। राजा वीरमणि मोहनास्त्रक आघातसे मूर्छित हो गये।

वीरमणिके मूर्छित होनेपर भगवान भूतनाथ युद्धमें आ गये। शत्रुघ्नकुमारने उनके साथ भी तुमुल संघर्ष किया, उन विश्वनाथ पर विजय तो नहीं पायी जा सकती। शत्रुघ्न अत्यन्त व्याकुल हो गये पिनाकपाणिके प्रहारोंसे। तभी पवनपुत्रने सचेत किया—'अपने अग्रजका स्मरण कीजिये। उनके अतिरिक्त इन प्रलयङ्करको अन्य कोई शान्त नहीं कर सकता।'

'ये अत्यन्त उग्र रुद्र, धनुष उठाकर मेरे विरुद्ध युद्ध करने आ गये हैं। इनसे आप ही मेरी रक्षा कीजिये!' शत्रुघ्नने श्रीरघुनाथका स्मरण किया। तत्काल दूर्वादल-श्याम, पद्मपलाश-लोचन श्रीराम मृगशृंग-पाणि, यज्ञदीक्षित रूपमें प्रकट हो गये।

शत्रुघ्नकुमारने अग्रजके चरणोंमें प्रणाम किया। हनुमानजीने चरण-वन्दना की। पुष्कल, सुबाहु आदि अभी प्रणाम नहीं कर सके थे, कि

भगवान शङ्कर आगे आये। अञ्जलि बाँधकर स्तुति करने लगे—'सर्वेश्वर-परमपुरुष ! भक्तवत्सल ! मैंने अपने भक्तके वशमें होकर आपके कार्यमें बाधा डालनेका अपराध किया। मुझे क्षमा करें। यहाँके राजा वीरमणिने अवन्तिकामें शिप्रातटपर कठिन तप करके मुझे प्रसन्न कर लिया था। मैंने इसे आपके अश्वमेधीय अश्वके आगमन तक रक्षाका वरदान दिया था। अब अश्वके साथ इस राजाको इसके पुत्र, बन्धु-बन्धवों सहित मैं आपके चरणों-में अर्पित करता हूँ। आप इसे अपनाकर मुझपर अनुग्रह करें।'

'जो आपका प्रिय है, वह मुझे परम प्रिय है।' श्रीरघुनाथने पदोंमें प्रणत वीरमणिको उठाकर हृदयसे लगा लिया— 'आपमें और मुझमें भेद देखनेवाले अज्ञ हैं।'

श्रीरघुनाथ जैसे प्रकट हुए थे, वैसे ही अदृश्य हो गये। भगवान शिव भी राजाको समझाकर गणोंके साथ कैलास चले गये। राजा वीर-मणिने राज्यपर पुत्रका अभिषेक कर दिया। सेनाके साथ वे शत्रुघ्नके साथ हो गये; क्योंकि भगवान शंकर उनको आदेश दे गये थे—'राजन् ! श्रीरघुनाथका आश्रय ही सर्वश्रेष्ठ है। अतः अब तुम उन सर्वेश्वरकी ही शरणमें रहो।'

अश्व-गात्र स्तम्भ

अनियन्त्रित-गति अश्व नर्मदा किनारेसे पुनः दौड़ पड़ा। इस बार वह हेमकूट पर्वतपर जाकर रुका। उस पर्वतके शिखरपर एक उत्तम उद्यान था। उस नाना प्रकारके वृक्षोंसे शोभित उद्यानमें प्रवेश करते ही अश्वका सारा शरीर स्तम्भित हो गया। वह अपने कर्ण तथा पूँछ हिलानेमें भी असमर्थ हो गया।

'स्वामिन्! पता नहीं अश्वको क्या हो गया है।' अश्वके साथ चलते अग्रचर दलके लोगोंने पीछे लौटकर शत्रुघ्नको समाचार दिया— 'वह अचानक स्तब्ध खड़ा हो गया है। तनिक भी हिलता-डोलता नहीं है।'

अश्वमेधीय अश्व मन्त्रपूत, देवतात्मा होता है। उसे रुग्ण नहीं होना चाहिए। कुमार शत्रुघ्न शेष लोगोंके साथ उस अश्वके समीप गये। सेवक कह रहे थे— 'इस पर्वतपर अश्वने कहीं जल नहीं पिया। कहीं तृणको मुख नहीं लगाया। कुछ सूँघा नहीं। वह दौड़ता ही आया था।'

इसका अर्थ था कि अश्वपर दूषित जल अथवा किसी विषैले तृण, पुष्पगन्धका प्रभाव नहीं पड़ा था। बायुमें कोई दोष होता तो दूसरे अश्वोंपर भी पड़ता। समीप आकर कुमार शत्रुघ्नने, साथके अश्व-चिकित्सकोंने भी अश्वके शरीरकी भली प्रकार परीक्षा की। उसे न किसी विषैले जन्तुने काटा था और न उसमें किसी आन्तरिक व्याधिके ही लक्षण थे। अश्वके नेत्र, कर्ण, जिह्वादिका रङ्ग, उष्णता, आर्द्रता सब स्वस्थ कहनेवाले थे। उसका उदर कोमल था और फूला नहीं था। अश्वकी कर्णमूल ग्रन्थि अथवा अन्य कहीं भी शोथ नहीं था।

पुष्कलने भुजाओंमें भरकर अश्वके दोनों चरणोंको बारी-बारीसे ऊपर उठानेका प्रयत्न किया; किंतु असफल हो गये। मन्त्री सुमतिने कहा— 'अश्वको कोई व्याधि नहीं जान पड़ती। हमें कोई तपस्वी ऋषि-मुनि आसपास हों तो उनकी शरण लेना पड़ेगा। अश्वको कोई आधिदैविक बाधा पीड़ित करती प्रतीत होती है।

अन्ध-विश्वास है भली प्रकार भौतिक कारणोंपर प्रथम विचार न कर लेना ; किंतु जब कोई बाहरी कारण न प्राप्त हो , तब आधिदैवत कारणको न मानना अज्ञता है। इन दोनों अतियोंके मध्य विचारवान् आस्तिक अपना मार्ग बनाते हैं। मन्त्रीने तत्काल किसी तपस्वीके अन्वेषणार्थ चर भेज दिये।

उस स्थानसे एक योजन दूर पूर्व दिशामें महर्षि शौनकका आश्रम मिल गया। पूर्वकी ओर गये सेवकोंने लौटकर समाचार दिया। उन्हें केवल मुनि-आश्रम देखनेकी आज्ञा थी। पता लगनेपर कुमार शत्रुघ्न स्वयं पुष्कल, हनुमानादिके साथ उस आश्रमपर गये। वाहन आश्रम सीमासे बाहर छोड़कर उन्होंने आश्रममें जाकर अपना गोत्र, पिताके नामके साथ अपना नाम लेकर ऋषिको दण्डवत्-प्रणिपात किया।

महर्षि शौनकने अर्घ्य, पाद्य देकर आगत अतिथियोंका सत्कार किया। जब सब लोग सुखपूर्वक बैठ गये, तब पूछा— 'आप सब बहुत दूरसे आये लगते हैं। यहाँ इस ओर आप कैसे पधारे हैं ?

'भगवन् ! हम लोग अयोध्यानाथ श्रीरघुनाथके अश्वमेधीय अश्व-के रक्षक हैं।' शत्रुघ्नने कहा—'आपके आश्रमसे एक योजन पश्चिम इसी पर्वत-शिखरपर बहुत सुन्दर पुष्पित, फलोंसे पूर्ण उद्यान है। हमारा अश्व उसमें प्रविष्ट हो गया। वहाँ पहुँचते ही उसका सम्पूर्ण शरीर स्तम्भित हो गया है। हम सब आपकी शरण आये हैं। अश्वका गात्र-स्तम्भ दूर हो, वह उपाय बतलानेका अनुग्रह करें। उसकी यह अवस्था क्यों हुई ?'

महर्षि शौनकने कुछ क्षण नेत्र बन्द करके ध्यान किया। क्योंकि सदा सर्वज्ञ तो केवल परमात्मा है। ऋषि, मुनि, योगी ध्यान करके अभीष्ट जाननेमें समर्थ होते हैं। अश्वके गात्र-स्तम्भका कारण ध्यानके द्वारा जानकर उन्होंने बतलाया—

'बहुत पूर्वकालमें कावेरीके तटपर एक सात्विक ब्राह्मण तपस्वी रहता था। व्रत, तपस्या करते हुए जब उसका शरीर छूटा, तब अपने पुण्योंके फलस्वरूप वह देवता हो गया। देव-शरीर प्राप्त होनेपर विमान-में बैठकर वह अप्सराओंके साथ मेरु-शिखरपर जाकर विहार करने लगा। अब उसे अपने देवत्वका गर्व हो गया था। मेरु-शिखरपर रहने वाले

ऋषियोंकी अवज्ञा करके वह उनके आश्रमोंमें भी अप्सराओंके साथ जब नृत्य, गानादिमें लगा, ऋषियोंने शाप दे दिया—'तू राक्षसोंके समान अमर्यादित आचरण करता है अतः राक्षस हो जा।"

वह देवता तत्काल राक्षस हो गया। उसने दुःखी होकर उन ऋषियोंसे प्रार्थना की—'आप सब महात्मा हैं, दयालु हैं, मेरा अपराध क्षमा करके मेरे उद्धारका उपाय बतलावें।'

'त्रेतामें श्रीरामके अश्वमेधीय अश्वका वेग स्तम्भित कर देना।' उन ऋषियोंने कहा—'तब तुम्हें श्रीरामकथा—श्रवणका अवसर प्राप्त होगा। उस परम पावन कथाके श्रवणसे निष्पाप होकर तुम पुनः देवत्व प्राप्त कर लोगे।'

महर्षि शौनकने कहा—'उसी राक्षस बने देवताने अश्वका वेग स्तम्भित किया है। अतः आप सब श्रीराम-कथा-कीर्तनके द्वारा अश्वको उससे उन्मुक्त करो।'

सबको बहुत प्रसन्नता हुई। उपाय अत्यन्त सरल निकला और ऐसा निकला जो सबको ही प्रिय था। महर्षिसे अनुमति लेकर शत्रुघ्नकुमार अश्वके समीप लौटे। सभी सैनिक अश्वको घेरकर बैठ गये। श्रीराम-चरित-श्रवणका ऐसा सुअवसर कौन नहीं चाहता।

शत्रुघ्नकुमारके अनुरोधपर श्रीहनुमानजीने आरम्भसे लेकर श्रीराम-चरितका वर्णन प्रारम्भ किया। पवनकुमार स्वभावसे श्रीराम-कथा-श्रवणके रसिक हैं। वे आज वर्णन करनेवाले बन गये थे। तन्मय होकर वर्णन कर रहे थे। उनके लोचनोंसे अश्रुधारा चल रही थी। शरीर पुलकित हो रहा था। विस्तारपूर्वक श्रीराम-चरितका वर्णन सुनाया उन्होंने।

'देव! आप इस भुवनपावनी कथाके श्रवणसे सर्वथा निष्पाप हो गये हैं।' अन्तमें आञ्जनेयने अश्वमें आविष्ट उस देवताको सम्बोधित किया—'आपका कुत्सित राक्षसयोनिसे उद्धार हो गया। देखिये, आपको लेने विमान आ गया है। अतः अश्वका गात्र त्यागकर अपने विमानमें बैठिए और यथेच्छ स्थानको पधारिए।'

'मैं अनुगृहीत हुआ। ऋषियोंने शाप देकर भी दया ही की थी सत्पुरुषोंका क्रोध भी कल्याणकारी ही होता है। उसके कारण मेरा अहंकार

मिटा। मुझे त्रिलोक-पावनी कथा-श्रवणका सौभाग्य प्राप्त हुआ।' देवताने प्रकट होकर प्रार्थना की—'मैंने अपने उद्धारके हेतु अश्व-स्तम्भन किया था, इस अपराधको आप सब क्षमा करें। आप सब श्रीराघवेन्द्रके स्वजन हैं। दयालु हैं। भगवद्भक्त हैं। मैं आप सबको प्रणाम करता हूँ।'

उस देवताने सबकी अश्वकी भी प्रदक्षिणा की। सबसे अनुमति लेकर वह विमानमें बैठा। शीघ्र वह विमान अन्तरिक्षमें अदृश्य हो गया। अश्व गात्र-स्तम्भ दूर हो जानेसे प्रसन्न हो गया था। शत्रुघ्नकुमारने उस स्थानपर सामान्य यज्ञकी व्यवस्था की ; क्योंकि जहाँ भी अश्व मल-मूत्र त्याग करता अथवा अधिक देर तक रुकता था, वहाँ यज्ञ, दानादि करना आवश्यक विधिमें था।

अश्व अपनी इच्छाके अनुसार भारतवर्षमें घूमता रहा। उसे इस प्रकार बिना किसी क्रमके घूमते हुए सात महीने व्यतीत हो गये। अनेक प्रदेशोंमें-से उसे दो या तीन बार निकलना पड़ा।

हिमालयके दुर्गम प्रदेश पता नहीं क्यों अश्वको अधिक प्रिय थे। सम्भवतः वह जल-बहुल, पवित्र क्षेत्र देवतात्मा अश्वको अधिक आकर्षित करता था ; किन्तु वहाँके तपस्वी तो अश्वका अवरोध करनेवाले नहीं थे। यक्षेश्वर कुबेरने जब आगे आकर अलकापुरीसे बाहर ही अश्वको अर्घ्य अर्पित कर दिया, तब उन साक्षात् शङ्करके सखासे सत्कृत अश्वको किन्नर, किम्पुरुषादि उपदेवताओंमें कौन पकड़नेका साहस करता।

अश्वको मरुधरा सहज ही अनाकर्षक लगनेवाली थी। अतः उसने मरुस्थल तथा पश्चिम भारतका केवल एक बार चक्कर लगाया। वह जिस किसी प्रदेशमें पहुँचा, वहाँके नरेश उसका पूजन करके शत्रुघ्नकुमारको उपहार अर्पित कर गये। उनमें से अनेक पुत्रोंको राज्य देकर अश्व-रक्षकोंमें सम्मिलित हो गये।

अश्व पुनः हिमालयकी ओर लौटा और वहाँसे पूर्व चल पड़ा। पूर्वमें मिथिला, विदर्भके राजकुमार तो अश्व-रक्षकोंमें ही थे। इन दोनों प्रदेशोंमें कुमार शत्रुघ्नको सम्पूर्ण सेनाके साथ सत्कार स्वीकार करना पड़ा। जब तक अश्व इनकी सीमामें रहा, समस्त सैनिकोंके आहार, शयनादिकी व्यवस्था इनके अधिपतियोंने अत्यन्त स्नेहपूर्वक की।

अंग, बंग, कलिंगमें अश्व इस क्रमसे नहीं गया। वह अंग देशसे कलिंग (उत्कल)की ओर मुड़ गया और वहाँसे मुड़कर बंग पहुँचा। इन प्रदेशोंके आस्तिक अधिपति लोगोंने भी अश्वका स्तवन किया। उन्होंने भी उपहार दिये। श्रीरघुनाथका दिगन्त-धवल सुयश, उन दशग्रीव-दलनकर्ता-का पराक्रम जानते हुए, शत्रुघ्नकुमारके साथकी असंख्य सेनाको प्रत्यक्ष देखकर किसे मरनेकी शीघ्रता थी कि वह अश्वको पकड़नेका साहस करता।

राजा सुरथसे युद्ध

अखिल लोक-वन्दनीया देवमाता अदितिका कर्ण-कुण्डल गिरनेसे जिस स्थानका नाम ही कुण्डलपुर पड़ गया था, राजा सुरथके प्रशासनने उसे सृष्टिका आदर्शतम राज्य बना दिया था। पूरे राज्यमें सब एकपत्नीव्रत पालक थे। चोर, अनाचारी, सुरापी, परस्व-हारी उस राज्यमें सुना ही नहीं जाता था। कोई पापी नहीं, कोई असन्तुष्ट नहीं, कोई लोभी नहीं फलतः कोई रोगी नहीं, कोई दरिद्र नहीं, कोई अभावग्रस्त नहीं।

नरेश परम राम-भक्त थे। प्रजामें भी सब राम-भक्त! अनेक भव्य श्रीराम-मन्दिर बने थे स्थान-स्थानपर। सब अपने वर्णाश्रम धर्मका पालन करते हुए रामनामका निरन्तर जप करते रहते थे। रामार्चन तथा रामकथा-श्रवण एकमात्र सबका प्रिय कार्य था। प्रत्येक प्रतिदिन अश्वत्थ और तुलसीका पूजन करता था। सब घरोंमें गायें थीं। सबको गो-पूजन, गो-सेवा सुलभ थी।

न कहीं झगड़ा, न संघर्ष। किसीके समीप इन व्यर्थ बातोंके लिए समय नहीं था। परनिन्दा, परचर्चा कहीं नहीं चलती थी। सब सन्तुष्ट थे, अतः समय बहुत था सबके समीप; किन्तु सब मानते थे कि भगवच्चर्चा, नाम-जप, पूजनमें वे पर्याप्त समय नहीं दे पाते हैं।

उस राज्यमें पाप-परायण पामरका प्रवेश ही नहीं था। धर्मार्जित भोग भोगनेवाले विषयी भी नहीं थे। स्वर्ग वहांके लोगोंको हेय लगता था। अतः वहाँ धर्मपुरुषार्थ भी उपेक्षणीय ही था। उन श्रीरघुनाथके परम परायण भक्तोंके लिए मोक्ष दुर्लभ नहीं था; किन्तु वे सब सर्वथा निष्काम होते हुए भी अपनेको साधक भी स्वीकार नहीं करते थे।

राजासे प्रजातक सबकी एक ही कामना थी— श्रीरघुनाथका प्रत्यक्ष साक्षात्कार। अयोध्या बहुत दूर थी कुण्डलपुरसे। वर्तमान मणिपुर एवं असमसे अयोध्याका मार्ग अब भी बहुत सरल सीधा नहीं है। लेकिन जहाँ सच्ची उत्सुकता है, वहाँ भक्तवत्सल भगवान स्वयं कोई मार्ग अपने

आगमनका बना लेते हैं। श्रीरघुनाथका अश्वमेधीय अश्व बंग देशसे आगे बढ़ा तो आकर कुण्डलपुर ही रुका।

अद्‌भुत थे राजा सुरथ। उनके राज्यमें यमदूतोंका प्रवेश ही नहीं था क्योंकि वहाँ कोई किसी प्रकार अधर्म करता ही नहीं था। मरनेके पश्चात् सब भगवद्धाम जाते थे। यमराज द्वादश महाभागवतोंमें हैं। वे भक्ताचार्य हैं। अतः राजा सुरथकी परीक्षा करके उन्हें वरदान देने वे स्वयं मुनिवेश बनाकर कुण्डलपुर पधारे।

उन जटाधारी, वल्कलवस्त्र मुनिकी राजाने सविधि पूजा करके प्रार्थना की—'आज मेरा जीवन धन्य हो गया। मेरा घर पवित्र हो गया कि आप जैसे तापस पधारे। अब कृपा करके मुझे श्रीरघुनाथका सुयश सुनावें; क्योंकि जीवनमें और कुछ सुनने योग्य ही नहीं है।'

राजाकी बात सुनकर मुनि हँसने लगे। इससे चकित होकर राजा सुरथने पूछा—'भगवन्! आप हँसते क्यों हैं?'

'राजन्! मैं तुम्हारे भोलेपनपर हँसता हूँ।' उन कृत्रिम मुनिने कहा 'तुमने एक कल्पना पाल ली है। तुम यह भी नहीं जानते कि संसारमें सब प्राणी कर्म-परवश है। कर्मसे ही स्वर्ग प्राप्त होता है। कर्मसे ही इस लोकमें धन, धान्य, स्त्री-पुत्र मिलते हैं। सौ अश्वमेध यज्ञ करके पुरन्दर स्वर्गपति हुए हैं। ब्रह्माको भी सृष्टिकर्ता-पद कर्मसे मिला है। तुम उत्तम कर्म पूछनेके स्थानमें अपना समय क्यों नष्ट करना चाहते हो।'

'ब्रह्मबन्धु! अब अपना मुख बन्द करो।' क्रुद्ध होकर नरेशने कहा—'तुम्हारी बातें सुनना भी पाप है। तुम मेरे राज्यसे तत्काल निकल जाओ। तुम ब्राह्मण हो, इससे मैं तुम्हें शरीर-दण्ड नहीं देता। तुम इन्द्र और ब्रह्माकी बात करते हो? इन दोनोंका पद क्या नाशवान नहीं है; तुम कर्मकी स्तुति करनेवाले कौन हो? तुम्हें यह भी पता नहीं है कि कर्म-से प्राप्त गति सदा विनाशवान होती है। अविनाशी पद केवल श्रीरघुनाथ-के स्मरणसे प्राप्त होता है।'

'राजन्! मैं तुम्हारी दृढ़ निष्ठासे सन्तुष्ट हूँ।' राजा सेवक बुलाने जा रहे थे उस मुनिको निर्वासित करनेके लिए; किन्तु मुनि इतनेमें अपने वास्तविक वेशमें प्रकट होकर बोले—'मैं संयमिनीपुरीका शासक यमराज हूँ। तुम मुझसे कोई भी अभीष्ट वरदान माँग लो। मेरा आगमन व्यर्थ नहीं होना चाहिए।'

'श्रीरघुनाथजीकी कृपासे मेरी कोई कामना अपूर्ण नहीं है। मुझे कुछ नहीं चाहिए।' राजा सुरथने माँगा—'लेकिन भगवन् ! आप वरदान ही देना चाहते हैं तो आप धर्मराजसे मैं माँगता हूँ कि श्रीरघुनाथके प्रत्यक्ष दर्शनसे पूर्व मेरी मृत्यु न हो। कोई भी मुझे उससे पूर्व मारने अथवा संज्ञाशून्य करनेमें समर्थ न हो।'

'एवमस्तु !' मृत्युके अधीश्वरने ही वरदान दे दिया। वरदान देकर यमराज अदृश्य हो गये। यमराजके वरदानने परम भक्त राजाकी उत्सुकता अधिक बढ़ा दी। वे जिस स्थितिको अपनेको अनधिकारी मानकर अलभ्य मानते थे, उसे प्राप्त होनेका आश्वासन मिला तो आकुलता अधिक बढ़ गयी—'मेरे नेत्र कब धन्य होंगे ? कब मैं उन भुवनसुन्दरका दर्शन पा सकूँगा।'

'आपके नगरके समीप श्रीरघुनाथका अश्वमेधीय अश्व आया है। सेवकोंने राजाको समाचार दिया—'ऐसा सुन्दर अश्व हमने सुना भी नहीं था। उसके मस्तकपर स्वर्ण पत्र बँधा है रत्नाक्षरोंसे अलंकृत।'

'वह मेरे आराध्यका अश्व है।' राजा सुरथको ऐसा लगा कि साक्षात् श्रीरघुनाथ ही आये हों। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। एक बार तो वे स्वयं उठ खड़े हुए सिंहासनसे। फिर सुप्रसन्न बोले—'मेरे स्वामीका अश्व आया है तो अवश्य उसे लेने वे स्वयं आवेंगे। उन अनन्त करुणासागरने इस क्षुद्रजन पर अनुग्रह करनेके लिए ही यह मार्ग निकाला है। तुम लोग अश्वको ले आओ। किसीका अवरोध मन सुनो; किन्तु उसे आदरपूर्वक ले आओ। युद्ध तो होगा ही, अतः उसे मेरे अन्तःपुरमें लाकर रखो। मेरी रानी अपनी पुत्रवधुओंके साथ अश्वका पूजन करेंगी। वे प्रयत्नपूर्वक उसकी सेवा करती रहेंगी। मैं अभी उन्हें आदेश देता हूँ कि अश्वको कोई कष्ट न हो। उसकी पूजा प्रतिदिन सावधानीसे की जाय। वह आराध्यके समान ही सम्मान्य, सेव्य माना जाय।'

'आप धन्य हैं ! आप-सा स्वामी पाकर हम सब सनाथ हैं।' मन्त्री, सैनिक, सभासद सब प्रसन्न हो गये— 'अब अवश्य आपके इस निर्णयके कारण हम सबको श्रीरघुनाथके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होगा।'

'स्वामिन् ! अश्वका अपहरण हो गया। अश्वके साथ चलनेवाले अग्रचर दलने शत्रुघ्नकुमारके समीप लौटकर निवेदन किया—'समीप कोई

नगर है। उसके राजाके सैनिक आये। हमने उन्हें रोका ; किन्तु वे हमारी बात सुनकर हमारा उपहास करने लगे।'

'अश्वके मस्तकपर स्वर्णपत्र क्या केवल शोभाके लिए बाँध रखा है ?' उन सैनिकोंने कहा— 'जिनमें शक्ति हो, वे अश्व पकड़ें, यह इस स्वर्णपट्टमें लिखा है। शक्तिसिन्धु सर्वेश्वरने केवल तुम लोगोंको ही तो शक्ति नहीं दी है। हम भी उन्हींके आश्रित हैं। अपने अग्रणीसे कह दो कि हम अश्व ले जा रहे हैं। युद्ध-भूमिमें उनका उचित सत्कार करने हमारे अधिपति शीघ्र उपस्थित होंगे।'

'कौन हैं इन सैनिकोंके अधिपति ? किसका राज्य है यहाँ? शत्रुघ्न-कुमारने मन्त्रीकी ओर देखा— 'इस राजाके सैनिकोंके उत्तरमें भी अशिष्टता, अभिमानका लेश नहीं है।'

'यह आगे कुण्डलपुर नगर है। इसके नरेश सुरथ सुप्रसिद्ध रामभक्त हैं। इनकी कीर्तिका गान देवता भी करते है।' मन्त्री सुमतिने परिचय दिया—'इनके राज्यमें परधन, परस्त्री परलोलुप दृष्टि कोई नहीं डालता। यह चर्चा भी तुच्छ है। यहाँ तो प्रजाका कोई जन अपने पुण्यकर्मोंके फलकी भी स्पृहा नहीं करता। यहाँ सबके मुखपर सदा 'राम' नाम रहता है। सब श्रीरामके सुयशका गान करते हैं। सब श्रीरघुनाथकी प्रीति-पगे हैं।'

'काश अयोध्याके लोग भी ऐसे होते ! 'शत्रुघ्नकुमारने दीर्घश्वास ली—'हमारी प्रजाने श्रीरघुनाथपर ही आक्षेप किया और भगवती धरानन्दिनीको प्रभुने निर्वासित किया। सुमति ! तुम कहते हो कि यहाँ कोई अन्यका दोष नही देखता और हम सबको अपने समस्त सद्गुणैकाश्रय अधीश्वरमें भी दोष-दर्शन करते हिचक नहीं हुई। मैं जानता हूँ कि मेरे स्वामी भक्तिपरवश हैं और तुम्हारे वर्णनसे लगता है कि हममें कोई यहाँ-के राजा एवं प्रजावर्गकी भक्तिकी तुलना नहीं कर सकता। आश्चर्य यही है कि ऐसे अनन्य भक्तोंने अपने आराध्यका यज्ञीय अश्व अवरुद्ध करना उचित मान लिया। अब हमारा क्या कर्तव्य है ? भक्तापराध किया नहीं जाना चाहिए और हम अश्वको छोड़ नही सकते हैं।'

'कुमार ! किसी अत्यन्त नीति-निपुणको दूत बनाकर भेजा जाना चाहिए। पता लगना आवश्यक है कि राजा सुरथ अन्ततः चाहते क्या है।' मन्त्री सुमतिने सम्मति दी— 'हमारे मध्य वानर युवराज अङ्गदजी हैं।

जिन्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर दशग्रीवके समीप स्वयं राघवेन्द्रने भेजा था, उनसे अधिक उपयुक्त दूत दूसरा कोई नहीं हो सकता।'

कुमार शत्रुघ्नकी आज्ञासे अङ्गद दूत बनकर कुण्डलपुर गये। उनको राजा सुरथ भगवच्चर्चा करते मिले। उन्होंने अङ्गदका स्वागत करके पूछा —'कपिश्रेष्ठ! आप कैसे पधारे!'

'मैं वानरेन्द्र बालिका पुत्र अङ्गद हूँ। सम्भव है, आपने मेरे दिवंगत पिताका नाम सुना हो। श्रीशत्रुघ्नकुमारका दूत बनकर आपके समीप आया हूँ।' अङ्गदने अपना परिचय देकर कहा—'आपके सेवकोंने श्रीरघुनाथजीके यज्ञीय अश्वको पकड़ लिया है। उनके द्वारा अज्ञानवश यह बड़ा अन्याय हुआ है। अब आप मेरे साथ अश्वरक्षक सेनाके अग्रणी शत्रुघ्नजीके समीप चलो और अश्वके साथ आत्मसमर्पण करो। अन्यथा कुपित शत्रुघ्नके शरोंसे समर-भूमिमें आपको शयन करना पड़ेगा।'

'वानरश्रेष्ठ! आप बात तो ठीक कहते हैं; किन्तु मैं भी क्षत्रिय हूँ। किसीके भी भयसे मैं अश्वको छोड़ नहीं सकता। आप सबको जिनका भरोसा एवं बल है, वे श्रीरघुनाथ ही इस क्षुद्रजनके भी आश्रय हैं।' राजाने शान्त स्वरमें कहा—'यदि भगवान श्रीराम स्वयं पधारें, मुझे दर्शन दें, तब तो यह राज्य, मेरे पुत्रादि तथा मैं उनका सेवक हूँ ही किन्तु मैं उनके न आने तक अश्व नहीं दूँगा। क्षत्रिय धर्म ही ऐसा है कि इसमें स्वामीसे भी विरोध करना पड़ता है। आप अपने नायकसे कह दें, मैं उनका युद्धमें उचित सत्कार करूँगा। वे कुण्डलपुरमें युद्ध बन्दी बननेको प्रस्तुत रहें।'

'राजन्! जिन्होंने लवणासुरका वध किया, अभी कुछ ही काल पूर्व विद्युन्माली राक्षसको मारा है, उन वीर-शिरोमणि शत्रुघ्नको बन्दी बनानेकी बात करनेका तुम साहस करते हो?' अङ्गद आवेशमें आ गये— 'तुम्हारी बुद्धि ठिकाने है? वीरभद्रके छक्के छुड़ा देनेवाले भरतपुत्र पुष्कलको वन्दी बना सकोगे? अनन्तपराक्रम पवनपुत्र हनुमानका नाम सुना है तुमने? सौ योजन समुद्र कूदकर दशग्रीवकी उपस्थितिमें लंका जला देनेवाले आञ्जनेयको कोई बन्दी कर सकेगा? सम्पूर्ण पृथ्वीको ध्वस्त करनेमें समर्थ वानरेन्द्र सुग्रीवसे युद्ध करोगे? कुशध्वज, नीलरत्न, रिपुताप, सुबाहु, प्रतापाग्रय, विमल, सुमद, वीरमणि जैसे प्रख्यात अस्त्रवेत्ता शत्रुघ्नकी सेवामें रहते हैं। इन शूरोंके समुद्रमें एक मशक जैसे

तुम होते किस गणनामें हो। शत्रुघ्न दयालु हैं, अतः दुर्बुद्धि त्यागकर उनके समीप चलो। पुत्रों सहित अश्व उन्हें समर्पित करके श्रीरामके दर्शन करने अयोध्या चले जाना। हम तुम्हारी यात्राकी व्यवस्था कर देंगे।'

'यदि मैं मन, वाणी कर्मसे श्रीरघुनाथका सच्चा दास हूँ तो वे मेरे दयालु स्वामी अवश्य यहीं आकर मुझे दर्शन देंगे।' अङ्गदकी उत्तेजनापूर्ण बात सुनकर भी राजा सुरथ शान्त थे—'अन्यथा शत्रुघ्न, हनुमान आदि वीर मुझे बाँध लें और बलपूर्वक अश्व ले जायँ। आप लौटो और अपने नायकसे कहो कि मैं अपने योद्धा लेकर शीघ्र युद्ध-भूमिमें आ रहा हूँ।'

अङ्गदको लौट जाना पड़ा। उनका सन्देश पाकर कुमार शत्रुघ्नकी सेनाके सब वीर युद्धोद्यत हो गये।

राजा सुरथके दस वीर पुत्र थे—चम्पक, मोहक, रिपुञ्जय, दुर्वार, प्रतापी, बलमोदक, हर्यश्व, सहदेव, भूरिदेव और असुतापन। ये सभी रथोंपर बैठकर युद्धके लिए निकले। शीघ्र द्वैरथ युद्ध प्रारम्भ हो गया। पुष्कल पवनपुत्रसे रक्षित होकर चम्पकसे, जनककुमार लक्ष्मीनिधि कुशध्वजको साथ लेकर मोहकके साथ, रिपुञ्जयके साथ विमल, इस प्रकार दोनों दलोंने अपने प्रतिद्वन्द्वी चुन लिए। युद्धवाद्य बजने लगे। दोनों ओर अपने पक्षका जयघोष होने लगा।

विचित्र अनुभव हो रहा था शत्रुघ्नके पक्षको। कुमार पुष्कलने अपने सम्मुख उपस्थित चम्पकसे नाम पूछा तो उस राजकुमारने कहा—'यहाँ नाम या कुलसे युद्ध नहीं होगा। युद्ध होगा वाणोंसे, फिर भी पूछते हो तो सुनो—श्रीराम ही मेरे पिता, माता, बन्धु, सर्वस्व हैं। मेरा सच्चा नाम रामदास है। वैसे लोग मुझे यहाँका ज्येष्ठ राजकुमार चम्पक कहते हैं।'

पुष्कलको प्रसन्नता हुई। सत्पुरुषसे शत्रुता भी उत्तम; किन्तु कुपुरुषकी प्रीति भी पतनका कारण बनती है। पुष्कलने शर-वृष्टि प्रारम्भ करते कहा—'वीर! तुम जैसे नैष्ठिक श्रीराम-भक्तसे तो पराभवमें भी गौरव ही है।'

अजस्र वाण-वर्षा—पुष्कल निपुण योद्धा थे। अब तकके अनेक युद्धोंमें विजयी रहे थे; किन्तु उनके वाणोंको चम्पक टुकड़े किये दे रहे थे। पुष्कलको उन्होंने अपने प्रहारोंसे बहुत पीड़ित किया। पुष्कल अपने प्रति-

द्वन्द्वीके वाणोंको सर्वथा काट नहीं पा रहे थे। समझ लिया कि उद्भट अस्त्रज्ञसे काम पड़ा है, तब ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया।

बिना डरे, बिना तनिक भी हिचके राजकुमार चम्पकने भी ब्रह्मास्त्रसे ही उत्तर दिया। दोनों अस्त्र परस्पर टकराये, इतना प्रचण्ड तेज प्रकट हुआ, मानो प्रलय हो जायेगी। एक बार पूरी सेना, शत्रुघ्न तक चौंक पड़े; किन्तु केवल एक क्षण। दूसरे ही क्षण चम्पकने दोनों अस्त्रोंको शान्त करके आकृष्टकर लिया। ब्रह्मास्त्रके उपसंहारका यह अद्‌भुत कौशल देखकर स्व-पर सभी पुकार उठे—'कुमार चम्पक धन्य हैं! धन्य हैं!'

'पुष्कल सावधान!' चम्पकने पुकारकर चुनौती दी—'तुमने दिव्यास्त्रका प्रयोग करके मुझे भी वैसा करनेको बाध्य किया। अब समर्थ हो तो अपनी रक्षा कर लो!'

पुष्कलने देख लिया कि चम्पकने अमोघ रामास्त्र सन्धान किया है। अन्ततः उन्होंने भी तो अमोघ ब्रह्मास्त्र ही पहिले उठाया था। बहुत वाण मारे पुष्कलने; किन्तु वे तो रामास्त्रके समीप जाकर स्वयं गिर पड़ते थे। कोई भी दिव्यास्त्र कैसे काट सकता था उसे; किन्तु रामास्त्र संहारक तो नहीं है। वह दिव्यास्त्र आया तो उससे अद्‌भुत पाश प्रकट हुए। उन पाशोंने पुष्कलको भली प्रकार जकड़ दिया।

'अब चलो और चुपचाप कुछ काल हमारे कुण्डलपुरके कारागारका आतिथ्य ग्रहण करो।' चम्पकने रथ बढ़ाकर पुष्कलके रथसे सटाकर खड़ा किया। पुष्कलको अपने रथपर खींच लिया। पुष्कलके सारथीको रथ भगा ले जानेका समय ही प्राप्त नहीं हुआ था।

'राजकुमार चम्पक पुष्कलको बन्दी बनाकर अपने नगरमें ले जा रहा है!' शत्रुघ्नकी सेनाके लोग एक साथ पुकार उठे। उसमें एक भी महारथी ऐसा नहीं था जो चम्पकको रोकने आगे बढ़ता; क्योंकि सबके साथ कुण्डलपुरके योद्धा भिड़े थे। शत्रुघ्न पक्षके शूरोंको अपनी ही रक्षाके कठिन संघर्ष करना पड़ रहा था।

'पुष्कल बन्दी हो गये;' अङ्गद चौंके। उनको अब लगा कि राजा सुरथने डींग नहीं मारी थी सबको बन्दी बनानेकी। उस जैसे नैष्ठिक राम-भक्तके लिए कुछ भी अशक्य नहीं हैं। उसके युवराजने बहुत बड़ेसे बन्दी बनाना आरम्भ किया।

पवनपुत्रपर पुष्कलकी रक्षाका भार था। पुष्कलके बन्दी होते ही वे झपटे। उनको आते देखकर चम्पकने उनपर अजस्र वाण-वर्षा प्रारम्भ की। हनुमानजीने सरकंडोंके समान चम्पकके वाणोंको पकड़कर तोड़ फेंका; किन्तु उनके फेंके शालतरुको चम्पकने भी वाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया। अब हनुमान चम्पकको पकड़कर आकाशमें उड़ गये। वहाँ भी उस पराक्रमी राजकुमारने युद्ध किया। आञ्जनेय उसके आघातोंसे पीड़ित हुए। अन्तमें उसे पैर पकड़कर सौ बार घुमाकर एक हाथीके हौदेपर पटक दिया। वहाँसे मूर्छित होकर चम्पक भूमिपर गिर पड़ा।

चम्पकके साथके सैनिक हाहाकार करने लगे। हनुमानने अब पाश-बद्ध पुष्कलको मुक्त किया। दिव्यास्त्रके पाश तो छुड़ानेका प्रयत्न अन्यके द्वारा किये जानेपर स्वयं अदृश्य हो जाया करते हैं। पाशमुक्त होकर भी पुष्कल अभी युद्धके योग्य नहीं हुए थे। उन्हें रथमें सेनाके पिछले भागमें विश्राम लेने जानेको बाध्य होना पड़ा।

'कपिश्रेष्ठ! तुम धन्य हो। तुम्हारा पराक्रम महान है। तुमने राक्षस-राजधानी लङ्कामें श्रीरघुनाथजीके बहुत बड़े कार्य किये हैं।' पुत्रको मूर्छित देखकर राजा सुरथने रथ बढ़ाया। पवनकुमारके पास आकर बोले—'मेरा पुत्र तुमसे युद्धकर सका, यही उसकी श्लाघ्य शूरता है; किन्तु सावधान! मेरी सत्य प्रतिज्ञा सुन लो। मैं तुम्हें बन्दी बनाकर अपनी पुरी-में अवश्य ले जाऊँगा।'

'राजन्! मैं जिनका सेवक हूँ, तुम भी उन्हीं श्रीराघवेन्द्रके चरण-चिन्तक हो, यह जानता हूँ।' हनुमानजीने बिना रुष्ट हुए कहा—'मेरे दयामय स्वामी भक्त-वत्सल हैं। उनके आश्रितजनके लिए सृष्टिमें अशक्य कुछ नहीं है। अतः तुम अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेका प्रयत्न करो। तुम मुझे बन्दी बना भी लोगे तो मुझे विश्वास है कि मेरे वे सर्वसमर्थ स्वामी अवश्य आकर मुझे बन्धन-मुक्त कर देंगे। श्रीरघुनाथका स्मरण करनेवाले न विफल होते, न दुःख पाते।'

राजा सुरथने तीक्ष्ण शरोंसे वायुनन्दनको विद्ध करना प्रारम्भ किया। उनके वज्रदेहसे भी रक्तकी धारा चलने लगी; किन्तु बलपूर्वक उन्होंने राजाका धनुष पकड़कर तोड़ डाला। राजा सुरथ एकके बाद दूसरा धनुष उठाते गये। हनुमानने अस्सी धनुष तोड़े। वे उग्रतर होते गये। उनकी गर्जनासे मानो गगन फटा जाता हो।

राजा सुरथने शक्तिका प्रहार किया। आहत हनुमान गिरे, पर तत्काल उठ खड़े हुए। अब राजाका रथ पकड़कर वे आकाशमें ले उड़े। ऊपर जाकर रथ छोड़ दिया। भूमिमें गिरकर रथ नष्ट हो गया। घोड़े और सारथी मारे गये। राजा सुरथ दूसरे रथपर दौड़कर बैठे। उस रथकी भी यही गति हुई। इस प्रकार हनुमानने राजाके उनचास रथ नष्ट किये।

'धन्य हो तुम! सचमुच परम पराक्रमी हो!' राजा सुरथने पुकार कर प्रशंसा की—'एक क्षण रुको! इस बार मेरे अस्त्रसे सावधान हो जाओ!'

राजा सुरथने पाशुपत अस्त्र सन्धान करके संकल्प किया—'इससे किसीका संहार न हो। इन कपिश्रेष्ठको भी कोई पीड़ा न हो। केवल ये पाशबद्ध हो जायँ।'

अमोघ पाशुपतास्त्रसे पाश प्रकट हुए। हनुमान उन पाशोंके बन्धनमें जकड़ गये; किन्तु यह संकल्प तो था नहीं कि वे कब तक बन्धनमें रहें। पवनपुत्रने श्रीरामका स्मरण किया। उनके अल्प प्रयत्नसे ही वे पाश जैसे स्वयं छूट गिरे।

'अच्छा!' राजा सुरथको युद्धोद्यत हनुमानको देखकर आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने इस बार ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। सुरथको कहाँ पता था कि पवनपुत्रको शैशवमें ही ब्रह्माजी अपने अस्त्रसे अभय दे चुके हैं। हनुमानने ब्रह्मास्त्रको एक बार मस्तक झुकाया। इतना आदर पर्याप्त था। फिर तो मुख खोलते ही ब्रह्मास्त्र उनके मुखगह्वरमें लीन हो गया।

'राजन्! और कोई अमोघ अस्त्र है तुम्हारे समीप?' हँसकर हनुमानने राजा सुरथको ललकारा।

'है क्यों नहीं।' सुरथने हतप्रभ हुए बिना धनुषपर इस बार रामास्त्र चढ़ाया। उससे प्रकट पाशोंसे जब पवनपुत्र जकड़ गये, तब बोला—'अब तुम बन्दी हो गये।'

'राजन्! तुमने मेरे स्वामीके अस्त्रसे ही मुझे बाँधा है। इस अस्त्र-का आदर तो मुझे करना ही पड़ेगा।' हनुमानजीने शान्त स्वरमें कहा—'तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी। मुझे अपने नगरमें ले चलो। मेरे स्वामी स्वतः आकर मुझे मुक्त करेंगे। उनके चरणाश्रितोंको भवपाशकी भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। अपने जनोंको वे विस्मृत नहीं हुआ करते। मुझे विश्वास है कि मेरे बन्धनमें आते ही अवश्य वे अयोध्यासे चल पड़े होंगे।'

'आप उनको पुकारो!' सुरथने कहा—'उनके आये बिना मैं आपको छोड़नेवाला नहीं हूँ।'

पुष्कल स्वस्थ हो चुके थे। पवनकुमारके बन्दी होनेका समाचार मिलते ही उन्होंने सारथिको पूर्ण वेगसे रथ दौड़ानेको कहा। आते ही राजा सुरथपर दिव्यास्त्रोंकी झड़ी लगा दी; किन्तु जो पवनपुत्रको बाँधनेमें समर्थ हुआ, पुष्कलकी दिव्यास्त्रवृष्टिकी चिन्ता करता वह? राजाने सब दिव्यास्त्र, दिव्यास्त्रोंसे शान्त कर दिये। अन्ततः उनके तीक्ष्णतम नाराचके द्वारा वक्षपर विकट आघात लगनेसे पुष्कल मूर्छित होकर गिर पड़े।

पुष्कलके गिरते ही शत्रुघ्नकुमारका रथ आगे आया। शत्रुघ्नके ललकारनेपर सुरथने कहा—'कुमार! देख ही रहे हो कि तुम्हारे पक्षके प्रचण्ड-पराक्रम पवनकुमारको मैंने बाँध लिया है। तुम शीघ्र अपने अग्रजका स्मरण करो। वे यहाँ आकर तुम्हारी रक्षा करें। अन्यथा मुझसे प्राण बचाना तुम्हें असम्भव हो जायगा।'

सुरथने इतने अधिक वाण चलाये कि उन्हें काट देना अशक्य हो गया। उनको भस्म करनेके लिए कुमार शत्रुघ्नको आग्नेयास्त्रका प्रयोग करना पड़ा। तत्काल सुरथने वारुणास्त्रके द्वारा आग्नेयास्त्रकी अग्नि बुझा दी। दूसरे किसी दिव्यास्त्रको सफल होते न देखकर शत्रुघ्नने सबको सम्मोह-निद्रामें सुप्त कर देनेवाला मोहनास्त्र उठाया।

'यह क्या बचपना है।' राजा सुरथने हँसकर झिड़का 'कुमार! जानते हो कि श्रीरामके चरणाश्रितोंको महामाया भी मोहित नहीं कर पाती, उसे अस्त्र-प्रभाव मोहित कर लेगा?'

'भवपाशभञ्जक ज्ञानघन राघवेन्द्रकी जय!' कहकर सुरथने वाण छोड़ा। शत्रुघ्नका मोहनास्त्र कटकर गिर पड़ा। अब सुरथने अपने धनुषपर एक प्रज्वलित वाण चढ़ाया। यद्यपि कुमार शत्रुघ्नने उस शरको मार्गमें ही काट दिया; किन्तु उसका अग्रिम भाग उनके वक्षमें पूरा धस गया। मूर्छित होकर शत्रुघ्न रथपर गिर पड़े।

राजा सुरथकी विजय हो गयी। शत्रुघ्नके पक्षके सब प्रधान शूर सुरथके पुत्रोंके प्रहारसे मूर्छित हो चुके थे। पवनपुत्र बन्दी थे। सामान्य सैनिक भयसे भागे। अयोध्या दूर—वे वहाँ तक जाकर समाचार भी देंगे

तो बहुत दिन लगेंगे। दूसरी ओर सुरथके सब पुत्र सुरक्षित थे। चम्पक भी मूर्छा दूर होनेसे सचेत हो गया था।

'मेरे स्वामी ! अब आप ही संकटसे अपने जनोंका उद्धार करो !' श्रीपवनकुमारने मन-ही-मन प्रार्थना प्रारम्भ की--'आपका स्मरण प्राणी-को भयतापसे त्राण देनेवाला है। हम सब आपके आश्रित असहाय हो गये हैं। आपकी ही शक्तिसे राजा सुरथने हमें बाँधा है। पधारो परम कृपालु ! अपने परमभक्त सुरथकी पावन अभिलाषा भी पूर्ण कर दो !'

अकस्मात् गगनसे पुष्कलकी मञ्जु-मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी। वह चन्द्रोज्वल विमान विशाल हंसके समान राजा सुरथके रथके सम्मुख ही उतरा। विमानसे उतरते यज्ञदीक्षाधारी वेशमें श्रीरघुनाथको भरत, लक्ष्मण तथा मुनिगणोंके साथ सुरथने देखा। रथसे कूदकर उन्होंने दण्डवत प्रणिपात किया।

'मेरे सर्वस्व ! इस सेवकका अपराध क्षमा करें !' सुरथ अञ्जलि बाँधकर साश्रुनयन स्तवन करके बोले--'मैंने अश्व-निग्रह करके भारी अपराध किया। आपको आनेका कष्ट करना पड़ा ; किन्तु माता-पिताके वात्सल्यका विश्वास ही बालकसे औद्धत्य करा लेता है। इस सेवकको राज्य एवं पुत्रादिके साथ स्वीकृति देकर सनाथ करें !'

'राजन् ! तुमसे मैं प्रसन्न हूँ। तुमने क्षत्रियोचित धर्मका पालन किया है।' श्रीरघुनाथने कहा--'पवनपुत्रको बाँधकर तो तुमने अकल्पनीय पौरुष प्रदर्शित किया।'

श्रीरघुनाथने स्वयं समीप जाकर हनुमानको पाशमुक्त किया। उनकी दृष्टिपातसे ही शत्रुघ्नादि मूर्छित लोग सचेत हो गये। अयोध्यासे सर्वज्ञ महर्षि वशिष्ठ द्वारा प्रेरित किये जानेसे श्रीराम भाइयोंके साथ पुष्पक पर बैठकर यहाँ पहुँचे थे।

अब तो राज्य श्रीरामका था। सुरथ सेवक थे। वे नगरमें गये। तीन दिन वहाँ रुके रहे। राजकुमार चम्पकका राज्याभिषेक किया ; क्योंकि राजा सुरथ शत्रुघ्नके साथ अश्व-रक्षक बनकर जानेका निश्चय कर चुके थे। चौथे दिन श्रीरघुनाथ अपने साथ आये मुनिगण तथा भरत एवं लक्ष्मण-को लेकर पुष्पकमें अयोध्या जानेको बैठे। विमानके विदा होनेपर अश्व चला। शत्रुघ्न ससैन्य राजा सुरथको लेकर अश्वका अनुगमन करने लगे।

लव-कुश-युद्ध

अश्वमेधीय मन्त्रपूत देवतात्मा अश्व दौड़ता आ रहा था। उसके रक्षक शत्रुघ्नादि सब पीछे छूट गये थे। अचानक आकर वह वाल्मीकि-आश्रमके समीपमें लवके सम्मुख खड़ा हो गया। चन्द्रगौर श्यामकर्ण अश्व, ऐसे अश्वका वर्णन लवने अश्वशास्त्रमें पढ़ा था। सर्वसुलक्षण-सम्पन्न ऐसे अश्व सृष्टिमें सुदुर्लभ हैं; किन्तु अश्वके प्रति कोई लोभ लवके मनमें नहीं जागा। अवश्य वे उसके मस्तकपर बँधे स्वर्णपट्टपर रत्नाक्षरोंसे अङ्कित घोषणा पढ़ने लगे—

'अयोध्याके दशग्रीवजयी चक्रवर्ती सम्राट् श्रीरामका यह अश्व-मेधीय अश्व है। यह जहाँसे जा रहा है, वह समस्त पृथ्वी सम्राट्का अधिकृत क्षेत्र समझा जायगा। जिसे यह स्वीकार न हो, वह अश्वको रोके और संग्राम करे।'

लवको यह अपने शौर्य, साहसको चुनौती प्रतीत हुई। उन्होंने अश्व-को पकड़कर एक वृक्षसे बाँध दिया। स्वयं धनुष चढ़ाकर समीप खड़े हो गये। वे देख लेना चाहते थे कि अरण्यमें मुनि-आश्रमके समीप ऐसी धृष्टता करनेवाले लोग हैं कौन।

अश्व-रक्षकोंका अग्रचर दल अपने अश्व दौड़ाता कुछ ही क्षणोंमें आ पहुँचा। उन लोगोंने एक मुनिकुमार समझा लवको। उन्हें यह भी लगा कि बालचापल्यवश बालकने अश्व बाँधा है। वे अश्व खोलने आगे बढ़े तो लवने ललकारा—'सावधान; अश्व मैंने बाँधा है। तुम्हारा अश्व अवश्य अत्यन्त दुर्लभ श्रेणीका है; किन्तु मुझे उसका लोभ नहीं है। तुम उसके मस्तकपर बँधा घोषणापत्र खोलकर पृथक करनेके पश्चात् अश्व ले जा सकते हो। इस स्वर्णपट्टको खोलनेसे पूर्व जो अश्व खोलनेका साहस करेगा, उसे मरना पड़ेगा।'

लवकी इस चेतावनीको भी उन लोगोंने बालकका विनोद माना। दो सैनिक अश्वको खोलनेके प्रयत्नमें जैसे ही लगे, लवने धनुषपर वाण

चढ़ाकर फिर चेतावनी दी—'अश्वसे दूर हट जाओ, अन्यथा मारे जाओगे।'

सैनिक हँस पड़े। इतने छोटे सुकुमार बालककी उन्हें चिन्ता नहीं थी। इस बालकने वाण भी चलाया तो आशा थी कि वह उनके सुदृढ़ कवच से टकराकर गिर जायगा। लवने उन्हें चेतावनीकी उपेक्षा करते देखा तो वाण मारकर उनकी भुजाएँ काट दीं। उनके सुदृढ़ कवच कोमल पुष्प-पंखड़ीके समान कट गये। इससे चौंककर शेष सैनिक पीछे शत्रुघ्नकुमारको समाचार देने भाग गये।

'एक इन्दीवरसुन्दर, विशाल-लोचन तेजस्वी सोलह वर्षकी लगभग वयके बालकने अश्वको बाँध रखा है। वह वेशसे मुनिकुमार लगता है।' अश्व-रक्षकोंने सूचना दी। जटाजूट, कृष्णमृग-चर्मका उत्तरीय देखकर वे मुनिकुमारके अतिरिक्त और क्या समझते लवको!

'मुनि-बालककी अवज्ञा करना अनुचित है।' शत्रुघ्नने अपने जिन सैनिकोंकी भुजा कटी थी, उन्हें उपचारके लिए पिछले शिविरमें भेज दिया। उनके छिन्न बाहु उनके साथी उठा लाये थे। ऐसे अङ्गोंका पुनः सन्धान राजभिषक् सरलतापूर्वक कर सकते थे। सेनानायकको भेजा उन्होंने—'वे अस्त्रज्ञ हो सकते हैं; किन्तु उन्हें समझाकर अश्व प्राप्त करनेका प्रयत्न करो। दाम-लोभ तथा भेद उनके साथ सम्भव नहीं है। साम सर्वथा असफल हो जाय, तभी दण्ड-युद्धका आश्रय लेना उचित होगा।'

'आश्चर्य है कि आप अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट् श्रीरामको नहीं जानते। उनकी सुरासुर-विजयिनी रणबाहिनी और उनके अनुज इस अश्व-रक्षामें नियुक्त हैं।' सेनानायकने जाकर समझाया—'आप बालक हैं। अश्वको जिन्होंने भी रोका, उन प्रख्यात शूरोंको पराजित होना पड़ा है। आप अश्वको बन्धन-मुक्त कर दें! आपको अश्व इष्ट हो तो...।'

'मुझे अश्व नहीं चाहिए।' लवने बीचमें रोक दिया। 'उसके भाल-पर बँधा पत्र खोलो और अश्व ले जाओ। तुम लोगोंमें युद्ध करनेका साहस नहीं था तो ऐसा घोषणा-पत्र घोड़ेके सिरपर क्यों बाँधा?'

सेना-नायक अपना-सा मुख लेकर लौट गया। उसकी बात सुनकर स्वयं शत्रुघ्नकुमार समझाने आये; किन्तु लवका निश्चय अविचल था—'इस घोषणापत्रके साथ घोटक यहाँसे नहीं जा सकता। मैं किसी सम्राट्-को न जानता हूँ, न जानना चाहता हूँ।'

शत्रुघ्नने सैनिकोंको आज्ञा दी कि घेरकर लवको विवश कर दें। मुनिकुमारपर अस्त्र-शस्त्र प्रयोग करके उन्हें आहत करना किसी प्रकार मन स्वीकार नहीं कर रहा था और अश्वको बन्धन-मुक्त करना अनिवार्य था।

लवके धनुषसे होती शर-वर्षासे जब सैनिकोंके कर, पद, मस्तक कटकर गिरने लगे, अश्व, गज, रथ खण्ड-खण्ड होने लगे तब शत्रुघ्न और दूसरोंका भी यह भ्रम दूर हो गया कि उनके सामने कोई साधारण मुनि-कुमार है। यह आश्चर्यकी बात थी कि अकेले एक बालक भूमिपर धनुष लिए खड़ा था और अश्व, गज तथा रथपर आरूढ़ समरकुशल शूर सैनिकों-की अनवरत अस्त्र-शस्त्र-वर्षा भी उसका कोई अहित करनेमें समर्थ नहीं थी। वह दूसरोंके अस्त्र-शस्त्रोंके टुकड़े उड़ाये दे रहा था। जैसे स्वयं भगवान त्रिपुरारि मुनिकुमार बने धनुष लिये आ खड़े हों, इतना दुर्धर्ष, इतना प्रचण्ड! प्रतिपक्षका अपार संख्या-बल और अतुलनीय श्रेष्ठता अस्त्र-शस्त्रोंकी नगण्य कर रखी थी उसने। इससे अच्छा अवसर देश-भ्रमण-का व्यावहारिक युद्धानुभवका उन्हें मिल नहीं सकता था। पृथ्वीके श्रेष्ठ-तम शूरोंसे परिचय हो चुका था उनका। अधिकांश युद्धोंमें विजय पायी थी उन्होंने; किन्तु आज रथारूढ़ होकर भी वे एक पैदल समवयस्कप्राय बालकसे पार नहीं पा रहे थे।

झुँझलाकर पुष्कलने ही प्रथम दिव्यास्त्र उठाया; किन्तु जब लवने उनके आग्नेयास्त्रको वारुणास्त्रसे शान्त कर दिया; तब दिव्यास्त्रोंकी वर्षा भी सामान्य बात हो गयी। शत्रुघ्नको अब स्वयं युद्धमें सम्मिलित होना पड़ा। राजकुमार पुष्कल मूर्छित हो चुके थे। अत्यन्त आहत हो गये थे लवके प्रहारोंसे।

'कुश! तुम्हारे अकेले अनुज बड़ी भारी सेनाके साथ संग्राममें उलझ गये हैं।' वाल्मीकि-आश्रमके ब्रह्मचारी बालकोंने दूरसे यह संग्राम देखा और भागकर कुशको समाचार दिया—'आयुष्मान लवने किसीका एक उज्वल श्यामकर्ण अश्व बाँध लिया पकड़कर; क्योंकि उसके मस्तकपर चुनौती भरा अशिष्ट स्वर्णपत्र अङ्कित है। लगता है कि उस अश्वके स्वामी के सैनिक आ गये हैं। उन्होंने लवको घेर लिया है। बहुत बड़ी सेना है। सहस्रों रथ, अश्व, गज, पदाति हैं। सब अकेले लवपर आघात कर रहे हैं।'

'अकेले बालक लवपर इतने लोगोंने आक्रमण कर दिया है ?' कुशको अपनेसे कुछ क्षण छोटे लव सदा बच्चे लगते रहे हैं। क्रोधसे उनकी भृकुटि कठोर हो गयी। अधर फड़के। धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर ज्याघोष किया उन्होंने और दौड़े।

'यह उग्रतम ज्याघोष !' हाथी चीत्कार करके भागे। अश्वों तथा रथोंको बहुत परिश्रमपूर्वक नियन्त्रित करना पड़ा। अयोध्याके सैनिक चौंके—'स्वयं सम्राट् आये युद्धमें ? इतना प्रचण्ड ज्याघोष तो केवल श्रीरामके धनुषकी प्रत्यञ्चासे प्रकट होता है ?'

जैसे लवकी दूसरी मूर्ति आ गयी रणक्षेत्रमें ; किन्तु लवकी अपेक्षा अधिक क्रुद्ध, अधिक उग्र, अधिक असह्य। अभाग्य प्रतिपक्षका ; क्योंकि युद्ध-भूमिमें पहुँचते ही कुशने देखा कि किसीके आघातसे उनके अनुज मूर्छित होकर गिर रहे हैं। असह्य था यह कुशको। उनके धनुषसे प्रलयकालीन मृत्युवर्षा होने लगी थी। अयोध्याके सैनिकोंके शवोंसे पृथ्वी आच्छादित हो उठी थोड़े क्षणोंमें।

'तुम्हारे त्रोणमें जितने दिव्यास्त्र हों, प्रयोग करके देख लो !' कुश-ने भयानक स्वरमें चुनौती दी— 'समरशैया प्राप्त करनेसे पूर्व प्रहारकी तुम्हारी कोई आकांक्षा अधूरी न रह जावे !'

शत्रुघ्न समझ चुके थे कि उनको पूरी शक्तिसे युद्ध करना है। उन्हें अत्यन्त तुच्छ मानकर, उपेक्षणीय समझकर इस प्रकार चुनौती देनेका साहस करनेवाला असाधारण अस्त्रज्ञ है।

'ये कितने हैं ?' शत्रुघ्न बड़े असमंजसमें पड़े— इन्हें कोई वरदान है कि एकके मूर्छित होते ही उसकी दूसरी मूर्ति स्वयं प्रकट हो जाया करेगी ?'

असुरोंमें अनेकोंको ऐसे वरदान प्राप्त होनेकी बात विख्यात है कि उनके रक्तके पृथ्वीपर गिरते ही उससे वैसा ही दूसरा असुर उठ खड़ा होता था। ऐसे वरदान ब्रह्मा या आशुतोष ही दिया करते हैं तो वे किसी मुनिकुमारको भी तो ऐसा वरदान दे सकते हैं।

एक और आशङ्काने शत्रुघ्नका हृदय उन्मथित कर दिया था। कुशने आते ही उन्हें सभी दिव्यास्त्रोंके उपयोगकी चुनौती दे दी थी। दिव्यास्त्रोंमें

तो ब्रह्मास्त्र , पाशुपतास्त्र , नारायणास्त्र भी हैं। तब क्या यह बालक इन सब अमोघास्त्रोंका वेत्ता और इनके उपशममें समर्थ है ? ये सब दिव्यास्त्र तो लक्ष्मणके भी पास हैं ; किन्तु इनके उपशममें समर्थ अकेले श्रीराम हैं।

शत्रुघ्नका हृदय धड़क उठा—'कहीं उनके सर्व-समर्थ लीलामय अग्रज ही तो इन बालरूपोंमें उपस्थित होकर उनकी परीक्षा नहीं ले रहे हैं ?'

'नहीं , मर्यादापुरुषोत्तम अपने ही आश्रितोंपर कभी आघात नहीं कर सकते। उन भक्तवत्सलसे यह कृत्य असम्भव है।' इतनेपर भी बुद्धि कोई समाधान नहीं पा रही है। 'स्वर , आकृति और प्रकृतिमें , रंग-रूपमें दोनों बालक श्रीरामकी दूसरी मूर्ति जान पड़ते हैं। दोनोंका चलने-बोलनेका ढंग , दोनोंका ज्याघोष , दोनोंकी स्फूर्ति और अब यह इनकी दिव्यास्त्रके सम्बन्धमें चुनौती ?

शत्रुघ्नने महर्षि वाल्मीकिके समीप सौम्य-शान्त वेशमें इन दोनों बालकोंको अनेक वर्ष पूर्व देखा है। तब ये द्वादशवर्षीय थे। बालकोंके रूप-रंगमें परिवर्तन शीघ्र होता है। अब इनका यह धनुर्धर स्वरूप—इस युद्धकी उत्तेजनामें कुछ स्मरण नहीं आ रहा है। उस समय भी इनका परिचय नहीं प्राप्त हुआ था। केवल इतना लगता है कि ये कहीं देखे हुए हैं। इनको देखकर अपने सर्व-समर्थ सम्राट् बार-बार स्मरण आते है।

इनकी मर्यादा-निष्ठा—बालक होकर , पदाति होकर भी इन्होंने अपनी ओरसे प्रथम किसी दिव्यास्त्रका प्रयोग नहीं किया। यद्यपि इनपर गज , रथ , अश्वारोही असंख्य सैनिक आक्रमण कर रहे हैं ; किन्तु ये सामान्य शरोंसे ही सबके अस्त्र-शस्त्रोंके टुकड़े उड़ाये दे रहे हैं। सैनिकोंके शव बिछते जा रहे हैं। ये दिव्यास्त्र तभी उठाते हैं , जब प्रतिपक्ष उनका प्रयोग करे। अब तक इन्होंने केवल शत्रुके दिव्यास्त्रोंका शमनमात्र अपने दिव्यास्त्रोंसे किया है। अद्भुत है इनका अस्त्रज्ञान , अद्भुत है हस्तलाघव, अद्भुत है शौर्य-धैर्य और अद्भुत है क्षमता।

ब्रह्मास्त्र , रौद्रास्त्र, पाशुपतास्त्र , ब्रह्मशिरस शत्रुघ्नके समीप हैं ; किन्तु इनमेंसे कुछ उठानेका उत्साह नहीं है। कहीं मुनिकुमारके समीप ये न हुए ? अनस्त्रज्ञपर दिव्यास्त्र-उपयोगका पाप हो जायेगा। इससे भी

बड़ा भय यह है—कहीं इनको इन अस्त्रोंका भी कोई उपशम प्राप्त हो, इनसे भी अभयका वरदान मिला हो—इनकी निर्भीकता इसकी सम्भावना सूचित करती है। तब ये भी इनका उपयोग करेंगे और शत्रुघ्नको इनमेंसे किसीका भी उपशम ज्ञात नहीं। ये तो अमोघ अस्त्र हैं।

दोमें-से किसी पक्षने इन अमोघास्त्रोंको नहीं उठाया। शत्रुघ्नने कोई दिव्यास्त्र भी नहीं उठाया। वे उनकी व्यर्थतासे अवगत हो गये। दिव्यास्त्रोंका उत्तर जब दिव्यास्त्रसे लव या कुशने दिया, अयोध्याकी सेनाका ही अधिक विनाश हुआ। अतः दिव्यास्त्रोंका प्रयोग न करना अपने ही हितमें था।

शत्रुघ्न अब सम्पूर्ण शक्तिसे युद्ध कर रहे थे। लवकी मूर्छा दूर हो गयी थी। वे धनुष उठाकर अव्यग्र अपने अग्रजके साथ युद्धमें आ खड़े हुए थे। एकके साथ ही युद्ध भारी पड़ रहा था अयोध्याके सैनिकोंके लिए, अब दो हो गये थे। शत्रुघ्नके प्रहारसे कुश मूर्छित हुए तो लव मानो क्रोध-से प्रलयंकर हो उठे। शीघ्र ही उनके प्रचण्ड प्रहारोंसे शत्रुघ्न समर-भूमिमें गिर गये।

आहत बचे सैनिकोंके समीप अब अयोध्या भागकर समाचार देनेके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं था। समाचार पाकर श्रीराघवेन्द्रने ससैन्य लक्ष्मणको भेजा। समझाया—'जहाँ तक सम्भव हो, मुनिकुमारों-को मारना मत। अश्व प्राप्त करना ही अपना उद्देश्य है। युद्धमें आहत एवं मृतोंको शक्र सुधावर्षा करके पुनः जीवित कर देंगे। अतः उनके लिए शोक मत करना।'

लक्ष्मणने भी आकर मुनिकुमार ही समझा लव-कुशको। युद्ध अविराम चल रहा था। लक्ष्मणने भी समझानेका प्रयत्न किया; किन्तु दोनों भाई अपने निश्चयपर अविचल थे—'युद्ध करनेकी इच्छा न हो तो अश्वके मस्तकपर बँधा स्वर्णपट्ट खोल दो और अश्व ले जाओ।'

कुशने अपने अनुजके समर्थनमें एक तर्क और बढ़ा दिया था—'अरण्य किसीका अधिकृत प्रदेश नहीं हुआ करता। तपोवनोंपर किसी सम्राट्का शासन स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतः अश्वको इस घोषणापत्रके साथ यहाँसे जाने नहीं दिया जा सकता।'

कुशके तर्कका औचित्य स्वीकार था लक्ष्मणको। वे हृदयसे किसी तपोवनको अधिकृत करनेके पक्षमें नहीं थे; किन्तु मन्त्रपूत, देवतात्मा

अश्व जब इधर आ ही गया तो उसके सिरसे स्वर्णपत्र खोलनेका तो अर्थ था कि अयोध्याके सम्राट्ने पराजय स्वीकार कर ली। अश्वमेधका आयोजन अपूर्ण त्याग देना पड़ेगा। यह किया नहीं जा सकता था। अश्वको इस घोषणापत्रके साथ ही अयोध्या लौटनेपर यज्ञ सम्भव था। अतः अश्व लौटानेके लिए युद्ध अनिवार्य हो गया।

इन्द्रजीत-जयी लक्ष्मणको भी सम्मुख खड़े दोनों लड़के उद्धत, आग्रही ही लगे थे आरम्भमें। उन्होंने भी उपेक्षापूर्वक ही सैनिकोंको युद्ध करनेकी आज्ञा दी थी। यद्यपि शत्रुघ्नकी मूर्छा तथा सैनिकोंके सम्मुख पड़े असंख्य शव सन्दिग्ध बना रहे थे। यह सन्देह भी शीघ्र दूर हो गया। शीघ्र लक्ष्मणके साथ आये सैनिकोंकी संख्या भी घटने लगी। अतः लक्ष्मणको स्वयं धनुष उठाना पड़ा। उन्हें भी कुछ ही देरमें अनुभव हो गया कि यदि वे दिव्यास्त्र उठाते हैं तो इससे उनके अपने पक्षकी ही हानि होती है।

'अपने अमोघ दिव्यास्त्र भी प्रयोग करके देख लो!' लवने सिंहनाद करते चुनौती दी।

लक्ष्मणने आग्नेयास्त्र तो नहीं उठाया था; किन्तु सम्मोहनास्त्रका प्रयोग किया था। वे चाहते थे कि दोनों बालक कुछ क्षणोंको मूर्छित हो जायँ तो उन्हें निरस्त्र करके बन्दी बनाया जा सकेगा। अश्वको खोलकर बालकोंको मुक्त कर देंगे। असफल हो गया यह प्रयत्न। लवने संज्ञास्त्रका प्रयोग करके सम्मोहनास्त्रको तो व्यर्थ कर ही दिया, उनके अस्त्रका असह्य तेज, संज्ञाका अतिरेक कुछ क्षणों तक अयोध्याकी सेनाको उन्मादी बनाये रहा। सेनाका व्यूह भंग हो गया। वाहन अस्त-व्यस्त भागने लगे थे।

'अमोघ दिव्यास्त्र?' लक्ष्मण लवकी चुनौतीसे चौंके—'इन बालकोंको उनका भी भय नहीं है? कौन हैं ये?'

लक्ष्मणका हृदय चीत्कार कर उठा— 'अयोध्याकी विजयवाहिनीको महासती आर्याका शाप मार रहा है। उनके अपमानका दुष्फल दैव हमें दे रहा है। अन्यथा असम्भव है कि दो मुनिकुमार इतनी विशाल सेनाको, हमारे छह राजकुमारोंको और शत्रुघ्नको भी समरशय्या देकर अक्षत खड़े रहे। अब ये अमोघास्त्रोंको भी शक्तिहीन सिद्ध कर सकते हैं। आर्याका अन्तस्ताप इनके रूपमें उग्रतेजा बना आ गया है।'

लक्ष्मणका उत्साह नष्ट हो गया। उनको अपने ही मनस्तापने कान्तिहीन कर दिया। युद्ध-भूमिमें कुशने बहुत पहिले चेतना प्राप्त कर ली

थी। अनुजको श्रान्त समझकर वे आगे आ खड़े हुए। लक्ष्मण कुशके आघातोंका केवल उत्तर देते रहे। अपनी ओरसे प्रबल प्रहार करनेका उत्साह ही उनमें नहीं आया। तब भी नहीं आया, जब कुशके प्रहारसे मूर्छित होकर वे रणभूमिमें गिरे।

अयोध्या पुन: समाचार देनेके अतिरिक्त आहत सैनिक और कर क्या सकते थे। वहाँ श्रीरामके समीप भी इसके अतिरिक्त और क्या उपाय था कि भरतको वे अवशिष्ट सैनिकोंके साथ भेजें। भले इससे यज्ञशाला स्वयं असुरक्षित होती हो।

जितने स्वजन-सम्बन्धी थे, वे सब प्राय: शत्रुघ्न और लक्ष्मणके साथ सहायतामें जाकर समर-भूमिमें सो चुके थे। भरतको सम्राट् श्रीरामने सावधान करके भेजा था—'मुनिकुमार अतुलनीय अस्त्रज्ञ प्रतीत होते हैं। उनके साथ युद्धमें तनिक भी प्रमाद भयानक होगा। उनपर दया करना अनावश्यक है।'

भरत संसारके सर्वश्रेष्ठ शूर। मनुष्योंके लिए अजेय-प्राय मायावी गन्धर्वोंको युद्धमें उन्होंने हराया ही नहीं था, करोड़ों गन्धर्वोंका वध करके गन्धर्वोंका पृथ्वीको अपना उपनिवेश बनानेका प्रयत्न सदाके लिए समाप्त कर दिया था। गन्धर्व भरतके भयसे पृथ्वीका ही परित्याग करके भाग गये थे। अकल्पनीय शक्तिशाली, दैत्याकार, गगनचारी, दिव्यास्त्रोंके मर्मज्ञ गन्धर्वोंको इस प्रकार पृथ्वीसे ही भगा देनेवाले भरत युद्ध-भूमिमें आये। उन्हें भी श्रीरामने चेतावनी देना आवश्यक माना था।

जिनके बिना फरके वाणके आघातसे वज्रदेह पवनपुत्र मूर्छित होकर गिर पड़े थे, उनकी शरवर्षाको लवकुश तिनकोंके समान टुकड़े उड़ा रहे थे। भरत कर्णतक प्रत्यञ्चा खींचकर वाण छोड़ते स्वेदसे लथपथ हो गये; किन्तु दोनों कुमारोंने हँसते-हँसते उनकी वाणवृष्टि व्यर्थ कर दी।

'तुम भी अपने अनुजोंके समान अपने मनकी कर देखो!' कुशने हँसकर चुनौती दी—'अयोध्यावालोंको अपने दिव्यास्त्रका असीम गर्व है। तुम्हारे त्रोणमें भी अमोघ दिव्यास्त्र होंगे।'

इस चुनौतीने भरतको चौंका दिया—'शत्रुघ्नने, लक्ष्मणने किन्हीं अमोघ दिव्यास्त्रोंका उपयोग किया? इन कुमारोंको उनको लौटा देना आता है?'

दिव्यास्त्र किसीने नहीं उठाये ; किन्तु अन्तमें भरतकी भी वही अवस्था हुई जो उनके अनुजोंकी हुई थी। वे भी मूर्छित होकर गिर पड़े।

समाचार पाकर श्रीराम अयोध्याके सुरक्षा-सैनिकोंके साथ स्वयं पधारे। उन्होंने आते ही लव-कुशसे पूछा—'तुम दोनों कौन हो !'

'तुमको युद्ध करना हो तो करो !' कुशने कहा—तुम्हें हमारे परिचयसे क्या प्रयोजन है ?'

'मैं अपरिचितपर आघात नहीं करता।' श्रीरामने शान्त स्वरमें ही कहा—'तुमने अश्व पकड़ा है, अतः यह जानना आवश्यक है कि मुनि-कुमार ही हो अथवा देवता, दैत्य, दानवमें कोई इस वेशमें हमारे सामने हैं।'

'किसने कहा कि हम मुनिकुमार हैं ?' लवने सतेज स्वरमें उत्तर दिया— 'महर्षि वाल्मीकि हमारे पालक हैं, आचार्य हैं। हम दोनों क्षत्रिय हैं।'

अबतक यही भूल चली आ रही थी। वेश देखकर लव-कुशको मुनि-कुमार मानते रहे थे सब। किसीने भी उनसे परिचय पूछना आवश्यक नहीं माना था। अब श्रीरामने पूछा—'किसके पुत्र हो तुम ?'

'हमारी माताका नाम सीता है।' कुशने कहा– 'हमें अपने पिता-का नाम ज्ञात नहीं है। पूछनेपर अम्बा रुदन करने लगती हैं, अतः हम जिज्ञासा करके उन्हें अधिक दुःखी नहीं कर सके। हमारे पालक आचार्यने भी हमें नहीं बतलाया। वे प्रतीक्षा करनेकी आज्ञा करते हैं।'

यह परिचय श्रीरामके लिए पर्याप्त था। उनके अपने ही पुत्रोंने अश्व बाँधा था। उनके पुत्र अचिन्त्य-पराक्रम—अयोध्याकी पूरी सेना, भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न भी इन पदाति बालकोंसे पराभूत पड़े थे समर-भूमिमें। इनपर श्रीराम धनुष उठा पाते ?

साथ आये सैनिकोंको, अब तक संग्राममें अविराम जूझ रहे पवन-कुमार, अङ्गद, सुग्रीवादिको युद्ध करनेके लिए उत्साहित करके श्रीरामने रथ एक ओर हटा लेनेका सारथिको संकेत किया। अपनेको विदारध्वज रथमें वे उत्तरीय ओढ़कर सो गये।
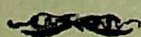
बन्दी पवन-पुत्र

अङ्गद और हनुमान आज अत्यन्त आपदग्रस्त थे। जिनके स्मरणसे आपत्ति-विनिवारण होता है, वे आञ्जनेय विवश हो गये थे। उनके वज्र-देहको भले मेघनाद और रावणके वाण विद्ध न कर सके हों, लव-कुशके वाणोंसे वे विह्वल हो गये थे। इतना व्याकुल वे कभी नहीं हुए थे।

श्रीराम जब रथपर सो गये, अयोध्याकी सेनामें युद्ध करनेको बचा कौन था ? जो सुरक्षा-सैनिक थे, कुछ क्षणोंमें धराशायी हो गये। वानर-वीरोंमें सुग्रीव, नल, नील, द्विविद, मैन्द, गय, गवाक्षादि सबको और ऋक्षराज जाम्बवन्तको भी लव-कुशने मूर्छित कर दिया।

युद्धके प्रारम्भसे हनुमान और अङ्गद वृक्ष तथा शिलाओंकी वर्षा कर रहे थे। अब तक लव-कुश इनके आक्रमणोंका प्रतिषेध करते रहे थे। इनके फेंके वृक्ष तथा शिलाओंके टुकड़े कर देते थे। कई बार हनुमान या अङ्गदने समीप जाकर मुष्टि-प्रहारका प्रयत्न किया; किंतु समीप पहुँचते ही लव या कुश मर्मस्थलोंपर वितस्तिवाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर देते थे। इन नन्हें, तीक्ष्ण, अत्यन्त वेधक वाणोंसे मुख, नेत्र बचानेके लिए प्रत्येक बार पीछे हट जाना पड़ता था। कोई उल्लेखनीय आघात करनेका अवसर अङ्गद या आञ्जनेयको नहीं मिला।

अब समराङ्गणमें जब दो ही वानर बच रहे तो लव-कुश दोनों भाइयोंने इनकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। दोनों वानरोंको वाण मारकर आकाशमें फेंक दिया उन्होंने। अब एक-एकने एक-एकको सम्हाल लिया। हनुमान या अङ्गदमें जो नीचे आने लगता, उसीको वाण मारकर वे अधिक ऊपर उछाल देते थे। लव-कुश अन्ततः बालक थे। उनके लिए यह विनोद क्रीड़ा बन गयी; किन्तु आञ्जनेय और अङ्गदके अंग-अंग वाण-विद्ध हो गये। दोनोंके शरीरसे रक्तका झरना फूट निकला।

'वानर अवध्य होते हैं।' कुशने लवकी ओर तब देखा जब गगनमें दोनों निश्चेष्ट मूर्छित लगने लगे। वाण-प्रहार बन्द हुआ तो दोनों भूमिपर गिर पड़े। कुशने हनुमानको बाँधा भली प्रकार। रणभूमिकी ओर लवने

देखा। कोई प्रतिपक्षी खड़ा नहीं था। शयन करते श्रीरामको भी उन्होंने मान लिया कि किसी बाणके लगनेसे मूर्छित पड़े हैं। दोनों भाई अश्व तथा बन्दी पवनपुत्रको लेकर विजयसे हर्षित आश्रम लौटे।

'अम्ब ! अम्ब ! उटजसे बाहर आओ।' लवने उत्साहपूर्वक पुकारा—'देखो, हम क्या ले आये हैं।'

'क्या ले आये हो तुम लोग !' श्रीजनक-नन्दिनी यह कहती उटजसे निकलीं और पवनकुमारपर दृष्टि पड़ते ही चौंक पड़ीं—'हाय ! तुमने इनको क्यों बाँध रखा है ?'

'अम्ब ! इसे खोलो मत। अयोध्याकी सेनामें यही सबसे अधिक उत्पाती था।' कुशने माताको हनुमानका बन्धन खोलते देखा तो समीप आकर मना किया।

'अयोध्याकी सेना ?' श्रीवैदेहीने पुत्रकी ओर देखा। अब तक उनके कर हनुमानको बन्धन-मुक्त कर चुके थे। उनके सुधास्निग्ध कर आञ्जनेयके क्षतग्रस्त शरीरपर घूम रहे थे।

'अम्ब !' अश्रुपूरित-लोचन हनुमान श्रीमैथिलीके चरणोंपर लुण्ठित हो गये।

'अम्ब, तुमने अश्व तो देखा ही नहीं।' लवने अश्वकी ओर संकेत किया—'यह जिसका अश्व है, वह तो पीछे आया। इसके तीन भाई आये क्रमशः युद्ध करने। इनकी असंख्य सेना थी; किंतु तुम चिन्ता मत करो। अब उनमें सब समर-भूमिमें सो चुके हैं।'

'हाय ! तुम नहीं जानते कि तुमने क्या किया है।' श्रीजानकीने दोनों हाथ अपने सिरपर पटके। वे मूर्छित हो गयीं। लव-कुश दोनों हतबुद्धि खड़े रह गये। उनकी समझमें ही नहीं आया कि उनसे क्या दोष हुआ है।

महर्षि वाल्मीकिको अब तक समाचार मिल चुका था। समाचार तो पहिले ही मिल चुका था अपने ब्रह्मचारी अन्तेवासियों द्वारा; किंतु युद्ध-भूमिमें जाना उन्हें उचित नहीं लगा था। उन्होंने अपने छात्रोंको दूर रहकर युद्ध देखते रहने तथा समाचार देते रहनेका आदेश दे रखा था। युद्धकी प्रत्येक स्थितिसे वे अवगत थे।

कोई आशंका महर्षिको किसी पक्षके सम्बन्धमें नहीं थी। वे आश्वस्त थे—स्मरण करते ही सुरेन्द्र तथा सुरवैद्य अश्विनीकुमार आ जायेंगे। मृत

लोगोंको जीवित तथा आहतोंको स्वस्थ करनेमें विलम्ब नहीं होगा। अतः वे चाहते थे कि अयोध्याके लोग, स्वयं श्रीराम भी उनके शिष्योंका पौरुष देख लें।

'भगवतीके दोनों पुत्रोंने विजय प्राप्त की। अयोध्याकी पूरी सेना समर-शय्या प्राप्तकर चुकी।' अन्तेवासियोंने दौड़कर समाचार दिया था—'लव-कुश अश्वके साथ एक विशाल बानरको भी बाँधकर ला रहे हैं।'

युद्ध दिनके प्रथम प्रहरमें प्रारम्भ हुआ था। इतनी शीघ्र समाप्त हो जायगा, इसकी आशा महर्षिको भी नहीं हुई। समाचार मिलते ही वे श्रीसीताके उटजकी ओर चल पड़े थे।

'वत्से! श्रीरामको कुछ नहीं हुआ है।' महर्षिने सबसे पहिले भगवती वैदेहीको आश्वस्त किया—'उन्होंने युद्ध किया ही नहीं। इन कुमारोंसे परिचय पूछकर वे अपने रथमें सो गये थे। मुझे ब्रह्मचारी बालकोंने सब सुनाया है।'

'अम्ब! सचमुच उन्होंने युद्ध नहीं किया।' कुशने भी सरलतासे कहा—'हमने तो समझा था कि कोई शर लग जानेसे वे रथमें मूर्छित पड़े हैं।'

'भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न अथवा इनके कोई पुत्र मृत नहीं हैं!' महर्षिने देखा कि श्रीजानकी मूर्छासे जगकर भी अवसन्न फटे-फटे नेत्रोंसे उनकी ओर देख रही हैं तो महर्षिने स्थिति स्पष्ट की—'शोकका कोई कारण नहीं है। वे केवल मूर्छित हैं। तुम अपने चित्तको स्थिर करो। युद्ध-श्रान्त अपने इन बालकोंको सम्हालो, विश्राम दो। इनकी भर्त्सना मत करना। इन्होंने शूरोंके योग्य श्लाघनीय शौर्य प्रदर्शित किया है। मैं इनपर प्रसन्न हूँ। सुरेन्द्र और सुरवैद्योंका आवाहन कर रहा हूँ। मूर्छितों तथा आहतोंको अश्विनीकुमार स्वस्थ कर देंगे। मृत मनुष्यों तथा पशुओंको भी शक्र जीवित कर देंगे। अयोध्याकी सेना स्वस्थ-समृद्ध जायगी। तुम तनिक भी चिन्ता मत करो।'

'भगवन्! मैंने तो समझा था कि पुत्रोंने मेरे लिए अनल-प्रवेशका अवसर उपस्थित कर दिया है।' श्रीवैदेहीने भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया।

'वत्से ! धैर्य-धारण उचित है।' महर्षिने संकेतमें ही मन्तव्य स्पष्ट किया—'अभी बालकोंको स्थिति समझानेका अवसर उपस्थित नहीं हुआ है।'

'तुम लोग अपना जननीके साथ जाओ। स्नान करके समर-श्रम दूर करो।' महर्षिने लव-कुशको आदेश दिया—'यह अश्व इन वानरोत्तम-को ले जाने दो। अश्व जिनका है, वे हम सबके सम्मान्य हैं। उनके यज्ञमें बाधा नहीं पड़नी चाहिए।'

महर्षिका संकेत हनुमानने समझ लिया। उन्होंने श्रीजनक-नन्दिनी और महर्षिके चरणोंमें भी मस्तक रखकर प्रणाम किया। दोनोंकी प्रदक्षिणा करके अश्व लेकर वहाँसे समर-भूमिकी ओर चल पड़े।

लव-कुशने समझ लिया था कि यह युद्ध उनके अविवेकसे हुआ। वे दोनों भाई संकुचित हो गये थे। दोनोंने मातासे गंगा-स्नानकी अनुमति माँगी, जो उन्हें प्राप्त हो गयी।

श्रीजानकी अत्यन्त खिन्न हो गयी थीं। उनका मन प्राण, रोम-रोम जिनकी मंगल-कामना करता है, जो आराध्य हैं, सर्वस्व हैं, बालकोंने उनका अपराध किया। जिनकी अर्चा करनी उचित थी, उन गुरुजनोंको आहत किया। इसमें बालकोंका अपराध नहीं है। यह उन्होंने अनजानमें किया; किन्तु अपराध तो किया ही। हृदयपर यह अनुभूति भार बनकर बैठ गयी है।

'अयोध्याके सैनिक यह भी तो मान सकते हैं कि सीताने अपने पुत्रोंके द्वारा अपने निर्वासनका प्रतिशोध लिया है।' इसका कोई समाधान नहीं है। श्रीराघवेन्द्र तथा उनके अनुज उदार हैं। वे बालकोंकी निर्दोषिता समझ सकते हैं; किन्तु उनके समझनेका महत्त्व कहाँ है। वे तो श्री-वैदेहीको भी निर्दोष ही समझते थे—समझते हैं। राजा स्वयं कुछ समझे, उसे प्रजाके समझनेको महत्त्व देना पड़ता है। उसे अपनी समझको स्वीकार करके चलनेका स्वत्व होता......?

महर्षि वाल्मीकि भी इस तथ्यको समझ रहे थे; किन्तु अब जो हो चुका था, उसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता था। एक आशा थी—उचित आशा थी कि शूरोंको किसीका शौर्य सन्तुष्ट करता है। समरमें अयोध्याके सैनिक ही आये थे। वे शूर थे, क्षत्रिय थे। लव-कुशके शौर्य,

अस्त्र-ज्ञानका वे सम्मान करेंगे। इन बालकोंके प्रति उनमें गौरव-बुद्धि जागेगी। जब उन्हें पता लगेगा कि ये श्रीरामके आत्मज हैं, वे इनका सम्मान करेंगे। इन्हें अपनानेके पक्षमें होंगे। वीर अपनेसे अधिक योग्य एवं वीरका आधिपत्य स्वीकार करनेमें हिचकते नहीं। अतः सम्भव है, अयोध्याकी सेना बालकोंको अपना युवराज बनानेके पक्षमें हो जाय।

महर्षि वाल्मीकिने सुरेन्द्र तथा सुरवैद्योंका स्मरण किया। वे यह आवाहन न भी करते तो भी देवराजको यह सेवा करनी थी। अश्विनी-कुमारोंने अविलम्ब अपना कार्य आरम्भ कर दिया।

महर्षि अपने आश्रमवासी शिष्योंके साथ श्रीरामके स्यन्दनके समीप पहुँचे। उन्होंने स्तवन किया—' जो सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, सर्वलोकेश्वर आज धरापर आकर सबके संरक्षक सम्राट् बने हैं, उन उत्तमश्लोकको यह प्राचेतस प्रसन्न करना चाहता है।'

महर्षि वाल्मीकिका स्वर श्रवणमें पड़ते ही श्रीरामने उत्तरीय फेंका और स्यन्दनसे भूमिपर उतर आये। उन्होंने महर्षिको प्रणाम किया। महर्षि-ने आशीर्वाद देकर कहा— ' यद्यपि आप मेरे आश्रमके समीप तक आ गये हैं; किन्तु ऐसा अनवसर है कि मैं आतिथ्य-ग्रहणका आग्रह करनेकी स्थितिमें नहीं रह गया।'

' आपका अनुग्रह और आशीर्वाद पाकर लोकपाल भी कृतार्थ हो जायँगे।' श्रीराम भी जानते थे कि श्रीमैथिलीके वाल्मीकि-आश्रममें रहते वहाँ आतिथ्यग्रहण करने जाया नहीं जा सकता। प्रजा इसका कोई भी अर्थ कर ले सकती है।

' बालकोंने अज्ञानवश जो अविनय की है, उसके लिए वे लज्जित हैं।' महर्षिने भी यह अवसर इससे कुछ अधिक कहनेके उपयुक्त नहीं समझा।

पवनकुमार इस समय तक अश्व लेकर आ चुके थे। श्रीरघुनाथके सचेत होते ही अश्व स्वयं उनके सम्मुख आकर खड़ा हो गया। उसने हिन-हिनाहटके साथ हर्ष-ध्वनि की। हनुमानने भी अपने आराध्यके चरणोंमें प्रणाम किया।

अब तक अश्विनीकुमारोंके प्रयत्नसे भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा इनके सब कुमार सचेत हो चुके थे। वे उठकर सम्राट्के समीप आ गये।

सबने महर्षि वाल्मीकिको प्रणाम किया। अश्वको देखकर ही यह स्पष्ट हो गया कि वह महर्षिके अनुग्रहसे ही प्राप्त हुआ है।

'आप हमें अनुमति दें!' श्रीरामने महर्षिसे प्रार्थना की। वे भी नहीं चाहते थे कि इस समय लव-कुशका परिचय प्रकट किया जाय।

सुरेन्द्रने सुधा-वृष्टि करके सबको जीवित कर दिया था। सैनिक और पशु भी प्राण-लाभ करके स्वस्थ-प्रसन्न हो गये थे। उनके अंग यथावत् हो चुके थे। अश्व अब अयोध्याकी ओर चल पड़ा था, अतः उसका अनुगमन आवश्यक हो गया था।

महर्षिने आशीर्वाद दे दिया। अयोध्याकी सेना सुप्रसन्न लौट पड़ी। केवल हनुमान खिन्न थे। उन्होंने कुछ कहा नहीं; किन्तु लव-कुशका परिचय प्राप्त करनेके पश्चात् वे उन अकल्पनीय वीर बालकोंके अनुरक्त हो गये थे। उन दोनोंको तो कमसे-कम साथ ले चलना ही चाहिए था। आञ्जनेय नहीं समझ पा रहे थे कि उन बालकोंको किस अपराधपर अब यहां छोड़ा जा रहा है। लेकिन आराध्यके निर्णयका विरोध उनके स्वभावमें ही नहीं है। वे मौन बने रहे।

अयोध्याके सैनिकोंकी चर्चाका विषय वे दोनों बालक थे। उनके शील, शौर्य, अस्त्र ज्ञानकी सब भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। महासेनापति तथा भरत तकके मुख पर था —'सुनिश्चित है कि वे ब्रह्मास्त्र-वेत्ता हैं। उनके समीप नारायणास्त्र, पाशुपतास्त्र भी अवश्य होंगे; किन्तु बालक होनेपर भी उनका धैर्य, उनकी मर्यादा-निष्ठा अपने सम्मान्य सम्राट्के अतिरिक्त सृष्टि-में अलभ्य है। उन्होंने अत्यन्त संकटमें होनेपर भी अपनी ओरसे कभी कोई दिव्यास्त्र नहीं उठाया। उनका हस्तलाघव अपूर्व है।'

लव-कुशका रामायण-गान

'अन्तरके आह्लादका उत्स होता है काव्य। इसका उपयोग अन्तर-को आह्लादित करनेमें ही है।' महर्षि वाल्मीकिने लव-कुशको समीप बुला-कर समझाया— 'कला यदि लोक-हृदयको रसाप्लुत नहीं करती तो वह वन्ध्या है। अतः तुम दोनोंको अयोध्या जाना चाहिए। इस समय वहाँ अश्वमेध यज्ञ हो रहा है। समस्त भूमण्डलके ऋषि-मुनि, तपस्वी, राजा-गण, वणिक्-श्रेष्ठ तथा सेवा-निपुण एकत्र हैं। कलाके प्रदर्शनका इससे अधिक उपयुक्त समय एवं स्थान दूसरा नहीं है।'

'तुम दोनों वहाँ नगरमें, यज्ञ-शिविरमें भी रामायण-गान करना। जो भी सम्मानपूर्वक बुलावे, वहाँ जाना। लेकिन किसीके अन्तःपुरमें मत जाना।' महर्षिने अपने शिष्योंको समझाया— 'यदि सम्राट् श्रीराम बुलावें तो उनकी सभामें भी जाना। राजा पिताके समान सम्मान्य होता है। तुम जो चरित-गान करते हो, वह उन्हीं श्रीरामका है। वह उनको सुप्रसन्न करे, यह सबसे श्रेयस्कर उपयोग है इसका। लेकिन वे कोई पुरस्कार दें तो स्वीकार मत करना।'

महर्षिने लव-कुशको सूचित कर दिया कि उनके साथ दूसरा कोई अन्तेवासी नहीं जायगा। अयोध्याकी पान्थशालामें उनको ठहरना है। वहाँ उनके आहारकी व्यवस्था स्वतः हो जायगी।

लव-कुशने सादर महर्षिका आदेश स्वीकार कर लिया। उन्हें कोई सङ्कोच नहीं था। पूछा भी नहीं कि जहाँके सैनिकोंसे, स्वयं राजासे इतना तुमुल संघर्ष उन्होंने किया है, वहाँ जाना उचित है या नहीं। स्नेहमय आचार्य आदेश करते हैं तो सन्देह करनेका कारण श्रद्धालु सच्छिष्यको नहीं रहता।

जननीको जाकर प्रणाम किया। महर्षिने श्रीजनक-नन्दिनीको पहिले समझा दिया था। वे स्वयं भी उत्सुक थीं कि भले वे अपने आराध्यके

चरणोंसे दूर हैं ; किंतु अब इन बालकोंको पिताका आश्रय प्राप्त होना चाहिए। इनका पालन करना माताका कर्त्तव्य था, वह उन्होंने पूर्ण कर दिया। अब ये जिसके हैं, उन्हें अर्पित करके वे अपने कर्त्तव्यसे मुक्त हो सकती हैं। इसका उचित मार्ग जो पिताके समान महर्षि सोचें वही उपयुक्त है।

'तुम दोनों अयोध्यामें किसीका भी असम्मान मत करना।' माताने समझाया— 'वहाँ प्रायः सभी तुम्हारे सम्मान्य हैं। वहाँके सब लोग उदार हैं, स्नेहशील हैं। वे उपहार दें तो आदरपूर्वक ही अस्वीकार करना। हम कुछ भी लेकर क्या करेंगे ? तुम अपने शिक्षककी आज्ञाका पालन करो। तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो !

माताकी परिक्रमा करके, उनके पदोंमें प्रणाम करके दोनों भाइयों-ने प्रस्थान किया। महर्षि वाल्मीकि तथा दूसरे सहपाठी उन्हें आश्रम-सीमा तक पहुँचाने साथ आये। सबने स्वस्ति-वाचन करके विदा दिया।

धनुष, त्रोण अथवा कोई शस्त्र साथ नहीं ले जाना था। वल्कल वस्त्र, वक्षपर कसे कृष्ण मृग-चर्म, सिरोंपर जटाएँ, कुशके करोंमें वीणा और लवके करमें कमण्डलु, केवल इतना उपकरण था दोनोंके समीप। दोनोंको पैदल ही अयोध्या पहुँचना था।

अतिथि भारतमें साक्षान्नारायण माना जाता था। गृहस्थ दैनिक आराधनामें आराध्यसे प्रार्थना करता था कि उसे अतिथि प्राप्त हों। अतः अपरिग्रही व्यक्तिके लिए कहींकी यात्रामें कोई कठिनाई नहीं थी। लव-कुश तो ब्रह्मचारी थे। उनका भुवनसुन्दर रूप किसीके भी प्राणोंको पिघला देनेवाला था। इन्दीवर-सुन्दर अङ्ग, कमलदल-विशाल अरुणाभ लोचन, विशाल बाहु, प्रशस्त भाल, विस्तीर्ण वक्ष, क्षीण कटि, अरुण-कोमल कर-चरण—जैसे सृष्टिकर्त्ताने अपनी समस्त कला इनके सृजनमें व्यय कर दी हो।

जिधर, जहाँ जनपदके समीप पहुँचते थे, बालक-वृद्ध-तरुण, नर-नारी सब दौड़ पड़ते थे। ये इतने सहज, इतने सरल कि किसीके भी कहते ही वीणा झंकृत होने लगती थी और वायु-मण्डल स्वर-माधुरीसे सरस हो जाता था। मनुष्योंकी ही बात नहीं, मृग, पक्षी तक मुग्ध साथ लगे चल पड़ते थे।

लव-कुशने कोई ग्राम भी नहीं देखा था ; किंतु जैसे अपनेमें ये परम सन्तुष्ट , कौतूहलका नाम नहीं । यदि ये किसीका आग्रह स्वीकार करते , इन्हें सदाके लिए अपने समीप ही रख लेनेका सौभाग्य कौन छोड़ देता ? लेकिन यात्री किसीका कैसे हो सकता है ? ये अयोध्याके यात्री थे । लोगोंके अतिशय अनुरोधपर कहीं रात्रि-विश्राम , आहार-ग्रहण, कुछ काल रुक जाना यही बहुत था। इनकी यात्रा चलती रही । इनकी वीणा बजती रही । इनके कलकण्ठसे गुंजित राम-कथा काव्यसे जनपद पवित्र होते रहे ।

'अयोध्यामें अश्वमेध यज्ञ हो रहा है। हमको भी उसका दर्शन करके पवित्र होना है ।' जिनके मनमें उत्सुकता नहीं भी थी , लव-कुशके सौन्दर्यने , उनके स्वर-सौष्ठवने उन्हें उत्सुक बना दिया। लव-कुश अयोध्या पहुँचे तो उनके साथ बहुत बड़ा समुदाय साथ था । उसमें प्रजाके सभी वर्गके लोग थे । अनेक स्थानोंके थे । बहुतसे कुछ आगे भी दौड़ आये थे । लव-कुशके आनेसे पूर्व ही उनकी कीर्ति अयोध्या पहुँच चुकी थी ।

अयोध्या , अश्वमेधके समय बाहरके लोगोंका समुदाय आता ही रहता था। शासनकी ओरसे आगतोंके आवास , आहारादिकी समुचित व्यवस्था थी । राज्यके कर्मचारी सबका सत्कार करते थे। अतः आगतोंके सम्मुख कोई समस्या नहीं थी ।

लव-कुशको श्रोता एकत्र नहीं करने थे । उनके स्वरका आकर्षण श्रोताओंका एक बड़ा समुदाय साथ ले आया था। अयोध्या नगरमें और यज्ञशालाके शिविरोंमें शीघ्र आग्रहपूर्वक उनको आमन्त्रित किया जाने लगा। प्रसिद्ध राजाओंने , श्रेष्ठि-वर्गने ही नहीं , मुनि-मण्डलोंने भी आदरपूर्वक आमन्त्रित किया ।

' अश्रुत-पूर्व गायक , अकल्पित सुमधुर स्वर , साक्षात् पुष्पधन्वाके समान सुन्दर दो युवक गायक आये हैं नगरमें ।' सर्वत्र यही चर्चा— 'अपने सद्गुणैकधाम सम्राट्की ही कीर्ति-कथाका गान करते हैं ; किंतु अतिशय रमणीय है उनका गान-काव्य , सर्वाकर्षक है उनकी शैली ।'

' किसीका कोई उपहार वे स्वीकार नहीं करते ।' इस बातने लोक-श्रद्धाको अत्यधिक उद्दीप्त कर दिया । नगरके नागरिक भी लव-कुशके पीछे घूमने लगे। इन कुमारोंके सङ्गीतके श्रोताओंकी संख्या पहिले ही दिन

सहस्रों तक पहुँच गयी। अन्यत्रसे आये सङ्गीतकारोंने अपने वाद्य धर दिये। नर्तकों एवं अभिनयकारोंकी रङ्गशालाएँ सूनी हो गयीं।

अनेकोंके द्वारा श्रीराम तक लव-कुशके गानकी प्रशंसा पहुँची। यज्ञके विश्राम-कालमें यज्ञशालाके समीपके सभा-मण्डपमें कीर्तन, कथा, सङ्गीत हुआ करता था। वहाँ अब श्रोताओंका अभाव हो गया। यज्ञीय सभासद भी उस समय लव-कुशका गायन सुनने चले गये।

ऋषियोंकी, मन्त्रियोंकी, प्रजाप्रतिनिधियोंकी सम्मतिसे श्रीरामने सुमन्त्रके द्वारा दोनों गायकोंको यज्ञ-मण्डपमें गायनके लिए आमन्त्रित किया। दोनोंने स्वीकार कर लिया। नगरमें यज्ञशालाके समीपस्थ शिविरोंमें भी घोषणा करा दी गयी कि प्राचेतसाश्रमसे आये दोनों गायक कलसे यज्ञशालाके सभा-मण्डपमें ही गान करेंगे।

सभा-मण्डप पहिलेसे पर्याप्त विस्तीर्ण था। उसे अधिक व्यवस्थित किया गया। उसमें महिलाओंके बैठनेकी व्यवस्था पृथक थी। राजपरिवारकी महिलाएँ, नगरकी कुलवधुएँ भी बैठ सकें, यह व्यवस्था थी। राजाओं तथा उनके परिकरको बैठनेके पृथक् स्थान थे। मुनि-मण्डल तथा विप्रवर्ग एक ओर बैठता था। सम्मान्य नागरिक, सामान्य नागरिक, सेवक, सबके ही लिए उपयुक्त स्थान थे। सम्राट्के समीप ही सुरक्षित स्थान था। कभी भी कोई देवता अथवा दिव्य लोकके ऋषिगण आ सकते थे।

'शत्रुघ्न! महासेनापतिने सूचना दी है कि सभी सैनिक इन युवकोंके गायन-श्रवणके उत्सुक हैं।' भरतने सायंकाल ही अनुजको सतर्क किया—'नगर और आगतोंके शिविर भी सुनसान हो जा सकते हैं। अतः सुरक्षाकी सर्वत्र समुचित व्यवस्था आवश्यक है।'

'वही हैं—वही जिन्होंने पृथ्वीपर खड़े रहकर ही हमारी पूरी विजयवाहिनीको पराभूत कर दिया था।' सैनिकोंकी चर्चा अब नगरमें भी फैल चुकी थी—'सृष्टिके ये सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर इतने अनुपम गायक भी हैं, कोई कैसे सोच सकता है? महर्षि वाल्मीकिके ये शिष्य पराक्रममें, अस्त्रज्ञानमें, संगीतमें, अपनी विनम्रतामें अतुलनीय हैं। तुम्बरू इनका संगीत श्रवण कर लें तो इनके सम्मुख वाणा छूनेका साहस नहीं करेंगे।'

सैनिकोंके श्रद्धा-भाजन हो गये थे दोनों कुमार। कोई उनके दिव्यास्त्र-ज्ञानकी प्रशंसा करता था, कोई स्वर-सौष्ठवका स्तवन करता था और

कोई उनके शील, विनम्रतापर मुग्ध था। सैनिकोंमें अनेकोंने कहा— 'कहीं ये हमारे युवराज होते।'

सभास्थलके मध्यमें विस्तृत स्थल था। वह उज्वल आस्तरणसे आच्छादित था। सम्राट्का सिंहासन लगा था। उनके अनुजोंको समीप रहना ही था। चारों ओर सोपानाकार आसनोंकी पंक्तियोंपर मुनिगण, नरपति-वृन्द, नागरिक आकर बैठ चुके थे।

लव-कुश शान्त भावसे आये। वीणा भूमिमें रखकर अञ्जलि बाँधकर मुनिगणोंको, सम्राट्को तथा सभी समुदायको उन्होंने घूमकर मस्तक झुकाया। सम्राट्की अनुमति पाकर मध्यमें बैठ गये। कुशने वीणा उठा ली। लव अपने अग्रजके समीप बैठे। दोनों भाइयोंका मुख सम्राट्की ओर था।

मङ्गलाचरणपूर्वक दोनों भाइयोंने महर्षि वाल्मीकिके आदि काव्यका गायन प्रारम्भ किया। यह गायन तो प्रतिदिनका क्रम बन गया। बाईस अध्याय प्रतिदिनके क्रमसे लव-कुश श्रीरामके चरितका अबतकका अंश सुना रहे थे।

प्रथम दिन ही किसीको पता नहीं लगा कि कब सम्राट् सिंहासनसे उतरकर दोनों गायकोंके समीप उसी आस्तरणपर जा बैठे। महर्षि वसिष्ठ और मुनि-मण्डल तक जब उस अलौकिक संगीतके आकर्षणसे आसनोंसे उतरकर नीचे आ गया था तो सम्राट् या राजाओंका वहाँ आ बैठना आश्चर्यकी बात नहीं थी।

दूसरे दिनसे ही बैठनेकी व्यवस्थामें परिवर्तन हो गया। मध्यका स्थान विस्तीर्ण किया गया। सम्मान अब सिंहासनोंपर बैठनेमें नहीं रह गया। गायकोंके समीप स्थान मिलना सम्मानकी बात हो गयी। अयोध्याकी इस संगीत-सभामें दोनों युवक गायक सबके आकर्षणके केन्द्र हो गये। उनसे दो शब्द बोल लेनेका सुअवसर भी सौभाग्यका, गौरवका प्रतीक माना जाने लगा।

'सम्राट् क्षमा करें!' दोनों बालकोंने उस समय हाथ जोड़ लिए, जब श्रीरामने गायनकी समाप्तिपर अपने कोषका सर्वश्रेष्ठ कण्ठाभरण पुरस्कार देनेके लिए उठाया। यज्ञदीक्षित होनेके कारण सम्राट्के शरीरपर कोई आभूषण नहीं था। कुशने कहा—'हम प्रतिग्रह स्वीकार नहीं करते।

यह संगीत हमारी जन-सेवा है। विश्वात्माकी आराधनाका यह स्वरूप हमारे उपदेष्टाने हमारे लिए निर्दिष्ट किया है।'

'तुम दोनोंने यह अपूर्व काव्य किससे प्राप्त किया ? तुम किसके पुत्र हो ?' श्रीरामने पूछा तो सम्पूर्ण सभा निस्तब्ध हो गयी। यह परिचय प्राप्त करनेको तो सबके हृदय उत्सुक हो उठे थे।

'भगवान् प्राचेतस हमारे पालक हैं, आचार्य हैं। यह उनकी प्रतिभासे उत्पन्न काव्य है। अपनी यह कृति उन्होंने ही कृपा करके हमें प्रदान की है।' कुशने अत्यन्त श्रद्धा-समन्वित स्वरमें कहा।

'भगवान् प्राचेतसकी जय !' सभा-मण्डप गूँज उठा—'महर्षि वाल्मीकिकी जय !'

शीघ्र सब नीरव हो गये। इन युवकोंके द्वारा दूसरे प्रश्नका उत्तर, इनका अपना परिचय प्राप्त करनेकी उत्सुकता अब और अधिक बढ़ गयी।

'हमें अपने पिताका नाम ज्ञात नहीं। पूछनेपर अम्बा अत्यन्त दुःखी हो जाती हैं, अतः हमने आग्रह नहीं किया।' कुशने शान्त स्वरमें कहा—'हम विदेह-राजनन्दिनी सीताके पुत्र हैं। हम दोनों एक साथ उत्पन्न हुए हैं।'

'सीताके पुत्र ?' पूरी सभामें सनसनी व्याप्त हो गयी—'निश्चय अपने सम्राट्के पुत्र ! हमारे युवराज !'

'लक्ष्मण ! भगवान् प्राचेतसको यहाँ पधारनेकी प्रार्थना करो।' श्रीरामने लोगोंमें व्याप्त जनरव सुनकर अनुजको आज्ञा दी। लोग लक्ष्मणको जाते देखकर आगेकी घटनाकी प्रतीक्षा करने लगे। उस दिन सभा विसर्जित कर दी गयी।

भूमिजाका भू-प्रवेश

'अपने युवराज।' अयोध्यामें किसीको लव-कुशके सम्बन्धमें कोई सन्देह नहीं रहा था। आगत नरेशों तथा अन्य जनोंने इसका स्वागत किया था। सैनिकोंमें सबसे अधिक उत्साह था। उन्हें रोक न दिया गया होता तो वे उसी समय लव-कुशका सैनिक अभिनन्दन करते। उन्हें कल तक प्रतीक्षा करनेको कहकर शान्त किया जा सकता था।

'हमारे अग्रज!' भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नके कुमारोंको बहुत ग्लानि थी—'हमने इन आदरणीयोंके विरुद्ध शस्त्र उठानेकी धृष्टता की।'

अब सैनिकोंको और इन कुमारोंको भी अपनी पराजयमें गौरवका अनुभव होने लगा था। यह समुदाय लव-कुशके सङ्गीतका कम, उनके शौर्य एवं शीलका अधिक श्रद्धालु उपासक बन गया था।

'ये जीजीके आत्मज हैं!' उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्तिने माँग की कि दोनों बालकोंको आज ही राजभवनके अन्तःपुरमें आवास प्राप्त होना चाहिये। लेकिन उनको भी कल तक प्रतीक्षा करनेको कहा गया।

'आयुष्मान्! सम्राट चाहते हैं कि तुम दोनों आजकी रात्रि शासकीय विशेष अतिथिशालामें रहना स्वीकार कर लो।' महामन्त्री सुमन्त्रने लव-कुशसे कहा—'तुम समझ ही गये हो कि तुम स्वयं सम्राट्के पुत्र हो। आज अत्यधिक लोग तुम दोनोंसे मिलेंगे तो परिस्थिति जटिल भी हो जा सकती है। आशा है कि कल महर्षि प्राचेतसके साथ तुम्हारी माता भी पधारेंगी।'

लव-कुशने महामन्त्रीकी सम्मति स्वीकार कर ली। उन्होंने यज्ञशाला-में बहुत दूरसे मुख्य यजमानके पार्श्वमें आसीन स्वर्ण-मूर्त्तिके दर्शन किये थे। उन्हें आश्चर्य था कि उनकी अम्बाकी मूर्त्ति वहाँ क्यों है। आज तथ्य प्रकट हुआ। उन्हें भी कल तक प्रतीक्षा ही करनी थी। वैसे उन्हें अयोध्याके

राज्य तथा राजनीतिमें कोई रुचि नहीं थी। वे अपनी अम्बाके समीप रहनेको उत्सुक थे। यदि अम्बा राजसदन नहीं रहतीं तो उनके समीप तपोवनमें ही वे रहेंगे, यह दोनों भाइयोंने रात्रिमें ही निश्चय कर लिया।

दूसरे दिनकी सभामें और भी अधिक लोगोंकी भीड़ एकत्र हुई। कोई अव्यवस्था उत्पन्न न हो, कोई जयघोष न किया जाय, इसकी सर्वत्र सूचना दे दी गयी। सब कहीं सैनिकोंको प्रबन्धपर नियुक्त कर दिया गया।

'राजकुलके सदस्य, राजपरिवारके सम्बन्धी आगत अतिथि, मन्त्रीगण राजसेवक तथा सैनिक शान्त रहेंगे। ये केवल प्रजाका अभिमत सुनेंगे।' श्रीराघवेन्द्रने पहिले ही घोषणा करा दी— 'इनमें-से कोई अपना मत प्रकट करनेके लिए नहीं बोलेगा। मुनिगण, विप्रवृन्द भी हस्तक्षेप नहीं करेंगे।'

प्रलम्बकाय, परिपुष्ट बलिष्ठ; किंतु वृद्ध शरीर, श्वेत श्मश्रु-केश, विशाल भाल, भव्य गौर वर्ण आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने सभा-मण्डपमें प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे गैरिक-वसना, अधोमुखी अपने आपमें ही संकुचित श्रीवैदेही भी आयीं। महर्षिने देख लिया कि लव-कुशको सम्राट्के सिंहासनके समीप भरतादिके कुमारोंके साथ ही बैठाया गया है। लव-कुशने भी अपने गुरुदेव तथा अम्बाको देखा। नेत्र-संकेतसे ही महर्षिने उन्हें उठनेसे रोक दिया था, अतः वहींसे मस्तक झुकाकर दोनों भाइयोंने प्रणाम कर लिया।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठने वाल्मीकिको उठकर अङ्कमाल दी। श्रीरामने अनुजोंके साथ प्रणाम किया। यह औपचारिकता पूर्ण हो जानेपर महर्षि वाल्मीकिने दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर एक बार सम्राट्को और पूरी सभाको घूमकर देखा। मेघ-गम्भीर स्वरमें बोले— 'मैं प्रचेताका बारहवाँ पुत्र वाल्मीकि शपथ ले रहा हूँ। सब जानते हैं कि मैंने दीर्घकालीन तपस्या की है। यदि सीता पवित्र न हो तो मेरा तप निष्फल हो जाय।'

'यदि जनक-नन्दिनी सीता सुरसरिके समान पावन, परम सती न हों तो वाल्मीकिके सब पुण्य नष्ट हो जायँ।'

'यदि मन, वचन, कर्मसे सीता केवल राम-परायण न हों तो वाल्मीकिके सब पुण्य नष्ट हों और यह नरकगामी हो।'

महर्षि वाल्मीकिने तीन बार शपथकी घोषणा की ; किंतु हाय रे अयोध्याका अभाग्य ! सामान्य लोगोंमें-से एक भी उनका समर्थन करने नहीं उठा । जैसे सबको साँप सूँघ गया हो । सब हतबुद्धि , किं-कर्तव्य-विमूढ़ मस्तक झुकाये बैठे रह गये । जो सैनिक , स्वजन , सम्बन्धी , राजपुरुष बोल सकते थे , उन्हें सम्राट्ने बोलनेसे पहिले ही वर्जित कर दिया था ।

महर्षि वाल्मीकिने एक बार चारों ओर फिर देखा । उनके नेत्र लाल-लाल हो रहे थे । लगता था कि वे शाप देकर सबको भस्म कर देंगे; किंतु उन्होंने श्रीरामकी ओर देखा जो अञ्जलि बाँधे , मस्तक झुकाये अत्यन्त कातर नेत्रोंसे उन्हींकी ओर देख रहे थे । महर्षिके नेत्रोंसे बिन्दु झरने लगे । वे अत्यधिक निराश हो गये ।

'यह सब क्या है ?' लव-कुशके अधर फड़कने लगे थे । लेकिन उन्होंने देख लिया कि उन्हींके समान उनके समीप बैठे सब राजकुमारोंकी अवस्था है । सभी सैनिक उत्तेजित होकर हाथ मसल रहे थे । भरत , लक्ष्मण , शत्रुघ्न , सुमन्त्रने तथा सभी ऋषियोंने मस्तक झुका लिया था । अपने अत्यन्त सम्मान्य सम्राट्के सङ्कोचसे सब चुप थे ।

'जन-समूह स्वयं जनार्दनका स्वरूप है ।' कुछ क्षण प्रतीक्षा करनेके पश्चात् श्रीराम बोले— 'सीताको आगे आकर स्वयं सबके सम्मुख शपथ ग्रहण करना चाहिये ।'

'अनर्थ !' उर्मिलाके मुखसे अस्फुट चीत्कार निकला । मूर्छित हो गयीं वे यह कहकर— 'जीजी शपथ ग्रहण करेंगी ?'

माण्डवी , श्रुतिकीर्ति पीली पड़ गयीं । देवी अरुन्धतीने महर्षि वशिष्ठसे धीरेसे कहा—'आप कुछ नहीं करेंगे तो अनर्थ अवश्यम्भावी है । पता नहीं क्या शपथ करें सती-शिरोमणि सीता ।'

'जो अवश्यम्भावी है, उसे रोकनेमें वशिष्ठ भी समर्थ नहीं है देवि !' ब्रह्मर्षिके नेत्रोंमें अश्रु आ गये । उन सर्वज्ञने भी एक बार ऊपर देखा और निराशासे मस्तक नीचे कर लिया ।

'वत्से ! अपने स्वामीके आदेशका पालन करो !' भर्राये कण्ठसे कहकर वाल्मीकि एक ओर हट गये ।

'जीजी!' श्रुतिकीर्तिने चीत्कार की और माण्डवीसे लिपटकर वे भी मूर्छित हो गयीं। उन्होंने, माण्डवीने, देवी अरुन्धतीने लक्षित कर लिया कि श्रीमैथिलीमें वह स्थैर्य, वह तेज आ गया है जो सती नारीमें स्वामीके शरीरके साथ अपनेको आहुति बनानेसे पूर्व आया करता है। श्रीजानकीके चरणोंसे जैसे असह्य आलोक प्रकट होने लगा है। सभामें उपस्थित ऋषियोंतकने अनुभव किया कि श्रीसीताके पदोंसे ऊपर दृष्टि उठाना शक्य नहीं रह गया है। समस्त उपस्थित लोग अवनत-मस्तक स्तब्ध बैठे थे।

'यदि मैं मन, वाणी, कर्मसे कभी भी अन्यमनो-लग्ना न रही होऊँ तो माधवी माता मुझे विवर प्रदान करें।' भगवती सीताने शपथ लिया। सुरोंने सशङ्क देखा कि सूर्यमण्डल सहसा हतप्रभ हो गया। सभामें सभीको अपनेको सम्हालना पड़ा; क्योंकि पृथ्वी-कम्प प्रारम्भ हो चुका था।

'यदि मेरा मन सदा श्रीराममें ही लगा रहा है, मैं इन्हींके प्रति नैष्ठिकी रही हूँ तो धरादेवी मुझे स्थान दें!' महासती मैथिलीने दूसरी बार शपथ ग्रहण की। दिनमें ही आकाशसे उल्कापात होने लगे। पृथ्वीके भीतरसे भयानक गड़गड़ाहटकी ध्वनि आने लगी। सभीके मुखोंपर भय छा गया।

'यदि सीता सचमुच पतिव्रता है तो पृथ्वीदेवीको इसे अङ्कमें लेना चाहिये।' तीसरी शपथ पूर्ण होते-न-होते सभास्थलके सम्मुखकी पृथ्वी फट गयी। उसमें-से ज्योतिर्मय विमानमें बैठी भगवती भूदेवी प्रकट हुईं। उनके शत-सहस्र सूर्योंके सदृश तेजके कारण सभीके नेत्र बन्द हो गये।

'वत्से!' भूदेवीने दोनों भुजाएँ फैलाकर भगवती सीताको अङ्कमें ले लिया। उनका वह दिव्य विमान उनको तथा वैदेहीको लेकर पुनः भूमिमें प्रविष्ट हो गया। भूमिका वह दरार ऐसे विलीन हो गया, जैसे पृथ्वी कभी वहाँ फटी ही न हो।

'भगवती भूमिजाकी जय!' 'महासती साम्राज्ञी सीताकी जय!' 'परम पूजनीया विदेहनन्दिनीकी जय!'

अभी कुछ क्षण पूर्व जिनके मुखोंसे शब्द नहीं फूट रहे थे, वे ही लोग अब उठकर, दोनों हाथ उठाकर जयघोष करते थकते नहीं थे। अब यदि सैनिक रोकते नहीं तो वे उस स्थानकी रज लेने टूट पड़ना चाहते थे, जहाँ श्रीसीताने भू-प्रवेश किया था।

'सीते ! प्राणप्रिये !' श्रीराम भी सिंहासनसे लगभग कूद पड़े थे। वे सम्भवत: भू-विवरमें प्रविष्ट होती अपनी अभिन्न सहचरीको भुजाओंमें भरकर उठा लेनेको झपटे थे ; किंतु वह विमान भू-प्रविष्ट हो चुका था। भूमिका वह दरार पलक झपकते अदृश्य हो गया। श्रीराघव दो क्षण उन्मत्त-की भाँति भुजाएँ फैलाये देखते रहे--घूरते रहे उस स्थानकी ओर। अचानक उनके नेत्रोंसे मानों अङ्गार-वर्षा होने लगी। उन्होंने झपटकर धनुष उठाया और प्रत्यञ्चा चढ़ा ली— 'पृथ्वीको नष्ट कर दूंगा यदि यह मेरी पत्नीको लौटाती नहीं है।'

श्रीरामकी हुंकृतिसे सुर भी काँप उठे। सभा-भवनमें गूँजता जयनाद सहसा स्तम्भित हो गया। सब भयके कारण स्तब्ध रह गये।

'राम ! धनुष रख दो ! तुम ऐसा कुछ नहीं करोगे।' अचानक अमिततेजा रघुकुल-गुरु महर्षि वशिष्ठ अपने आसनसे उठे। उनका इतना रुष्ट, इतना तीक्ष्ण स्वर अयोध्याके लोगोंने प्रथम बार सुना। उन्हें क्रोध भी आता है, यह प्रथम बार लोगोंने जाना। वे अपने सिंहासनसे उतरे। हतप्रभ श्रीराम कुलगुरुकी ओर देखने लगे थे। समीप आकर उसी तीक्ष्ण भर्त्सना-भरे स्वरमें महर्षि बोले— 'कोई अधिकार नहीं है—तुम्हें क्रोध करनेका या सीताको प्राप्त करनेका कोई अधिकार नहीं है। तुमने उन महासतीको सर्वथा निर्दोष जानते हुए भी निर्वासित कर रखा था। तुमने उन्हें शपथ-ग्रहणको बाध्य किया।'

'अयोध्याकी अधम प्रजाने आदिशक्ति अखिलेश्वरी सीताको साम्राज्ञी रूपमें प्राप्त करनेका अपनेको अनधिकारी सिद्ध कर दिया है।' महर्षि वशिष्ठका स्वर आवेशसे काँप रहा था। काँप रहा था उनका सम्पूर्ण शरीर। उनके नेत्रोंसे रोषके कारण अश्रु-बिन्दु टपक रहे थे— 'किसीको यहाँ उनका नाम लेनेका, उनका जयघोष करनेका अधिकार नहीं है।'

नूतन सृष्टि करनेमें समर्थ महर्षि विश्वामित्र भी जिनके सम्मुख शक्तिहीन सिद्ध हुए थे, वे स्रष्टाके साक्षात् पुत्र रोषमें हैं, यह देखकर सबके तालु शुष्क होने लगे। स्वयं श्रीरामके हाथसे धनुष छूट गिरा। भयसे, सङ्कोचसे वे मस्तक झुकाये खड़े रह गये। किसीका साहस नहीं हुआ कि महर्षिसे शान्त होनेकी भी वह प्रार्थना कर सके।

'अब यदि भगवान प्राचेतस अनुग्रह करें तो तुम सब भगवती भूमि-सुताके पुत्रोंको पालक रूपमें पाकर कृतार्थ हो सकते हो।' महर्षि बाल्मीकि-

ने चौंककर वशिष्ठजीको भुजाओंमें समेटकर हृदयसे लगा लिया ; क्योंकि वशिष्ठजी भावावेशमें महर्षि वाल्मीकिके चरण पकड़ने झुक चुके थे। अवरुद्ध कण्ठसे वशिष्ठने कहा— 'भगवन् ! अब अयोध्या आपकी अनुकम्पाकी याचना करती है।'

सबके ही नेत्र आर्द्र हो चुके थे। सबके नेत्रोंमें रघुकुल-गुरुके शब्दोंकी याचना मूर्त्त हो रही थी। भगवती सीताके भू-प्रविष्ट होते ही लव-कुश अपने स्थानसे उठकर महर्षि वाल्मीकिसे आकर लिपट गये थे और फूट-फूटकर रुदन करने लगे थे। इन बालकोंने पिताको जाना ही नहीं था। जन्मसे अम्बा ही इनकी सर्वस्व थीं, आराध्या थीं। वे लोकाराध्या अम्ब इस प्रकार दो शब्द भी कहे बिना चली गयीं—इनके शोकका कोई अनुमान कर सकता है ?

श्रीराम स्वयं दीनकी भाँति महर्षि वाल्मीकिकी ओर देख रहे थे। जिस महापुरुषने अपने लोकोत्तर तपको शपथपर रखकर सीताको देनेका प्रयत्न किया, उसकी शपथका भी आग्रह सुना नहीं गया। अब किस मुखसे कहें कि वह सीताके पुत्रोंको प्रदान कर दें ? महर्षि वाल्मीकिने पालन किया लव-कुशका। उनका अधिकार नहीं है इनपर ? उनकी शिक्षाने दोनों बालकोंको अयोध्याकी सेनापर विजयी बनाया, वे यदि चाहेंगे तो उनके ये शिष्य स्वयं स्वतन्त्र साम्राज्य नहीं स्थापित कर लेंगे अपनी शक्तिसे ?

वाल्मीकि अयोध्याको उसकी परम पावन साम्राज्ञी देने आये थे, अयोध्याको उसके त्रिभुवन-जय समर्थ युवराज लौटाने आये थे, उनका दान स्वीकार नहीं किया गया। अब तो उनकी इच्छा कि वह अयोध्याकी, अयोध्याके सम्राट्की, अयोध्याके कुलगुरुकी याचना स्वीकार करें—न करें।

'राम ! ये तुम्हारे पुत्र हैं।' महर्षि वाल्मीकि यद्यपि ब्रह्मर्षि वशिष्ठकी याचना अस्वीकार नहीं कर सके ; किंतु अब उनका स्वर रूक्ष हो गया था। वे 'श्रीराम' भी नहीं कह सके ? लव-कुशके कर पकड़कर श्रीरामकी ओर उन्हें बढ़ाते बोले— 'यह पुत्री सीताका न्यास बचा है मेरे समीप। तुम इन्हें स्वीकार करो।'

जैसे कोई कङ्गाल धनपर टूट पड़े, श्रीरामने लव-कुशका कर पकड़-कर उन्हें हृदयसे लगा लिया।

महर्षि वाल्मीकि मुड़ पड़े। उन्होंने वशिष्ठजीकी ओर भी नहीं देखा। जनरव गूँजता रहा, 'भगवान प्राचेतसकी जय !' 'आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकी जय !' लवकुश आर्त पुकारते रहे—'आचार्य! मातामह आचार्य !' किंतु महर्षिने मुड़कर नहीं देखा। कहते हैं कि सीता-त्यागके लिए श्रीरामको, अयोध्याके लोगोंको वे कभी क्षमा नहीं कर सके। वे अत्यन्त एकान्त-प्रिय हो गये। गङ्गा-तट त्यागकर सुदूर पूर्व चले गये। भारतके पूर्वी सीमान्तमें ब्रह्मपुत्रके तटपर वाल्मीकिका तपोवन अब भी प्रसिद्ध है।
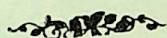
अश्वमेध-पूर्ण

'अभ्यागत-अतिथि सब अवभृथ स्नानकी प्रतीक्षामें हैं। उन्हें अयोध्या रहते पर्याप्त अधिक दिन हो गये।' महर्षि वशिष्ठने श्रीराघवेन्द्रसे सस्नेह कहा— 'अपनेको अब स्वस्थ करो। यज्ञकी पूर्णाहुति आवश्यक है।'

यज्ञ विरमित नहीं हुआ था ; किंतु जब यजमानका किसी भी कार्य-में उत्साह ही न रह गया हो तो यज्ञ-कार्य आगे कैसे प्रगति करे ? प्रतिदिन थोड़ी आहुतियाँ देकर यज्ञको अखण्ड रखा जा रहा था। श्रीराम रात्रिमें अश्वके समीप बैठे रहते थे। दिनमें वे यज्ञशालामें रहते तो थे, किंतु अन्यमनस्क, उदासीन। ऐसी अवस्थामें उनको कुछ भी करनेको कहनेका उत्साह ऋत्विकोंमें नहीं था।

जनरुचि विचित्र होती है। जिन्होंने अपवादका प्रसार करके श्रीजनक-नन्दिनीको निर्वासित करानेमें योगदान किया था, जिन्होंने श्रीमैथिलीके त्यागके पश्चात् श्रीरामकी प्रशंसा की थी, उनके कार्यको उचित कहा था, जो शपथके समय महर्षि वाल्मीकिके शपथ-ग्रहणके पश्चात् भी एक शब्द तक बोलनेमें कृपण होकर मौन बैठे रहे थे, उनमें अब श्रद्धा उमड़ पड़ी थी। वे नियमसे साम्राज्ञीकी स्वर्ण-प्रतिमाको प्रतिदिन पुष्पाञ्जलि अर्पित करते थे।

लव-कुश बहुत उदास रहने लगे थे। उर्मिलाने उन्हें अपने समीप ही रखना प्रारम्भ कर दिया था। जो स्नेह, जो वात्सल्य उन्होंने अपने पुत्र अङ्गद और चित्रकेतुको भी नहीं दिया था, वह उनमें उद्दीप्त हो उठा था! लव-कुश भी उनका बहुत अधिक सम्मान करने लगे थे। वे पिताके समीप कम ही बैठते थे। उनका कमण्डलु, मृगचर्म, वल्कल प्रथम दिन ही श्रुति-कीर्त्तिने लेकर अपने संग्रहालयमें सुरक्षित कर दिया था। उनकी जटाओंको सुलझानेमें जो केश प्राप्त हुए वे भी और उनकी वीणा भी। अब वे राज-कुमारोंके उपयुक्त वस्त्राभरण धारण कर चुके थे।

महर्षि वाल्मीकिके आश्रमके अन्तेवासी लव-कुशके धनुष तथा त्रोण दे गये। वे सब भी बहुत खिन्न थे। उन्होंने समाचार दिया— 'आचार्यदेव आश्रम ही नहीं लौटे हैं। उनका उटज सुरक्षित रखा जा रहा है। तपस्विनियाँ तथा वानप्रस्थाश्रमी वहाँ रहेंगे; किंतु शिक्षा-प्राप्त करने आये अन्तेवासियोंको तो अब कहीं अन्य ऋषिकी शरण लेना है। आचार्यदेवके पुनरागमनकी आशा किसीको नहीं है।'

महर्षि वशिष्ठने उदारतापूर्वक वाल्मीकि आश्रमके अन्तेवासियोंको अपने यहाँ आश्रय देना स्वीकार कर लिया। वे विद्यार्थी भी लव-कुशके सामीप्यका सुयोग देखकर प्रसन्न हुए। सब अयोध्या आ गये।

भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नके पुत्र, कुश तथा लवका सम्मान करने लगे थे। जैसे इनके पिता अपने अग्रजकी सेवा और अनुगमन करते थे, वैसे ही ये राजकुमार भी अपने इन दोनों अग्रजोंका अनुगमन करने लगे।

लव-कुशको उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्त्ति तीन माताएँ प्राप्त हुईं। तीनोंका वात्सल्य इनपर उमड़ा पड़ता था; किंतु दोनों कुमारोंके मुखपर प्रसन्नता नहीं लौटी। अपनी गैरिक-वसना, अधोमुखी, सभामें शपथ-समुद्यता जननी जैसे नेत्रोंके सम्मुख ही दीखती थीं उन्हें। बार-बार दोनोंके नेत्र भर आते थे। दोनों भाई अधिकांश एकान्त ढूंढ़ते थे; क्योंकि वहाँ परस्पर लिपटकर खुलकर रो सकते थे। अयोध्याके राजसदनमें सबके स्नेह-भाजन होनेपर भी उनका सङ्कोच दूर होनेका नाम ही नहीं लेता था।

आञ्जनेय अब जैसे गुम-सुम बन गये थे। वे श्रीरामके चरणोंके समीप बैठे रहते थे; किंतु जैसे उनके लोचन सदास्रावी निर्झर बन गये हों। उनके अधरोंपर अब अहर्निशि 'सीताराम-सीताराम' रहने लगा था।

यज्ञशालामें मन्त्र-पाठके अतिरिक्त शान्ति रहने लगी थी। मध्याह्न-में सभा-मण्डपमें सम्राट् सानुज उपस्थित रहते थे, ऋषिगण आते थे, अतः थोड़े वृद्ध नरेश एवं दूसरे अतिथि भी आ जाते थे। अब वहाँ प्रायः किसी पुण्यश्लोक प्राचीन पुरुषका चरित सुनाया जाता था।

सूत, मागध, बन्दी-जनोंको मना कर दिया गया था। संगीत, वाद्य, अभिनय, नृत्य, सब बन्द हो गये थे। सम्पूर्ण अयोध्या तथा यज्ञ-शालाके शिविरोंमें उदासी छा गयी थी। केवल यज्ञ चल रहा था, इसलिए कि उसे अपूर्ण छोड़ा नहीं जा सकता था।

अश्व आ ही गया था। महर्षिकी आज्ञा स्वीकार करके श्रीरामने ऋत्विक, सभासदोंको पूर्णाहुति करनेका अनुरोध किया। ऋषि-मुनियोंको भी अब यही अभीष्ट था। यज्ञकी शेष आहुतियाँ पूर्ण की गयीं। यजमानने अश्वकी अर्चा सम्पन्न करके उस देवतात्मा अश्वको आमन्त्रित किया—'अग्निदेव अब आपके पावन शरीरकी आहुतिसे सन्तुष्ट होना चाहते हैं।'

अश्वने हिनहिनाकर स्वीकृतिमें सिर हिलाया। वह स्वयं यूपस्थानपर जा खड़ा हुआ। अश्वालम्भनके नामपर यजमानको उसके कण्ठपर खड्गका स्पर्श मात्र करना पड़ा। पशुका पूरा शरीर उज्वल कर्पूरकी राशि बन गया। श्रीरामने उस कर्पूरकी अञ्जलियाँ अग्निदेवको अर्पित कीं।

यज्ञ पूर्ण हुआ। ऋत्विक, सदस्य एवं आगतोंका पूजन सम्पन्न हुआ अन्तिम देव-पूजनके पश्चात्। सबको दान-सम्मानसे सन्तुष्ट किया गया। गौ, गज, अश्व, भूमि, रत्न, स्वर्ण, अन्न, वस्त्र, आभूषण ब्राह्मणोंको, बन्दीजनोंको—सबको भरपूर प्राप्त हुए। आग्रह करके, अस्वीकार करनेपर भी अत्यधिक दिये गये।

अवभृथ स्नान भी हुआ सरयूमें। यज्ञीय भस्म सबने सम्पूर्ण शरीरमें मल लिया आर स्नान कर लिया—बस। शङ्ख भी बजे और विप्रोंने मन्त्रपाठ भी किये, इतना और कहा जा सकता है; किन्तु अवभृथ स्नानका उत्साह किसीमें नहीं था। सामान्य जनके यज्ञीय अवभृथ स्नानमें भी वाद्य बजते हैं। नृत्य-गान होता है। स्नानके समय नर-नारी आनन्दमग्न होकर परस्पर जल उलीचते हैं। लेकिन अयोध्याके सम्राट्के अश्वमेध यज्ञका अवभृथ स्नान था, मानो किसी पुण्य पर्वका तीर्थ-स्नान हो। समस्त आगतोंने, पूरी प्रजाने यज्ञ-भस्म लगाकर मौन, शान्त स्नान कर लिया सरयूमें। उल्लास, उत्साह अब कहाँ था अयोध्यामें।

अवश्य किसीका भी सत्कार करनेमें कोई शिथिलता शासकवर्गकी ओरसे नहीं देखी गयी। स्नानके उपरान्त सबको उत्तम वस्त्र, आभरण, अङ्गरागादि आदर-सहित राजपुरुषोंने अर्पित किये। सभीको उचित रीतिसे आसन देकर भोजन कराया। पशु-पक्षी तकको भी तृप्त करनेमें कोई शिथिलता कहीं नहीं आयी।

श्रीराम, उनके सब भाई, सब राजकुमार आगतोंके सत्कारमें लगे रहे। महर्षि वशिष्ठ अपने शिष्यों सहित विप्रवर्गका सत्कार कर रहे थे।

सुपूजित सुरगण सर्वप्रथम विदा हुए। ऋषि-मुनिगण, विप्रवृन्द भी दान-मान प्राप्त करके प्रस्थान करने लगा। बहुत अधिक तपस्वी, मुनिगण जो सरयूतटपर आश्रम बनाकर बस गये थे, जिनको अब स्थायी निवासी माना जाने लगा था, उनमें भी परिव्रजनकी इच्छा प्रबल हो उठी। उन्होंने भी महर्षि तथा सम्राट्से अनुमति माँगी। अब किसीको रोकनेका उत्साह नहीं रह गया था श्रीराममें। जो भी जाना चाहते थे, उन्हें पर्याप्त अधिक दानसे पूर्ण करके विदा देना था। वे भी आशीर्वाद देकर चले गये।

अयोध्यामें बहुत अधिक कलाजीवी आकर बस गये थे। सहस्रों राजपुरुषोंने स्थायी आवास बना लिये थे। देश-देशके विख्यात वणिकोंने अपने विशाल सदन बनाकर अपने व्यापारका मुख्य केन्द्र स्थापित कर लिया था। सेवा-निपुण वर्गका बहुत बड़ा भाग समस्त भू-मण्डलसे सिमट-कर अयोध्यामें आश्रय लेकर रहता था। अब इस श्रेणीके सभी लोगोंको कोई-न-कोई आवश्यक कार्य आ पड़ा था। कोई किसी कारणसे और कोई किसी कारणसे सखेद अन्यत्र जानेकी विवशता अनुभव करने लगा। सम्राट् तथा राजकर्मचारी किसीको कैसे रोकें ?

'अयोध्या आपकी है। आप इच्छानुसार यहाँ आनेको स्वतन्त्र हैं। हमें अवसर मिलेगा तो हम सेवा करनेमें अपना सौभाग्य मानेंगे।' सविनय यह या ऐसी प्रार्थना करके, विपुल पुरस्कारसे सत्कृत करके सबको विदा देना था।

अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ तो यज्ञ-भूमि, यज्ञशालाके समीपका शिविर-नगर तो उजड़ ही गया, सरयूतटका बड़ा भाग मुनि-आश्रमोंसे सूना हो गया। नगरके आधेसे अधिक सदन सूने हो गये।

कालपुरुष पधारें

'अवतार-काल पूर्ण हो गया पृथ्वीपर श्रीरामका।' देवताओंने ब्रह्म-लोक जाकर भगवान ब्रह्मासे प्रार्थना की— 'उन सर्वेश्वरेश्वरके पृथ्वीपर रहनेसे समस्त सुरोंका वहाँ सम्मान समाप्त हो गया है। हमारी पूजा केवल औपचारिक रह गयी है। सब मानव प्राय: निष्काम हैं। वे धर्माचरण, यज्ञादि करते हैं; किन्तु उसका फल वे श्रीरामार्पण कर देते हैं। सुरोंको केवल औपचारिक आहुतियाँ प्राप्त होती हैं। कोई हमारा स्मरण नहीं करता।'

सुरोंपर सङ्कट था राक्षसोंके प्रबल होनेपर। रावणके अत्याचारसे संत्रस्त होकर सृष्टिकर्त्ताकी शरण गये थे। तब ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर परात्पर पुरुष पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। दशग्रीवको मारकर उन्होंने सुरोंका सङ्कट समाप्त कर दिया। अब सुरोंका स्वार्थ इसमें था कि वे सर्वेश्वरेश्वर पृथ्वीपर अपने प्रकट रूपका तिरोभाव करके स्वधाम पधारें। उनके पृथ्वी-पर रहते सुरोंको कौन पूछे? अब सुरोंका सम्मान सङ्कटमें पड़ गया था। वे पुन: सृष्टिकर्त्ताकी शरण आये थे। क्योंकि दशग्रीवसे वे भयभीत थे तो श्रीरामकी उपस्थितिमें भी कोई दुस्साहस नहीं कर सकते थे।

राक्षसोंने यज्ञ, देवाराधन, पितृ-तर्पणादि प्रतिबन्धित कर दिया था। देवता दुर्बल हो रहे थे यज्ञ-भागके बिना। पितरोंको श्राद्ध-तर्पण अप्राप्य हो गया था। अब पितर परम सन्तुष्ट थे। उनको कव्य सविधि श्रद्धा-समेत मिल रहा था; किंतु सुरोंको आहुतियाँ पानेपर भी सन्तोष नहीं था। मानवने उनकी अपेक्षा करना बन्द कर दिया था। उनकी मनौती करना तो दूर, बे-मनसे भी कोई उन्हें पुकारता नहीं था। केवल कर्त्तव्य मानकर, शास्त्र-विधानके कारण जो आहुतियाँ मनुष्य दे रहे थे— सब दे रहे थे, नियमपूर्वक दे रहे थे, बहुत अधिक दे रहे थे; किंतु श्रद्धासे सन्तुष्ट होने वाले देवताओंको ये आहुति-भाग—हव्य कैसे रुच सकते थे? कठिनाई यह थी कि उन्हें अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता था। आपको बलात्—धमकी देकर स्वादिष्ट ही भोजन कराते रहा जाय तो आपकी

क्या अवस्था होगी ? इस सङ्कटसे परित्राण पानेके लिए देवता भगवान् हंस-वाहनकी शरण गये थे।

सृष्टिमें एक ही गुणका स्थिर प्राबल्य अव्यवस्था उत्पन्न करता है, इस तथ्यको सृष्टिकर्त्तासे अधिक कौन समझता। श्रीरामके धरापर रहते तो पृथ्वीपर सत्त्वगुणका प्राबल्य रहना ही था। अतः पद्मसम्भवने कालका स्मरण किया—कालाधिदेवताका।

भयानकताकी चरम सीमा काल। देवता समझ ही नहीं सके कि ब्रह्माजी उनकी प्रार्थना सुनकर उनके अनुकूल कुछ करना चाहते हैं या रुष्ट होकर दण्ड देना चाहते हैं। वे इधर-उधर भागने-छिपने लगे। स्वयं सृष्टि-कर्त्ता भी भयसे काँप उठे कालाधिदेवताको देखकर। उस अकल्पनीय भयानक रूपका वर्णन सम्भव नहीं है। ब्रह्माने किसी प्रकार केवल सम्बोधन किया—'भगवन् !'

'तुमने मुझे क्यों स्मरण किया है ?' उन कालपुरुषने पूछा। वे बोले तो लगा, ब्रह्माण्ड फट जायगा।

'इसलिए कि आप श्रीरामके समीप अयोध्या जावें।' कम्पित स्वरमें चतुर्मुख हंसवाहनने कह दिया। अब उन्हें अपनी भूल ज्ञात हो गयी थी। इन कालपुरुषका आवाहन करके अच्छा नहीं किया उन्होंने। अब किसी प्रकार इनको अपने समीपसे टालना था। जो चाहे जब समूची सृष्टि और सृष्टिकर्त्ताको भी मुखमें रखकर निगल ले सकता है, उसका समीप रहना किसे सह्य होगा ?

'क्या ?' काल चिल्लाया। वह भी भयसे सिहर उठा—'तुम जानते हो कि वे परात्पर पुरुष अकाल पुरुष हैं। मैं उनकी छायाका भी स्पर्श नहीं कर सकता। उनके आश्रितोंसे मैं डरता-बचता भागता हूँ और तुम मुझे उन कालातीत, कालके कारणके समीप भेजना चाहते हो ? मेरा उपहास करते हो ?

क्रुद्ध कालके सम्मुख पद्मसम्भवने अपने सब हाथ जोड़कर गिड़-गिड़ाते हुए प्रार्थना की—'भगवन् ! केवल यह उन्हें सूचित करनेके लिए कि उनका अवतार-काल पूर्ण हो चुका है, आपसे प्रार्थना करनेकी मैंने धृष्टता की है। दूसरा कोई यह प्रार्थना भी वहां करनेका साहस नहीं करता है।'

'एवमस्तु !' ब्रह्माको वरदान देनेके ढङ्गपर कहकर जब काल-पुरुष अदृश्य हो गया, तब कहीं सृष्टिकर्त्ताका शरीर-कम्प विरमित हुआ। सुर आश्वस्त होकर स्वर्ग लौट गये।

'एवमस्तु !' कालने कह तो दिया था; किंतु वह स्वयं चिन्तित हो गया— 'अयोध्या वह जाय भी तो उसका कुछ प्रभाव पड़ेगा ? उसका प्रभाव ही न पड़े तो निष्प्रभाव कालकी महत्ता ?'

काल केवल दारुण, भयानक ही नहीं है। कालका भव्य रूप भी है। वह अतिशय सुन्दर भी है। अपने भयावह रूपसे वह अयोध्याको प्रभावित नहीं कर सकता; किंतु भव्य रूपसे तो कर ही सकता है।

महर्षि वशिष्ठ तथा दूसरे लक्षणज्ञ ऋषि-मुनि चौंके। श्रीराम चौंके और उनके अनुज भी चौंके। जो भी प्रकृति-विपर्ययका परिणाम समझ सकते थे, सब चौंके। केवल अज्ञ, बालबुद्धि लोग प्रसन्न हुए। वृक्षोंमें शिशिरका पतझड़ प्रारम्भ हुआ था, उसी समय पुष्प और फल एक साथ आ गये। सरयूके सुप्रवाहित जलमें इस शीत कालमें राशि-राशि पद्म-पुष्प प्रकट हो गये। शरीर-कम्प उत्पन्न करनेवाले शीतके स्थानपर वसन्तके समान सुखद वायु चलने लगी। पशु बिना ऋतुके ही मदनोन्मत्त हो गये और पक्षियोंने नीड़-निर्माण प्रारम्भ कर दिया।

अकालका यह पुष्पोद्गम, फल-प्रसव, पशु-पक्षियोंमें प्रकृति-प्रतिकूल परिवर्तन बड़े अनर्थका पूर्वाभास है। इसे देखकर श्रीरामके अधरोंपर स्मित आया। यह भी स्वयंमें एक अद्‌भुत विपर्यय था। भगवती भूमिजाके भू-प्रविष्ट होनेके पश्चात् श्रीरघुनाथका स्वभाव ही अत्यन्त गम्भीर हो गया था।

काल आया। अयोध्यामें अकाल पुरुषके समीप तो वह अपने रूपमें आ नहीं सकता था। उसने ऋषि-रूप धारण किया और श्रीरामके राजभवनके द्वारपर पहुँचा। राज भवनमें कभी ऋषि-मुनि तथा विप्रोंके प्रवेशपर प्रतिबन्ध नहीं था। जबसे भगवती सीता अयोध्यासे गयी थीं, श्रीरामने अपने अन्तःपुरके एकान्त कक्षको भी सबके अबाध प्रवेशके लिए उन्मुक्त कर दिया था। लेकिन कालका साहस स्वयं भीतर पद रखनेका नहीं हुआ।

'सम्राट्से निवेदन कर दें कि महर्षि अतिबलका एक शिष्य उनके दर्शनार्थ उपस्थित हुआ है।' लक्ष्मणको द्वारपर देखकर उसने प्रार्थना की।

'आप पधारें।' लक्ष्मणने सविनय कहा— 'किसी तपस्वीको यहाँ पूर्वानुमति नहीं लेनी पड़ती।'

'आप आज्ञा ले लें।' कालने अनुरोध किया।

लक्ष्मणको यह आगतकी अत्यन्त विनम्रता प्रतीत हुई। वे अग्रजके समीप गये— 'एक तरुण ऋषि आये हैं। अयोध्यामें उन्हें पहिले कभी देखा नहीं गया। उनका वेश सौम्य है, विनम्र हैं; किंतु पता नहीं क्यों, उनमें एक अन्तर्हित उग्रता, भयानकता मुझे प्रतीत होती है। उनके सामीप्यसे अरुचि होती है। वे आपका दर्शन करनेको उत्सुक हैं।'

'वे कोई भी हों, सादर ले आओ।' श्रीरामने सहज भावसे अनुमति दे दी। लक्ष्मणको आश्चर्य नहीं हुआ कि आगत ऋषिने आते ही मस्तक झुकाया। उनके इन सर्वलोकेश्वरेश्वर सम्राट्के सम्मुख सुर, ऋषि सब शीश झुकाते हैं।

'मैं अर्घ्य स्वीकार करने योग्य नहीं हूँ।' कालने श्रीरामको उठकर अर्घ्य उठाते देखकर कहा— 'ऋषि अतिबलका सन्देश लाया हूँ। मुझे शीघ्रता है लौटने की; किंतु सम्राट्से एकान्तमें ही वह सन्देश कह सकता हूँ। मुझे अखण्ड एकान्तका आश्वासन अपेक्षित है कुछ क्षणोंके लिए।'

यह प्रार्थना भी अस्वाभाविक नहीं थी। जिस अन्तःपुरमें ऋषि-मुनि, तपस्वी मात्रके लिए प्रवेश अनिर्बाध था, वहाँ कोई सेवक, स्वजन कभी आ सकता था।

'लक्ष्मण! तुम द्वारपर रहो।' सम्राट्ने आदेश दिया—'अनुमतिके बिना कोई प्रवेश करेगा तो मुझसे प्राणदण्ड प्राप्त होगा।'

'आप आसन ग्रहण करें! सन्देश सुनावें!' लक्ष्मणके चले जानेपर श्रीरामने विनयके साथ कहा।

'आप विराजें। मैं काल हूँ—अतिबल काल। आपके सम्मुख आसन नहीं ग्रहण कर सकता।' अब कालपुरुषने पदोंमें प्रणत होकर प्रार्थना की— 'सृष्टिकर्त्ताने मुझे सूचित करनेका आदेश दिया है कि आपका अवतार-काल पूर्ण हो गया।'

'आपकी धरापर उपस्थितिके कारण इन्द्र न अवर्षण कर सकते, न अतिवृष्टि। वायु न अन्धड़ चला सकते, न बन्द हो सकते। अग्नि, वरुणादि भी विवश हैं। मैं भी निष्प्रभाव हो गया हूँ।' कालने सङ्कोचपूर्वक कहा— 'मर्त्यलोककी मर्यादा सम-रसता, स्थिर सत्त्वगुण नहीं है। समय तो आपके लीला-संवरणका हो गया है, अब आप समर्थ हैं, जैसा उचित समझें।'

'मुझे तुम्हारी बात उचित लगती है।' मर्यादापुरुषोत्तमने स्वीकार कर लिया।

लक्ष्मण-त्याग

'अभी मुझे श्रीरामके समीप पहुँचना है।' अचानक महर्षि दुर्वासा आ पहुँचे। उन्होंने लक्ष्मणसे पूछा— 'राम अपने कक्षमें हैं ?'

'हैं भगवन् ; किंतु किसीको भीतर जाने देनेका आदेश नहीं है।' लक्ष्मणने हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर विनयपूर्वक कहा, लेकिन द्वार रोके स्थिर खड़े रहे— 'सम्राट् किसी ऋषिसे एकान्तमें कुछ वार्ता कर कर रहे हैं।'

'जिसके समीप पहुँचनेमें विप्रोंपर, तपस्वियोंपर, ऋषि-मुनियोंपर भी प्रतिबन्ध हो, उस राजा और राजकुलको धरापर रहनेका कोई अधिकार नहीं।' दुर्वासाने क्रोधसे काँपते उच्च स्वरमें कहा— 'अविलम्ब रामको मेरे आनेकी सूचना दो। अन्यथा मैं इसी क्षण शाप देकर अयोध्या-को भस्म कर दूँगा।

दुर्वासाजीको कोई ऐसा प्रयोजन नहीं था कि दूसरा कोई उसे पूरा न कर देता ; किंतु ये क्रोधमूर्त्ति किञ्चित् भी प्रतिवाद सहन नहीं कर पाते। वे कहीं जाना चाहते हैं, किसीसे मिलना चाहते हैं तो कोई उन्हें रोकनेका साहस करे, यह असह्य है उन्हें।

सामान्य नियम है कि आस्तिक वैदिक धर्ममें आस्थावान शासकके समीप विद्वान ब्राह्मण, ऋषि-मुनि, तपस्वी तथा आपद्ग्रस्त आश्रयार्थीके पहुँचनेपर कभी प्रतिबन्ध नहीं होता। वह बिना पूछे भी शासकके अन्तः-पुरमें पहुँच सकता है। प्रतिहार केवल शासकको सूचना दे सकता है। यदि शासक स्नान, भोजनादि किसी ऐसे कार्यमें है, जहाँ उसे एकाकी अथवा केवल पत्नीके साथ होना चाहिये, तो भी आगतको अन्तःपुरमें लाकर आदर-सहित आसन देकर तब प्रतीक्षा करनेको कहना उचित है। दुर्वासाजीको द्वारपर ही रोक दिया गया, यह सामान्य शिष्टाचारके भी अनुकूल नहीं था। इसलिए भी वे क्रुद्ध हो उठे।

अत्रिपुत्र दुर्वासा साक्षात् भगवान शिवके अंश, उन रुद्रके अवतार हैं। ये सर्वज्ञ जानबूझकर ही ऐसे अनवसरमें आ धमके थे। इन्हें तो श्रीरामको कालको दिये गये वचनको पूर्ण करनेका अवसर देना था।

'सम्पूर्ण अयोध्या, सब राजकुल ऋषिके शापसे भस्म हो जाय, इसकी अपेक्षा आत्मोत्सर्ग करना श्रेयस्कर है।' लक्ष्मणने क्षणार्धमें निश्चय कर लिया। जानते थे कि दुर्वासाको शाप देते देर नहीं लगती। जो स्वयं नारायण तकको शाप देनेमें सङ्कोच नहीं करता, वह यहाँ हिचकेगा? अत: लक्ष्मणने मस्तक झुकाये कक्षमें प्रवेश किया।

लक्ष्मणके पहुँचते ही कालने सिर झुकाया। लक्ष्मणकी ओर कुछ हँसकर देखते हुए अदृश्य हो गया। श्रीरामने अब भाईकी ओर देखा।

'महर्षि दुर्वासा द्वारपर उपस्थित हैं।' लक्ष्मणने निवेदन किया— 'वे अविलम्ब आपका दर्शन चाहते हैं।'

श्रीराम तत्काल उठे और द्वारपर जाकर महर्षि दुर्वासाके पदोंमें प्रणाम किया। दुर्वासाजी जहाँ अद्वितीय क्रोधी हैं, वहीं क्षणार्ध-मन्यु हैं। इन्हें दूसरे ही क्षण प्रसन्न होते, दयालु बनते देखा जाता है। श्रीरामको देखते ही सुप्रसन्न बोले—'राम? मैं बहुत क्षुधार्त हूँ। अनेक दिनोंसे उपोषित हूँ। शीघ्र पायस खिलाओ।'

'भगवन्! भीतर पधारें।' श्रीरघुनाथने सादर ऋषिको लाकर आसन दिया। मधुर पायस परसा अपने करोंसे। दुर्वासाजीने भरपेट भोजन किया। आचमन करके, आशीर्वाद देकर बिदा हो गये।

दुर्वासाके चले जानेपर श्रीराम अपने कक्षमें आये। अब तक लक्ष्मण मस्तक झुकाये, स्तब्ध, स्थिर खड़े थे वहीं। श्रीरघुनाथके आते ही उनके चरणोंपर मस्तक रखकर उठ खड़े हुए। हाथ जोड़कर बोले—'आर्य! मैंने आज्ञा भङ्गका अपराध किया है।'

'लक्ष्मण! अपने अत्यन्त प्रियजनका परित्याग ही उसका वध है।' श्रीरामका स्वर जैसे कहीं दूरसे आ रहा हो। जैसे वे सबसे—अपने-आपसे भी तटस्थ बोल रहे हों—'मैंने तुम्हारा त्याग किया। अब तुम कहीं जाने, रहने अथवा कुछ भी करनेको स्वतन्त्र हो। केवल रामके सम्मुख अब मत आना।'

'जो आज्ञा आर्य !' मृत्यु-दण्ड स्वीकार करने वाले अपराधीका स्वर भी इतना शीतल—भयावह शीतल सम्भव नहीं है।

श्रीरामके चरणोंसे पृथक् लक्ष्मणके जीवनकी कल्पना ही सम्भव नहीं। सौमित्रके दृगोंसे अश्रु नहीं निकले। कण्ठसे कोई क्रन्दन नहीं फूटा। शोक तथा भयका सीमातीत हो जाना स्थैर्य बन जाता है। लक्ष्मणने मुकुट उतारकर केशोंको उन्मुक्त कर दिया। धनुष, त्रोण, खड्ग शरीरसे पृथक करके धर दिये वहीं। सब आभूषण उतार दिये। केवल कटिवस्त्र, उत्तरीय एवं यज्ञोपवीत रह गया उनके अङ्गोंपर। मस्तक झुकाये, मौन वे उस कक्षसे निकले। बिना किसीकी ओर देखे चलते गये।

लक्ष्मणको उस अवस्थामें जाते जिसने भी देखा, हतप्रभ रह गया। किसीकी पुकारका कोई उत्तर नहीं। किसीकी ओर देखना नहीं। लक्ष्मण सीधे राजपथसे होते सरयूतट पहुँचे और सलिलका स्पर्श करके वहीं स्थिर आसन लगाकर बैठ गये।

निखिल साधन-निर्देशक, सकल जीवैक-परमाचार्य, उन श्रीअनन्त-को कुछ करने—कोई साधन करनेकी आवश्यकता थी ?

अयोध्याके राज-पथसे लक्ष्मण आये थे। अनेक लोगोंने उन्हें देखा था। नगरमें कोलाहल मच गया था—'कुमार लक्ष्मण पैदल, बिना पाद-त्राण, निराभरण, मौन जा रहे हैं। निर्वासितकी भाँति, सर्वत्यागी परम-पथ-गामीकी भाँति जा रहे हैं। ऐसे जा रहे हैं, जैसे उन्होंने वीर संन्यास व्रत* स्वीकार कर लिया हो।'

असंख्य लोगोंका समुदाय अपना सब काम त्यागकर दौड़ पड़ा था लक्ष्मणके पीछे ; किंतु लक्ष्मण ऐसे गये थे, जैसे वे न कुछ सुनते हों और न कुछ देखते हों। 'क्या हो गया ?' सबके हृदयमें एक ही प्रश्न ; परन्तु इसका उत्तर कहीं नहीं था।

सबने स्तब्ध होकर दूरसे देखा—सरयू-तटपर लक्ष्मणके बैठते ही एक असह्य शत-सहस्र सूर्योंके समान ज्योति प्रकट हुई। सबके नेत्र झपक

---

* पाण्डवोंका महाप्रस्थान 'वीर संन्यास व्रत' था। क्षत्रिय देहत्यागका निश्चय करके, अन्न-जल त्याग कर, मौन होकर उत्तर चल दे और जहाँ गिरना हो, शरीर गिर जाय, इसका नाम वीर संन्यास है।

गये। कठिनाईसे किसीने किञ्चित् लक्षित किया कि दुग्ध-श्वेत, सहस्रफणा भगवान शेष जैसे प्रकट हुए हों और तत्काल सरयू-जलमें अदृश्य हो गये हों।

उस अलौकिक ज्योतिके अदृश्य हो जानेपर जब लोग सावधान हुए, सरयू-तटपर लक्ष्मणके शरीरका कहीं कोई चिह्न नहीं था। अब उस स्थानकी रज मस्तकपर चढ़ाकर रुदन करते लौटनेके अतिरिक्त किसीके समीप कोई उपाय नहीं था। सबको लौटकर अपने सम्राट् तक भी तो यह समाचार पहुँचाना था।

× × ×

'वधू ! तुमने सुना ?' सेविका दौड़ती, क्रन्दन करती लक्ष्मणके अन्तःपुरमें पहुँची। उसने लक्ष्मणको श्रीरामके कक्षसे निकलकर जाते देख लिया था। उर्मिलाको समाचार देने दौड़ी गयी थी।

'आज मैं सब सुननेको प्रस्तुत हूँ। मेरे सब दक्षिणाङ्ग स्फुरित हो रहे हैं। समझती हूँ, तू मेरे स्वामीके सम्बन्धमें कुछ अमङ्गल-समाचार ले आयी है।' उर्मिलाने स्थिर-शान्त स्वरमें कहा— 'सुना दे। मैं प्रस्तुत हूँ। हिचकने और आकुल होनेकी आवश्यकता नहीं है।'

'उन्होंने तुमसे मिलना भी आवश्यक नहीं माना ?' दासी क्रन्दन करती बतला गयी— 'वे किसीकी पुकार नहीं सुन रहे थे।'

'वे चले गये ?' उर्मिलाके मुखसे केवल इतना निकला। उन्होंने अपने दक्षिण करकी ओर देखा। उसमें पड़ा रत्न-कङ्कण अभी इसी क्षण शब्द करता टूटकर गिर पड़ा था—'स्वामी ! यह दासी शीघ्र आ रही है।'

वहीं बिना किसी आस्तरणके वहीं भूमिपर उर्मिला स्थिर बैठ गयीं। उनके नेत्र बन्द हो गये। उनका शरीर निस्पन्द होने लगा। उनके मुखमें शत-शत चन्द्रोज्ज्वल ज्योत्स्ना फूट पड़ी।

पुत्रोंका अभिषेक

'आञ्जनेय ! सभी राजकुमारोंको यहाँ बुला लो !' लक्ष्मण जैसे ही कक्षसे निकले, श्रीरामने हनुमानका स्मरण किया। उनके उपस्थित होते ही आदेश किया— 'सब अपने धनुष, त्रोण तथा शस्त्रोंसे सज्जित होकर आवेंगे, सुमन्त्रको कह दो कि इन सब कुमारोंके रथ, यात्राकी पूरी सज्जाके साथ द्वारपर उपस्थित रहेंगे। इनके तिलककी सामग्री उपस्थित करो।'

अत्यन्त गम्भीर, अस्वाभाविक स्वर-भङ्गी, आज श्रीरघुनाथकी ओर देखना हनुमानको भी कठिन लग रहा था। लक्ष्मणको निकलते उन्होंने देख लिया था। वे ज्ञानियोंमें अग्रगण्य—शोक उनका स्पर्श नहीं करता। उनके हृदयसे उनके ये आराध्य कहीं जा नहीं सकते। अतः क्या होने जा रहा है, इसे भली प्रकार समझते हुए भी वे शान्त बने रहे। उन्होंने आज्ञा-पालन किया।

सभी कुमारोंने आकर सम्राटके चरणोंमें प्रणिपात किया। आज उन्हें श्रीराघवेन्द्र स्नेहशील पिता या पितृव्य नहीं, सम्राट्—अनन्त ऐश्वर्य-सम्पन्न सम्राट् ही प्रतीत हो रहे थे। ऐसे सम्राट् जिनके सम्मुख मुख खोलनेका साहस कोई स्वजन भी नहीं कर सकता।

'कोई कुछ नहीं पूछेगा। कोई अस्वीकार नहीं करेगा। केवल सुनो और आज्ञा-पालन करो।' श्रीरामने कुमारोंकी ओर देखा— 'क्षत्रिय-बालकमें धैर्य, पौरुष, पराक्रम नहीं है तो उसका जीवन व्यर्थ है। इक्ष्वाकुवंशका बालक सहायकोंकी अपेक्षा नहीं करता। उसका सहायक उसका धनुष है। नवीन राज्यकी स्थापना वह अपने धनुषके बलपर कहीं भी कर ले सकता है।'

राजकुमारोंने एक दूसरेकी ओर देखा। उनके मुखोंपर तेज आया। उनकी दृष्टि कहती थी— 'सम्राट् यदि परीक्षा लेना चाहते हैं तो हम प्रस्तुत हैं। अरण्य, पर्वत, हिमप्रदेश, मरुभूमि, कहीं भी दुर्गम प्रदेशमें

एकाकी जाकर हम राज्य-स्थापन करके उसे सम्राट्के चरणोंमें समर्पित करनेको उद्यत हैं।'

राजकुमारोंने कहा कुछ भी नहीं; किंतु उनके मुखोंपर आत्म-विश्वासकी दृढ़ता स्पष्ट थी। वे एकाकी प्रवासके लिए प्रस्तुत हो चुके थे। अवश्य उन्हें कल्पना नहीं थी कि यह अयोध्यासे उनकी अन्तिम विदा है।

'कुश! अयोध्याका यह राज्य तुम्हारा है। ये सब तुम्हारे अनुज तुम्हारा अनुवर्तन करेंगे।' श्रीरामने कुशको संकेत करके तिलक किया। उनकी कटिमें स्वकरोंसे खड्ग बाँधकर बोले—'किंतु तुम्हें कुछ दिनोंके लिए यहाँसे पृथक जाकर अपने नामसे नगर बसाना है।'

'लव! अयोध्याके समान ही अवन्तिका मोक्षदा पुरी है।' लवको तिलक करके सम्राट्ने कहा—'तुमको उस भगवान महाकालकी पुरीका पालन करना है।'

'तक्ष! तुम भारतके उत्तरीय प्रदेशमें अपने नामसे नगर स्थापित करोगे।' तक्षशिलाकी स्थापनाका आदेश था यह।' 'तुमको शक्तिशाली, स्वाभिमानी उत्तरापथका प्रशासन करना है।'

'पुष्कर! तुम भी अपने नामसे ही नगरकी नींव डालो।' भरतके दूसरे पुत्रका तिलक करके सम्राट्ने कहा—'मध्य भारतके किञ्चित् दक्षिणका क्षेत्र तुम्हारा। तुम भगवान ब्रह्माके प्रिय स्थान पुष्करको भी राजधानी बना सकते हो।'

लक्ष्मणके बड़े पुत्र अङ्गदको अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्गका आधिपत्य देकर श्रीरामने तिलक किया। लक्ष्मणके दूसरे पुत्र चित्रकेतुको कारापथ (वर्तमान बलोचिस्तान) का शासक नियुक्त किया।

'वत्स सुबाहु! कुमार शत्रुघ्नने मधुपुरीका शासक बनाया है तुम्हें। मैं उसकी स्वीकृति देता हूँ।' यही स्वीकृति श्रुतसेनको भी प्राप्त हो गयी। श्रीरामने इन दोनों कुमारोंका भी अपने करोंसे अभिषेक किया। सबकी कटिमें अपने करोंसे खड्ग बाँधे।

'किसीसे विदा लेना आवश्यक नहीं है।' तिलक करनेके पश्चात् सम्राट्ने स्पष्ट आदेश किया—'तुम्हारे स्यन्दन राजद्वारपर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र तुम्हारे समीप हैं। तुममें-से प्रत्येक-

को एकाकी यात्रा करना है। तुम्हारा पौरुष तुम्हें पुकार रहा है। अभी अविलम्ब प्रस्थान करना है तुम्हें।'

श्रीरघुनाथ नहीं चाहते थे कि अभी-अभी अयोध्यामें जो कुछ हो चुका है अथवा जो कुछ होने जा रहा है, उसे जानकर ये बालक दुःखी एवं हतोत्साह हों। अभी इनमें किसीको लक्ष्मणके नगरसे जाने अथवा उर्मिलाकी स्थितिका पता नहीं था। अब यदि ये तनिक भी रुकते हैं, किसीसे भी मिलते हैं तो इनका कोमल हृदय इन्हें अत्यन्त कातर बना देगा।

'तुम्हारे अग्रजोंको जो सौभाग्य प्राप्त नहीं है, उसका उपभोग करनेका उत्साह उचित नहीं है।' श्रीरामने लव-कुशकी ओर संकेत करके अन्य कुमारोंको कह दिया— 'माताओंसे, अपने पितृ-चरणोंसे भी तुम्हें कुछ कहना नहीं है। किसीसे विदा नहीं लेनी है। अयोध्यामें अब किसीसे कोई बात नहीं करनी है। तुम अविलम्ब प्रस्थान करो। तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो।'

राजकुमारोंमें उत्साह था। उनकी कल्पना थी कि उनके ये परमादरणीय सम्राट् उन्हें अपनी योग्यता प्रकट करनेका अवसर देकर उनकी परीक्षा लेना चाहते हैं। सचमुच जब लव-कुशको प्रस्थानसे पूर्व मातृ-पद-वन्दनका सुयोग नहीं प्राप्त हो सकता तो उन्हें भी यह त्याग करना चाहिये। पितृ पद-वन्दनकी आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि सबमें जो श्रेष्ठतम हैं, सबके पूजनीय हैं, उनकी आज्ञा तथा आशीर्वाद प्राप्त ही हो चुका।

अयोध्यामें किसीसे मिलने अथवा किसीसे कुछ कहनेकी कोई उत्सुकता कुमारोंमें नहीं थी। उनको परस्पर भी पृथक होना है, यह भी खेदकी बात नहीं थी। यह तो प्रत्येकको पृथक-पृथक अपने पौरुषको प्रकट करनेका अवसर प्राप्त हुआ था। सबने भूमिष्ठ होकर श्रीराघवेन्द्रके चरणोंमें प्रणाम किया। उनकी प्रदक्षिणा की। उस कक्षसे निकलकर वे सीधे राजभवनके द्वारपर गये और अपने रथोंमें बैठ गये। रथके अश्व, सारथि—बस यही अब उनके साथी थे। उनके साथ कोई सेवक, सैनिक अथवा धन-रत्न नहीं दिया गया था। राजकुमारोंमें किसीको इसकी अपेक्षा नहीं थी। उन्होंने रथमें बैठते ही सारथियोंको रथ हाँक देनेकी आज्ञा दी।

'सुमन्त्र खड़े देखते रहे एक ओर तटस्थ। अयोध्याके आठों राजकुमारोंके रथ उनके सम्मुखसे चले गये। आज पहिली बार किसी राजकुमारने उन्हें प्रणाम नहीं किया था। किसीने उनसे कुछ पूछा नहीं था। जैसे उनको देखा ही न हो। अयोध्यामें आज यह ऐसी घटना प्रथम बार हुई, जिसके सम्बन्धमें महामन्त्रीको कुछ पता नहीं था। अयोध्याके साम्राज्यके परम सञ्चालक महामन्त्री नहीं जानते थे कि अयोध्याके आठों राजकुमार कहाँ जा रहे हैं।

एक साधारण अतिथि अयोध्यासे विदा होता था तो उसे अपार अन्न, धन, वस्त्राभरण, अश्व, गज, रथ, गायें, सेवक, सेविकाएँ देकर विदा किया जाता रहा है। अयोध्याका साधारण नागरिक भी कहीं बाहर जाता है तो उसका रथ धन-वस्त्रादिसे भरा जाता है। भले वह दो घटी ही-में लौटने वाला हो; किंतु मार्गमें वह मिलनेवाले विप्रोंको, याचकोंको दान करता चलता है। महामन्त्री समझ नहीं पा रहे थे कि अयोध्याके सब राजकुमार इस प्रकार कहीं क्यों सेबे जा रहे हैं कि उनके रथोंमें उनके अपने अस्त्र-शस्त्रोंके अतिरिक्त कुछ रखनेका आदेश नहीं था।

अयोध्याके नागरिक अभी लक्ष्मणकी स्थिति देखकर लौटे ही थे अथवा किसीसे सुन रहे थे। वे अपनी व्याकुलताको सम्हाल नहीं पा रहे थे। इसी समय आठों राजकुमारोंके आठ रथ उनके सामनेसे दौड़ते निकले। नागरिक कुछ नहीं समझ सके; किंतु उनको चौंकानेके लिए इतना तथ्य पर्याप्त था कि किसी रथके साथ कोई अश्वारूढ़ अथवा पदाति पार्श्व-रक्षक नहीं था। कोई आखेट-सहायक भी नहीं। सबके हृदय धक्से रह गये—'अयोध्याकी आशाके ये आधार-स्तम्भ एक साथ कहाँ जा रहे हैं इस प्रकार ?'

आठों रथ एक साथ अयोध्याके नगर-द्वारसे बाहर हुए। एकक्षणको रुके। रथारोहियोंने परस्पर अभिवादन किया और रथ विभिन्न दिशाओंमें दौड़ने लगे। वे दूर—अयोध्यासे दूर होते चले गये।

आञ्जनेयको आदेश

'अविदित तुमको कुछ नहीं है। तुम जानते हो कि अब मुझे इस व्यक्त लीलाको अव्यक्त करना है। देवता और सृष्टिकर्त्ता भी चाहते हैं कि मैं धरापर-से इस व्यक्त रूपका उपसंहार करूँ।' श्रीरामने राजकुमारोंके जानेके पश्चात् पवनपुत्रको समीप बुलाया। जब वे पादपीठके पास बैठ गये, अत्यन्त स्नेहपूर्वक बोले—'हनुमान! तुम्हारे एक-एक उपकारोंका भी ऋण चुकाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। तुम क्या चाहते हो, बिना सङ्कोच सूचित करो। तुम्हारी इच्छा राम अवश्य पूर्ण करेगा।'

'आपके इन श्रीचरणोंमें अविचल अनुरक्ति रहे।' हनुमानने चरण-कमलोंको अञ्जलिमें ले लिया—'आपका नाम मुखमें बना रहे और आपकी भुवनपावनी कथा सुननेको मिलती रहे।'

'तुमने स्वयं माँगा है कि जबतक पृथ्वीपर मेरी कथा रहे, तब तक तुम यहाँ रहो।' भगवती भूमिजाके भू-प्रविष्ट होनेके पश्चात् इस समय श्रीरघुनाथका श्रीमुख शान्त, प्रसन्न दीखा था। ये भक्तवत्सल किसी प्रेमी-प्राणको पाकर सब कुछ भूल जाते हैं। भक्ताग्रगण्य श्रीकेशरीकुमारके समीप इन्हें और कुछ स्मरण नहीं आ सकता था। सुप्रसन्न कह रहे थे—'तुम्हारे लिए तो सीता कभी अदृश्य नहीं हुईं और न राम ही तुमसे अदृश्य रह सकता है। तुम्हारे हृदयमें हम नित्य आसीन हैं। तुम जब चाहोगे, जिसके लिए चाहोगे, उसके लिए भी हम प्रत्यक्ष होंगे।'

'मेरे स्वामी!' पवनकुमारका प्रत्येक रोम प्रेमसे पुलकित हो उठा। उनके नेत्र-सलिलसे श्रीरघुनाथके पादारविन्द प्रक्षालित होते रहे। वाणी गद्‌गद होनेसे बोला नहीं गया।

'हनुमान! मेरी भी यही इच्छा है कि तुम मेरे भक्तोंकी रक्षाके लिए, उनकी सहायताके लिए, उनको मेरी प्राप्ति सुगम करनेके लिए इस पृथ्वीपर रहो।' श्रीरामने अपना कर-पङ्कज पवनकुमारके मस्तकपर रखा—'तुम्हारा स्मरण लोगोंके सब भय, सङ्कटको विनष्ट करता रहेगा।'

'आगे द्वापरके पश्चात् अत्यन्त कठिन कलियुग आवेगा। मानव अल्पप्राण, हीन-सङ्कल्प, अल्पायुष, अधर्मरत, अपवित्र रहन-सहनवाले हो जायँगे। करुणासिन्धुका स्वर भर आया—'वे रोग-शोक, आधि-व्याधिसे उपद्रुत ही रहेंगे। भय-ताप उन्हें कभी विश्राम नहीं देंगे। मेरा नाम, मेरी कथा ही उनका एकमात्र आधार रह जायगी। दूसरा कोई साधन सम्भव नहीं रहेगा। उस समय उन अबल, अनाश्रित, संतप्त प्राणियोंकी सहायता तुम्हीं कर सकते हो।'

'कलि व्याधि-बहुल, कलह-बहुल युग है। प्रेत-पिशाच, पितर-देवता, ग्रहादि सब स्वार्थ-परायण, धर्म-विमुख मानवको उत्पीडित करेंगे।' जैसे श्रीरघुनाथ कहीं दूरके दृश्य स्पष्ट देखते बोल रहे हों—'मानव न प्रारब्ध-पर विश्वास करेगा, न ईश्वरीय विधानपर। धर्मपर नहीं, पापपर आस्था हो जायगी उसकी। पुरुषार्थके नामपर असत्य, दम्भ, छल-कपट, परोत्पीडनमें अपना चातुर्य समझेगा। ऐसे हीन-सत्व मानवकी रक्षा तुम्हीं कर सकोगे। तुम उसे सब बाधाओंसे बचानेमें समर्थ हो।'

'अल्प-प्राण, अल्प-बुद्धि, अशुद्धाचरण, अपवित्र वस्तु व्याप्त समाजमें रहने वाले मनुष्यसे यज्ञ, धर्म, तप, दान, ध्यान कुछ सम्भव नहीं रहेगा।' खिन्न स्वर हो गया मर्यादापुरुषोत्तमका—'वह धर्माचरण-का, साधनका दम्भ करेगा। दूसरोंको ही नहीं, स्वयंको भी धोखा देना चाहेगा। भोग-परायण, पशु-प्राय मानवको तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा नहीं दे सकता। अतः तुम अबल मानवोंपर दया करके इस धरापर ही रहो।'

'तुम मानव नहीं हो। तुम उपदेवता वानर भी नहीं हो। उपदेवता वानर रूप तुमने स्वेच्छासे स्वीकार किया है। तुम मुझसे सर्वथा अभिन्न भगवान आशुतोषके अंश, उनके साक्षात् स्वरूप हो।' श्रीरामने मानो पवनपुत्रका स्तवन किया—'तुम इच्छानुसार दृश्य या अदृश्य रहते धरा-पर रहो। कामरूप तुम हो ही। कालका कोई प्रभाव तुमपर नहीं पड़ेगा; क्योंकि तुम तो कालके भी काल, स्वयं महाकाल हो।'

'सङ्कटमें तुम्हारा स्मरण करके प्राणी परित्राण पावें। तुम्हारे स्मरणसे उनके अभीष्ट पूर्ण हों। उनकी ग्रह, प्रेतादि बाधाएँ दूर हों।' वरदानके स्वरमें कहकर फिर श्रीराघवेन्द्रने समझाया—'आराधनाके

अभावमें, यज्ञाहुतिसे वञ्चित देवता अकाल, अतिवृष्टि, भूकम्प, महामारी ही भेजते रहेंगे भूमिपर। श्राद्ध न पानेसे असन्तुष्ट पितर आधि-व्याधि अभावसे उत्पीडित करेंगे। अपवित्र, हीनसत्व मानवोंको भूत-प्रेत सभी पीड़ा देंगे। तुम उनकी अर्चा, अल्प श्रद्धा, अपवित्रताकी ओर मत देखना। उनकी रक्षा करना। उनकी सहायता करना।

'कठिन कलिकालमें किसी भी प्रकार मेरा नाम लेनेवाले, मेरी कथा सुननेवाले वैसे ही कम रह जायेंगे। हनुमान! तुम उनके स्वजन बने रहना। उनपर सदय रहना। उन अज्ञानी जनोंके अपराधोंपर ध्यान मत देना।' अब अनन्त करुणावरुणालयने आदेश दिया— 'तुम मेरी भक्तिके प्रदायक हो। तुम भक्ति और ज्ञान दोनोंके दाता हो। तुम व्याधि-विनाशक हो।'

'कलिमें मनुष्यका मनोबल मृतप्राय हो जायगा। वह केवल भौतिक प्रयत्नोंसे शक्ति प्राप्त करना चाहेगा और तुम जानते हो कि भौतिक-आसुरी शक्तियाँ अत्यन्त विनाशक हैं। इन्द्रियोंके भोगोंको ही परम प्राप्य माननेवाला मानव पिशाचप्राय बन जायगा। उसे स्त्री, बालक, वृद्धादिका व्यापक विनाश करनेमें भी संकोच नहीं रह जायगा। अकारण हत्या मनुष्यका विनोद बन जायगी। असंख्य प्रणियोंका सामूहिक संहार करते भी लोग हिचकेंगे नहीं।' अतिशय करुणासे कमलदललोचन आर्द्र हो उठे— 'हनुमान! समस्त भूखण्डको ध्वस्त करनेके भी प्रयत्न होंगे। उस समय तुम्हें सत्पुरुषोंकी, मेरे आश्रितोंकी रक्षा करनी है। उन्हें बचाना है तुम्हें।'

'पाखण्ड-प्रचुर हो जायँगे जनपद। इन्द्रजालके कौतुक ईश्वरीय वैभव माने जाने लगेंगे। वाग्मिता एवं बुद्धि-वैभव पूजा प्राप्त करने लगेगा। असंख्य अनर्गल मतवादोंका प्रचार बढ़ेगा। सीधे सरल श्रुति-सम्मत मार्ग उपहासास्पद गिने जायँगे।' श्रीरामने स्पष्ट आदेश किया— 'ऐसे समय अन्धकारमें भटकते जो आर्त मुझे पुकारें, उन्हें उचित आलोक देना। उन्हें सत्पथ प्रदान करना। उन्हें निराश न होना पड़े, उन्हें ठगा न जा सके, उन्हें भ्रान्त न कर सके कोई, यह तुम अपना दायित्व मानना।'

'जो भी मुझे आर्त होकर पुकारे, उसे सहायता देना। उसका सङ्कट अवश्य टाल देना। जो भी मेरा स्मरण करे, उसे अपना स्नेहभाजन बनाना।' श्रीरघुनाथने अधिक स्पष्ट किया— 'पृथ्वीपर अबसे तुम मेरे

प्रतिनिधि हो। मेरे प्रतीक हो। मेरी प्रीतिके प्रदाता हो। मेरे जनोंके रक्षक एवं आश्रय हो। किसीके आचरण, अपवित्रता, अनधिकारको मत देखो। तुम समस्त आश्रय चाहनेवालोंके सहायक, सिद्धिदाता, सङ्कटमोचन बने रहो।'

हनुमानजीने प्रभुके श्रीचरणोंपर मस्तक रख दिया— 'आपके अनुग्रहसे, आपकी शक्तिसे मैं आदेशका पालन करूँगा। जब तक पृथ्वीपर आपकी कथा है, जब तक आपका स्मरण भूतलपर कोई करता है, जब तक आपके नाम-जापक हैं, मैं पृथ्वीपर रहूँगा। असंख्य—अनन्त रूपोंमें आप ही मेरे सम्मुख उपस्थित हैं, यह मेरी बुद्धि बनी रहे। मैं अपने सब प्रयत्नोंसे आपकी ही सेवा कर रहा हूँ, इस स्मृतिमें कभी व्याघात न पड़े। मैं कभी अहंकार एवं कर्तृत्वाभिमानसे अभिभूत न होऊँ। आपका दास, आपका यन्त्र बना रहूँ और आप ही इसका सञ्चालन करते रहें। कभी किसीको भी देखकर यह भ्रम न हो कि वह व्यक्ति है। अबल है। आश्रयार्थी है। आप ही उस रूपमें सेवा-स्वीकार करने पुकारते हैं, यह सदा स्मरण रहे।'

'एवमस्तु!' स्वस्थ स्पष्ट स्वरमें सर्वेश्वरेश्वर परात्पर पुरुष मर्यादापुरुषोत्तमने वरदान दिया। अपना दक्षिण कर पवनकुमारके मस्तकपर रखा। दो क्षण मौन रहकर पुनः बोले—'अब तुम यहाँसे अपने अनुकूल स्थानपर हिमालय चले जाओ। वहाँ द्वापरमें तुम्हें पाण्डु-पुत्रोंके रूपमें देव-सन्तान प्राप्त होंगे। द्वापरमें तुम पुनः मेरे अवतार-विग्रहका सान्निध्य प्राप्त कर सकोगे।'

आञ्जनेयने श्रीरघुनाथके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। श्रीरामने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया। आश्वासन देकर स्नेहपूर्वक विदा किया। पवनकुमार उस कक्षसे बाहर आते ही आकाशमें ऊपर उठ गये। वे अयोध्यासे चले गये, यह किसीने लक्षित नहीं किया।

लीला-संवरण

'अपने आश्रममें कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ नहीं हैं।' महामन्त्री सुमन्त्र-को सन्देश मिला। राजकुमारोंका अयोध्यासे अचानक जाना असाधारण घटना थी। महामन्त्रीने महर्षिको सूचना देना आवश्यक माना; किंतु चरने लौटकर जो समाचार दिया, वह अतर्कित था— 'महर्षिने कल प्रातः समस्त अन्तेवासियोंको विदा कर दिया। होमधेनु नन्दिनी स्वर्ग चली गयी। देवी अरुन्धतीके साथ महर्षि स्वयं धराका त्याग करके अपने सप्तर्षि लोक चले गये हैं। अयोध्याके समीपके अरण्योंके ऋषिगण, तपस्वी भी कोई नहीं हैं।'

जिस राजसेवकने यह सन्देश दिया, उसने सूचित किया— 'अकेले महर्षिके पौत्र आचार्य पराशर प्रतीक्षा कर रहे थे आश्रममें। उन्होंने आपके लिए सन्देश भेजा है।'

'सुमन्त्रको अपने पुत्रोंको अविलम्ब अयोध्यासे विदा करना चाहिये। वे राजकुमारोंका अनुगमन करें और उनके साथ रहकर उनकी सहायता करें।' ऋषि पराशरका आदेश था। उन्होंने कहलाया था— 'मैं स्वयं आयुष्मान कुशके समीप जा रहा हूँ। कुमारोंने अपने आचार्योंका वरण कर लिया है। वे अयोध्याके समीपस्थ आश्रमोंसे अपने अभीष्ट ऋषिको प्रार्थना करके सपरिवार अपने ही रथमें साथ ले गये हैं।'

अयोध्याके महामन्त्रीने इतनी समझदारी पहिले ही की थी। राज-कुमारोंको जाते देखकर उन्होंने अपने आठों पुत्रोंको आदेश दे दिया था कि 'वे अपने रथ शीघ्र सजा लें और प्रत्येक राजकुमारके रथका उनमें-से एक-एक अनुगमन करे। अपनेको राजकुमारका आज्ञानुवर्ती माने। अयोध्या राजकुमार आवें, तभी आवें।'

महामन्त्रीको अब यह समाचार सम्राट्को देना था। यहाँ नगरके समीपके सब ऋषि-मुनि चले गये, कुलगुरुका आश्रम सूना पड़ा है, यह ऐसी अवस्था नहीं थी कि सुमन्त्र इसका कोई समाधान स्वयं निकाल पाते।

वे राजभवनके अन्तःपुरमें पहुँचे तो वहाँ सेविकासे समाचार मिला—'श्रीराघवेन्द्र अभी एकाकी, पैदल लक्ष्मणके अन्तःपुरकी ओर जा रहे हैं।'

आञ्जनेयको विदा करके श्रीराम अपने आसनसे उठे। उन्होंने उसी क्षण उपस्थित भरत-शत्रुघ्नकी ओर केवल एक बार देखा। बिना कुछ कहे वैसे ही चल पड़े। अनुज दो क्षण स्तब्ध खड़े रहे। इसके पश्चात् वे भी अग्रजसे कुछ पीछे रहकर इनका अनुगमन करने लगे। सुमन्त्र मार्गमें ही भरत-शत्रुघ्नके साथ हो गये।

'वधू! अनशन अनावश्यक है।' पहिली बार श्रीराम अपनी अनुज-वधू उर्मिलाके सम्मुख आकर खड़े हुए और सीधे सम्बोधन करके बोले—'राम, सीताके बिना रह सकता था, रह रहा था; किंतु लक्ष्मणके बिना एक दिन भी नहीं रह सकता। हम सबको उनके पीछे चलना है। अनुज होकर भी वे आगे गये। उठो और चलो।'

उर्मिलाने हड़बड़ाकर भूमिमें मस्तक रखा। वे उठकर खड़ी हुइ तब तक श्रीराम घूम चुके थे। भाइयों और महामन्त्रीको उपस्थित देखकर शान्त स्वरमें बोले—'सबको चलना है। केवल जो रहना चाहें, उनको रोकना नहीं है। जो भी चलना चाहें, राम सबको आमन्त्रित करता है। अब इस पृथ्वीपरका चरित समाप्त। सब रामके साथ, रामके पीछे आ सकते हैं। रामको जो अपना मानते हैं, जो भी अपना मानेंगे, कालकी सीमासे पार, राम उन सबको अपना स्वजन स्वीकार करता है। वे सब रामके समीप आ सकते हैं। उनको रोकनेकी शक्ति कभी किसीको प्राप्त नहीं होगी।'

श्रीराम सीधे वैसे ही चल पड़े। भरत, शत्रुघ्न, सुमन्त्रमें-से कोई कुछ नहीं बोला। किसीको अब बोलने, पूछने, कहनेको कुछ नहीं रह गया था। श्रीरामका पदानुसरण संसारका, शरीरका मोह लेकर तो नहीं किया जा सकता। उनके पीछे तो सदा प्राणीको एकाकी, केवल इनके श्रीचरणोंपर दृष्टि लगाये, सर्वत्रसे निर्मम, निरपेक्ष चलना पड़ता है।

कोई अपना स्वजन-सम्बन्धी भी है, यह स्मृति लेकर श्रीरामका अनुगमन सम्भव है? किसीने दूसरी ओर देखा तक नहीं। यह भी नहीं कि उसके साथ, उसके पीछे कौन आ रहे हैं, अथवा किनको आना चाहिये। जैसे सब यहाँ आकर सर्वथा एकाकी हो जाते हैं। कोई सूचना नहीं, कोई

पुकार नहीं , कोई आह्वान या अन्वेषण नहीं । श्रीराम आगे चलते , उनके अरुण-मृदुल चारु चरणोंपर दृष्टि । शरीर भी साथ चल रहा है , यह स्मरण भी नहीं ।

देवी उर्मिला उठकर वैसे ही चल पड़ीं । एकमात्र वे थीं , जिन्हें श्रीराघवने साथ चलनेका स्पष्ट आदेश दिया था । जिन्हें लेने वे अपने कक्ष-से यहाँ तक आये थे । अन्यथा जीवको अपनी अन्तःप्रेरणासे ही इनका अनुगमन करना पड़ता है । ये पुकारते नहीं , प्रतीक्षा करते हैं । अनन्त-कालसे प्रतीक्षा ही कर रहे हैं । सबको साथ आनेकी अनुमति देकर शाश्वत प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

माण्डवी-श्रुतिकीर्ति ये नाम लेनेकी आवश्यकता नहीं है । श्रीराम अन्तःपुरसे निकले , राजभवनके द्वारसे बाहर हुए तो भवनमें कोई प्राण-धारी नहीं रह गया था । जो भी सचर थे , चल सकते थे—पशु-पक्षी , कीट-भृङ्ग तक सब पीछे चल पड़े थे । सम्पूर्ण राजसदनमें एक मक्षिका , एक पिपीलिका तक पीछे नहीं पायी जा सकती थी ।

श्रीराम राजसदनसे निकले । अयोध्याके राजपथपर आये और सीधे चलते गये । चलते गये साथ राजसदनसे साथ आये प्राणधारी । चलते गये नगरके सदनोंसे निकले प्राणी । इनकी संख्या बढ़ती चली गयी ।

बालक , वृद्ध , युवा , वृद्धाएँ और असूर्यम्पश्या वधुएँ सब , सब पैदल , सब अपने आपमें एकाकी । कहीं कोई किसीका स्वजन , साथी , सहायक नहीं । किसीको किसी दूसरेकी अपेक्षा नहीं , पता नहीं । अपने शरीरका ही स्मरण नहीं तो अन्यका कैसे हो ।

सब प्राणी—श्रीरामका अनुगमन करते सब केवल प्राणी रह गये हैं । मनुष्य , पशु , पक्षी , कीट सरीसृप , सब शरीर ही होता है । जीव शरीर नहीं होता । आज शरीर विस्मृत हो चुका है । मनुष्य हों या तुच्छ पिपीलिका—केवल प्राणी हैं आज । कोई भेद नहीं , कोई अनुक्रम नहीं । सब समान , सब एकसे श्रीरामके अनुगत , श्रीरामके परिकर । सबको—जीवमात्रको श्रीरामके ये पद-पङ्कज ही शरण हैं । सब इन पादपद्मोंके पीछे ही चल रहे हैं । असंख्य प्राणी चले जा रहे हैं । एक साथ चलती प्राणियोंकी अपार भीड़ ; किंतु सब अपने आपमें एकाकी जा रहे हैं ।

गगनसे राशि-राशि पुष्प झर रहे हैं। विमानोंसे, अनेक दिव्य वाहनोंसे आकाश भर गया है। अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं। गन्धर्वोंके वाद्य आज अन्तिम अभिवादन कर रहे हैं। किन्नर गान कर रहे हैं। महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोकके भी सब ऋषि, महर्षि, देवर्षि, राजर्षि, काण्डर्षि प्रभृत एक साथ स्तवन करनेमें लगे हैं।

साम्बशिव वृषभारूढ़ आ गये हैं नन्दी, भृङ्गी, भैरव, वीरभद्रादि-के साथ। मूषक-वाहन मङ्गलमूर्त्ति गणपति तथा मयूर-वाहन देवसेनापति कुमार कार्त्तिक बहुत काल पश्चात् एक साथ आये हैं। हंसवाहन सृष्टिकर्त्ता हैं। गरुड़ारूढ़ रमासहित रमाकान्त हैं। सुरेन्द्र आये हैं ऐरावतपर बैठे। अग्नि, वायु, वरुण, यम प्रभृतिमें-से कोई ऐसा नहीं जो आज न आ गया हो। परात्पर पुरुषके दर्शनका यह अन्तिम अवसर देवता, मुनि छोड़ नहीं सकते थे।

यक्ष, नाग, किम्पुरुष—सबके अधिपति उपस्थिति हो गये थे। समस्त तीर्थोंके अधिदेवता—इनमें नदियों, सरोवरों, पर्वतोंके अधिदेवता थे, ग्राम-देवता, ग्राम-कालीगण, मूर्त्तिमान वेद एवं शास्त्रोंके अधिदेव आये थे।

आकाश आच्छादित था विमानोंसे। वहाँ सङ्गीत, नृत्य, वाद्य, स्तुतिका कोलाहल गूंज रहा था। जयध्वनि उठ रही थी। अनवरत पुष्प-वर्षा हो रही थी; किंतु पृथ्वी नीरव, निस्तब्ध थी। एक पत्ता तकके गिरनेका भी शब्द नहीं। जैसे वायुके पद भी शिथिल हो गये थे।

कोई दृष्टि तक नहीं उठा रहा था गगनकी ओर। किसी क्षुद्र प्राणी-को भी गगनका यह तुमुल कोलाहल आकर्षित नहीं कर पाता था। श्रीराम-के पीछे चलते समस्त प्राणी आज सुरोंके आराध्य, स्तवनीय हो गये थे। उन्हें सुरोंका समादर नहीं करना था। उन्हें सुरोंकी, उनकी शक्तिकी, उनके वरदानकी अपेक्षा नहीं थी। उनके लिए यह सब व्यर्थ हो चुका था। वे आज स्वयं सुरोंके द्वारा स्तुत हो रहे थे। प्राणी रामका पदानुगमन करके सुरोंका सदा प्रणम्य हो जाता है। उस आप्तकामका सुर स्तवन ही कर सकते हैं।

श्रीराम तथा उनके पीछे चलते असंख्य प्राणी सरयूतट पहुँचे। स्वच्छ-जला, तल-दर्शिनी सरयूमें हिलोरें उठीं और शान्त हो गयीं। जैसे

इस दिव्य सरिताने हर्षसे स्वागतको हाथ बढ़ाये और फिर सबके लिए अपना अङ्क उन्मुक्त कर दिया।

श्रीराम सीधे चलते आये। चलते चले गये। ऐसे चलते गये जैसे मध्यमें सरयूकी धारा पड़ती ही न हो। जलकी ओर, पृथ्वीकी ओर, किसी भी ओर उनकी दृष्टि नहीं थी।

श्रीरामके पीछे आते उनके अनुज, महामन्त्री सुमन्त्र, अनुज-वधुएँ, अन्तःपुर तथा अयोध्याके नागरिक, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग-भृङ्ग—सब, ये नाम ही हैं। शरीरोंका पार्थक्य दीखता है, अतः ये नाम भी हैं, अन्यथा सब प्राणी, असंख्य प्राणी चलते आये और सरयूके उस गोप्रतार तीर्थमें चलते चले गये। किसीने देखा नहीं कि मध्यमें कहाँ धरा-की सीमा समाप्त हुई और सलिल आया।

चले गये—चले गये श्रीराम, चले गये उनके साथ आये कोटि-कोटि प्राणी, चले गये उनके असंख्य शरीर। वे कोई जलमें डूबे थे कि उनके शव वहाँ मिलते या बहते। वे दिव्यलोकके परिकर—उनके सम्बन्ध-में केवल इतना कहा जा सकता है कि वे चले गये।

एक अद्भुत, अलौकिक ज्योति—ऐसी ज्योति कि अनिमेष सुरोंके नेत्र भी बन्द हो गये उस प्रकाशके सम्मुख। श्रीरामके सरयूमें प्रवेश करते ही वह प्रकाश-पुञ्ज प्रकट हुआ। पीछे चले आते असंख्य प्राणी उसी प्रकाशमें प्रविष्ट होते चले गये।

'चले गये!' सुरोंने, ऋषियोंने, गन्धर्वोंने, सगण ससुत सदाशिव-ने, रमा-सहित रमाकान्तने, सृष्टिकर्त्ताने, लोकपाल, दिक्पाल सबने एक साथ कहा—'चले गये।'

कहाँ गये? कैसे गये? किस पथसे गये? कोई लक्षित नहीं कर सका। साकेत कहाँ इन्द्रिय-मन-गोचर है कि वहाँ जाते सुर किसीको देख पाते। अब तो सबको मस्तक झुकाकर जयघोष करना था। प्रणाम एवं पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी थी सरयूके उस गोप्रतार तीर्थके शान्त, स्वच्छ, पावन सलिलमें ऊपरसे।

श्रीराम स्वधाम चले गये। उन्होंने धरापर अपनी व्यक्त लीलाका संवरण कर लिया। चले गये उनके साथ उनके स्वजन, परिकर तथा नित्य धामके सब प्राणी। जिन्होंने अवतार-कालके पूरे त्रयोदश सहस्र वर्षसे

भी अधिकके कालमें श्रीरामका दर्शन किया था, उनका स्पर्श किया था, उनसे संलाप किया था, वे सब उनके दिव्यधाम चले गये।

वे भी चले गये जिन्हें श्रीरामने स्पर्श किया था। जिन्हें उन कमल-लोचनने एक बार भी देखा था। वे वृक्ष, लताएँ, तृण, शिलाएँ—वे अचर, इन्द्रियहीन भी इस मायिक संसारसे मुक्त होकर श्रीरामके नित्य धाम चले गये।

अयोध्या, चित्रकूट, दण्डकारण्य, किष्किन्धा, लङ्काका नाम लेना पर्याप्त नहीं है। जनकपुर, सिद्धाश्रम, मगध, कैकय, दक्षिण कौशल और इनके मार्गके प्रदेश। गया, मातृगया, धर्मारण्य—जहाँ भी श्रीराम कभी भी गये थे, जहाँसे निकले थे, जिनको उनके दर्शन हुए थे, जिन्हें उन्होंने देख लिया था या बिना देखे स्पर्श कर दिया था, वे सब चर-अचर, पशु-पक्षी कीट, तृण-तरु-लता गुल्म उसी क्षण, जहाँ भी वे थे, वहींसे धराके लिए अदृश्य हो गये। वे श्रीरामके साथ ही उनके दिव्य धाम चले गये।

अयोध्या—केवल एक नाम ले रहा हूँ। मिथिला, चित्रकूट, किष्किन्धा, लङ्काकी भी यही अवस्था—सब अदृश्य हो गये—स्थान नहीं, उनका दिव्य रूप अदृश्य हो गया। लङ्कामें विभीषण रहे, पर लोक-दृष्टि-के लिए लङ्का भी अदृश्य हो गयी।

अयोध्या अदृश्य हो गयी। उसके मणि-भवन, स्वर्ण-कलश अदृश्य हो गये। केवल भवन रह गये, भूमि रह गयी। पाषाणमें परिवर्तित भित्तियोंके भवन। साधारण मृत्तिका-भूमि; किंतु अयोध्या और उसके आस-पास कोई वृक्ष, लता, तृण नहीं। जैसे मरुस्थलमें बसा कोई शून्य नगर हो। पक्षी, कीट, पिपीलिका तक कहीं कोई प्राणी नहीं। दिव्यधाम अयोध्या अदृश्य हो गयी तो उसका जो अवशेष रहा, अत्यन्त भयावह रह गया।

कुशका पुनरागमन

अमित ओजस्वी कुमार कुशने अयोध्याके बाहर रथ आते ही अनुजोंसे कहा था— 'वेदज्ञ आचार्यके बिना राज्य-स्थापन अशक्य है। यदि ब्राह्मणका सामीप्य एवं संरक्षण नहीं होगा तो संस्कार उच्छिन्न हो जानेसे प्रजा व्रात्य हो जायगी। शासन निरङ्कुश अनार्योंका होता है। आदर्श शासन ऋषि-तन्त्र ही हो सकता है।'

'हमें आचार्य, मन्त्री तथा वृद्धजन आवश्यक हैं।' लवने अग्रजका समर्थन किया— 'मन्त्री कुछ पीछे भी पाये जा सकते हैं। प्रचुर पुरस्कार प्रदान करके विद्वद्वर्गको आकर्षित किया जा सकता है। प्रजाके वृद्ध जनों-को प्राधान्य दिया जा सकता है; किंतु आचार्यके बिना कार्यारम्भ ही अनियन्त्रित हो जायगा। आचार्यकी आवश्यकता सबसे पहिले है।'

'मैं कुलगुरुके आदरणीय पौत्र पराशरजीसे प्रार्थना करने जा रहा हूँ।' कुशने अपना निश्चय सूचित किया— 'आशा है, वे मुझे अपनाना अस्वीकार नहीं करेंगे।'

'हम भी आचार्य अपने साथ यहीं अयोध्याके पार्श्ववर्ती तपोवनसे ही ले जायँगे।' दूसरे राजकुमारोंने तत्काल निर्णय कर लिया। उन्होंने अपने अभीष्ट ऋषियोंका भी निश्चय कर लिया।

'वत्स! तुम्हें दूर तो जाना नहीं है।' महर्षि पराशरने कुशकी प्रार्थना सुनकर कहा— 'तुम प्रस्थान करो, मैं पिताश्रीका सन्देश महा-मन्त्री तक पहुँचाकर शीघ्र आ रहा हूँ।'

दूसरे राजकुमार जब प्रार्थना करके अपने आचार्योंको रथमें बैठाकर चले, सुमन्त्रके पुत्र मार्गमें ही उन्हें मिल गये। किसीको भी योग्य मन्त्रीका अन्वेषण नहीं करना पड़ा। उनको दो-दो मन्त्री मिले; क्योंकि उनके सारथि भी सुमन्त्रके ही सुयोग्य शिष्य थे।

कुमार कुशको पराशरजीने स्थान-निर्देश कर दिया था, जहाँ उन्हें अपनी राजधानी स्थापित करनी थी। वे सुरसरिके उस पावन तटपर

पहुँचे। महर्षि पराशरको बहुत विलम्ब नहीं हुआ। कुशके उस महानगरका नाम कुशावती पड़ा, जो उन्होंने वहाँ बसाया। कालक्रमसे उसके उच्छिन्न जानेपर पीछे उसके समीप ही कौसाम्बी नगर बसा।

सभी राजकुमार अयोध्यासे दूर चले गये थे। अयोध्याकी जो अवस्था उसी दिन हो गयी, उसका समाचार उन्हें बहुत देरसे मिला। अयोध्यामें तो कोई रह नहीं गया था जो समाचार देता। राजकुमार नवीन राज्य, नवीन राजधानी स्थापन करने गये थे। उनके सम्मुख अत्यधिक कार्य था। उन्हें नवीन शासन-विधान बनाना था। सब कुछ उन्हें नवीन करना था। नवीन जुटाना था। अयोध्यासे तो वे कुछ ले नहीं गये थे। वे अपने कर्तव्यमें व्यस्त रहे। समाचार सभीके समीप कभी किसी पथिक अथवा परिव्रजनशीलसे प्राप्त हुआ। ऐसे यात्रीसे जो अयोध्याके सुयशको सुनकर वहाँ जा पहुँचा था।

जिसके समीप भी समाचार पहुँचा, वह शोक-मूर्छित हुआ, लेकिन अयोध्यामें वह किसके समीप आता ? किस प्रकार उस जन-शून्य स्थान-पर आनेका उत्साह पाता ? कोई राजकुमार अयोध्या नहीं आया।

सबने अपने राज्य स्थापित कर लिये। सबकी राजधानियाँ समृद्ध हो गयीं। रघुवंशी कुमारोंका शासन प्रजाको सब कहीं आकृष्ट करने लगा। शौर्य जब संयम तथा श्रद्धा-शासित होता है, सम्पत्ति स्वयं सेवा करने दौड़ी आती है। श्रीरामके लोकपावन सुयशने पहिलेसे ही कुमारोंको लोक-सम्मानित बना रखा था। उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। कहीं संघर्ष नहीं करना पड़ा। प्रजाने उन्हें अपना अधिपति स्वीकार करनेमें अपना सौभाग्य माना।

विबाह तो होने ही थे। भूमण्डलके श्रेष्ठतम, सुप्रसिद्ध राजाओंके लिए भी अपनी कन्या किसी रघुवंशी कुमारकी परिणीता बना पाना अहोभाग्य था। अत्युत्तम श्रेष्ठ कुलोंकी कन्याओंसे आग्रह-सहित कुमारोंका परिणय हुआ। नवीन सम्बन्ध बने। नवीन सहायक मिले।

सभी अनुज अपने अग्रज कुशके अनुवर्ती बने रहे। वे कुशको अपना सम्राट् स्वीकार करते रहे। अयोध्याके शासन-विधानको ही सबने अपनाया था। अयोध्यासे ही परम निर्देशक आचार्य ले गये थे। सुमन्त्रके पुत्र ही सर्वत्र महामन्त्री थे। सबको गौरव था कि वे अयोध्यामें उत्पन्न हुए, पले, पढ़े हैं ; किंतु अयोध्या ?

'वत्स ! मैं अयोध्याकी अधिष्ठातृ देवता हूँ। तुम्हारे इक्ष्वाकुकुल-की परम्परागत राजधानी अयोध्याकी अधिदेवी।' एक रात्रि कुशने स्वप्नमें देखा कि उनके सिरके समीप एक अनुपम सौन्दर्यमयी, तेजोमूर्ति खड़ी हैं। उनके वस्त्र मलिन तथा फटे हैं। शरीर मलावच्छन्न है। अनाभरण है। केश रूक्ष हैं, बिखरे हैं। प्रशस्त उन्नत भाल विन्दु-विहीन है। विशाल लोचन अश्रु टपका रहे हैं। पूरा शरीर कृश है। जैसे कोई सुर-साम्राज्ञी विपत्ति-ग्रस्ता, अनेक कालसे उपोषिता हों। वे कह रही हैं— 'कुश! तुमने मुझे सर्वथा विस्मृत कर दिया, यह तुम्हारे योग्य है ?'

'अम्ब ! आपकी यह कैसी अवस्था है ?' स्वप्नमें भी अत्यन्त आकुल हो उठे कुश— 'आपकी यह विपन्न दशा ?'

'कुश! मेरा वैभव श्रीरामके साथ चला गया?' किंतु मेरी यह अवस्था न होती यदि तुम भी मुझे विस्मृत न कर देते !' उन देवीके लोचनोंका अश्रु-प्रवाह बढ़ गया— 'मेरे शून्य सदनोंमें अब मकड़ियोंके जाल फैले हैं। उनमें चमगादड़ों एवं शृगालोंने अपने आवास बना लिये हैं। वहाँके देव-मन्दिरोंमें काई जमी है। जिन राजपथोंपर अलंकृत अश्व एवं रथ दौड़ते थे, वे पथ धूलिसे पट गये हैं। वहाँ अब कण्टक-वीरुध उग आये हैं।'

'कुश ! जिन अन्तःपुरोंमें अलक्तक-रञ्जित पद मणि-नूपुरोंकी झंकार करती उच्चकुलोंकी कुल-वधुएँ—तुम्हारी माताएँ गज-गतिसे हँसती-घूमती थीं, उनमें सायंकाल शृगाली फेत्कार करती है।' वे ज्योतिर्मयी रुदन करती कहती गयीं— 'जिन कक्षोंमें तुम्हारे पिता, पितृव्यके पाद-पीठोंपर मुकुट-किरीटसे भी स्पर्श करनेमें सुरेन्द्र सशङ्कित होते थे, वहाँ वन-विडाल परस्पर कलह करते कूदते रहते हैं।'

'अयोध्यामें अब मणि-काञ्चन भूमि नहीं है। अब वहाँ स्फटिककी भित्तियाँ नहीं हैं। अब वहाँके सरोवरों एवं वापियोंमें प्रवाल, पद्मराग, वैदूर्यके सोपान नहीं हैं, यह सत्य है। यह सत्य है कि वहाँ सब श्रीहीन पाषाणोंमें परिवर्तित हो गया है; किंतु'—देवीने हिचकियाँ लेते कहा— 'जिन जलाशयोंमें सरोजोंके मध्य हंस रात्रि-शयन करते थे, उनमें सिवार भरी है। अब मण्डूक वहाँ अखण्ड अपना राग अलापनेको स्वतन्त्र हैं।'

'जिन कक्षोंमें तुम्हारे अनुज और सखा शैशवमें मणि-किङ्किणोका क्वणन सुनते घुटनों सरकते-किलकते थे, उनमें अब महा-अहि आनन्दसे

पड़े रहते हैं। अब देवस्थानोंमें अर्चा-विग्रहोंके समीप ही हिंस्र पशु हत्या करते हैं। उद्यान एवं उपवनोंमें उगी सघन कण्टक झाड़ियोंके भीतर वृकों-के बच्चे शशकोंका आखेट करते हैं।

'अब अयोध्यामें सरोवरोंके सोपानोंपर लोवा केकड़े मारती है। पिककी कुहू-ध्वनि, मयूरोंका केकारव अब अश्रुत-प्राय है। अवश्य गृहोंके गवाक्षोंमें कर्कशरव पक्षियोंने नीड निर्मित कर लिये हैं। पताकाएँ जिनपर फहराती थीं, उनपर अब रात्रिमें बैठकर उलूक भयावह शब्द करते हैं। प्रशस्त क्रीड़ा-स्थलोंमें वेणु-गुल्म उग आये हैं। उनमें ऋक्षोंका आवास है।'

'स्वच्छ-सलिला सरयूके सोपान नष्ट हो रहे हैं। अब उसका जल आविल हो गया है और उसमें असंख्य कच्छप भर गये हैं। अब सरयूमें हंस नहीं बकोंकी बहुलता है।'

'अयोध्यामें अब श्रुतिके पावन स्वर नहीं उठते। बन्दियोंका स्तवन नहीं सुनायी देता। वहाँ अब वन्य पशु अथवा गृद्ध झगड़ते हैं। जहाँ ऋषियोंके आश्रम थे, वहाँ अब वृद्ध केहरी अपने पञ्जोंपर सिर रखे लेटे रहते हैं। उनके नेत्र भी आर्द्र हैं कि अब कोई शूर उन्हें इस वार्धक्यकी विपत्तिसे मुक्त करने नहीं आता।'

'अयोध्याकी परिखापर, भवन-भित्तियोंपर काली, कुत्सित काई जमी है और उसमें स्थान-स्थानपर तृण, नन्हे तरु अपना सिर उठाये खड़े हैं। असंख्य क्षुद्र कीटोंने वहाँ अपना अड्डा जमा लिया है। वहाँके भवन, वीथियाँ, रङ्गशालाएँ अब सर्प, वृश्चिक तथा उत्पीडक पशुओंकी विहार-स्थली बन चुकी हैं।'

'अयोध्या मोक्षदा पुरी है। सप्तपुरियोंमें किसीसे भी किञ्चित् न्यून नहीं। परात्पर पुरुषकी प्राकट्य-भूमि; किन्तु अब कोई यात्री भूले भी उधर नहीं भटकता। इतनी भयावह, इतनी उजाड़ हो चुकी है अयोध्या और कुश! तुम पूछते हो कि मेरी यह विपन्नावस्था क्यों है?'

'अयोध्या तुम्हारी पितृ-भूमि है। तुम्हारे पूर्वजोंकी भूमि है। अयोध्याकी समृद्धि, शोभामें तुम्हारा सुयश है। तुम्हारा गौरव है।' उस देवीने अन्तमें कहा— 'मैं तुम्हें स्मरण दिलाने आयी हूँ कि तुम्हारा शौर्य, तुम्हारी शक्ति अयोध्याकी सेवामें लगे, यह तुम्हारा कुलोचित शील होगा। तुम अपनी राजधानी अयोध्या ले चलो। कितनी भी समृद्ध हो जाय,

कुशावती केवल अर्थ, काम, धर्म दे सकेगी; किंतु अयोध्या चतुर्वर्ग-प्रदायिनी पुरी है।'

वे देवी तिरोहित हो गयीं। कुशका स्वप्न भङ्ग हो गया; किंतु उन्हें पुनः निद्रा नहीं आयी। नित्यकर्मसे निवृत्त होकर, दैनिक तर्पण, पूजनादिके पश्चात् आचार्य पराशरके पदोंकी वन्दना की कुशने उनके आश्रम जाकर और अपना स्वप्न सुनाया।

'वत्स! तुम्हारे सङ्कोचवश मैं यहाँ चला आया।' ऋषि पराशरने स्वप्न सुनकर कहा— 'पितामहका आदेश था कि मैं तुम्हारे आचार्यत्वका त्याग न करूँ; किंतु पावन पुरी अयोध्याका परित्याग मुझे कभी प्रिय नहीं रहा। मुझे प्रतिक्षण प्रतीत होता रहा है कि पितामहका आश्रम मुझे पुकार रहा है। हम अरण्यवासियोंको न हिंसक पशुओंका भय होता, न नगरोंके प्राप्य पदार्थोंका हमें प्रलोभन है। वन्य कन्द, मूल, शाक हमारा तब भी निर्वाह कर देते हैं, जब तरुओंमें पक्व फल न हों। अब तो तुम्हें दैवी आदेश हो गया है।'

'मैं आपका सेवक हूँ। पितृ-चरणोंने मेरा शरीर, मेरा जीवन आपकी सेवामें अर्पित कर दिया है।' कुशके महामन्त्री सुमन्त्रके ज्येष्ठ पुत्रने पूछनेपर कहा— 'लेकिन राजन्! पशुको भी प्रायः अपनी जन्मभूमि प्राणप्रिय होती है। मुझे आशा होती कि आप मुझे अनुमति दे देंगे तो मैं अयोध्या अरण्य हो गयी हो तो भी उटज बनाकर वहाँ जीवन व्यतीत करनेमें आनन्द मनाता। मेरे अन्तरकी सबसे बड़ी कामना यही है कि मेरा शरीर अयोध्यामें छूटे और मेरा शव-दाह वहीं पुण्य-सलिला सरयूके तटपर हो। आप आज्ञा करें। प्रस्थानकी प्रस्तुतिमें विलम्ब नहीं होगा।

'राजधानी यहाँसे अयोध्या जायगी। जो लोग कुशावती ही रहना चाहेंगे, उनकी सुरक्षा एवं व्यवस्था सुचारु चलती रहेगी, अतः किसीको आशङ्कित होनेकी आवश्यकता नहीं है।' कुशकी राजाज्ञा घोषित हुई— 'जो लोग राजाके साथ चलना चाहेंगे, उनको, उनके स्वजन-सम्बन्धियों-को वाहन प्रदान किये जायँगे। उनके सब उपकरण शकटों द्वारा पहुँचाये जायँगे। उनके पशु सुरक्षित भेजे जायँगे। यहाँ छूटनेवाली अचल सम्पत्तिका उन्हें उचित निष्क्रय प्राप्त होगा।'

'अयोध्यामें साथ चलने वालोंको उचित आवास प्राप्त होंगे। वणिकवर्गको पण्य-स्थान तथा कृषकोंको भूमि दी जायगी। विप्रगणोंको,

तापसोंको सरयू-तटके समीप निर्मित उटज मिलेंगे।' घोषणामें स्पष्ट कहा गया— 'स्थान-परिवर्तनमें कुछ कष्ट, कुछ असुविधा होना अवश्यम्भावी है। शासनकी ओरसे सब प्रकारके लोगोंको उनकी आजीविकाके उपार्जनकी सुविधा दी जायगी।'

अग्रिम दल पर्याप्त प्रथम भेज दिया गया। उसे नगरके भवनोंको, पथोंको, उद्यानोंको, जलाशयोंको स्वच्छ करना था। तृण, गुल्म, कंटक-तरु एवं झाड़ियाँ काट देनी थीं। वन्य पशु-पक्षियोंको, सर्पादिको भगा देना था। सरयू-तट तथा समीपका अरण्य भी ऐसा कर देना था कि वहाँ ऋषि-मुनि आश्रम बनाकर रह सकें। वहाँ उटज बना देने थे।

दूसरे दलमें पशु आये—पशुपाल आये। अन्न, वस्त्रादि आवश्यक सामग्री आयी। उपवन, उद्यानोंके उपयुक्त फल-पुष्पके बीज, वीरुध तथा उनको आरोपित करनेवाले आये। पर्याप्त सेवक आये।

उत्तम मुहूर्तमें मन्त्रपाठके मध्य, शङ्ख, भेरी-घोष सहित मुनियोंको, विप्रवर्गको आगे करके कुशने प्रस्थान किया। कुशावती उजाड़ नहीं की गयी। वह एक समृद्ध नगर बना रहा; किंतु कुछ अयोध्या आ गये। कुशकी राजधानी अयोध्या आ गयी। राजधानी आ जानेपर अनेक स्थानोंके कला-जीवी, व्यापारी, विद्वान स्वतः आकर बसने लगे। अयोध्या पुनः समृद्ध पुरी बनी। पुनः तीर्थयात्रियोंका आगमन प्रारम्भ हुआ।

नित्य अयोध्या

अयोध्या अदृश्य हो गयी। नित्य, दिव्यधाम साकेत जो श्रीरामके लिए पृथ्वीपर प्रकट हुआ था, अदृश्य हो गया; किंतु अयोध्या कहाँ अदृश्य हुई? अयोध्या पृथ्वीका अङ्ग है। अयोध्या जो पृथ्वी ही नहीं, ब्रह्माण्डका विराट् पुरुषका हृदय-स्थल है, अयोध्या जो परम पावन मोक्ष-प्रदायिनी पुरी है, अयोध्या जहाँ नित्य साकेत-बिहारी श्रीराम सन्निहित रहते हैं, वह कहाँ अदृश्य हुई? वह अदृश्य कैसे हो सकती है?

कभी किसीका हृदय दीखता है? दीखता है शव चीरनेपर केवल रक्त-संचालक यन्त्र कलेजा। वह हृदय जहाँ अन्तर्यामीके साथ मिला जीव-चेतन रहता है, जहाँसे प्राण ऊपर और अपान नीचे जाता है, प्राणापानके मध्यमें जो अंगुष्ठ परिमाण पुरुषका आवास-स्थल शून्याकाश-वायुरहित स्थान हृदय है, वह शवको चीरनेपर भी देखा जा सकेगा? वह तो अनुभवैकगम्य है—है, केवल यह अनुभूति है। दीखता है सामान्यतः उसका ऊपरी भाग वक्ष। विराट् पुरुषका हृदयस्थल अयोध्या भी इसी प्रकार अपने बाह्य रूपमें ही दीखता है। उसका वास्तविक स्वरूप तो अनुभव-गम्य ही है।

हृदयके ऊपरी भाग अर्थात् वक्षस्थलपर बाह्य परिवर्तन होते रहते हैं। कभी कोई चन्दन लगता है, कोई तिलक करता है, कोई मालाएँ धारण करता है। कभी रोमराजि टूटती-झड़ती है। किसीके कभी श्वेत या श्याम धब्बे भी उभड़ते हैं। अयोध्याके स्वरूपमें—बाह्य स्वरूपमें ये नैसर्गिक एवं औरोंके द्वारा किये गये प्रयत्न हुए हैं—होते रहे हैं। लेकिन अयोध्या नित्य है। अयोध्या मोक्ष-दायिनी पुरी है। अयोध्याके साथ श्रीसीताराम सदा सन्निहित हैं।

मैं यहाँ नित्य साकेत धामकी चर्चा नहीं कर रहा हू। उसकी चर्चा इस ग्रन्थके आरम्भमें प्रथम खण्डमें हो चुकी। मैं चर्चा कर रहा हूँ जो इस पृथ्वीपर, भारतवर्षमें, वर्तमान फैजाबाद जिलेके अन्तर्गत सरयू-तटपर

बसा एक सामान्य नगर है, उसकी। उसकी जिसे सम्राट् शकारि विक्रमादित्यने लगभग दो हजार वर्ष पूर्व अरण्यमें किसी दिव्यदृष्टि ऋषिके अनुग्रहसे उपलब्ध किया और सुनसान अरण्यको जनपदका रूप प्रदान किया।

मैं उसी अयोध्याकी चर्चा कर रहा हूँ जहाँ जानेपर यात्रीको प्राय: प्रत्येक ओर बड़ी-छोटी, पक्की, गिरती-टूटती कबरें ही अधिक दीख पड़ती हैं। उनकी संख्या देवमन्दिरोंसे बहुत अधिक है। आश्चर्यकी बात नहीं है कि इस्लामके अनुयायियोंने भी अयोध्याको अत्यन्त पवित्र माना और दूर-दूरके अपने मृत स्वजनोंको यहाँ लाकर भूमिमें कयामत सुलाये रखनेकी व्यवस्था करना उचित समझा? अयोध्याको ही क्यों एक लाख पक्की कबरें बनाकर अपना 'काबा बनानेकी बात सोची गयी? इसीलिए तो कि इस भूमिकी पावनता भारतीय रक्तमें धर्म-परिवर्तन करनेके पश्चात् भी बनी रही? उस पावनताका परित्याग करना प्रिय नहीं था। उसे अपने ढङ्गसे पकड़नेका प्रयत्न हुआ।

अब तो उन कबरोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। काल उन्हें कम करता जा रहा है। उन्हें नहीं रहना चाहिये था, इसलिए नहीं रहीं। शक्तिके सहारे दूसरोंको दु:खी करके जो कुछ किया जाता है, वह शुद्ध नहीं होता। उससे संघर्ष उत्पन्न होता है, जो उसे समाप्त कर देता है। यह दु:खकी ही बात थी कि अयोध्याको अधिकृत करनेका इस प्रकारका उद्योग किया गया और अब भी उचित सौजन्य जागा नहीं।

श्रीरामचरितके साथ श्रीरामकी जन्मभूमिकी यह अर्चा जानबूझकर करने लगा हूँ। यह अटपटी लग सकती है। असङ्गत लग सकती है; किंतु क्या आप कह सकते हैं कि सर्वेश्वरेश्वर श्रीराम सबके नहीं हैं? वे किसी एक ही सम्प्रदायके हैं?

सौजन्य, सौहार्द्रपूर्ण प्रयत्न भी सम्भव था। पुष्कर तीर्थराजके पार्श्वमें ही अजमेरके 'उर्स' का महामेला नहीं होता? भले आरम्भमें कुछ हुआ हो, अप्रिय इतिहासको उलटना अनावश्यक है। देखना यह है कि एक स्थानपर यह सौहार्द्र, यह स्नेह सम्भव हुआ तो अन्यत्र क्यों असम्भव हो गया। सौजन्यपूर्ण ढङ्गसे, अयोध्यामें आस्था रखनेवाले भावुक भक्तोंका सौहार्द्र प्राप्त करके, असंख्य कबरें बनाने—उनमें सात, बारह हाथ तककी बनानेके लिए कहानियाँ गढ़नेके स्थानपर कोई एक ही भव्य

आकर्षण—आराधना-स्थान भी तो बन सकता था, जैसा कि अजमेरमें है। अयोध्या पावन पुरी है तो वह प्रीतिके माध्यमसे सबको प्राप्त हो सकती थी।

श्रीरघुनाथ सबके हैं, अतः अयोध्या सबकी है। रामभक्तोंमें अनेक भक्तिप्राण श्रीरामभक्त मुस्लिम सन्त प्रिय हैं, प्रसिद्ध हैं, आदरार्ह माने जाते हैं। अनेक ऐसे हुए हैं जिन्होंने उसी आस्थासे अयोध्यामें निवास किया, जिस आस्थासे श्रीसीताराम-चरणानुरागी कोई सन्त करते हैं।

नित्यपुरी अयोध्या; किंतु यह अनेक बार आक्रान्ताओंका आखेट मधुपुरीके ही समान। अनेक बार उजड़ी और बसी। यह मत पूछिये कि यहाँ श्रीरामके समयका क्या है? उस समयका तो कुछ भी नहीं है। वह स्वरूप तो अयोध्याका उनके साथ ही अदृश्य हो गया था। कुशको भी वह अप्राप्य हो गया था।

कुशके समयका क्या है? यह प्रश्न भी असङ्गत है; क्योंकि काल प्रत्येक पार्थिव पदार्थको कवलित कर लेता है। कुश भी त्रेतामें ही हुए थे। आस्थावान आस्तिक मतोंके अनुसार तो लगभग पचास-पचपन करोड़ वर्ष पूर्व। आधुनिक इतिहासके अन्वेषकोंकी बात छोड़ देने योग्य है। उनमें-से एक वर्ग तो श्रीराम तथा श्रीकृष्णको ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं मानता। उसके मतसे श्रीराम एवं श्रीकृष्णके चरित हम हिन्दुओंके पूर्वजोंके उर्वर मस्तिष्ककी कल्पना हैं। (यद्यपि ये अन्वेषक ही मानते हैं कि ये पूर्वज तो असभ्य, अल्पशिक्षित, अविकसित लोग थे। तब पता नहीं इतने उत्कृष्ट चरितोंकी कल्पना वे कैसे कर सके। लेकिन अन्वेषकोंको तो सब परस्पर विरुद्ध बातें कहनेकी पूरी स्वतन्त्रता है।)

दूरकी कौड़ी लानेके प्रयत्नमें अन्वेषकोंका एक वर्ग अब कहने लगा है—'राम और कृष्ण हुए तो हैं, परन्तु श्रीकृष्ण पहिले हुए हैं और राम तो अभी ईसासे कुछ पूर्व या पश्चात् हुए।'

देशमें अब भी कुछ बड़े यज्ञ दो-चार वर्षोंके अन्तरसे हो जाते हैं, इसका पता कोई अन्वेषक क्यों रखे। उसे यह जानना क्यों आवश्यक हो कि इन यज्ञोंमें सृष्टि संवत्, कल्प संवत्, सतयुग संवत्, त्रेता संवत्, द्वापर संवत्, कलि संवत् भी बोलने पड़ते हैं। इन्हें क्या आवश्यकता कि यह जानें कि हिन्दुओंका एक पञ्चाङ्ग भी हुआ करता है जो प्रतिवर्ष नवीन बनता है। वर्ष-वर्षके क्रमसे आगे बढ़ता है और उसमें कौन-सा युग

किस दिन, किस महीनेकी किस तिथिको प्रारम्भ हुआ, यह भी लिखा होता है। यह सब विवरण अच्छे पञ्चाङ्गोंमें होता है। लेकिन पञ्चाङ्ग तो हम पिछड़े लोगोंकी पुरानी परम्पराके प्रतीक हैं। उन्हें कोई पाश्चात्य शिक्षा-प्रवीण प्रगतिशील कैसे प्रामाणिक मान सकता है।

यदि मान लें कि श्रीरामावतार पिछले त्रेतामें ही हुआ तो भी त्रेतान्तमें माननेपर भी मध्यमें ८,६४,००० वर्षकी आयुका द्वापर और कलियुगके पाँच सहस्र वर्षसे अधिक बीत चुके हैं, यह बात प्रत्येक आस्थावान हिन्दू सरलतासे समझ सकता है। इतनी आयु पाषाण, लौह आदिकी नहीं होती। अतः कुशके समयका भी कुछ पाया जाना कैसे सम्भव है?

अयोध्यामें जो कुछ है, विक्रम सम्वत्के प्रवर्तक शकारि विक्रमादित्यके द्वारा निर्मित है। उससे पूर्व उनको इस स्थलपर आनेपर अरण्य प्राप्त हुआ था। उनके द्वारा बसायी गयी अयोध्या भी कई बार आक्रान्त हुई। इसके देवस्थान तथा भवन ध्वस्त हुए। इसका साक्ष्य वहाँ बहुत है। अतः अब वहाँ जो कुछ है, कनक भवन, हनुमान गढ़ी, मणि पर्वत, लक्ष्मण किला आदि, वह सब बार-बारके जीर्णोद्धार, पुनर्निर्माणके पश्चात्का रूप है।

मिट्टी, पत्थर और उनसे निर्मित भवन, पदार्थ, मूर्त्तियाँ भी नित्य नहीं हुआ करतीं। इनमें दिव्यता नहीं होती। एक बार किसीसे मैंने पूछा था—'वृन्दावनकी कितने फीट गहराई तककी मिट्टी कहीं ले जाकर बिछा दी जाय, कितना मोटी तह बिछाई जाय तो वहाँ वृन्दावन बन जायगा और उसमें वृन्दावनकी दिव्यता आ जायेगी?'

यही बात अयोध्याके सम्बन्धमें भी पूछी जा सकती है। इसका उत्तर है कि मिट्टीके स्थानान्तरणसे धामका स्थानान्तरण सम्भव नहीं है। सरयूकी धारा सहस्रों मन रेणुका अयोध्यामें अन्यत्रसे ले आती है और सहस्रों मन मिट्टी प्रतिवर्ष अयोध्याकी अन्यत्र ले जाती है। वायुसे—आँधीसे भी मिट्टीका यह स्थानान्तरण होता रहता है; किंतु अयोध्यामें सरयूतटकी रज अब भी अवधकी पावन रज है या नहीं?

हमारा आपका शरीर केवल साढ़े तीन वर्षमें पूरा परिवर्तित हो जाता है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि शरीरकी अस्थियों तकके परमाणु प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहे हैं। पूरे शरीरका साढ़े तीन वर्षमें नवीनीकरणका क्रम अविराम चल रहा है; किंतु इतनेपर भी क्या आप परिवर्तित

होते हैं ? क्या आप अपने पिताश्री या गुरुदेवके शरीरको पवित्र , पूज्य मानना इसलिए त्याग देंगे ; क्योंकि जब आप उनसे उत्पन्न हुए अथवा जब उन्होंने आपपर अनुग्रह करके पारमार्थिक आलोक प्रदान किया , उस समयका उनका शरीर तो पूर्णतः परिवर्तित हो चुका है ?

भगवद्धाम भावमय है। जैसे अपने श्रद्धेयोंके शरीरको हम भावनासे पूजनीय मानते हैं। उनकी दिव्यता नित्य है। उनके पार्थिव रूपमें परिवर्तन हो जानेसे उनकी दिव्य शक्तिका लोप नहीं हो जाता। उनके पार्थिव पदार्थोंका स्थानान्तरण होनेसे उनकी वह दिव्य शक्ति अन्यत्र स्थानान्तरित नहीं हुआ करती।

एक उदाहरण—वृन्दावनमें जगन्नाथ घाटके श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें जगन्नाथ , सुभद्रा , बलरामजीके वही श्रीविग्रह विराजमान हैं , जो श्रीजगन्नाथ पुरीमें बीस वर्ष श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें पूजित होते रहे थे। कलेवर-परिवर्तनके पश्चात् उन्हें यहाँ लाया गया। वे भगवद्विग्रह हैं , पूज्य हैं। उनमें प्रभाव नहीं है , यह कहनेकी धृष्टता कोई आस्तिक नहीं करेगा ; किंतु उनके कारण वृन्दावनको अथवा वृन्दावनके उस मन्दिरको ही पुरीका प्रभाव तो प्राप्त नहीं हुआ। वृन्दावनमें उस मन्दिरमें भी पुरीके समान उच्छिष्ट-दोष नहीं होता , यह कोई स्वीकार करेगा ? इसे शास्त्र-का समर्थन प्राप्त होगा ?

अतः अयोध्या नित्य धाम है , दिव्य धाम है समस्त परिवर्तनों , आक्रमणकारियोंके ध्वन्सके पश्चात् भी। उसके दिव्य प्रभावमें कोई न्यूनता नहीं आयी। उसके नित्य स्वरूपमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वहाँ कुशके समयका अथवा और प्राचीन कोई पदार्थ हो या न हो। कालक्रमसे , किसी कुकाण्डके कारण आज अयोध्यामें जो कुछ है , वह भी न रहे और वह पुनः अरण्य हो जाय—सपाट समतल भूमि बन जाय तो भी क्या उसका नित्य रूप, उसका दिव्य प्रभाव कुछ न्यून हो जायगा ?

भगवद्धाममें जो मन्दिर हैं , लीला-स्थान कहे जाते हैं , उनका एक महत्त्व है और भगवद्धामका अपना प्रभाव है , यह दूसरी बात है। भगवद्धामका प्रभाव अलक्ष्य है। अतिशय श्रद्धालु , भगवत्कृपा-प्राप्त साधक ही उसका अनुभव कर पाता है ; किंतु वह प्रभाव पड़ता सबपर है। सबको पुनीत करता रहता है। व्यक्त लीलास्थान , मन्दिर आदि हमें अपने अधिष्ठाताका स्मरण दिलाते हैं।

अद्वैत वेदान्ती कहते हैं— 'वृत्यारूढ़ ब्रह्म ही अविद्या-निवर्तक होकर बन्धनका निवर्तक है।'

भगवान सर्वव्यापक, सर्वत्र, सर्वस्वरूप हैं, यह सत्य होनेपर भी यह तथ्य है कि जीवका कल्याण तब तक नहीं होता, जब तक भगवान उसके स्मरणके विषय नहीं बनते। स्मृतिमें—अन्तःकरणमें आये भावमय भगवान ही भवसागरमें भटकना निवृत्त करते हैं। अतः भगवत्स्मृतिका बहुत अधिक महत्त्व है। इसीलिए उन स्मारकोंका भी बहुत अधिक महत्त्व है जो हमें भगवानका, भगवानकी किसी लीलाका स्मरण कराते हैं।

इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि स्थान, मूर्त्ति, पदार्थ जो कहा जाता है, वह ऐतिहासिक सत्य है या नहीं। अन्तर इससे पड़ता है कि आप श्रद्धा-सहित उसे स्वीकार करके भगवत्स्मृतिमें तन्मय होते हो या नहीं। मीराके समीप जो विषका प्याला भेजा गया था, वह भगवानको भोग लगाकर भेजा गया था ? उसे केवल कहा गया कि— 'भगवत्प्रसाद है।' मीराने इसपर आस्था कर ली। कर ली आस्था और ग्रहण किया, तब उसे भगवत्प्रसादत्व प्राप्त हो गया या नहीं ?

अयोध्याके स्थानोंके सम्बन्धमें आपकी आस्था आपको लाभ पहुँचाती है; किंतु अयोध्या और सरयूके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं है। उनमें अपना प्रभाव है। वे आस्थाहीनको भी पवित्र करती हैं।

भगवद्धाम पार्थिव होता है, यह भ्रम है। भगवद्धाम भगवानसे नित्य अभिन्न है, अतः चिद्घन है। वह कालके प्रभावसे परे है। सर्वत्र सर्वरूप भगवानके विद्यमान रहते भी कितने लोग उनका अनुभव कर पाते हैं ? कितनोंको उन सौन्दर्य-माधुर्यैकका सान्निध्य प्राप्त है ? उनके साक्षात्कारके लिए साधना, प्रीति और उनकी अनुकम्पा आवश्यक हैं या नहीं ?

भगवद्धामका प्रवेश, वहाँका निवास भगवानकी अनुकम्पाके बिना नहीं होता। श्रीसीताराम अनुग्रह करते हैं, तब अयोध्याकी प्राप्ति होती है अत्यधिक उनकी कृपा हो तो महाभाग भक्ति-भावित अन्तःकरण भक्तोंको अयोध्याके नित्य दिव्यरूपका दर्शन भी होता है—अब भी होता है।
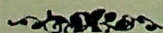
उपसंहार

अनन्त, अचिन्त्य परमतत्त्वके दो रूप हैं—सगुण एवं निर्गुण। प्रत्येक भाव त्रिविध होता है—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। इतना महान अनन्त विश्व-ब्रह्माण्ड जिसका आधिभौतिक रूप है, उसका आध्यात्मिक रूप—अधिष्ठान सत्ता निर्गुण, निष्क्रिय, निर्विकार रूप हो और अधिदैविक रूप न हो, यह सम्भव नहीं है।

निर्गुण रूप अर्थात् ब्रह्म—अद्वितीय, निराकार, निर्विकार, निष्क्रिय है। यह श्रुति-प्रतिपाद्य तत्त्व निर्मल अन्तःकरणसे अनुभव-गम्य होता है।

जो सर्वेश्वरेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वसञ्चालक है, वह सगुण तत्त्व भी साकार-निराकार उभय रूप है। वह सर्व-सामान्यके लिए अदृश्य होनेसे निराकार ही है; किंतु वह समस्त विरुद्ध-धर्मैकाश्रय अनन्तकरुणावरुणालय, भक्तानुग्रह-स्वरूप समय-समयपर अवतार धारण करके पृथ्वीपर विविध रूपोंमें प्रकट होता रहता है। अभीप्सु भक्तोंके लिए तो उसकी साकार रूपमें सन्निधि सदा सुगम रहती ही है।

इस सगुण-साकारकी भी यह अचिन्त्य शक्ति—अकल्पनीय महिमा है कि वह साकार होकर भी ससीम-परिच्छिन्न नहीं होता। वह एक देशमें दीखता हुआ भी देश-कालका आश्रय है। वह देश, कालमें नहीं है। देश, काल ही उसमें भावित हैं।

इस सगुण-साकारके चार रूप हैं—१. नाम, २. रूप, ३. लीला, ४. धाम, इन चारोंमें कोई न्यूनाधिक नहीं है। किसीका महत्त्व या प्रभाव किसीसे कम नहीं है, क्योंकि ये चार प्रतीत होनेपर भी चार नहीं हैं। परस्पर सर्वथा अभिन्न—यह एक ही तत्त्व है। इनके चार रूपका भेद भी हमारे आपके लिए है। क्योंकि हम भेद-दर्शी हैं। अनादि-कालसे भेदमें ही व्यवहार करते, भेदको ही सत्य माननेके हम अभ्यासी हो गये हैं। अतः हमारे कल्याणके लिए वह अकारण कृपालु अपने ही ये चार रूप व्यक्त करता है।

इन चार रूपोंमें-से दो-की उपलब्धि हमें शब्दात्मक होती है। लीला और नाम—इनमें नाम तो नित्य शब्दात्मक है; किंतु लीला कभी धरा-पर व्यक्त होती है। कुछ थोड़े अत्यन्त उत्कृष्ट भक्तोंके लिए सब समय भी व्यक्त रह सकती है; किंतु सर्व-साधारणको उसका शब्दात्मक रूप—श्रवण, पठन, कीर्त्तन, स्मरण ही सुलभ होता है।

रूप सर्व-सामान्यको अर्चा-विग्रह—मूर्त्ति-रूपमें ही सुलभ है। अन्यथा उसका भी वर्णन ही सुना जा सकता है। स्थूल रूपसे केवल धाम सर्व-सुलभ है। अतः सुलभता क्रमसे ही उनका वर्णन करें तो प्रथम सबसे दुर्लभ रूपको ही लेना उचित है।

रूप—भगवान नारायण, श्रीकृष्ण तथा श्रीरामके रूपोंमें किंचित् अन्तर है। भगवान नारायण अतल गम्भीर समुद्रके समान अथवा निर्मल क्षितिजके समान नीलवर्ण हैं। श्रीकृष्णकी नीलिमामें तनिक श्यामता है और उनका शरीर किञ्चित् ह्रस्व है। श्रीरामका शरीर मध्यम प्रलम्ब है और वे तनिक हरिदाभ दूर्वादल-श्याम हैं।

इनमें तीनों श्रीवत्स-वक्षा एवं कौस्तुभ-कण्ठ हैं। इनके शरीरसे एक दिव्य सुरभि निकलती रहती है—तुलसी-मिश्रित नीलोत्पल सुगन्धिके समान सुरभि। अङ्गराग, वनमालाकी सुगन्धिसे मिलकर वह और भी अद्भुत हो जाती है।

श्रीनारायणका, श्रीरामका अथवा श्रीकृष्णका शरीर ज्योतिर्मय है। परम सुकुमार है। इतना सुकुमारकी साक्षात् श्री भी अपने करोंसे चरण-संवाहनमें सङ्कोच करती हैं कि उनके कर-स्पर्शसे उन पदोंको कष्ट होगा। केवल करोंकी कान्तिसे ही पाद-संवाहन सम्पन्न करती हैं।

शीतल सुधा-स्निग्ध श्रीअङ्गकी कान्ति जहाँ धोती या उत्तरीयके पीतपटपर पड़ती है, वहाँ वह वस्त्र हरित प्रतीत होता है।

अरुण-मृदुल चरणातल, करपल्लव एवं अधर, विशाल नेत्रोंका श्वेतांश तनिक गुलाबी, कर एवं पदके नख उभरे, सुचिक्कन, अरुणाभा लिये ऐसे जैसे शशिके खण्डोंसे निर्मित हों। उज्वल दन्तावलीकी कान्ति अधरोंको दुग्धोज्वल कर देती है हास्यके समय।

कुञ्चित, कोमल, सघन, काली केशराशि, धनुषाकार भौंहें उन्नत भाल, अतसी-कुसुम-सदृश नासिका, कम्बु-कण्ठ, विशाल वक्ष,

घुटनोंसे नीचे तक विशाल भुजाएँ, लम्बे कान, छिपीजत्रु, क्षीण कटि। शोभासिन्धुके एक-एक अङ्गका वर्णन असम्भव है। जहाँ नेत्र जाते हैं, वहीं रह जाते हैं। कल्पनासे भी मानसमें आया यह रूपक, कल्पितहोकर भी भव-रोगका निवारक है। जैसे वृत्त्यारूढ़ ब्रह्म अर्थात् कल्पित ब्रह्माकार-वृत्ति भी अविद्यानाशिका है।

यह रूप दुर्लभ है। धन्य हैं वे जिन्हें स्वप्नमें भी इसका दर्शन होता है। वैसे रूप-दर्शन भी दो प्रकारका है—दिव्य एवं मानस। भावनाकी प्रबलतासे अथवा किसी अन्यके सङ्कल्पसे जो भगवद्रूप दीखता है, वह मानस है। जैसे रावणने अनेक राम-रूप मायासे युद्धके समय प्रकट कर दिये थे। इनमें भी दूसरेके सङ्कल्पसे होनेवाला रूप-दर्शन प्रायः कोई प्रभाव नहीं उत्पन्न करता। अपने भावकी प्रबलतासे होनेवाला मानस-दर्शन भक्तिको बढ़ाता है।

दिव्य भगवद्रूप-दर्शन अर्थात् स्वयं भगवान दया करके प्रकट हों। ऐसा दर्शन हृदयमें हो या नेत्रोंके सम्मुख, मोह एवं लोभको तत्काल नष्ट कर देता है। देहासक्ति, यशासक्तिका, समूल उन्मूलन हो जाता है। अतः अन्तःकरणके सञ्चितका नाश हो जाता है। यह दिव्य दर्शन ही आवागमन-के चक्रको समाप्त कर देता है।

धाम—जहाँ तक नित्य भगवद्धामकी बात है, वह तो महाभागवतों-को देहपातके पश्चात् उपलब्ध होता है। धरापर जो भगवद्धाम हैं, वे भी सदा सबके लिए सुलभ नहीं हैं। बहुत थोड़े लोग—धामनिष्ठ लोग ही वहाँ जाकर निवास कर सकते हैं। सामान्य व्यक्ति कभी सुयोग होनेपर वहाँका यात्रा कर आ सकता है।

भगवान भाव-गम्य हैं, अतः उनका धाम भाव-गम्य नहीं है, केवल देह-गम्य है। ऐसा मान लेना भ्रम है। धामकी प्राप्ति धाममें निवास धामाधिपतिकी अनुकम्पाके बिना सम्भव नहीं है, यह सबको स्वीकार है। श्रीराम अनुग्रह करें तो अयोध्याकी प्राप्ति हो।

धाम साधन-निरपेक्ष उद्धारक है, यह बात भी सत्य है। क्योंकि नाम, रूप, लीला, धाम परस्पर अभिन्न हैं, अतः इनकी शक्ति भी समान ही है। अतः नाम-जप अथवा रूप-ध्यानसे जो कुछ भी सम्भव है, धाम-निवाससे भी वही सम्भव है। इसलिए धाममें निवासमात्र प्राणीके निःश्रेयसके लिए पर्याप्त है।

भगवद्धाम देश नहीं है। वह देशातीत चिन्मय-तत्त्व है—भाव-गम्य है। अतः धामकी प्राप्ति यह नहीं है कि आप अयोध्याकी भौगोलिक सीमाके भीतर हैं। श्रीराम सर्वव्यापक हैं और वे सदा अयोध्यानाथ हैं अयोध्यामें ही रहते हैं। उनका दर्शन–अयोध्याका आविर्भाव सदा सर्वत्र सम्भव है। अयोध्याके भौतिक क्षेत्रका प्रभाव है– अमित प्रभाव है ; किंतु उसे भी ग्रहण करनेकी क्षमता अपनेमें उत्पन्न करनी पड़ती है। चुम्बक लौहको आकर्षित करता है। आग्नेय शीशेपर सूर्यकी किरणें पड़कर अग्नि उत्पन्न करती है ; किंतु यदि ये किसी आवरणमें हों, इनपर मिट्टीका गाढ़ा लेप लगा हो तो ? इसी प्रकार यदि अज्ञानका प्रगाढ़ आवरण हो तो धामका प्रभाव बहुत देरसे होता है। श्रीरामचरितमानसमें काकभुशुण्डिजीको धामके प्रभावसे श्रीरामभक्ति प्राप्त होनेका वर्णन है ; किंतु कितने जन्म लगे ?

कबनेहुँ जन्म अवध बस जोई।
राम परायन सो परि होई॥

—रामचरितमानस ७.९६।६

लेकिन 'कवनिहुँ जनम' कहनेसे ही यह स्पष्ट है कि 'अवध बसने' मात्रसे उसी जन्ममें जन्म-मरणका चक्र समाप्त हो जाना सर्वथा सुनिश्चित नहीं है।

'हम चिन्मय भगवद्धाममें हैं।' यह भाव ही भगवद्धामकी उपलब्धि कराता है। यह भाव सुस्थिर-जागृत रहेगा तो धामकी सम्यक् उपलब्धि होगी। इसकी जितनी विस्मृति रहेगी, उतना ही धामका प्रभाव सक्रिय होनेमें विलम्ब होगा।

नाम—जैसे कोई रूप ऐसा नहीं है जो भगवद्रूप न हो, वैसे ही कोई नाम ऐसा नहीं है जो भगवन्नाम न हो। भगवान सर्वस्वरूप हैं। सर्वनामा हैं। वस्तु-रूप ही सम्भव नहीं है जो भगवानसे पृथक् हो।

'सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप रासि भगवंत॥'

—रामचरितमानस ४.३

यह 'सचराचर' भगवन्त मिथ्या भावना नहीं है। सत्य यही है। अतः शब्दमात्र भगवन्नाम है। जीव माया-मोहित सो रहा है—स्वप्न देख रहा है। इसके दुःख, इसका जन्म-मरण स्वाप्निक हैं। यह सत्य होनेपर

भी सत्य तो यही रहेगा कि 'बिनु जागे दुःख दूर न होई।' सब कहाँ सो रहे हैं? सर्वव्यापक सच्चिदानन्दकी गोदसे पृथक् कोई सोनेका स्थान सम्भव है? लेकिन सो रहे हैं—स्वप्न देख रहे हैं, अतः स्वप्नका दुःख यह संसार चल रहा है अनादिकालसे।

नाम, रूप, लीला, धामका आश्रय इस स्वप्नको समाप्त करके जगा देनेके लिए है। स्वप्न संस्कारज होते हैं। भावनाएँ ही स्वप्नकी सृष्टि करती हैं। अतः जहाँ रोग है, औषधि वहीं लगनी चाहिये। नाम, रूप, लीला, धाम भी भावनात्मक होंगे तब स्वप्न-भङ्ग करेंगे। इस तथ्यसे कि सब रूप भगवानके, सब नाम भगवन्नाम—किसीका कोई काम नहीं चलता। जिस रूपमें आपकी नैष्ठिकी भगवद्बुद्धि होगी, जिस नाममें आपकी निष्ठापूर्वक भगवन्नाम-भाव होगा, वही रूप, वही नाम आपका उद्धारक बनेगा। भगवद्बुद्धि और उसमें दृढ़ निष्ठा उद्धारका हेतु है।

रूप भगवान हैं और नाम भगवान नहीं हैं, यह व्यापक भ्रम है। सगुण-साकार साक्षात् श्रीराम और उनके 'राम' नाममें कोई अन्तर नहीं है। अतएव नाम लिया नहीं जाता। स्वयं भगवान नामके रूपमें जिह्वापर पधारते हैं। नामोच्चारण साक्षात् भगवानकी सन्निधि है। नामोच्चारण ही भगवत्प्राप्ति है। यह नहीं हो रहा है, इसका अर्थ है कि नाममें निष्ठा नहीं है। हम नामको भगवान नहीं मानते, भले नामको भगवत्प्राप्तिका साधन मानकर लेते हों।

नाम साधन नहीं है, साध्य है। वैसे उसे आप साधन मानेंगे तो वह साधन भी है—सर्वश्रेष्ठ साधन; किंतु यह नामका सम्मान, नामका सदुपयोग नहीं है। नाम साक्षात् भगवान हैं, यह निष्ठा नामका उचित सम्मान है। नाम ही अनुग्रह करके प्राणीको अपनाते हैं, तब उनका उच्चारण मनुष्य कर पाता है। तब नाममें निष्ठा होती है।

जैसे किसी प्रकार भी धाममें प्रविष्ट होनेसे धामका प्रभाव पड़ता ही है; किंतु धाम-निष्ठा, धाम-स्मृतिके बिना उसका फल कालान्तरमें, जन्मान्तरमें प्रकट होता है, ऐसे ही 'भाव कुभाव अनख आलस हू।' नाम-जप, नामोच्चारणका प्रभाव पड़ता ही है; किंतु उससे प्राणीका परम कल्याण तत्काल नहीं होता। वह प्रभाव निष्फल नहीं जाता, परन्तु विलम्बित होता है।

नाममें रुचि जन्म-जन्मान्तरके पुण्य-प्रभाव तथा भगवत्कृपाके संयोग-से ही होती है। अतः अत्यन्त सुगम, सर्वसुलभ, होकर भी नामका आश्रय सब नहीं ले पाते हैं। नामकी दुर्लभता इतनी ही है कि उसमें रुचि नहीं हो पाती।

रूपका दर्शन, रूपका ध्यान सबसे कठिन है। धाममें पहुँचना कठिन होता है। पहुँचकर टिकना कठिन होता है। सबके लिए पहुँचना ही सुगम नहीं है। पहुँचनेपर, बस जानेपर भी धाममें धाम-भावना नहीं रह पाती। उसमें भी सामान्य स्थान बुद्धि बन जाती है। नाममें ये कठिनाइयाँ नहीं हैं; किंतु नाममें रुचि होना सरल नहीं है। यह बड़े सौभाग्यसे होती है।

लीला—भगवल्लीलामें साक्षात् सम्मिलत होना तो धाम प्राप्तिसे ही सम्भव है। लीलाका आश्रय तीन रूपोंमें लिया जा सकता है—लिया जाता है—१. लीला-चिन्तन, २. लीलाभिनय-दर्शन, ३. लीला-श्रवण-पठन।

रूप ध्यानकी अपेक्षा लीला-चिन्तन अधिक सरल है। इसमें मन स्वतः लगा रहता है। मानसिक सेवा भी लीला-स्मरणका ही अङ्ग है। भगवद्भक्तोंने लीला-चिन्तन तथा मानसिक सेवाको बहुत अधिक महत्त्व दिया है; क्योंकि इसमें लगकर आप भगवानकी सन्निधिमें सहज भावसे रह पाते हैं। इसमें वाह्य पदार्थ, परिस्थिति तथा शरीरका स्वास्थ्य भी बहुत कम बाधक बन पाता है।

इतना सब होनेपर भी लीला-चिन्तनके लिए भावनाशील मानस तो आवश्यक है ही। यह भावना-शीलता सबको कहाँ सुलभ है। यह तो कवि, चित्रकार प्रभृति कलाकारोंकी सम्पत्ति है—भव्य सम्पत्ति। इसका सदुपयोग भगवानके समीप पहुँचा देता है।

सबके लिए सुगम, चिन्ताकर्षक है लीला-दर्शन। राम-लीला, रास-लीला आबाल-वृद्ध, नर-नारी सभीका मन आकर्षित करके उतने समय भगवानमें लगानेके उत्तम साधन हैं। इनके द्वारा केवल सात्विक मनोरञ्जन ही नहीं होता, यदि लीलाभिनय-कर्त्ता तथा उनके सञ्चालक सावधान हों, भक्त हों, लीलाको लौकिक मनोरञ्जनका ही माध्यम न बना दें, आधुनिकतम नृत्य-गानके स्तरपर न उतार लावें तो

लीला-दर्शन दर्शकके चित्तमें भगवानकी लीलाका आविर्भाव करनेमें समर्थ है। इससे भक्तिदेवीका अनुग्रह प्राप्त होता है।

इसमें भी सर्व-सुलभता नहीं है। न सर्वत्र लीलाभिनय होता, न सब समय यह सम्भव है। लीलाभिनय श्रम तथा अर्थ-साध्य साधन है। इसके दर्शनके लिए भी समयकी, सुविधाकी अपेक्षा है। यह समय तथा सुविधा भी अत्यल्प लोगोंको उपलब्ध होती है।

सबसे सुगम है लीला-श्रवण। इसके भी दो रूप हैं—कथा-श्रवण तथा लीला-चरितका पठन। कथा-श्रवणमें भी लीला-दर्शनके समान ही कठिनाइयाँ हैं। सबसे सुगम होता है चरित-ग्रन्थका पठन। यह दूसरेकी अपेक्षा नहीं करता। अत्यल्प व्ययमें पुस्तक उपलब्ध होती है और अपनी सुविधाके समय पढ़ी जा सकती है।

स्वयं पढ़नेकी अपेक्षा सम्भव हो तो किसीसे सुनना सदा अधिक भावोत्पादक होता है; किंतु यह सम्भव न हो तो लीलाका–भगवच्चरित-का पठन मनको सहज ही भगवानके चिन्तनमें लगा देता है। हृदयमें भगवच्चरित-चिन्तन चलने लगता है, तब स्वतः भावोद्रेक होता है।

यहीं यह स्पष्ट कर देने योग्य है कि नाम, रूप धामके समान ही लीला भी साक्षात् भगवदात्मिका ही है। इसीसे श्रीमद्भागवत, श्रीराम-चरितमानस जैसे ग्रन्थ भगवानके वाङ्मय-विग्रह माने जाते हैं। भगवल्लीला-वर्णनके ग्रन्थ भगवत्स्वरूप ही हैं। उनका भगवद्बुद्धिसे सम्मान करके, उनमें श्रद्धा रखकर उनका श्रवण-पठन करने वाला ही उनका सम्पूर्ण लाभ प्राप्त करता है। वैसे तो उनकी उपस्थिति भी स्थानको पवित्र करती रहती है।

यह श्रीरामचरित मैंने इसलिए प्रारम्भ किया था कि इसके लेखन-के बहाने मेरे हृदयमें लीला-चिन्तन चल सकेगा। लीला भी क्योंकि भगवदात्मिका है, अनुग्रहपूर्वक ही अन्तरमें आती है। मेरे मनका जितना अधिकार था, जितना मैं ग्रहणक्षम था, उतना आविर्भाव हुआ। लीला तो अनन्त है, अनन्त दयामयी है।

यह जिनकी लीला है, वे इसके श्रवण-पठन करने वालोंपर अनुग्रह करते रहेंगे, उन्हें स्वजन स्वीकार करते रहेंगे, ऐसी मेरी आस्था है।

श्रीराम चरित चतुर्थ खण्ड सम्पूर्ण

नवीन पुस्तकें

पाकेट आकारमें—लेखक—**श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'**

१. ज्ञान-गंगा (कहानियाँ)—गीताके अध्याय १५ की कहानी व्याख्या, २१ कहानियाँ, पृष्ठ २८४, मूल्य ४)५०

२. भक्ति-भागीरथी (कहानियाँ)—गीताके अध्याय १२ की कहानी व्याख्या, १२ कहानियाँ, पृष्ठ २४८, मूल्य ४)००

३. नवधा-भक्ति (कहानियाँ)—श्रीमद्भागवत तथा श्रीरामचरितमानस—दोनोंकी नवधा-भक्ति सम्बन्धी १८ कहानियाँ, पृष्ठ १७४, मूल्य ३)००

४. उन्मादिनी यशोदा—'व्रजका एक दिन' की भाँति अत्यन्त भावपूर्ण, पृष्ठ १६४ मूल्य २)५०

डिमाई आकारमें—लेखक—डॉ० किशोर काबरा

५. बाल रामायण (चित्रमय)—पद्यमय रामकथा जो अत्यन्त सरल, रोचक और बालोपयोगी है, पृष्ठ १२८ मूल्य ७)००

६. बाल कृष्णायन—पद्यमय कृष्णकथा जो अत्यन्त सरल, रोचक और बालोपयोगी है, पृष्ठ ६४, मूल्य २)००

प्राप्ति-स्थान—

श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा-संस्थान,

मथुरा-२८१००१